कौटिलीय अर्थशास्त्र

हिन्दी भाषानुवाद सहित

अनु० पं० उदयवीर शास्त्री

कौटलीय अर्थशास्त्र

हिन्दी अनुवाद सहित

अनुवादक—

विद्याभास्कर वेदरत्न प्रो० उदयवीर शास्त्री,

न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग तीर्थ

वेदान्तविशारद ।

प्रकाशक—

मेहरचन्द लक्ष्मणदास, अध्यक्ष

संस्कृत पुस्तकालय,

सैदमिट्ठा बाज़ार

लाहौर ॥

साधारण आवृत्ति ७) रु. | प्रथम १९२५ | लायब्रेरी एडीशन १०)

उपोद्घात

कौटलीय अर्थशास्त्र, संस्कृत साहित्यमें, अपने विषयका उच्चकोटिका ग्रन्थ है। सबसे प्रथम इस ग्रन्थको सन् १९०९ ई० में, मैसूर राज्यकी ग्रन्थशालाके अध्यक्ष श्रीयुत शामशास्त्रीने प्रकाशित कराया। तथा अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगोंके सुभीतेके लिये उन्होंने इस ग्रन्थका इंग्लिश भाषामें अनुवाद भी करदिया। उसी समयसे इस दुरूह ग्रन्थको समझनेके लिये विद्वज्जन पर्याप्त परिश्रम कररहे हैं।

शामशास्त्रीने पहिले पहिल इस ग्रन्थका इंग्लिश अनुवाद किया; इसलिये उनका प्रयत्न प्रशंसनीय है, परन्तु यह कहे बिना नहीं रहा जासकता, कि उस अनुवादमें अनेक स्थलोंपर स्खलन हैं। जिनका यहां उल्लेख करना अनावश्यक है*। इस कार्यके अनन्तर इस विषयपर अनेक साप्ताहिक मासिक पत्र पत्रिकाओंमें लम्बे चौड़े विचारपूर्ण लेख समय २ पर प्रकाशित होतेरहे, परन्तु पुस्तकके रूपमें कोई महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित नहीं हुआ।

अबसे पांच बरस पहिले मैं यह विचार कररहा था, कि इस ग्रन्थका अनुवाद करूं, जिससे सर्वसाधारणके सन्मुख यह विषय उपस्थित किया जासके, तथा इसपर और भी अच्छा विचार होसके। कुछ ही समयके अनन्तर मैंने सुना कि प्राणनाथ विद्यालङ्कार इस ग्रन्थका अनुवाद कररहे हैं, मैं चुप होगया। और सन् १९२३ ई० में वह अनुवाद प्रकाशित होगया। उस अनुवादके देखनेपर, मैं इसका अच्छीतरह निर्णय करसका, कि मुझे भी अपने विचार कार्यरूपमें परिणत करदेने चाहियें।

---

* अनुवादके समय, किसी २ स्थलपर, हमने शास्त्रीजीके भ्रमका दिग्दर्शन कराया है। पाठक वहींपर देखेंगे।

यद्यपि प्राणनाथ विद्यालङ्कारने अपने निवेदनमें इस बातपर बड़े जोरपर लिखा है कि डाक्टर शामशास्त्रीके आङ्गलभाषा भाषान्तरको सम्मुख रखकर यह अनुवाद नहीं कियागया'। परन्तु दोनोंका मुकाबला करनेपर हमको यह दावा, कुछ गलत साबित हुआ है। यद्यपि विद्यालङ्कारजीने कहीं २ अपने अनुवादकी टिप्पणियोंमें शामशास्त्रीके अनुवादको अशुद्ध करनेका यत्न किया है परन्तु वहांपर मूलके अर्थको न समझकर, आप स्वयं ही मुंहकी खा गये हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं अनुवाद करते हुए आपने पद पदपर स्खलन किया है। यदि आपके सम्पूर्ण अनुवादको सामने रखकर कहाजाय, तो बलात्कार मुंहसे ये शब्द निकल पड़ते हैं, कि यह अनुवाद अपूर्ण तथा मूलके विपरीत और विशृङ्खलित भावोंसे भरा हुआ है। हमारा विचार था, कि इसतरहके कुछ स्थलोंको यहां उद्धृत करदिया जाय, परन्तु स्थानाभाव और कुछ अप्रासंगिक होनेके कारण हमको अपना यह विचार शान्त करना पड़ा। परन्तु यह निश्चय है, कि आसन्नभविष्यमें, इस ग्रन्थकी विस्तृत समालोचनाके अवसरपर, ये सब ही बातें, पाठकोंके सन्मुख उपस्थित कीजासकेंगी।

अस्तु, जब हमारा यह विचार होरहा था, उसी समय हमको कौटलीय अर्थशास्त्रकी एक प्राचीन टीका 'नयचन्द्रिका' उपलब्ध हुई। इस टीकाको हमने ही सम्पादन किया, और सन् १९२४ में लाहौरसे ही यह टीका प्रकाशित होगई। यद्यपि यह टीका सम्पूर्ण अर्थशास्त्रपर प्राप्त नहीं हुई, पर जितनी भी प्राप्त हुई उतनी महत्त्वपूर्ण है। उसके पढ़ने और सम्पादन करनेसे, इस ग्रन्थकी बहुतसी उलझी हुई ग्रन्थियां सुलझ गईं, और हमें पूर्ण विश्वास हुआ, कि अब इस मूलग्रन्थ का अनुवाद सरलता से हो सकेगा।

इसी समयमें 'अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थावलि' में कौटलीय अर्थशास्त्र की, संस्कृत भाषामें एक विशद व्याख्या प्रकाशित हुई। यह व्याख्या महामहोपाध्याय गणपति शास्त्रीने प्राचीन टीकाओंके आधार पर लिखी है। आपने अपने इसी ग्रन्थ की भूमिकामें लिखा

है कि उन्होंने कुछ भागपर नयचन्द्रिका और कुछ भागपर भट्टस्वामीकी व्याख्याका अवलम्ब लेकर, तथा उनकी अपनी मातृभाषाके एक प्राचीन सम्पूर्ण अर्थशास्त्रके व्याख्यानका अवलम्ब लेकर, इस 'मूला' नामकी विशद व्याख्याको लिखा है।

इस सम्पूर्ण प्राचीन सामग्रीके आधारपर हमने इस अनुवादको पूरा करनेका विचार किया। इसी समय लाहौरके प्रसिद्ध संस्कृत पुस्तक विक्रेता-मेहरचन्द्र लक्ष्मणदासने, हमको यह कार्य बहुत जल्दी करदेनेके लिये प्रेरित किया। उसका फलस्वरूप यह अनुवाद पाठकोंकी भेंट है। इसकी उपयोगिता स्वयं पढ़कर ही पाठक जान सकेंगे।

हमारा विचार था, कि इस ग्रन्थके साथ एक विस्तृत उपोद्घात लिखाजाय; परन्तु कौटलीय अर्थशास्त्रके सम्बन्धमें अपने उन सब विचारोंको प्रकट करनेके लिये हमें ये उपोद्घातके पन्ने कुछ थोड़े प्रतीत हुए। अब विचार होगया है, कि मूल अर्थशास्त्र पर एक विस्तृत स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखाजाय। उस ही में ग्रन्थकर्त्ता के समय, स्थान, ग्रन्थकी विशेषताएं तथा अन्य आलोचना, प्रत्यालोचना आदिका समावेश होगा।

फिर भी इस ग्रन्थके सम्बन्धमें इतना जानलेना आवश्यक है, कि यह मूलग्रन्थ विष्णुगुप्त कौटल्य (चाणक्य) का लिखा हुआ है। चाणक्य, सम्राट् चन्द्रगुप्तका प्रधान अमात्य था। इसने मगधके राजा महानन्द पद्मको, अपना तिरस्कार करनेके कारण मारकर चन्द्रगुप्त मौर्यको राज्यसिंहासनपर बिठाया था। यदि अंग्रेजी गज़से नापा जाय, तो मौर्य चन्द्रगुप्तका समय ईसवी सन्से पहिले तीसरी सदी है। वही समय चाणक्यका भी समझना चाहिये।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि यह कौटलीय अर्थशास्त्र कठिन ग्रन्थ है। इसमें अनेक अप्रसिद्ध पारिभाषिक शब्द हैं। विषयगाम्भीर्य कूट २ कर भरा हुआ है। इस ग्रन्थमें ऐसे भी अनेक विषय हैं, जिनका विचार, वर्त्तमान पराधीन बूढ़े भारतके बालकोंके हृदयमें, स्वप्नमें भी स्थान नहीं पासकता; तथा जो वर्त्तमान परिस्थिति

के अनुसार हमसे सर्वथा परोक्ष होचुके हैं यह सब कुछ होनेपर भी मैं अपनी उस पूजनीया मातृसंस्था (महाविद्यालय ज्वालापुर) का अत्यन्त कृतज्ञ हूं, जिसके स्वतन्त्र वातावरणमें रहकर, तथा दश वर्ष तक उसकी प्रेममयी गोदमें शिक्षा-प्राप्तकर, इस दुरूह कार्यके करनेमें भी सरलतासे समर्थ होसका ।

अन्तमें मैं अपने परम मित्र साहित्यभास्कर पं० रामस्वरूप शास्त्री काव्यतीर्थ (हरदुआगंज निवासी), पं० बलदेव शास्त्री बी० ए० (लाहौर निवासी), तथा श्रीयुत प्यारेलाल दुग्गल बी० ए० (कपूरथला निवासी) का अत्यन्त कृतज्ञ हूं; और इनका हार्दिक धन्यवाद करता हूं; इन्होंने अनेक स्थलोंपर ग्रन्थके समझनेमें, मुझे बहुत सहायता दी है ।

लाहौर
श्रावण शुक्ला सप्तमी
मंगलवार
सं० १९८२ विक्रमी

विनीत—
उदयवीर

कौटलीय अर्थशास्त्र

प्रथम भाग ।

विषयानुक्रमणिका ।

विषय

विषय पृष्ठ संख्या

विषय	पृष्ठ संख्या

(५)

विषय | पृष्ठ संख्या

कौटलीय अर्थशास्त्र

विनयाधिकारिक-प्रथम अधिकरण

पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्तावितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम् ॥ १ ॥ तस्यायं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः ॥ २ ॥

पृथिवीके प्राप्त करने और प्राप्तकी रक्षा करनेके लिये जितने अर्थशास्त्र प्राचीन आचार्योंने लिखे, प्रायः उन सबको ही संगृहीत करके यह एक अर्थशास्त्र बनाया गया है ॥१॥ सबसे प्रथम यह उसके प्रकरण और अधिकरणोंका निरूपण किया जाता है ॥ २ ॥

विद्यासमुद्देशः ॥ ३ ॥ वृद्धसंयोगः ॥ ४ ॥ इन्द्रियजयः ॥ ५ ॥ अमात्योत्पत्तिः ॥ ६ ॥ मन्त्रिपुरोहितोत्पत्तिः ॥ ७ ॥ उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम् ॥ ८ ॥ गूढपुरुषोत्पत्तिः ॥ ९ ॥ गूढपुरुषप्रणिधिः ॥ १० ॥ स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम् ॥ ११ ॥ परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः ॥ १२ ॥ मन्त्राधिकारः ॥ १३ ॥ दूतप्रणिधिः ॥ १४ ॥ राजपुत्ररक्षणम् ॥१५॥ अवरुद्धवृत्तम् ॥ १६ ॥ अवरुद्धे च वृत्तिः ॥१७॥ राजप्रणिधिः ॥ १८ ॥ निशान्तप्रणिधिः ॥ १९ ॥ आत्मरक्षितकम् ॥ २० ॥ इति विनयाधिकारिकं प्रथममधिकरणम् ॥ २१ ॥

१—विद्यासमुद्देश २—वृद्धसंयोग ३—इन्द्रियजय ४—अमात्योंकी नियुक्ति ५—मन्त्री और पुरोहितोंकी नियुक्ति ६—गुप्तरीतिसे अमात्योंके सरल तथा कुटिल

भावकी परीक्षा ७—गूढ़ पुरुषोंकी स्थापना ८—गुप्तचरोंकी कार्योंपर नियुक्ति ९—अपने देशमें कृत्य और अकृत्य पक्षकी रक्षा १०—शत्रु देशके कृत्य और अकृत्य पक्षको वशमें करना ११—मन्त्राधिकार १२—दूतप्रणिधि १३—राजपुत्रकी रक्षा १४—अवरुद्ध राजकुमारका व्यवहार १५—अवरुद्ध राजकुमारके विषयमें राजाका व्यवहार १६—राजप्रणिधि १७—राज भवनकी स्थापनाका विचार १८—अपनी रक्षा १९—ये अठारह प्रकरण विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें हैं ॥३—२१॥

जनपदविनिवेशः ॥ २२ ॥ भूमिच्छिद्रविधानम् ॥ २३ ॥ दुर्गविधानम् ॥ २४ ॥ दुर्गविनिवेशः ॥ २५ ॥ संनिधातृनिचयकर्म ॥ २६ ॥ समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनम् ॥ २७ ॥ अक्षपटले गाणनिक्याधिकारः ॥ २८ ॥ समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनम् ॥ २९ ॥ उपयुक्तपरीक्षा ॥ ३० ॥ शासनाधिकारः ॥३१॥ कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा ॥ ३२ ॥ आकरकर्मान्तप्रवर्तनम् ॥ ३३ ॥ अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षः ॥३४॥ विशिखायां सौवर्णिकप्रचारः ॥ ३५ ॥ कोष्ठागाराध्यक्षः ॥ ३६ ॥ पण्याध्यक्षः ॥ ३७ ॥ कुप्याध्यक्षः ॥ ३८ ॥ आयुधागाराध्यक्षः ॥ ३९ ॥ तुलामानपौतवम् ॥ ४० ॥ देशकालमानम् ॥४१॥ शुल्काध्यक्षः ॥४२॥ सूत्राध्यक्षः ॥ ४३ ॥ सीताध्यक्षः ॥ ४४ ॥ सुराध्यक्षः ॥४५॥ सूनाध्यक्षः ॥ ४६ ॥ गणिकाध्यक्षः ॥४७॥ नावध्यक्षः ॥४८॥ गोऽध्यक्षः ॥ ४९ ॥ अश्वाध्यक्षः ॥ ५० ॥ हस्त्यध्यक्षः ॥५१॥ रथाध्यक्षः ॥ ५२ ॥ पत्त्यध्यक्षः ॥५३॥ सेनापतिप्रचारः ॥५४॥ मुद्राध्यक्षः ॥ ५५ ॥ विवीताध्यक्षः ॥ ५६ ॥ समाहर्तृप्रचारः ॥ ५७ ॥ गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनाः प्रणिधयः ॥ ५८ ॥ नागारिकप्रणिधिः ॥५९॥ इत्यध्यक्षप्रचारो द्वितीयमधिकरणम् ॥६०

१—जनपदनिवेश २ भूमिच्छिद्रविधान ३—दुर्गविधान ४—दुर्गविनिवेश ५—सन्निधाताका निचयकर्म ६—समाहर्ताके द्वारा राज्यकरका एकत्रित करना ७—अक्षपटलमें गाणनिक्यका अधिकार ८- अपहृत राज्य धनका पुनः प्राप्त करना ९—उपयुक्त परीक्षा १०— शासनाधिकार ११—कोशमें रखने योग्य रत्नोंकी परीक्षा १२—खानके कार्योंका संचालन १३—अक्षशालामें स्वर्णाध्यक्षका कार्य १४ विशिखामें सौवर्णिकका व्यापार १५ ध्यक्ष १६ १

७ १८ आयुधागाराध्यक्ष १९–तोल मापका संशोधन २०–देश या कालका मान २१ शुल्काध्यक्ष २२–सूत्राध्यक्ष २३–सीताध्यक्ष २४–सुराध्यक्ष २५–सूनाध्यक्ष २६–गणिकाध्यक्ष २७–नावध्यक्ष २८–गोध्यक्ष २९–अश्वाध्यक्ष ३०–हस्त्यध्यक्ष ३१–रथाध्यक्ष ३२–पत्त्यध्यक्ष ३३–सेनापतिका कार्य ३४–मुद्राध्यक्ष ३५–विवीताध्यक्ष ३६–समाहर्त्ताका कार्य ३७–गृहपति, वैदेहक तथा तापसके वेशमें गुप्तचर ३८–नागरिकका कार्य ये सब अड़तीस प्रकरण अध्यक्ष प्रचार द्वितीय अधिकरण में हैं ॥२२–६०॥

व्यवहारस्थापना विवादपदनिबन्धः ॥६१॥ विवाहसंयुक्तम् ॥ ६२ ॥ दायविभागः ॥ ६३ ॥ वास्तुकम् ॥६४॥ समयस्यानपाकर्म ॥ ६५ ॥ ऋणादानम् ॥ ६६ ॥ औपनिधिकम् ॥६७॥ दासकर्मकरकल्पः ॥ ६८ ॥ संभूयसमुत्थानम् ॥ ६९ ॥ विक्रीतक्रीतानुशयः ॥ ७० ॥ दत्तस्यानपाकर्म ॥७१॥ अस्वामिविक्रयः ॥ ७२ ॥ स्वस्वामिसंबन्धः ॥ ७३ ॥ साहसम् ॥ ७४ ॥ वाक्पारुष्यम् ॥ ७५ ॥ दण्डपारुष्यम् ॥ ७६ ॥ द्यूतसमाह्वयम् ॥ ७७ ॥ प्रकीर्णकानि ॥ ७८ ॥ इति धर्मस्थीयं तृतीयमधिकरणम् ॥७९॥

१–व्यवहारकी स्थापना २–विवाद पदोंका विचार ३–विवाह सम्बन्धी विचार ४–दायविभाग ५–वास्तुक ६–समय (प्रतिज्ञा) का न छोड़ना ७–ऋण लेना ८–औपनिधिक ९–दास तथा अन्य सेवकोंका विधान १०–सम्भूय समुत्थान ११–क्रय विक्रय विषयक अनुशय १२–धन देनेका वचन देकर फिर न देना १३–अस्वामिविक्रिय १४–स्वस्वामिसम्बन्ध १५–साहस १६–वाक्पारुष्य १७–दण्डपारुष्य १८–द्यूत समाह्वय १९–प्रकीर्णक ये उन्नीस प्रकरण धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें हैं ॥ ६१—७९ ॥

कारुकरक्षणम् ॥ ८० ॥ वैदेहकरक्षणम् ॥ ८१ ॥ उपनिपातप्रतीकारः ॥ ८२ ॥ गूढाजीविनां रक्षा ॥८३॥ सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनम् ॥ ८४ ॥ शङ्कारूपकर्माभिग्रहः ॥ ८५ ॥ आशुमृतकपरीक्षा ॥ ८६ ॥ वाक्यकर्मानुयोगः ॥ ८७ ॥ सर्वाधिकरणरक्षणम् ॥ ८८ ॥ एकाङ्गवधनिष्क्रयः ॥ ८९ ॥ शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्पः ॥ ९० ॥ कन्याप्रकर्म ॥ ९१ ॥ अतिचारदण्डः ॥ ९२ ॥इति कण्टकशोधनं चतुर्थमधिकरणम् ॥ ९३ ॥

१–शिल्पियोंसे देशकी रक्षा २—[illegible] देशकी रक्षा ३–दैवी आपत्तियोंका प्रतीकार ४–गूढाजीवियोंसे प्रजाकी रक्षा ५–सिद्धवेष पुरुषोंके द्वारा प्रलोभन विद्याओंका प्रकाशन ६–सन्देह, वस्तु तथा कार्यके द्वारा चोर आदिको पकड़ना ७–आशुमृतक परीक्षा ८–वाक्य कर्मानुयोग ९–सब राजकीय विभागोंकी रक्षा १०–एक अंगके छेदनका निष्क्रय ११–शुद्ध और चित्र दण्ड विधान १२–कन्या प्रकर्म १३–अतिचार दण्ड। ये १३ प्रकरण कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें हैं ॥ ८०—९३॥

दाण्डकर्मिकम् ॥ ९४ ॥ कोशाभिसंहरणम् ॥९५॥ भृत्याभरणीयम् ॥ ९६ ॥ अनुजीविवृत्तम् ॥ ९७ ॥ सामयाचारिकम् ॥ ९८ ॥ राज्यप्रतिसंधानमैकैश्वर्यम् ॥ ९९ ॥ इति योगवृत्तं पञ्चममधिकरणम् ॥ १०० ॥

१–दाण्डकर्मिक २–कोशका संग्रह ३–भृत्यभरणीय ४–राज्यकर्मचारियोंका वर्त्ताव ५–सामयाचारिक ६–राज्यप्रतिसन्धान ७–एकैश्वर्य। ये सात प्रकरण योगवृत्त नामक पंचम अधिकरणमें हैं ॥ ९४—१०० ॥

प्रकृतिसंपदः ॥ १०१ ॥ शमव्यायामिकम् ॥ १०२ ॥ इति मण्डलयोनिः षष्ठमधिकरणम् ॥ १०३ ॥

१–अमात्य आदि प्रकृतियोंके गुण २–शम और व्यायाम (उद्योग) ये दो प्रकरण मण्डलयोनि नामक षष्ठ अधिकरणमें हैं ॥ १०१–१०३ ॥

षाड्गुण्यसमुद्देशः क्षयस्थानवृद्धिनिश्चयः ॥ १०४ ॥ संश्रयवृत्तिः ॥ १०५ ॥ समहीनज्यायसां गुणाभिनिवेशः हीनसंधयः ॥ १०६ ॥ विगृह्यासनम् संधायासनम् विगृह्य यानम् संधाय यानम् संभूय प्रयाणम् ॥ १०७ ॥ यातव्यामित्रयोरभिग्रहचिन्ता क्षयलोभविरागहेतवः प्रकृतीनां सामवायिकविपरिमर्शः ॥१०८॥ संहितप्रयाणिकम् परिपणितापरिपणितापसृताश्च संधयः ॥१०९॥ द्वैधीभाविकाः संधिविक्रमाः ॥ ११० ॥ यातव्यवृत्तिः अनुग्राह्यमित्रविशेषाः ॥ १११ ॥ मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधयः ॥ ११२ ॥ पार्ष्णिग्राहचिन्ता ॥ ११३ ॥ हीनशक्तिपूरणम् ॥ ११४ ॥ बलवता विगृह्योपरोधहेतवः दण्डोपनतवृत्तम् ॥ ११५ ॥ दण्डोपनायिवृत्तम् ॥ ११६ ॥ संधिकर्म संधिमोक्षः ॥ ११७ ॥ मध्य-

मचरितम् उदासीनचरितम् मण्डलचरितम् ॥११८ इति षाड्गुण्यं सप्तममधिकरणम् ॥ ११९ ॥

१–षाड्गुण्यका उद्देश २–क्षय,स्थान और वृद्धिका निश्चय ३–संश्रयवृत्ति ४–सम, हीन और अधिकके गुणोंका अभिनिवेश. ५–हीनसन्धि ६–विग्रह करके आसन ७–सन्धि करके आसन ८–विग्रह करके यान ९–सन्धि करके यान १०–सम्भूय प्रयाण ११–यातव्य और शत्रुके प्रति यानका निर्णय १२–प्रकृतियोंके क्षय, लोभ और विरागके हेतु १३–सामवायिक राजाओंका विचार १४–मिलकर आक्रमण १५–परिपणित, अपरिपणित और अपसृत सन्धि १६–द्वैधीभाव सम्बन्धी सन्धिविग्रह १७–यातव्यवृत्ति १८–अनुग्राह्य मित्रविशेष १९–मित्रसन्धि, हिरण्यसन्धि, भूमिसन्धि और कर्मसन्धि २०–पार्ष्णिग्राह चिन्ता २१–हीनशक्ति पूरण २२–प्रबल शत्रुके साथ विग्रह करके दुर्ग प्रवेशके कारण २३–दण्डोपनतवृत्त २४–दण्डोपनायिवृत्त २५–सन्धिकर्म २६–सन्धि मोक्ष २७–मध्यमचरित २८–उदासीन चरित २९–मण्डलचरित। ये उन्तीस प्रकरण षाड्गुण्यनामक सप्तम अधिकरणमें हैं ॥ १०४–११९ ॥

प्रकृतिव्यसनवर्गः ॥ १२० ॥ राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता ॥१२१॥ पुरुषव्यसनवर्गः पीडनवर्गः स्तम्भनवर्गः कोशसंगवर्गः ॥ १२२ ॥ बलव्यसनवर्गः मित्रव्यसनवर्गः ॥ १२३ ॥ इति व्यसनाधिकारिकमष्टममधिकरणम् ॥ १२४ ॥

१–प्रकृतिव्यसनवर्ग २–राजा और राज्यके व्यसनोंका विचार ३–पुरुषव्यसनवर्ग ४–पीडनवर्ग ५–स्तम्भनवर्ग ६–कोशसंगवर्ग ७–बलव्यसनवर्ग ८–मित्रव्यसनवर्ग। ये सब आठ प्रकरण व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणमें हैं ॥ १२०—१२४ ॥

शक्तिदेशकालबलाबलज्ञानम् यात्राकालाः ॥ १२५ ॥ बलोपादानकालाः संनाहगुणाः प्रतिबलकर्म ॥ १२६ ॥ पश्चात्कोपचिन्ता बाह्याभ्यन्तरप्रकृतिकोपप्रतीकारः ॥ १२७ ॥ क्षयव्ययलाभविपरिमर्शः ॥ १२८ ॥ बाह्याभ्यन्तराश्चापदः ॥ १२९ ॥ दूष्यशत्रुसंयुक्ताः ॥ १३० ॥ अर्थानर्थसंशययुक्ताः तासामुपायविकल्पजाः सिद्धयः ॥ १३२ ॥ इत्यभियास्यत्कर्म नवममधिकरणम् ॥ १३२ ॥

१—शक्ति, देश और कालके बलाबलका ज्ञान २—यात्राकाल ३—सेनाओंके तैयार होनेका समय ४—सन्नाहगुण ५—प्रतिबलकर्म ६—पश्चात्कोपचिन्ता ७—बाह्य और अभ्यन्तर प्रकृतिके कोपका प्रतीकार ८—क्षय व्यय तथा लाभका विचार ९—बाह्य तथा अभ्यन्तर आपत्तियां १०—दूष्य तथा शत्रुजन्य आपत्तियां ११—अर्थ, अनर्थ तथा संशय सम्बन्धी आपत्तियां १२—उन आपत्तियोंके प्रतीकारके लिये साम आदि उपायोंके प्रयोग भेदसे उत्पन्न होनेवाली सिद्धियां। ये सब बारह प्रकरण अभियास्यत्कर्म नामक नवम अधिकरणमें हैं ॥ १२५—१३२ ॥

स्कन्धावारनिवेशः ॥ १३३ ॥ स्कन्धावारप्रयाणम् ॥१३४॥ बलव्यसनावस्कन्दकालरक्षणम् ॥ १३५ ॥ कूटयुद्धविकल्पाः ॥ १३६ ॥ स्वसैन्योत्साहनम् ॥ १३७ ॥ स्वबलान्यबलव्यायोगः ॥ १३८ ॥ युद्धभूमयः पत्त्यश्वरथहस्तिकर्माणि ॥ १३९ ॥ पक्षकक्षोरस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः सारफल्गुबलविभागः पत्त्यश्वरथहस्तियुद्धानि ॥ १४० ॥ दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनम् तस्य प्रतिव्यूहस्थानम् ॥१४१॥ इति सांग्रामिकं दशममधिकरणम् ॥ १४२ ॥

१—स्कन्धावारनिवेश २—स्कन्धावारप्रयाण ३—बलव्यसन, अवस्कन्दकालसे सेनाका संरक्षण ४—कूटयुद्धके भेद ५—स्वसैन्योत्साहन ६—स्वसेना और परसेनाका व्यवस्थापन ७—युद्धयोग्य भूमि ८—पदाति, अश्व, रथ तथा हाथी आदिके कार्य ९—पक्ष कक्ष तथा उरस्य इत्यादि व्यूह विशेषोंका सेनाके परिमाणके अनुसार व्यूह विभाग १०—सार तथा फल्गु बलका विभाग ११—पदाति, अश्व, रथ तथा हाथियोंका युद्ध १२—दण्डव्यूह, भोगव्यूह, मण्डलव्यूह, असंहतव्यूह, इनके प्रकृतिव्यूह और विकृति व्यूहोंकी रचना १३—उपर्युक्त दण्डादि व्यूहके प्रतिव्यूहकी स्थापना। ये तेरह प्रकरण साङ्ग्रामिक दशम अधिकरणमें हैं ॥ १३३—१४२ ॥

भेदोपादानानि उपांशुदण्डः ॥ १४३ ॥ इति संघवृत्तमेकादशमाधिकरणम् ॥ १४४ ॥

१—भेदक उपादान २—उपांशुदण्ड। ये दो प्रकरण संघवृत्त नामक ग्यारहवें अधिकरणमें हैं १४३ १४४

दूतकर्म १४५ मन्त्रयुद्धम् १४६ सेनामुख्यवधः मण्डलप्रोत्साहनम् ॥ १४७ ॥ शस्त्राग्निरसप्रणिधयः वीवधासारप्रसारवधः ॥ १४८ ॥ योगातिसंधानम् दण्डातिसंधानम् एकविजयः ॥ १४९ ॥ इत्याबलीयसं द्वादशमधिकरणम् ॥ १५० ॥

१–दूतकर्म २–मन्त्र युद्ध ३–सेनापतियोंका वध ४–मित्र आदि राजमण्डलका प्रोत्साहन ५–शस्त्र, अग्नि तथा रसोंका गूढ़प्रयोग ६–वीवध आसार तथा॰ प्रसारका नाश ७–योगातिसन्धान ८-दण्डातिसन्धान ९–एक विजय। ये नौ प्रकरण आबलीयस नामक बारहवें अधिकरणमें हैं ॥ १४५—१५० ॥

उपजापः ॥ १५१ ॥ योगवामनम् ॥ १५२ ॥ अपसर्पप्रणिधिः ॥ १५३ ॥ पर्युपासनकर्म अवमर्दः ॥ १५४ ॥ लब्धप्रशमनम् ॥ १५५ ॥ इति दुर्गलम्भोपायस्त्रयोदशमधिकरणम् ॥ १५६ ॥

१–उपजाप २–योगवामन ३–गूढ पुरुषोंका शत्रु देशमें निवास ४–शत्रुके दुर्गको घेरना ५–शत्रुके दुर्गका अवमर्द ६–विजित दुर्ग आदिमें शान्ति स्थापित करना। ये छः प्रकरण दुर्गलम्भोपाय नामक तेरहवें अधिकरण में हैं। ॥ १५१—१५६ ॥

परघातप्रयोगः ॥ १५७ ॥ प्रलम्भनम् ॥ १५८ ॥ स्वबलोपघातप्रतीकारः ॥ १५९ ॥ इत्यौपनिषदिकं चतुर्दशमधिकरणम् ॥ १६० ॥

१–परघातप्रयोग २–प्रलम्भन ३–शत्रुके द्वारा अपनी सेनापर किये गये घातक प्रयोगोंका प्रतीकार। ये तीन प्रकरण औपनिषदिक चौदहवें अधिकरणमें हैं ॥ १५७—१६० ॥

तन्त्रयुक्तयः ॥ १६१ ॥ इति तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशमधिकरणम् ॥ १६२ ॥

१–तन्त्रयुक्ति। यह एक प्रकरण तन्त्रयुक्ति नामक पन्द्रहवें अधिकरण में हैं ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

शास्त्रसमुद्देशः पञ्चदशाधिकरणानि सपञ्चाशदध्यायशतं साशीति प्रकरणशतं षट्श्लोकसहस्राणीति ॥ १६३ ॥

इस प्रकार सम्पूर्ण कौटलीय अर्थशास्त्रमें १५ अधिकरण, एकसौ पचास (१५०) अध्याय एकसौ अस्सी (१८०) प्रकरण और छः हजार श्लोक हैं।

(एक श्लोकमें ३२ अक्षर होते हैं, उनका समुदाय एक ग्रन्थ कहाता है, इस प्रकार यह कौटलीय अर्थशास्त्र कुल छः हजार ग्रन्थ है। अर्थात् इसके अक्षरोंको यदि अनुष्टुप् छन्दमें बांधदिया जाय, तो छः हजार श्लोक बनजाते हैं) ॥ १६३॥

सुखग्रहणविज्ञेयं तत्त्वार्थपदनिश्चितम् ।
कौटल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रन्थविस्तरम् ॥ १६४ ॥

इति कौटलीये ऽर्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे
राजवृत्तिः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥

सुकुमारमति पुरुषभी इस शास्त्रको सरलतासे समझ सकते हैं, क्योंकि इस शास्त्रमें इस प्रकार यथार्थ अर्थ और पदोंका प्रयोग किया गया है, जिससे किसी तरहका भी सन्देह नहीं होता। ग्रन्थका व्यर्थ विस्तार भी नहीं किया गया, अर्थात् किसी भी अनावश्यक या अनपेक्षित बातका उल्लेख नहीं कियागया। इस अर्थशास्त्रको कौटल्यने बनाया है ॥ १६४ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त।

दूसरा अध्याय

पहिला प्रकरण

विद्या—समुद्देश

आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः ॥ १ ॥ त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति मानवाः ॥ २ ॥ त्रयीविशेषो ह्यान्वीक्षकीति ॥ ३ ॥

विद्या चार हैं:—आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्त्ता और दण्डनीति ॥ १ ॥ मनुके अनुयायी कहते हैं, कि विद्या तीन ही हैं:—त्रयी, वार्त्ता और दण्डनीति ॥ २ ॥ आन्वीक्षकी विद्या त्रयीके अन्तर्गत ही समझी जाती है, वह उससे पृथक् नहीं है ॥ ३ ॥

वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्हस्पत्याः । संवरणमात्रं हि त्रयी लोकयात्राविद इति ॥५॥ दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसाः ॥६॥ तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिबद्धा इति ॥ ७ ॥

बृहस्पतिके अनुगामी कहते हैं, कि विद्या दो ही हैं—वार्त्ता और दण्डनीति ॥ ४ ॥ क्योंकि लोकयात्राविद् अर्थात् वार्त्ता और दण्डनीतिमें निपुण, सुचतुर संसारी पुरुषके लिए, त्रयी, केवल संवरण (

आवरणमात्र अर्थात् लोग उसे त्रयीके न माननेपर नास्तिक न कहने लग जांय, इसीलिए त्रयीकी सत्ता) है। वह पृथक् विद्या नहीं है ॥ ५ ॥ शुक्राचार्यके सम्प्रदायके विद्वान् कहते हैं कि—केवल दण्डनीति ही एक विद्या है ॥ ६ ॥ क्योंकि उसहीमें अन्य सब विद्याओंके योगक्षेमका निर्भर है ॥ ७ ॥

चतस्र एव विद्या इति कौटल्यः ॥ ८ ॥ ताभिर्धर्मार्थौ यद्विद्यात्तद्विद्यानां विद्यात्वम् ॥ ९ ॥ सांख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षकी ॥ १० ॥

परन्तु कौटल्य आचार्यका मत है, कि विद्या चार ही हैं ॥ ८ ॥ क्योंकि विद्याओंकी वास्तविकता यही है कि उनसे धर्म और अधर्मके यथार्थ स्वरूपका बोध होता है ॥९॥ सांख्य, योग और लोकायत ये आन्वीक्षकी विद्या हैं ॥१०॥

धर्माधर्मौ त्रय्यामर्थानर्थौ वार्तायां नयापनयौ दण्डनीत्याम् ॥ ११ ॥

त्रयीमें धर्म और अधर्मकी, वार्त्तामें उचित समयपर कृषि आदिके बोनेसे सुफल और न बोनेसे कुफल आदिका, तथा दण्डनीतिमें सन्धि विग्रह आदिके उचित उपयोगोंका प्रतिपादन किया गया है ॥ ११ ॥

बलाबले चैतासां हेतुभिरन्वीक्षमाणा लोकस्योपकरोति व्यसनेऽभ्युदये च बुद्धिमवस्थापयति प्रज्ञावाक्यक्रियावैशारद्यं च करोति ॥ १२ ॥

त्रयी आदि विद्याओंकी प्रधानता और अप्रधानताको युक्तियोंसे निर्धारित करती हुई आन्वीक्षकी विद्या लोक का उपकार करती है। दुःख और सुखमें बुद्धिको ठीक रखती है। सोचने, विचारने, बोलने और कार्य करनेमें चतुराईको पैदा करती है ॥ १२ ॥

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् ।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षकी मता ॥ १२ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे विद्यासमुद्देशे आन्वीक्षकीस्थापना नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यह आन्वीक्षकी विद्या, सब विद्याओंका प्रदीप, सब कार्योंका साधनभूत तथा सब धर्मोंका सदा आश्रयभूत मानी गई है ॥ १३ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तीसरा अध्याय

त्रयी स्थापना

सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी ॥१॥ अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः ॥ २ ॥ शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोविचितिर्ज्योतिषमिति चाङ्गानि ॥ ३ ॥

सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद ये तीनों त्रयी कहाते हैं ॥ १ ॥ अथर्ववेद और इतिहासवेदको वेद कहते हैं ॥ २ ॥ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दोविचिति और ज्योतिष ये छः अङ्ग हैं ॥ ३ ॥

एष त्रयीधर्मश्चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां च स्वधर्मस्थापनादौपकारिकः ॥४॥ स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति ॥ ५ ॥

यह त्रयीमें निरूपण किया हुआ धर्म, चारों वर्ण और चारों आश्रमों को अपने २ धर्ममें स्थित रखनेके कारण लोकका अत्यन्त उपकारक है ॥ ४ ॥ ब्राह्मणका अपना धर्म, पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, तथा दान देना और लेना है ॥ ५ ॥

क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्राजीवो भूतरक्षणं च ॥६॥ वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च ॥ ७॥ शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारुकुशीलवकर्म च ॥ ८ ॥

क्षत्रियका अपना धर्म पढ़ना यज्ञ करना, दानदेना, शस्त्रोंसे जीवन निर्वाह करना, तथा प्राणियोंकी रक्षा करना है ॥ ६ ॥ वैश्यका अपना धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, खेती और पशुओंकी रक्षा करना, तथा व्यापार करना है ॥ ७ ॥ शूद्रका अपना धर्म, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकी सेवा सुश्रूषा करना, खेती, पशुओंका पालन तथा व्यापार करना, शिल्प, गाना, बजाना तथा भाट चारण आदिका कार्य करना है ॥ ८ ॥

गृहस्थस्य स्वकर्माजीवस्तुल्यैरसमानर्षिभिर्वैवाह्यमृतुगामित्वं देवपित्रातिथिभृत्येषु त्यागः शेषभोजनं च ॥ ९ ॥

गृहस्थका अपना धर्म, अपने वर्णके अनुकूल कार्योंसे आजीविका करना, अपने कुल आदिसे समान और भिन्न गोत्रवालोंके साथ विवाह कार्य करना, ऋतुगामी होना देव, पितर अतिथि तथा भृत्य आदि सबको देकर फिर पीछेसे स्वयं भोजन करना है ॥ ९ ॥

ब्रह्मचारिणः स्वाध्यायो ऽग्निकार्याभिषेकौ भैक्षव्रतत्वमाचार्ये प्राणान्तिकी वृत्तिस्तदभावे गुरुपुत्रे सब्रह्मचारिणि वा ॥ १० ॥

ब्रह्मचारीका अपना धर्म, वेदाध्ययन करना, अग्निहोत्र तथा नित्य स्नान करना, भिक्षाचर्या, तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारीका जीवन पर्यन्त गुरुके समीप रहना, गुरुके न रहनेपर गुरुपुत्र अथवा अपने किसी समान शाखाध्यायी के समीप रहना है ॥ १० ॥

वानप्रस्थस्य ब्रह्मचर्यं भूमौ शय्या जटाजिनधारणमग्निहोत्राभिषेकौ देवतापित्रातिथिपूजा वन्यश्चाहारः ॥ ११ ॥

वानप्रस्थका अपना धर्म, ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना, भूमिपर शयन करना, जटा तथा मृग चर्म आदिका धारण करना, अग्निहोत्र तथा नित्य स्नान करना, देव, पितर तथा अतिथियोंकी पूजा करना, और जंगलमें होनेवाले कन्दमूल फल आदिका आहार करना है ॥ ११ ॥

परिव्राजकस्य संयतेन्द्रियत्वमनारम्भो निष्किंचनत्वं सङ्गत्यागो भैक्षमनेकत्रारण्ये वासो बाह्यमाभ्यन्तरं च शौचम् ॥१२॥ सर्वेषामहिंसा सत्यं शौचमनसूयानृशंस्यं क्षमा च ॥ १३ ॥

संन्यासीका अपना धर्म, जितेन्द्रिय होना, कामनारहित होना, किसी वस्तुपर अपना अधिकार न रखना, और शरीर, वाणी तथा मनकी अच्छी तरह शुद्धि करना है ॥ १२ ॥ मन, वचन, कर्मसे किसी तरह भी हिंसा न करना, सत्य बोलना, पवित्र रहना, किसीसे ईर्ष्या न करना, निष्ठुर न होना और क्षमाशील होना, ये सब वर्ण और आश्रमोंके लिये साधारण धर्म हैं। इनका प्रत्येकको पालन करना चाहिये ॥ १३ ॥

स्वधर्मः स्वर्गायानन्त्याय च ॥ १४ ॥ तस्यातिक्रमे लोकः संकरादुच्छिद्येत ॥ १५ ॥

अपने धर्मका पालन करना स्वर्ग और मोक्षप्राप्तिका साधन है ॥ १४ ॥ अपने धर्मका उल्लङ्घन करनेपर, कर्मसाङ्कर्य और वर्णसाङ्कर्य होनेसे लोक सर्वथा उच्छिन्न हो जाता है ॥ १५ ॥

तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत् ।
स्वधर्मं संदधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति ॥ १६ ॥

व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः ।
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति ॥१७॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे विद्यासमुद्देशे
त्रयीस्थापना तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥

इसलिये राजाका कर्त्तव्य है कि वह प्रजाको धर्ममार्गसे भ्रष्ट न होने देवे । अपने २ धर्मका पालन कराता हुआ राजा, यहां और परलोकमें सुखी होता है ॥ १६ ॥ श्रेष्ठ मर्यादाके व्यवस्थित होनेपर, वर्ण और आश्रमकी ठीक २ परिस्थिति रहनेपर, इस प्रकार त्रयी प्रतिपादित धर्मके द्वारा रक्षाकी हुई प्रजा सदा सुखी रहती है, कभी क्लेशको प्राप्त नहीं होती ॥ १७ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय ।

वार्त्ता और दण्डनीतिकी स्थापना ।

कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता ॥ १ ॥ धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टिप्रदानादौपकारिकी ॥ २ ॥ तया स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम् ॥ ३ ॥

कृषि, पशुपालन और व्यापार, यह वार्त्ता है । अर्थात् वार्त्ता नामक विद्यामें इन विषयोंका प्रतिपादन किया जाता है ॥ १ ॥ यह वार्त्ताविद्या, धान्य, पशु, हिरण्य, तांबा आदि अनेक प्रकारकी धातु और नौकरचाकर आदिके देनेसे राजा प्रजाका अत्यन्त उपकार करनेवाली होती है ॥ २ ॥ वार्त्ता विद्याके द्वारा उत्पन्न हुए २ कोश और सेनासे, अपने और पराये सबको, राजा वशमें करलेता है ॥ ३ ॥

आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः ॥ ४ ॥ तस्य नीतिर्दण्डनीतिः ॥ ५ ॥ अलब्धलाभार्था लब्धपरिरक्षणी रक्षितविवर्धनी वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च ॥ ६ ॥

आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्त्ता इन सबके योग और क्षेमका साधन दण्डही है ॥ ४ ॥ उसकी (दण्डकी) नीति अर्थात् यथार्थ स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाला शास्त्रही दण्डनीति कहाता है ॥ ५ ॥ यह दण्डनीतिही अप्राप्त वस्तुओंको प्राप्त करानेवाली, प्राप्त पदार्थोंकी रक्षा करनेवाली, सुरक्षित पदार्थोंमें

_द्धि करनेवाली, और वृद्धिको प्राप्त हुए पदार्थोंको उचित स्थानोंमें लगाने वाली होती है ॥ ६ ॥

तस्यामायत्ता लोकयात्रा ॥ ७ ॥ तस्माल्लोकयात्रार्थी नित्यमुद्यतदण्डः स्यात् ॥ ८ ॥ न ह्येवंविधं वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा दण्ड इत्याचार्याः ॥ ९ ॥

संसारका निर्वाह इसीके ऊपर निर्भर है ॥ ७ ॥ इसलिये संसारको ठीक २ रास्तेपर चलानेकी इच्छा रखनेवाला राजा सदा उद्यतदण्ड रहे ॥ ८ ॥ क्योंकि दण्डके अतिरिक्त इस प्रकारका और कोई भी साधन नहीं है, जिससे सबही प्राणी झट अपने वशमें होसकें, यह आचार्योंका मत है ॥ ९ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १० ॥ तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः ॥ ११ ॥ मृदुदण्डः परिभूयते ॥ १२ ॥

परन्तु कौटल्य ऐसा नहीं मानता ॥ १० ॥ क्योंकि वह कहता है कि तीक्ष्णदण्ड (निष्ठुरतापूर्वक दण्ड देनेवाले) राजासे सबही प्राणी खिन्न होजाते हैं ॥ ११ ॥ तथा जो दण्ड देनेमें कमी करता है, लोग उसका तिरस्कार करते हैं ॥ १२ ॥

यथार्हदण्डः पूज्यः ॥ १३ ॥ सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति ॥ १४ ॥

इसलिये राजा उचित दण्ड देनेवाला होना चाहिये। इस प्रकार दण्ड देनेवाला राजा सदाही पूजा जाता है ॥ १३ ॥ क्योंकि विधिपूर्वक शास्त्रसे जानकर प्रयुक्त किया हुआ दण्ड, प्रजाओंको धर्म, अर्थ और कामसे युक्त करता है ॥ १४ ॥

दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वानप्रस्थपरिव्राजकानपि कोपयति किमङ्ग पुनर्गृहस्थान् ॥१५॥ अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति ॥ १६ ॥

अज्ञानतापूर्वक काम और क्रोधके वशीभूत होकर अनुचित ढंगसे प्रयुक्त किया गया दण्ड, वानप्रस्थ और परिव्राजक जैसे निःस्पृह व्यक्तियोंको भी कुपित करदेता है, फिर गृहस्थोंका तो कहनाही क्या ? ॥ १५ ॥ यदि दण्डका प्रयोग सर्वथा रोक दिया जाय तो जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछलियोंको खाजाती है, इसी तरह बलवान् व्यक्ति निर्बलोंको कष्ट पहुंचाने लगें ॥ १६ ॥

बलीयानबलं हि ग्रसते दण्डधराभावे ॥ १७ ॥ तेन गुप्तः प्रभवतीति ॥ १८ ॥

दण्डधारण करनेवाले राजाके न होनेपर सर्वत्र अराजकता फैल जाती है । और सबल निर्बलोंको सताने लगते हैं ॥ १७ ॥ परन्तु दण्डके द्वारा सुरक्षित हुआ २ निर्बल भी सबल या समर्थ हो जाता है ॥ १८ ॥

चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः ।
स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वर्त्मसु ॥ १९ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे विद्यासमुद्देशे वार्त्तास्थापना दण्डनीतिस्थापना च चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥

विद्यासमुद्देशः समाप्तः ॥

दण्डके द्वारा राजासे पालन किये हुए चारोंवर्ण और आश्रमोंके सम्पूर्ण लोग, अपने धर्मकर्मोंमें लगे हुए, बराबर उचित मार्गोंपर चलते रहते हैं ॥ १९ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय ।

२ प्रकरण ।

वृद्ध–संयोग ।

तस्माद्दण्डमूलास्तिस्रो विद्याः ॥ १ ॥ विनयमूलो दण्डः प्राणभृतां योगक्षेमावहः ॥ २ ॥ कृतकः स्वाभाविकश्च विनयः ॥ ३ ॥

इसीलिये आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्त्ता इन तीनों विद्याओंकी स्थिति दण्डके ही अधीन है ॥ १ ॥ शास्त्रज्ञानपूर्वक उचित रीतिसे प्रयुक्त किया हुआ दण्ड, प्रजाओंके योग और क्षेमका साधन होता है ॥ २ ॥ विनय दो प्रकारका होता है । एक कृतक अर्थात् नैमित्तिक और दूसरा स्वाभाविक । (जो परिश्रम करके किन्हीं कारणोंसे प्राप्त किया गया हो वह कृतक और जो वासनावशही स्वतः सिद्ध हो, उसे स्वाभाविक समझना चाहिये) ॥ ३ ॥

क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम् ॥ ४ ॥ शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणाविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिविष्टबुद्धिं विद्या विनयति नेतरम् ॥ ५ ॥

जिस प्रकार अच्छी किस्मके पत्थर आदि द्रव्यही शानपर रक्खे जानेसे संस्कृत होते हैं बालूकी पत्थर आदि नहीं ॥ ४ ॥ इसी प्रकार शिक्षाके किये

किया हुआ भ्रमभी, शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊह, अपोह और तत्त्वाभिनिवेश आदि बुद्धिगुणोंसे युक्त सुपात्र व्यक्तिको ही शिक्षित या विनीत बना सकता है, उपर्युक्त गुणोंसे रहित कुपात्र व्यक्तिको नहीं ॥ ५ ॥

विद्यानां तु यथास्वमाचार्यप्रामाण्याद्विनयो नियमश्च ॥ ६ ॥ वृत्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुञ्जीत ॥ ७ ॥ वृत्तोपनयनस्त्रयीमान्वीक्षकीं च शिष्टेभ्यो वार्तामध्यक्षेभ्यो दण्डनीतिं वक्तृप्रयोक्तृभ्यः ॥ ८ ॥

भिन्न २ विद्याओंके अपने २ आचार्योंके अनुसारही शिष्यका शिक्षण और नियम होना चाहिये ॥ ६ ॥ मुण्डन संस्कारके अनन्तर अक्षराभ्यास तथा गिनने आदिका विधिपूर्वक अभ्यास करे ॥ ७ ॥ उपनयनके अनन्तर सदाचारी विद्वान् आचार्योंसे त्रयी और आन्वीक्षकीको, तथा उन २ विभागोंके अध्यक्षों (सीताध्यक्ष आदि) से वार्त्ताको, इसी प्रकार वक्ता और प्रयोक्ता अर्थात् सन्धि-विग्रह आदिके यथार्थ जानकर, तथा इनको उचित स्थानोंपर प्रयोग करनेवाले अनुभवी विद्वानोंसे दण्डनीतिको सीखे ॥ ८ ॥

ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात् ॥ ९ ॥ अतो गोदानं दारकर्म चास्य ॥ १० ॥ नित्यश्च विद्यावृद्धसंयोगो विनयवृद्ध्यर्थं तन्मूलत्वाद्विनयस्य ॥ ११ ॥

सोलहवर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यका यथावत् पालन करे ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर गोदानविधि (समावर्त्तन संस्कार=केशान्तकर्म) पूर्वक विवाह करे ॥ १० ॥ विवाहके बाद अपने विनयकी वृद्धिके लिये सदाही विद्यावृद्ध पुरुषोंका सहवास कियाकरे, क्योंकि अनुभवी विद्वान् पुरुषोंकी संगति ही विनय का मूल है ॥ ११ ॥

पूर्वमहर्भागं हस्त्यश्वरथप्रहरणविद्यासु विनयं गच्छेत् ॥१२॥ पश्चिममितिहासश्रवणे ॥ १३ ॥ पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः ॥ १४ ॥

दिनके पहिले भागको हाथी घोड़े रथ और अस्त्र शस्त्र आदि विद्या सम्बन्धी शिक्षाओंमें व्यतीत करे ॥ १२ ॥ दिनके पिछले भागको इतिहास आदि सुननेमें व्यतीत करे ॥ १३ ॥ ब्राह्म आदि पुराण, रामायण महाभारत आदि इतिहास, आख्यायिका, उदाहरण मीमांसा, आदि मन्वादि धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र ये सबही इतिहास शब्दसे समझने चाहियें ॥ १४ ॥

शेषमहोरात्रभागमपूर्वग्रहणं गृहीतपरिचयं च कुर्यात् ॥१५॥ अगृहीतानामाभीक्ष्ण्यश्रवणं च ॥ १६ ॥ श्रुताद्धि प्रज्ञोपजायते प्रज्ञया योगो योगादात्मवत्तेति विद्यासामर्थ्यम् ॥ १७ ॥

दिन और रातके शेष भागोंको नवीन ज्ञानके ग्रहण, और गृहीत ज्ञान के मनन या चिन्तन में व्यय करे ॥ १५ ॥ जो पदार्थ एकबार श्रवण करनेपर बुद्धिस्थ न हो, उसे बार २ श्रवण करे ॥ १६ ॥ क्योंकि शास्त्र श्रवणसे बुद्धिका विकास होता है, उससे योग अर्थात् शास्त्रोंमें श्रद्धा, और योगसे समचित्तता प्राप्त होती है, यही विद्याका फल है ॥ १७ ॥

विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः ।
अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः ॥ १८ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे वृद्धसंयोगः
पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥

सुशिक्षासे शिक्षित या विनीत राजा, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगा हुआ, तथा प्रजाओंके शिक्षण में तत्पर रहता हुआ निष्कण्टक पृथिवीका चिर-काल तक उपभोग करता है ॥ १८ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय

२ प्रकरण

इन्द्रियजय । (काम आदि छः शत्रुओंका त्याग)

विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः कामक्रोधलोभमानमदहर्षत्यागात्कार्यः ॥ १ ॥ कर्णत्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजयः ॥ २ ॥

काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्षके त्यागसे इन्द्रियोंका जयकरे क्योंकि इन्द्रियोंका जयही विद्या और विनयका हेतु है ॥ १ ॥ कर्ण, त्वक्, चक्षु रसन, और घ्राण इन्द्रियोंका शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध विषयोंसे प्रवृत्त न होनेदेना ही इन्द्रियजय कहाता है ॥ २ ॥

शास्त्रार्थानुष्ठानं वा ॥३ कृत्स्नं हि शास्त्रमिदमिन्द्रियजयः ॥ ४ ॥ तद्विरुद्धवृत्तिरवश्येन्द्रियश्चातुरन्तोऽपि राजा सद्यो विनश्यति ॥ ५ ॥

अथवा शास्त्रोंमें प्रतिपादित कर्त्तव्योंके अनुष्ठानको भी इन्द्रियजयका कारण समझना चाहिये ॥ ३ ॥ क्योंकि सम्पूर्ण शास्त्रोंमें प्रतिपादित विधेय अर्थ इन्द्रियजयके कारण कहे गये हैं ॥ ४ ॥ शास्त्र विहित कर्त्तव्योंके विरुद्ध अनुष्ठान करने वाला, इन्द्रिय परायण (इन्द्रियोंको वशमें न करनेवाला) राजा, सम्पूर्ण पृथिवीका अधिपति होता हुआ भी शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥ ५ ॥

यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद्ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रो विननाश ॥ ६ ॥ करालश्च वैदेहः ॥ ७ ॥ कोपाज्जनमेजयो ब्राह्मणेषु विक्रान्तस्तालजङ्घश्च भृगुषु ॥ ८ ॥

जैसे कि भोज वंशका दाण्डक्य नामक राजा तथा विदेह देशका कराल नामक राजा कामके वशीभूत होकर ब्राह्मणकी कन्याका अपहरण करके उसके पिताके शापसे बन्धु बान्धव और राष्ट्रके सहित नाशको प्राप्त होगया ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ कोपके वशीभूत होकर जनमेजय ब्राह्मणोंके साथ कलह करके उनके शापसे नष्ट होगया, तथा तालजङ्घ भृगुओंपर क्रुद्ध होकर उनके शापसे मारा गया ॥ ८ ॥

लोभादैलश्चातुर्वर्ण्यमत्याहारयमाणः सौवीरश्चाजबिन्दुः ॥९॥ मानाद्रावणः परदारानप्रयच्छन् ॥ १० ॥ दुर्योधनो राज्यादंशं च ॥ ११ ॥

लोभके वशीभूत होकर इला का पुत्र पुरूरवा नामक राजा चारों वर्णोंसे अत्याचार पूर्वक धन अपहरण करता हुआ उनके शापसे नाशको प्राप्त हुआ, और इसी प्रकार सौवीर देशका राजा अजबिन्दु भी ॥ ९ ॥ अभिमानके वशीभूत होकर रावण परस्त्रीको उसके स्वामीके लिये न देता हुआ तथा दुर्योधन राज्यके हिस्से को अपने भाईयोंके लिए न देता हुआ नाशको प्राप्त हो गया ॥ १०—११ ॥

मदाद्दम्भोद्भवो भूतावमानी हैहयश्चार्जुनः ॥१२॥ हर्षाद्वातापिरगस्त्यमत्यासादयन्वृष्णिसङ्घश्च द्वैपायनमिति ॥ १३ ॥

मदके वशीभूत होकर दम्भोद्भव नामका राजा सम्पूर्ण प्रजाओंका तिरस्कार करता हुआ नरनारायणके साथ युद्ध करके मारा गया, और इसी

प्रकार मदके कारण हैहय देशका राजा अर्जुन, परशुरामके हाथमे मारा गया ॥ १२॥ हर्षके वशीभूत होकर वातापि नामका असुर अगस्त्य ऋषिके साथ और यादव समूह द्वैपायन ऋषिके साथ वञ्चना करता हुआ उनके शापसे नाशको प्राप्त होगया ॥ १३ ॥

एते चान्ये च बहवः शत्रुषड्वर्गमाश्रिताः ।
सबन्धुराष्ट्रा राजानो विनेशुरजितेन्द्रियाः ॥ १४ ॥

ये उपर्युक्त और इसी प्रकारके अन्य बहुतेरे राजा, कामादि शत्रु षड्वर्ग के वशीभूत होकर, अपनी इन्द्रियोंको वशमें न रखते हुए बन्धु बान्धवों और राष्ट्रके सहित नाशको प्राप्त हो गये ॥ १४ ॥

शत्रुषड्वर्गमुत्सृज्य जामदग्न्यो जितेन्द्रियः ।
अम्बरीषश्च नाभागो बुभुजाते चिरं महीम् ॥ १५ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे अधिकरणे इन्द्रियजये अरिषड्वर्गत्यागः षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥

और इस शत्रु षड्वर्गको छोड़ कर, जितेन्द्रिय, जमदग्निके पुत्र परशुरामने, तथा अम्बरीष और नाभाग (नभाग राजा का पुत्र) ने चिरकाल तक इस पृथिवीका निष्कण्टक उपभोग किया ॥ १५ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें छठा अध्याय समाप्त ।

सातवां अध्याय

(राजर्षिका व्यवहार)

तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्वीत ॥ १ ॥ वृद्धसंयोगेन प्रज्ञां चारेण चक्षुरुत्थानेन योगक्षेमसाधनं कार्यानुशासनेन स्वधर्मस्थापनं विनयं विद्योपदेशेन लोकप्रियत्वमर्थसंयोगेन हितेन वृत्तिम् ॥ २ ॥

इस लिये इन काम आदि छः शत्रुओंका सर्वथा परित्याग करके इन्द्रियोंका जय करे ॥ १ ॥ वृद्ध विद्वानोंके सहवास से बुद्धिको विकसित करे, गुप्तचरोंके द्वारा अपने और पराये राष्ट्रकी व्यवस्थाको देखे, उद्योगके द्वारा योग और क्षेमका सम्पादन करे, राजकीय नियमों (कानूनों) के द्वारा अपने २ धर्म में प्रजाका नियन्त्रण करे, विद्याके प्रचारके द्वारा प्रजाओंको विनीत और शिक्षित बनावे, उचित पात्रोंमें धन आदिके देनेसे प्रजाका प्रिय बनारहे, अर्थात्

प्रजाको अपना अनुगामी बनाये रक्खे; और प्रजाओंके हितके साथही अपनी लोकयात्रा करे, अर्थात् अपने निजू व्यवहारों में भी प्रजाके हितका ध्यान रक्खे ॥ २ ॥

एवं वश्येन्द्रियः परस्त्रीद्रव्यहिंसाश्च वर्जयेत् ॥ ३ ॥ स्वप्नं लौल्यमनृतमुद्धतवेषत्वमनर्थसंयोगं च ॥ ४ ॥ अधर्मसंयुक्तं चानर्थसंयुक्तं च व्यवहारम् ॥ ५ ॥

इस प्रकार इन्द्रियोंको वशमें रखता हुआ परस्त्री, परद्रव्य, तथा पर हिंसाका सर्वथा परित्याग करे ॥ ३ ॥ अनुचित निद्रा, चपलता, मिथ्याभाषण, उद्धतवेष, अनर्थकारी सम्पूर्ण कार्यों और इस प्रकारके पुरुषोंके सहवासको सर्वथा छोड़ देवे ॥ ४ ॥ अधर्म और अनर्थसे युक्त व्यवहार को भी छोड़ देवे ॥ ५ ॥

धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत ॥६॥ न निःसुखः स्यात् ॥७॥ समं वा त्रिवर्गमन्योन्य नुबन्धम् ॥ ८ ॥ एको ह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानामात्मानमितरौ च पीडयति ॥ ९ ॥

धर्म और अर्थके अनुसार ही कामका सेवन करे ॥६॥ सुखरहित अर्थात् कष्टके साथ जीवन निर्वाह न करे ॥ ७ ॥ अथवा परस्पर अनुबद्ध धर्म अर्थ और कामका बराबर २ सेवन करे ॥ ८ ॥ क्योंकि व्यसन पूर्वक अत्याधिक सेवन किया हुआ इनमेंसे कोई एक, आत्माको तथा शेष दोनोंको बहुत कष्ट पहुंचाता है ॥ ९ ॥

अर्थ एव प्रधान इति कौटल्यः ॥१०॥ अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति ॥ ११ ॥ मर्यादां स्थापयेदाचार्यानमात्यान्वा ॥ १२ ॥

इन तीनोंमेंसे अर्थही प्रधान है, यह कौटल्य आचार्यका मत है ॥ १० ॥ क्योंकि धर्म और काम अर्थ मूलकही होते हैं, अर्थात् अर्थही इन दोनोंका कारण है ॥११॥ आचार्यों और अमात्योंको अपनी मर्यादा अर्थात् सीमा बनावे ॥१२॥

य एनमपायस्थानेभ्यो वारयेयुः ॥ १३ ॥ छायानालिकाप्रतोदेन वा रहसि प्रमाद्यन्तमभितुदेयुः ॥ १४ ॥

जो कि आचार्य आदि इसको बुराईयोंकी ओरसे रोक सकें ॥१३॥ अन्तःपुर आदि एकान्त स्थानोंमें प्रमाद करते हुए राजाको, आचार्य अमात्य आदि, छाया तथा नालिका (देखो अध्याय १९ सूत्र ६—९ तक) आदिके विभागसे समयका अपव्यय दिखाकर व्यथित करें ॥ १४ ॥

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते ।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ॥ १५ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे इन्द्रियजये राजर्षिवृत्तं सप्तमो ऽध्यायः ॥ ७ ॥ इन्द्रियजयः समाप्तः ।

जिस प्रकार गाड़ीका एक पहिया दूसरेकी सहायताके बिना अनुपयुक्त होता है, इसी प्रकार राज्य चक्र भी अमात्य आदिकी सहायताके बिना एकाकी राजाके द्वारा नहीं चलाया जासकता । इसलिये राजाको उचित है कि वह योग्य अमात्योंको रक्खे, और उनके मतको बराबर सुने ॥ १५ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें सातवां अध्याय समाप्त ।

आठवां अध्याय ।

४ प्रकरण ।

अमात्योंकी नियुक्ति ।

सहाध्यायिनो ऽमात्यान्कुर्वीत दृष्टशौचसामर्थ्यत्वादिति भारद्वाजः ॥ १ ॥ ते ह्यस्य विश्वास्या भवन्तीति ॥ २ ॥

भारद्वाज आचार्यका मत है कि राजा अपने सहाध्यायियोंमेंसे ही किन्हीं को अमात्य नियुक्त करे । क्योंकि इनके हृदयकी पवित्रता और कार्य करनेकी शक्ति, साथ पढ़नेके समयमें अच्छी तरह जांचली जाती है ॥ १ ॥ और इसी लिये वे मन्त्री इस राजाके विश्वासपात्र भी होते हैं ॥ २ ॥

नेति विशालाक्षः ॥३॥ सहक्रीडितत्वात्परिभवन्त्येनम् ॥४॥ ये ह्यस्य गुह्यसधर्माणस्तानमात्यान्कुर्वीत समानशीलव्यसनत्वात् ॥ ५ ॥ ते ह्यस्य मर्मज्ञत्वभयान्नापराध्यन्तीति ॥ ६ ॥

विशालाक्ष इस मतको ठीक नहीं मानता ॥३॥ वह कहता है कि, अध्ययन कालमें साथ २ खेलनेके कारण वे लोग राजाका तिरस्कार कर सकते हैं ॥ ४ ॥ इसलिये जो लोग, राजाके छिपे हुए आचरणके समानही आचरण करनेवाले हों, उन्हींको, स्वभाव व्यसनके समान होनेके कारण, अमात्य बनाना चाहिये ॥ ५ ॥ क्योंकि वे लोग, इस भयसे कि राजा हमारे सब मर्मोंको जानता है, कभी राजाका अपराध न करेंगे ॥ ६ ॥

साधारण एष दोष इति पराशरः ॥ ७ ॥ तेषामपि मर्मज्ञत्व-भयात्कृताकृतान्यनुवर्तेत ॥ ८ ॥

यावद्भ्यो गुह्यमाचष्टे जनेभ्यः पुरुषाधिपः ।
अवशः कर्मणा तेन वश्यो भवति तावताम् ॥ ९ ॥

परन्तु आचार्य पराशर कहते हैं कि यह दोष राजा और अमात्य दोनोंके लिये समान है ॥ ७ ॥ राजा भी, इस भयसे कि अमात्य मेरे सब मर्मोंको जानते हैं, उनके अच्छे या बुरे सभी तरहके कार्योंका अनुसरण करेगा ॥ ८ ॥ क्योंकि राजा जितने भी आदमियोंके सामने अपनी छिपी हुई बातोंको कहदेता है इस कार्यसे अधीर हुआ २, वह उतनेही मनुष्योंके वशमें होजाता है ॥ ९ ॥

य एनमापत्सु प्राणाबाधयुक्तास्वनुगृह्णीयुस्तानमात्यान्कुर्वीत ॥ १० ॥ दृष्टानुरागत्वादिति ॥ ११ ॥

इसलिये जो पुरुष, इसकी ऐसी भयावह आपत्तियोंमें सहायता करें जिनमें प्राणोंका भी भय हो, उन्हीं पुरुषोंको अमात्य बनाया जावे ॥ १० ॥ क्योंकि इस कार्यके करनेसे राजाके प्रति उनके अनुराग का ठीक २ पता लगजाता है ॥ ११ ॥

नेति पिशुनः ॥ १२ ॥ भक्तिरेषा न बुद्धिगुणः ॥ १३ ॥

परन्तु आचार्य नारद इस सिद्धान्तको भी नहीं मानते ॥ १२ ॥ उनका कहना है कि अपने प्राणोंकी भी परवाह न करके राजाकी सहायता करना, यह केवल भक्ति या सेवाधर्म है, इससे अमात्योंकी बुद्धिमत्ता प्रकट नहीं होती, और बुद्धिसम्पन्न होना अमात्यका सर्व प्रथम गुण है ॥ १३ ॥

संख्यातार्थेषु कर्मसु नियुक्ता ये यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा कुर्युस्तानमात्यान्कुर्वीत ॥ १४ ॥ दृष्टगुणत्वादिति ॥ १५ ॥

इसलिये ऐसे पुरुषोंको अमात्य बनाना चाहिये, जो कि बताये हुए राजकीय कार्योंमें नियुक्त होकर उन कार्योंको उचित रीतिसे पूरा करदें, या उससे भी कुछ विशेष करके दिखावें ॥ १४ ॥ क्योंकि ऐसा करनेसे उनके बुद्धिगुणकी ठीक २ परीक्षा होजाती है ॥ १५ ॥

नेति कौणपदन्तः ॥ १६ ॥ अन्यैरमात्यगुणैरयुक्ता ह्येते ॥१७॥ पितृपैतामहानमात्यान्कुर्वीत ॥१८॥ दृष्टापदानत्वात् ॥१९॥

परन्तु आचार्य कौणपदन्त (भीष्म) नारदके इस सिद्धान्तको नहीं मानते ॥ १६ ॥ क्योंकि वे कहते हैं कि ऐसे अमात्य, अन्य अमात्योचित गुणोंसे

रक्षित ही रहते हैं ॥ १७ ॥ इसलिये अमात्य उन्हींको बनाया जावे, जिनके पिता, पितामह आदि इस पदपर कार्य करते चले आये हैं ॥ १८ ॥ क्योंकि वे पहिले-सेही अमात्य पदके सम्पूर्ण व्यवहारोंमें परिचित होजाते हैं ॥ १९ ॥

ते ह्यनपचरन्तमपि न त्यजन्ति सगन्धत्वात् ॥ २० ॥ अमानुषेष्वपि चैतद्दृश्यते ॥ २१ ॥ गावो ह्यसगन्धं गोगणमतिक्रम्य सगन्धेष्वेवावतिष्ठन्त इति ॥ २२ ॥

और इसलिये वे अपना अपकार किये जानेपर भी, अपने मालिकको सम्बन्धी या परिचित होनेके कारण कभी नहीं छोड़ते ॥ २० ॥ यह बात पशुओंमें भी देखी जाती है ॥ २१ ॥ गौएं भी अपरिचित गौ-समूहको छोड़कर परिचित समूहमें ही जाकर ठहरती हैं ॥ २२ ॥

नेति वातव्याधिः ॥ २३ ॥ ते ह्यस्य सर्वमपगृह्य स्वामिवत्प्रचरन्तीति ॥२४॥ तस्मान्नीतिविदो नवानमात्यान्कुर्वीत ॥२५॥ नवास्तु यमस्थाने दण्डधरं मन्यमाना नापराध्यन्तीति ॥ २६ ॥

परन्तु आचार्य उद्धव इस सिद्धान्तको भी नहीं मानते ॥ २३ ॥ उनका कहना है कि इसप्रकारके मन्त्री, राजाके सर्वस्वको अपने अधीन करके, राजाके समान स्वतन्त्र वृत्ति होजाते हैं ॥ २४ ॥ इसलिये नीति शास्त्रमें निपुण, नवीन पुरुषोंको ही अमात्य नियुक्त करे ॥ २५ ॥ इसप्रकारके पहिलेसे अपरिचित अमात्य, दण्ड धारण करनेवाले राजाको यमके स्थानमें समझते हुए, कभी उसका कोई अपराध नहीं करते ॥ २६ ॥

नेति बाहुदन्तीपुत्रः ॥ २७ ॥ शास्त्रविददृष्टकर्मा कर्मसु विषादं गच्छेत् ॥ २८ ॥ अभिजनप्रज्ञाशौचशौर्यानुरागयुक्तानमात्यान्कुर्वीत ॥ २९ ॥ गुणप्राधान्यादिति ॥ ३० ॥

परन्तु आचार्य बाहुदन्तीपुत्र (इन्द्र) इस मतको भी नहीं मानते ॥ २७ ॥ उनका कहना है, कि नीति आदि शास्त्रोंमें निपुण भी पुरुष, अमात्यके कार्योंसे अपरिचित होनेके कारण, उनमें असफल होसकता है ॥ २८ ॥ इसलिये ऐसे पुरुषोंको ही अमात्य नियुक्त किया जावे, जो कि कुलीन, बुद्धिमान्, पवित्र हृदय, शूर और स्वामीमें अनुराग रखनेवाले हों ॥ २९ क्योंकि अमात्यमें गुणोंकी प्रधानता होनी ही अत्यन्त आवश्यक है ॥ ३० ॥

सर्वमुपपन्नमिति कौटल्यः ॥३१॥ कार्यसामर्थ्याद्धि पुरुषसामर्थ्यं कल्प्यते सामर्थ्यतश्च ३२

कौटल्य आचार्यका मत है कि भारद्वाजके सिद्धान्तसे लगाकर अभीतक जो कुछ अमात्यके सम्बन्धमें कहा गया है वह सबही ठीक है ॥ २१ ॥ क्योंकि पुरुषके सामर्थ्यकी व्यवस्था, उनके किये कार्यों के सफल होनेपर तथा उनके विद्या बुद्धिके बलपरही की जाती है ॥ ३२ ॥

विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च ।
अमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युर्न तु मन्त्रिणः ॥३३॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे अमात्योत्पत्तिः अष्टमो ऽध्यायः ॥८॥

इसलिये राजा, सहाध्यायी आदिका भी सर्वथा परित्याग न करे, किन्तु इन सबको ही, उनकी कार्य करनेकी शक्तिके अनुसार, उनके बुद्धि आदि गुण, देश, काल, तथा कार्योंको अच्छी तरह विवेचन करके अमात्य पदपर नियुक्त करे । परन्तु इनको अपना मन्त्री कदापि न बनावे । तात्पर्य यह कि सहाध्यायी आदिको उनके योग्य कार्योंपर तो नियुक्त करदे, पर उन्हें अपना मन्त्री अर्थात् सलाहकार न बनावे, मन्त्री वे ही हों जो सर्वगुण सम्पन्न हों ॥ ३३ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें आठवां अध्याय समाप्त ।

नौवां अध्याय

५ प्रकरण

मन्त्री और पुरोहितकी नियुक्ति ।

जानपदो ऽभिजातः स्ववग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान्प्राज्ञो धारयिष्णुर्दक्षो वाग्मी प्रगल्भः प्रतिपत्तिमानुत्साहप्रभावयुक्तः क्लेशसहः शुचिर्मैत्रो दृढभक्तिः शीलबलारोग्यसत्त्वसंयुक्तः स्तम्भचापल्यवर्जितः संप्रियो वैराणामकर्तेत्यमात्यसंपत् ॥ १ ॥

अपने देशमें उत्पन्न हुआ २, कुलीन; जो बुराइयोंसे झट हटाया जासके, अथवा जिसके बन्धु बान्धव भी श्रेष्ठ हों; जो हाथी घोड़े आदिपर चढ़ने, रथ चलाने युद्ध करने तथा गाने बजाने आदिकी विद्याओंमें भी निपुण हो; अर्थ शास्त्रको जानने वाला; स्वाभाविक बुद्धिसे युक्त; स्मरण शक्तिसम्पन्न; चतुर; मधुर; और युक्त बोलने वाला; प्रगल्भ (दबंग); प्रतीकार और प्रतिवाद करने में समर्थ; उत्साही तथा प्रभाव शाली; क्लेशोंको सहन करने वाला; पवित्र हृदय; सबके साथ मधुर व्यवहार करने वाला; स्वामीमें दृढ़ अनुराग रखनेवाला; शील, बल, आरोग्य तथा धैर्यशाली, निरभिमान तथा स्थिर वाला, सौम्य

आकृति तथा स्त्री भूमि आदिक निमित्त शत्रुता न करने वाला पुरुष प्रधान-मन्त्री होना चाहिये ॥ १ ॥

अतः पादार्धगुणहीनौ मध्यमावरौ ॥ २ ॥ तेषां जनपद-मवग्रहं चाप्ततः परीक्षेत ॥ ३ ॥ समानविद्येभ्यः शिल्पं शास्त्र-चक्षुष्मत्तां च ॥ ४ ॥

इन सब गुणोंमेसे चौथाई गुण जिसमें नहीं, वह मध्यम; और आधे गुण जिसमें नहीं, वह निकृष्ट प्रधानामात्य समझा जाता है ॥ २ ॥ राजा, इन सब गुणोंमेंसे, मन्त्रीके निवास स्थान (उत्पत्ति स्थान) और बन्धु बान्धव आदि का पता आप्त पुरुषोंके द्वारा लगावे ॥ ३ ॥ हाथी आदिकी सवारी और शास्त्र नैपुण्यकी परीक्षा उनके सहपाठियोंके द्वारा करे ॥ ४ ॥

कर्मारम्भेषु प्रज्ञां धारयिष्णुतां दाक्ष्यं च ॥५॥ कथायोगेषु वाग्मित्वं प्रागल्भ्यं प्रतिभानवत्त्वं च ॥ ६ ॥ आपद्युत्साहप्रभावौ क्लेशसहत्वं च ॥ ७ ॥ संव्यवहाराच्छौचं मैत्रतां दृढभक्तित्वं च ॥ ८ ॥ संवासिभ्यः शीलबलारोग्यसत्त्वयोगमस्तम्भमचापल्यं च ॥ ९ ॥ प्रत्यक्षतः संप्रियत्वमवैरित्वं च ॥ १० ॥

प्रज्ञा, स्मरण शक्ति और चतुराईकी परीक्षा कार्योंके करनेमें ॥ ५ ॥ वाक्पटुता, प्रगल्भता तथा प्रतिभाकी जांच वार्तालापों या सभाओंमें ॥ ६ ॥ उत्साह, प्रभाव और सहन शक्तिकी परीक्षा, आपत्तिके समय ॥ ७ ॥ हृदयकी पवित्रता, सबसे मैत्रीभाव और दृढ़ भक्तिकी परीक्षा व्यवहारसे ॥ ८ ॥ शील, बल, आरोग्य, धैर्य, निरभिमानिता और स्थिर स्वभावकी परीक्षा सहवासी पुरु-षोंके द्वारा ॥ ९ ॥ सौख्य आकृति तथा प्रीतिकी परीक्षा, स्वयं अपने अनुभवसे राजा करे ॥ १० ॥

प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः ॥११॥ स्वयंदृष्टं प्रत्यक्षं परोपदिष्टं परोक्षम् ॥ १२ ॥

क्योंकि राजाका व्यवहार प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमेय तीनोंही प्रकारका होता है, इसलिये पिछले सूत्रोंमें, तीनोंही प्रमाणोंसे परीक्षा करनेका विधान किया है ॥ ११ ॥ अपने आप देखा हुआ व्यवहार प्रत्यक्ष, तथा दूसरोंसे बत-लाया हुआ परोक्ष कहाता है ॥ १२ ॥

कर्मसु कृतेनाकृतावेक्षणमनुमेयम् ॥ १३ ॥ अयौगपद्यात्तु कर्मणामनेकत्वादनेकस्थत्वाच्च देशकालात्ययो मा भूदिति परो

क्षममात्यैः कारयेदित्यमात्यकर्म ॥ १४ ॥

कार्योंमें, किये हुए कार्यसे न किये हुए कार्यका समझना या देखना अनुमेय कहाजाता है ॥ १३ ॥ क्योंकि राजकीय कार्य एक साथ नहीं किये जा-सकते, वे बहुत प्रकारके और अनेक स्थानोंमें होनेवाले होते हैं, ठीक २ स्थान और समयोंमें अकेलाही राजा उन सब कार्योंको नहीं कर सकता, इसलिये जिससे कि उन कार्योंके उचित देश और कालका अति क्रमण नहो, इसप्रकार राजा अमात्योंके द्वाराही परोक्ष रूपमें उन सब कार्योंको करवावे, इसी लिये उपर्युक्त अमात्योंकी परीक्षा और नियुक्तिका विधान किया गया है ॥ १४ ॥

पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं षडङ्गे वेदे दैवे निमित्ते दण्ड-नीत्यां चाभिविनीतमापदां दैवमानुषीणामथर्वभिरुपायैश्च प्रति-कर्तारं कुर्वीत ॥ १५ ॥ तमाचार्यं शिष्यः पितरं पुत्रो भृत्यः स्वामिनमिव चानुवर्तेत ॥ १६ ॥

शास्त्र प्रतिपादित विद्या आदि गुणोंसे युक्त; उन्नत कुलशील; षडङ्ग वेदमें, ज्योतिष शास्त्रमें, शकुन शास्त्रमें, तथा दण्डनीति शास्त्रमें अत्यन्त निपुण; दैवी और मानुषी आपत्तियोंका अथर्ववेद आदिमें बताये हुए उपायोंसे प्रतीकार करनेवाले व्यक्तियोंको पुरोहित नियुक्त किया जावे ॥ १५ ॥ और राजा, उस पुरोहितका इसप्रकार अनुगामी बना रहे, जैसे कि शिष्य आचार्यका पुत्र पिताका और भृत्य स्वामीका अनुगामी होता है ॥ १६ ॥

ब्राह्मणेनैधितं क्षत्रं मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम् ।
जयत्यजितमत्यन्तं शास्त्रानुगतशास्त्रितम् ॥ १७ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे मन्त्रिपुरोहितोत्पत्तिः नवमो ऽध्यायः॥९॥

इसप्रकार ब्राह्मण पुरोहितसे बढ़ाया हुआ, तथा उपर्युक्त गुणी मन्त्रियों की सलाहसे संस्कृत हुआ २, शास्त्रोंके अनुसार आचरण करने वाला क्षत्रियकुल; बिनाही युद्धके अजेय और अलभ्य वस्तुओंको भी अवश्यही अपने वशमें कर लेता है ॥ १७ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें नौवां अध्याय समाप्त ।

दसवां अध्याय ।

६ प्रकरण ।

गुप्तरीतिसे अमात्योंके हार्दिक सरल तथा कुटिल भावोंकी परीक्षा ।

मन्त्रिपुरोहितसखः सामान्येष्वधिकरणेषु स्थापयित्वामात्यानुपधाभिः शोधयेत् ॥ १ ॥ पुरोहितमयाज्ययाजनाध्यापने नियुक्तममृष्यमाणं राजावक्षिपेत् ॥ २ ॥

साधारण अधिकार पदोंपर अमात्योंको नियुक्त करके, मन्त्री और पुरोहितके सहित राजा, उनके मनकी पवित्रताका परीक्षण वक्ष्यमाण गुप्त रीतियोंसे करे ॥ १ ॥ राजा, नीच कुलोत्पन्न किसी अस्पृश्य व्यक्तिके यहां यज्ञ करानेके लिये या उसे पढ़ानेके लिये पुरोहितको नियुक्त करे, जब पुरोहित इस बातसे रुष्ट होवे तो उसको उसके अधिकार पदसे गिरादेवे ॥ २ ॥

स सत्त्रिभिः शपथपूर्वमेकैकममात्यमुपजापयेत् ॥ ३ ॥ अधार्मिको ऽयं राजा साधुधार्मिकमन्यमस्य तत्कुलीनमवरुद्धं कुल्यमेकप्रग्रहं सामन्तमाटविकमौपपादिकं वा प्रतिपादयामः ॥ ४ ॥

इसप्रकार तिरस्कृत हुआ पुरोहित, सत्रियों (गुप्तचरका कार्य करने वाले पुरुष या स्त्रियां) के द्वारा शपथ-पूर्वक एक २ अमात्यको राजासे इसप्रकार भिन्न करे ॥ ३ ॥ "देखो यह राजा बड़ा अधार्मिक है; इसके ही वंशमें उत्पन्न हुए किसी अन्य श्रेष्ठ राजपुत्र धार्मिक व्यक्तिको; अथवा समीप देशके किसी सामन्तको; या आटविक (जंगलके स्वामी) अथवा जिसको हम सब मिलकर निश्चय करलें उसे, इस राजाके स्थानपर नियुक्त करना चाहिये ॥ ४ ॥

सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति ॥ ५ ॥ प्रत्याख्याने शुचिरिति धर्मोपधा ॥ ६ ॥

यह बात और सब लोगोंको अच्छी लगी है, उन्होंने इसको स्वीकार कर लिया है, अब बताओ तुम्हारी इसमें क्या सम्मति है" ॥ ५ ॥ यदि वह इस बातका समर्थन न करे, तो उसे शुचि अर्थात पवित्र हृदय समझा जावे । यह धर्मोपधा अर्थात् धर्मके द्वारा गुप्तरीतिसे अमात्योंकी पवित्रताका पता लगाना कहा जाता है ६ ॥

येच्छोभनीयेनार्थेन राजविनाशाय ॥ ७ ॥

इसीप्रकार राजा किसी अपूज्य व्यक्तिका सत्कार करनेके लिये सेनापतिसे कहे, इस बातसे सेनापति जब रुष्ट होने लगे तो राजा पूर्वोक्त रीतिसे उसका तिरस्कार करे, और वह सत्रियोंके द्वारा एक २ अमात्यको धनका लोभ देकर राजाका नाश करनेके लिये, राजासे उनका भेद डाल देवे ॥ ७ ॥

सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति ॥ ८ ॥ प्रत्याख्याने शुचि-रित्यर्थोपधा ॥ ९ ॥

और फिर पूर्वोक्त रीतिसे कहे कि इस बातको सबने स्वीकार करलिया है, तुम्हारी इसमें क्या सम्मति है ॥ ८ ॥ यदि वह इस बातका समर्थन न करे तो उसे शुचि समझा जावे । यह अर्थोपधा अर्थात् धनका लोभ देकर गुप्तरीतिसे अमात्योंके हृदयकी पवित्रताका पता लगाना कहा जाता है ॥ ९ ॥

परिव्राजिका लब्धविश्वासान्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रमे-कैकमुपजपेत् ॥ १० ॥ राजमहिषी त्वां कामयते कृतसमागमो-पाया महानर्थश्च ते भविष्यतीति ॥ ११ ॥ प्रत्याख्याने शुचिरिति कामोपधा ॥ १२ ॥

किसी विश्वस्त साधुवेषधारिणी स्त्रीको अन्तः पुरमें लेजाकर उसकी अच्छीतरह सत्कार करे, और फिर वह महामात्रों (अमात्यों) के पास अलहदा २ जाकर उन्हें राजासे भिन्न करदेवे ॥ १० ॥ और कहे कि महारानी तुम्हें चाहती है, तुम्हारे साथ समागम करनेके लिये सब तरहके उपाय किये हुए हैं । इससे तुमको धनभी बहुत मिल जावेगा ॥ ११ ॥ यदि वह इस बातका प्रत्याख्यान करदे तो उसे शुचि समझा जावे । इसका नाम कामोपधा है ॥ १२ ॥

प्रवहणनिमित्तमेको ऽमात्यः सर्वानमात्यानावाहयेत् ॥१३॥ तेनोद्वेगेन राजा तानवरुन्ध्यात् ॥ १४ ॥ कापटिकच्छात्रः पूर्वा-वरुद्धस्तेषामर्थमानाक्षिप्तमेकैकममात्यमुपजपेत् ॥ १५ ॥

नौका आदिकी सैर करनेके लिये जब कोई एक अमात्य, अन्य सब अमात्योंको इकट्ठा करे ॥१३॥ तो राजा उनके इस कार्यसे अपने उद्वेगको दिखाकर उनपर जुरमाना करके अथवा पदसे उतारकर उनका अपमान करे ॥ १४ ॥ तदनन्तर राजासे, पहिले अपकृत हुआ २ कपटवेषी छात्र (छात्रके वेषमें गुप्तचर) अर्थ और मानसे तिरस्कृत हुए एक एक अमात्यके पास जावे, और उन्हें राजा से इसप्रकार भिन्न करे ॥ १५ ॥

असत्प्रवृत्तो ऽयं राजा ॥ १६ ॥ सहसैनं हत्वान्यं प्रतिपादयामः ॥ १७ ॥ सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति ॥१८॥ प्रत्याख्याने शुचिरिति भयोपधा ॥ १९ ॥

यह राजा अत्यन्त असन्मार्गमें प्रवृत्त हुआ २ है ॥ १६ ॥ इसे सहसा मार कर, इसके स्थानपर किसी दूसरे धार्मिक राजाको गद्दीपर बिठाना चाहिये ॥ १७ ॥ इस बातको अन्य सभी अमात्योंने स्वीकार किया है, तुम्हारी इसमें क्या सम्मति है ॥ १८ ॥ यदि वह इस प्रस्तावको स्वीकार न करे तो उसे शुचि समझा जावे । इसका नाम भयोपधा है ॥ १९ ॥

तत्र धर्मोपधाशुद्धान्धर्मस्थीयकण्टकशोधनेषु स्थापयेत् ॥२०॥ अर्थोपधाशुद्धान्समाहर्तृसंनिधातृनिचयकर्मसु ॥ २१ ॥ कामोपधाशुद्धान्बाह्याभ्यन्तरविहाररक्षासु ॥ २२ ॥

इसप्रकार परीक्षा किये हुए इन अमात्योंमेंसे जो धर्मोपधासे परीक्षा किया गया हो, उसे धर्मस्थ (देखो-तृतीय अधिकरण) तथा कण्टकशोधन (देखो-चतुर्थ अधिकरण) कार्योंपर नियुक्त किया जावे ॥ २० ॥ जो अर्थोपधा शुद्ध हों, उनको समाहर्ता (कर वसूल करने वाले) और संनिधाता (कोषाध्यक्ष) आदिके पदोंपर नियुक्त किया जावे ॥ २१ जो कामोपधा शुद्ध हों, उन्हें बाहर भीतरके राजकीय क्रीडास्थानों तथा स्त्रियोंकी रक्षापर नियुक्त किया जाय ॥ २२ ॥

भयोपधाशुद्धानासन्नकार्येषु राज्ञः ॥ २३ ॥ सर्वोपधाशुद्धान्मन्त्रिणः कुर्यात् ॥ २४ ॥ सर्वत्राशुचीन्खनिद्रव्यहस्तिवनकर्मान्तेषूपयोजयेत् ॥ २५ ॥

भयोपधा शुद्ध अमात्योंको राजा अपने समीपही किन्हीं कार्योंपर नियुक्त करे ॥ २३ ॥ जो सबतरहसे परीक्षा किये गये हों, उन्हें मन्त्री बनावे ॥ २४ ॥ तथा जो सब तरहकी परीक्षाओंमें अशुचि सिद्ध हुए हों, उन्हें, खान, लकड़ी आदिके जंगल, हाथीके जंगलोंमें जहां परिश्रम अधिक करना पड़े, नियुक्त करे ॥ २५ ॥

त्रिवर्गभयसंशुद्धानमात्यान्स्वेषु कर्मसु ।
अधिकुर्याद्यथाशौचमित्याचार्या व्यवस्थिताः ॥ २६ ॥

यह सब अन्य आचार्योंने व्यवस्थाकी है कि धर्म अर्थ काम और भयके द्वारा परीक्षा किये हुए अमात्योंको उनकी पवित्रताके अनुसार अपने कार्योंपर नियुक्त किया जावे ॥ २६ ॥

न त्वेव कुर्यादात्मानं देवीं वा लक्ष्मीश्वरः ।
शौचहेतोरमात्यानामेतत्कौटल्यदर्शनम् ॥ २७ ॥

आचार्य कौटल्यका तो अपना यह सिद्धान्त है कि राजा, अमात्योंकी परीक्षाके लिये बीचमें महारानी या अपने आपको कभी न डाले ॥ २७ ॥

न दूषणमदुष्टस्य विषेणेवाम्भसश्चरेत् ।
कदाचिद्धि प्रदुष्टस्य नाधिगम्येत भेषजम् ॥ २८ ॥

क्योंकि किसी दोष रहित अमात्यका छलमिश्रित गुप्त रीतियोंसे इसप्रकार ठगा जाना, कभी २, जलमें विष मिला देनेके बराबर होजाता है। यह अधिक सम्भव है कि फिर, बिगड़ा हुआ अमात्य किसी प्रकार भी न सुधारा जासके ॥ २८ ॥

कृता च कलुषा बुद्धिरुपधाभिश्चतुर्विधा ।
नागत्वान्तर्निवर्तेत स्थिता सत्ववतां धृतौ ॥ २९ ॥

छलपूर्वक गुप्त उपायोंसे भेदको प्राप्त कराई हुई धीर पुरुषोंकी बुद्धि, निश्चित अभिप्रेत फलको प्राप्त किये बिना फिर कभी विराम नहीं लेती ॥ २९ ॥

तस्माद्बाह्यमधिष्ठानं कृत्वा कार्ये चतुर्विधे ।
शौचाशौचममात्यानां राजा मार्गेत सत्त्रिभिः ॥ ३० ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानां दशमो ऽध्यायः ॥ १० ॥

इसलिये इन उपर्युक्त चारों प्रकारोंके गुप्त उपायोंमें, राजा किसी बाह्य वस्तुको ही लक्ष्य बनावे। और इसप्रकार गुप्तचरोंके द्वारा अमात्योंके प्रत्येक आन्तरिक बुरे या भले भावोंकी अन्वेषणा करता रहे ॥ ३० ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें दसवां अध्याय समाप्त।

ग्यारहवां अध्याय।

७ प्रकरण।

गुप्तचर पुरुषोंकी स्थापना।

उपधाभिः शुद्धामात्यवर्गो गूढपुरुषानुत्पादयेत् ॥ १ ॥ कापटिकोदास्थितगृहपतिकवैदेहकतापसव्यञ्जनान्सत्त्रितीक्ष्णरसदभिक्षुकीश्च ॥ २ ॥

जिस राजाने धर्मोपधा आदि छलमूलक उपायोंसे अपने अमात्य वर्गकी अच्छी तरह जांच करली हो, वह गुप्तचर पुरुषोंकी नियुक्ति करे ॥ १ ॥ गुप्तचरोंके कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक, तापस, सत्री, तीक्ष्ण, रसद और भिक्षुकी आदि अनेक भेद हैं ॥ २ ॥

परमर्मज्ञः प्रगल्भः छात्रः कापटिकः ॥ ३ ॥ तमर्थमानाभ्यामुत्साह्य मन्त्री ब्रूयात् ॥ ४ ॥ राजानं मां च प्रमाणं कृत्वा यस्य यदकुशलं पश्यसि तत्तदानीमेव प्रत्यादिशेति ॥ ५ ॥

दूसरोंके गुप्त रहस्योंको जानने वाला, बड़ा प्रगल्भ तथा छात्रवेषमें रहने वाला गुप्तचर 'कापटिक' कहाता है ॥ ३ ॥ उसको बहुतसा धन देकर और सत्कारके द्वारा उत्साहित करके मन्त्री कहे ॥ ४ ॥ कि "तुम राजाको और मुझको प्रमाणभूत मानकर, जिसकी जो कुछ हानि होती देखो, उसी समय मुझे आकर बतलाओ" ॥ ५ ॥

प्रव्रज्याप्रत्यवसितः प्रज्ञाशौचयुक्त उदास्थितः ॥ ६ ॥ स वार्ताकर्मप्रदिष्टायां भूमौ प्रभूतहिरण्यान्तेवासी कर्म कारयेत् ॥७॥

बुद्धिमान्, पवित्र तथा सन्यासी वेषमें रहने वाले गुप्तचरका नाम उदास्थित है ॥ ६ ॥ वह अपने साथ बहुतसे विद्यार्थी और धन लेकर, जहां कृषि, पशुपालन तथा व्यापारके लिये स्थान नियत किया गया हो वहां जाकर, विद्यार्थियोंके द्वारा उपर्युक्त इन कार्योंको करवावे ॥ ७ ॥

कर्मफलाच्च सर्वप्रव्रजितानां ग्रासाच्छादनावसथान्प्रतिविदध्यात् ॥ ८ ॥ वृत्तिकामांश्चोपजपेत् ॥ ९ ॥ एतेनैव वेषेण राजार्थश्चरितव्यो भक्तवेतनकाले चोपस्थातव्यमिति ॥ १० ॥ सर्वप्रव्रजिताश्च स्वं स्वं वर्गमुपजपेयुः ॥ ११ ॥

उस कार्यके करनेसे जो कुछ आमदनी हो, उससे सब तरहके सन्यासियोंके भोजन वस्त्र और निवास स्थानका प्रबन्ध करे ॥ ८ ॥ जो सन्यासी नित्यही इसप्रकार भोजन वस्त्र आदि लेनकी इच्छा प्रकट करें उन्हें सब तरह वशमें करके समझा देवे, कि ॥ ९ ॥ 'इसही वेषसे तुम्हें राजाका कार्य करना चाहिये; और जब तुम्हारे भत्ते और वेतनका समय आवे, तो यहां उपस्थित होजाना ॥ १० ॥ इसी प्रकार प्रत्येक वर्गके संन्यासी, अपने २ वर्गके संन्यासियोंको समझावें ॥ ११ ॥

कर्षको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो गृहपतिकव्यञ्जनः ॥१२॥ स कृषिकर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण ॥ १३ ॥

बुद्धिमान्, पवित्र हृदय गरीब किसानके वेषमें रहने वाले गुप्तचरको 'गृहपतिक' कहा जाता है ॥ १२ ॥ वह कृषि कार्यके लिये निर्दिष्ट कीहुई भूमिमें जाकर 'उदास्थित' नामक गुप्तचरके समानही सब कार्य करावे ॥ १३ ॥

वाणिजको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो वैदेहकव्यञ्जनः ॥ १४ ॥ स वणिकर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण ॥ १५ ॥

बुद्धिमान्, पवित्र हृदय, गरीब व्यापारीके वेषमें रहने वाले गुप्तचरका नाम 'वैदेहक' है ॥ १४ ॥ वह व्यापार कार्यके लिये निर्दिष्ट कीहुई भूमिमें जाकर, अन्य सब कार्य 'उदास्थित' नामक गुप्तचरके समानही करावे ॥ १५ ॥

मुण्डो जटिलो वा वृत्तिकामस्तापसव्यञ्जनः ॥ १६ ॥ स नगराभ्याशे प्रभूतमुण्डजटिलान्तेवासी शाकं यवसमुष्टिं वा मासद्विमासान्तरं प्रकाशमश्नीयात् ॥ १७ ॥ गूढमिष्टमाहारम् ॥ १८ ॥

मुण्ड अथवा जटिल वेषमें रहकर, जीविकाके लिये राजाका काम करने वाला गुप्तचर 'तापस' कहाता है ॥ १६ ॥ वह कहीं नगरके पासही रहकर, बहुतसे मुण्ड अथवा जटिल विद्यार्थियोंको लेकर, हराशाक या मुट्ठीभर नाज महीने दो महीनेतकमें प्रकाश रूपमें खाता रहे ॥ १७ ॥ और छिपे तौरपर जो अपना रुचिकर आहार हो उसे खाता रहे ॥ १८ ॥

वैदेहकान्तेवासिनश्चैनं समिद्धयोगैरर्चयेयुः ॥ १९ ॥ शिष्याश्चास्यावेदयेयुरसौ सिद्धः सामेधिक इति ॥ २० ॥ समेधाशास्तिभिश्चाभिगतानामङ्गविद्यया शिष्यसंज्ञाभिश्च कर्माण्यभिजने ऽवसितान्यादिशेत् ॥ २१ ॥

तथा व्यापारी गुप्तचरके समीप रहने वाले कार्यकर्त्ता, इसको खूब अच्छी तरह धन आदि देकर इसकी पूजा करें ॥ १९ ॥ और इसके शिष्य चारों ओर इस बातको प्रसिद्ध करदें, कि ये बड़े महात्मा योगी हैं, तथा भविष्यमें होने वाली सम्पत्तियोंको भी बता देते हैं ॥ २० ॥ अपनी भावी सम्पत्तिको जाननेकी अभिलाषासे आये हुए पुरुषोंके कुटुंबमें सम्पन्न हुए कार्योंको, उनके शरीर आदि के चिन्होंको देखकर, तथा अपने शिष्योंके इशारोंके मुताबिक ठीक २ बतला देवें ॥ २१ ॥

अल्पलाभमग्निदाहं चोरभयं दूष्यवधं तुष्टदानं विदेशप्रवृत्तिज्ञानमिदमद्य श्वो वा भविष्यतीदं राजा करिष्यतीति ॥ २२ ॥ तदस्य गूढाः सत्त्रिणश्च संपादयेयुः ॥ २३ ॥

तथा यह भी बतावे कि, अमुक कार्यमें थोड़ा लाभ होगा, आग लगने और चोरोंके भयको भी बतावे; दूष्य पुरुषोंके वध और सन्तुष्ट होनेपर इनाम देनेको भी बतावे, दूर देशके समाचारोंको भी बतावे, अमुक कार्य आज या कल को होगा, तथा अमुक कार्यको राजा करेगा, इत्यादि बातोंको भी कहे ॥ २२ ॥ उस तापसके इस कथनको साधारण गूढ़ पुरुष तथा सत्री पूरा करें ॥ २३ ॥

सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिसंपन्नानां राजभाग्यमनुव्याहरेन्मन्त्रिसंयोगं च ॥ २४ ॥ मन्त्री चैषां वृत्तिकर्मभ्यां वियतेत ॥ २५ ॥

प्रश्न पूछने वालोंमें जो धैर्य, बुद्धि तथा वाक्पाटव आदि शक्तियोंसे युक्त हों, उन्हें कहे कि, तुम्हें राजाकी ओरसे कुछ धन मिलेगा और मन्त्रीके साथ तुम्हारी मुलाकात होगी ॥ २४ ॥ मुलाकात होनेपर मन्त्री भी इन पुरुषोंकी जीविका और व्यापारके लिये विशेषतौरपर यत्न करे ॥ २५ ॥

ये च कारणादभिक्रुद्धास्तानर्थमानाभ्यां शमयेत् ॥ २६ ॥ अकारणक्रुद्धांस्तूष्णींदण्डेन राजद्विष्टकारिणश्च ॥ २७ ॥

जो किसी विशेष कारणसे क्रुद्ध होगये हों, उन्हें धन और सत्कारके द्वारा शान्त करे ॥ २६ ॥ जो बिना कारणही क्रुद्ध होगये हों, तथा राजाके साथ द्वेष करते हों, उन्हें चुपचापही मरवा डाले ॥ २७ ॥

पूजिताश्चार्थमानाभ्यां राज्ञा राजोपजीविनाम् ।
जानीयुः शौचमित्येताः पञ्च संस्थाः प्रकीर्तिताः ॥ २८ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे अधिकरणे गूढपुरुषोत्पत्तौ संस्थोत्पत्तिः एकादशो ऽध्यायः ॥ ११ ॥

इसप्रकार धन और मानके द्वारा राजासे सत्कृत हुए २ गूढ पुरुष, अमात्य आदि राजोपजीवी पुरुषोंके सद् व्यवहारोंको अच्छी तरह जानें । इस अध्यायमें 'कापटिक' आदि पांच प्रकारके गुप्तचर पुरुषोंका निरूपण कर दिया गया है ॥ २८ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त ।

बारहवां अध्याय

८ प्रकरण ।

गुप्तचरों की कार्यों पर नियुक्ति ।

ये चाप्यसंबन्धिनो ऽवश्यभर्तव्यास्ते लक्षणमङ्गविद्यां जम्भकविद्यां मायागतमाश्रमधर्मं निमित्तमन्तरचक्रमित्यधीयानाः सत्रिणः ॥ १ ॥ संसर्गविद्या वा ॥ २ ॥

तथा जो राजाके सम्बन्धी हों, जिनका पालन पोषण करना राजाके लिये अवश्यंभावी है; ऐसे पुरुष जब सामुद्रिक आदि लक्षणशास्त्रको, शिक्षा व्याकरण आदि अङ्गों अथवा शरीरके अङ्गोंसे शुभाशुभ बताने वाली विद्याको, वशीकरण.अन्तर्धान आदिकी विद्याको, इन्द्रजाल विद्या, मन्वादि धर्मशास्त्रोंमें प्रतिपादित आश्रमधर्म, शकुनशास्त्र, पाक्षिशास्त्र, (अन्तरचक्र=पाक्षियोंके द्वारा शुभाशुभ फलका बतलाने वाला शास्त्र), तथा कामशास्त्र और उससे सम्बन्ध रखने वाले गीत एवं नृत्त आदि शास्त्रोंको अच्छी तरह पढ़कर जानने वाले हों, तो सत्री कहे जाते हैं। (पहिले अध्यायमें जिन कापटिक आदि पांच प्रकारके गुप्तचर पुरुषोंका निरूपण किया है, वे एकही स्थानमें रहकर कार्य करनेके कारण 'संस्था' कहे जाते हैं। और सत्री आदि गुप्तचर पुरुष 'संचार' कहाते हैं, क्योंकि ये घूमते रहकर ही कार्यका सम्पादन करते हैं।) ॥ १, २ ॥

ये जनपदे शूरास्त्यक्तात्मानो हस्तिनं व्यालं वा द्रव्यहेतोः प्रतियोधयेयुस्ते तीक्ष्णाः ॥ ३ ॥ ये बन्धुषु निःस्नेहाः क्रूराश्चालसाश्च ते रसदाः ॥ ४ ॥

जो अपने देशमें रहने वाले शूरवीर पुरुष, देहकी कुछ परवाह न करने वाले, हाथी अथवा व्याघ्र आदि हिंसक प्राणियों का द्रव्यके कारण मुकाबला करें, वे तीक्ष्ण कहे जाते हैं ॥ ३ ॥ जो अपने भाई बन्धुओंमें भी स्नेह रखने वाले नहीं, बड़े क्रूर और उत्साह रहित हों, वे 'रसद' कहे जाते हैं। सम्भवतः यह नाम इनको इसी लिये दिया गया है कि ये किसीको विषतक देदेनेमें भी संकोच नहीं करते ॥ ४ ॥

परिव्राजिका वृत्तिकामा दरिद्रा विधवाप्रगल्भा ब्राह्मण्यन्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रकुलान्यधिगच्छेत् ॥ ५ ॥ एतया मुण्डा वृषल्यो व्याख्याताः ॥ ६ ॥ इति संचाराः ॥ ७ ॥

वृत्ति (जीविका-भोग) की कामना रखने वाली, दरिद्र, प्रौढ़, विधवा ब्राह्मणी अन्तःपुरमें सत्कार पाई हुई जो प्रधान आमात्योंके घर अधिक जावे वह परिव्राजिका कही जाती है ॥ ५ ॥ इसी तरह मुण्डा (बौद्ध भिक्षुकी) और शूद्राओंको भी समझ लेना चाहिये ॥ ॥ ६ ॥ इस प्रकार ये सत्री आदि गुप्त पुरुष संचार शब्दसे कहे जाते हैं ॥ ७ ॥

तान्राजा स्वविषये मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजदौवारिकान्तर्वंशिकप्रशास्तृसमाहर्तृसंनिधातृप्रदेष्टृनायकपौरव्यावहारिका-

तान्तिकमन्त्रिपरिषदध्यक्षदण्डदुर्गान्तपालाटविकेषु श्रद्धेयदेशवेष-शिल्पभाषाभिजनापदेशान्भक्तितः सामर्थ्ययोगाच्चापसर्पयेत् ॥८॥

इन सत्री आदि गुप्तचर पुरुषोंको राजा, अपनेही देशमें मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, प्रतीहारी (द्वौवारिक), अन्तःपुर रक्षक, छावनी का संस्थापक, कलक्टर, कोषाध्यक्ष, प्रदेष्टा (कण्टकशोधनका अधिकारी पुरुष= कमिश्नर), सूबेदार, नगरका मुखिया अथवा नर्काल, खानोंका निरीक्षक, मन्त्रि सभाका अध्यक्ष, सेनारक्षक, दुर्गरक्षक, सीमारक्षक, और जंगलका अधिपति इन लोगोंके समीप, विश्वसनीय देश वेषभूषा कारीगरी भाषा तथा अभिजन (खान्दान) से युक्त होने पर, उनकी भक्ति और सामर्थ्य को देखकर ही रवाना करे ॥ ८ ॥

तेषां बाह्यं चारं छत्रभृङ्गारव्यजनपादुकासनयानवाहनोपग्राहिणः तीक्ष्णा विद्युः ॥९॥ तं सत्त्रिणः संस्थास्वर्पयेयुः ॥ १० ॥

उनमें से तीक्ष्ण नामक गुप्तचर पुरुष, बाहरी उपकरण—छत्र, चामर, व्यजन, पादुका आसन, डोली (यान-दोलिका) और घोड़े आदिको पकड़ कर या लेकर अमात्य आदिकी सेवा करें, और उनके व्यवहारोंको जानें ॥ ९ ॥ सत्री नामक गुप्तचर पुरुष, इस प्रकार तीक्ष्ण पुरुषके द्वारा जाने हुए सब व्यवहारोंको, कार्तान्तिक कापटिक आदि गुप्तचरोंको बतला देवें ॥ १० ॥

सूदारालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारका रसदाः कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छद्मानो नटनर्तकगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवाः स्त्रियश्चाभ्यन्तरं चारं विद्युः ॥ ११ ॥

मन्त्री आदिके घरके सब व्यवहारोंको सूद (पाचक), आरालिक (मांस आदि पकाने वाला), स्नान कराने वाला, हाथ पैर आदि दबाने वाला, बिस्तर बिछाने वाला, नाई, कपड़े आदि पहनाने वाला, जल भरने वाला, इनके भेसमें रसद नामक गुप्तचर पुरुष; और कुबड़े, बौने, किरात (जंगली आदमी), गूंगे, बहरे, मूर्ख, अन्धे आदिके भेसमें गुप्तचर पुरुष, तथा नट, नाचने गाने बजाने वाले, किस्से कहानी कहने वाले, कूदने फांदने आदि का तमाशा करने वाले, और खुफिया औरतें अच्छी तरह जानें, अर्थात् प्रत्येक बातका पता लगावें ॥ ११ ॥

तं भिक्षुक्यः संस्थास्वर्पयेयुः ॥ १२ ॥ संस्थानामन्तेवासिनः

संज्ञालिपिभिश्चारसंचारं कुर्युः ॥ १३ ॥ न चान्योन्यं संस्थास्ते वा विद्युः ॥ १४ ॥

और भिक्षुकी, उस जाने हुए सब व्यवहारको, स्थानिक कापटिक आदि गुप्तचरोंके पास निवेदन करदें ॥ १२ ॥ संस्थाओं (कापटिक आदि गुप्तचरों) के विद्यार्थी, अपने निजी संकेतके अनुसार बनाई हुई लिपियोंके द्वारा, उस जाने हुए व्यवहारको राजातक पहुंचावें ॥ १३ ॥ इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि परस्पर एक दूसरेको संस्था या संचार, तथा संस्थाओंको संचार और संचारोंको संस्था न जानने पावें। अर्थात् गुप्तचरका कार्य करने वाला पुरुष अनावश्यक अन्य गुप्तचर व्यक्तिको न जान सके ॥ १४ ॥

भिक्षुकीप्रतिषेधे द्वाःस्थपरम्परा मातापितृव्यञ्जनाः शिल्पकारिकाः कुशीलवा दास्यो वा गीतपाठ्यवाद्यभाण्डगूढलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारं निर्हारयेयुः ॥ १५ ॥

यदि अमात्य आदिके भीतर घरोंमें भिक्षुकीके जानेकी मनाई हो, तो द्वारपालोंके द्वारा (पहिला द्वारपाल दूसरेको, दूसरा तीसरेको, इसीप्रकार सबसे बाहरका द्वारपाल भिक्षुकीको बतादेवें) वह समाचार बाहर लाया जावे। यदि यह भी सम्भव न होसके, तो अन्तःपुरके परिचारकोंके माता पिता बनकर बूढ़े स्त्री पुरुष भीतर चले जावें, और वे पता लगावें। या रानियोंके बाल आदि संवारने वाली स्त्रियां, गाने बजाने वाली, तथा अन्य दासियोंके द्वारा; अथवा इशारोंसे भरेहुए गीत, श्लोक पाठ, बाजे तथा बर्तन या टोकरियोंमें गूढ़ लेख डालकर, या अन्य प्रकारके संकेतोंसे भीतरके समाचारोंको बाहर लाया जावे ॥ १५ ॥

दीर्घरोगोन्मादाग्निरसविसर्गेण वा गूढनिर्गमनम् ॥ १६ ॥ त्रयाणामेकवाक्ये संप्रत्ययः ॥ १७ ॥

अथवा किसी भयङ्कर रोग या पागलपनके बहाने, आग लगाकर या ज़हर देकर (जिससे कि अन्तःपुरमें गड़बड़ होजावे, उसी समय) चुपचाप गूढ़पुरुष बाहर निकल जावे ॥ १६ ॥ यदि तीन गूढ़ पुरुष, जो कि आपसमें एक दूसरेको न जानते हों, किसी समाचारको एक तरहसे ही बतावें, तो उसे ठीक समझना चाहिये ॥ १७ ॥

तेषामभीक्ष्णविनिपाते तूर्ष्णींदण्डः प्रतिषेधो वा ॥ १८ ॥ कण्टकशोधनोक्ताश्चापसर्पा परेषु कृतवेतना वसेयुः संपातनिश्चारार्थम् ॥ १९ ॥ त उभयवेतनाः ॥ २० ॥

यदि वे बार बार परस्पर विरुद्ध समाचार ही लावें, तो उन्हें उपांशु दण्ड दिया जाय, अर्थात् अकेलेमें चुपचाप पिटवाया जाय। अथवा नौकरीसे पृथक् कर दिया जाय ॥ १८ ॥ इन उपर्युक्त गुप्तचर पुरुषोंके अतिरिक्त कण्टक शोधन अधिकरणमें बताये हुए गूढ पुरुष भी नियुक्त किये जावें। उनको दूसरे देशोंमें वहांके अमात्य आदिके पास भेजा जावे; वे उनसे वेतन लेकर उनके पासही निवास करें और उनकी सेवा करें; जिससे कि उनके सबही गुप्त समाचार सरलतासे बाहर निकाले जासकें ॥ १९ ॥ ये गूढ पुरुष दोनोंही ओरसे पूरा वेतन लेने वाले होते हैं। अर्थात् विजिगीषु और शत्रु दोनोंकी ओरसे इनको वेतन मिलता है ॥ २० ॥

गृहीतपुत्रदारांश्च कुर्यादुभयवेतनान् ।
तांश्चारिप्रहितान्विद्यात्तेषां शौचं च तद्विधैः ॥ २१ ॥

जिन व्यक्तियोंको दोनों ओरसे वेतन दिया जावे, उनके पुत्र और स्त्रियों-को विजिगीषु राजा, सत्कार पूर्वक अपने अधीन रक्खे। शत्रुकी ओरसे भेजेहुए उभय वेतन (दोनों ओरसे वेतन लेने वाले) व्यक्तियोंको, राजा अच्छी तरह जाने; और उनके द्वारा अपने उभयवेतन गूढ पुरुषोंकी पवित्रताको भी जाने ॥ २१ ॥

एवं शत्रौ च मित्रे च मध्यमे चावपेच्चरान् ।
उदासीने च तेषां च तीर्थेष्वष्टादशस्वपि ॥ २२ ॥

इसप्रकार शत्रु, मित्र, मध्यम और उदासीन राजाओं तथा उनके मंत्री, पुरोहित, सेनापति आदि अठारह प्रकारके अनुचरोंके पास, सबही स्थानोंपर गुप्तचरोंको नियुक्त करे ॥ २२ ॥

अन्तर्गृहचरास्तेषां कुब्जवामनषण्ढकाः ।
शिल्पवत्यः स्त्रियो मूकाश्चित्राश्च म्लेच्छजातयः ॥ २३ ॥

शत्रु, मित्र आदिके घरोंमें तथा उनके मन्त्री पुरोहित आदि अठारह प्रकारके अनुचरोंके भीतर घरोंमें खुफिया काम करने वाले कुबड़े, बौने, नपुंसक, कारीगर स्त्रियां, गूंगे, तथा अन्य नाना प्रकारके बहानोंको लेकर म्लेच्छ जातिके पुरुष नियुक्त किये जांय ॥ २३ ॥

दुर्गेषु वणिजः संस्था दुर्गान्ते सिद्धतापसाः ।
कर्षकोदास्थिता राष्ट्रे राष्ट्रान्ते व्रजवासिनः ॥ २४ ॥

दुर्गोंमें, ठहरकर काम करने वाले व्यापारियोंको; दुर्गकी सीमापर सिद्ध तापसोंको; राज्यके अन्य स्थानोंमें कृषक और उदास्थित पुरुषोंको, तथा राज्यकी सीमापर गोपालोंको गुप्तचरका कार्य सौंपा जाय ॥ २५ ॥

वने वनचराः कार्याः श्रमणाटविकादयः ।
परप्रवृत्तिज्ञानार्थं शीघ्राश्चारपरंपराः ॥ २५ ॥

वनमें, शत्रुकी प्रत्येक गति विधिको जाननेके लिये चतुर, शीघ्र काम करने वाले श्रमण (वानप्रस्थ वृत्तिसे रहने वाले) और आटविक (अन्य जंगल वासी) पुरुषोंको, गूढपुरुषोंका कार्य करनेके लिये बराबर नियुक्त किया जाय ॥२५॥

परस्य चैते बोद्धव्यास्तादृशैरेव तादृशाः ।
चारसंचारिणः संस्था गूढाश्च गूढसंज्ञिताः ॥ २६ ॥

इसप्रकार छिपे हुए भी खुले तौरपर रहते हुए; ये लोग शत्रुकी ओरसे नियुक्त किये हुए सत्री तथा तीक्ष्ण आदि गूढ पुरुषोंको, तथा कापटिक, उदास्थित आदि संस्था नामक गुप्तचर पुरुषोंको, समानही खुफिया पुलिसके द्वारा पहचानें। अर्थात् संस्था संस्थाओंको और सञ्चार सञ्चारोंको जाननेका यत्न करें ॥ २६ ॥

अकृत्यान्कृत्यपक्षीयैर्दर्शितान्कार्यहेतुभिः ।
परापसर्पज्ञानार्थं मुख्यानन्तेषु वासयेत् ॥ २७ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे गूढपुरुषोत्पत्तौ संचारोत्पत्तिः गूढपुरुषप्रणिधिः द्वादशो ऽध्यायः ॥ १२ ॥

शत्रुके वशमें अथवा उसके बहकानेमें न आने वाले अपने राष्ट्रके मुख्य पुरुषोंको, शत्रुके गुप्तचरोंको जाननेके लिये राष्ट्रकी सीमापर नियुक्त करे; और उनको यह समझा देवे कि शत्रुके जो आदमी हमारे वशमें आसकते हैं, उन्हें इन २ उपायोंसे अपने पक्षमें कर लिया जावे ॥ २७ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें बारहवां अध्याय समाप्त ।

तेरहवां अध्याय ।

९ प्रकरण ।

अपने देशमें कृत्य तथा अकृत्य पक्षकी रक्षा ।

अपने राष्ट्रके जो पुरुष शत्रुके वशमें आजाने वाले हों वे कृत्यपक्ष के, और जो शत्रुके वशमें न आसकें, वे अकृत्यपक्षके कहाते हैं, राजाको उचित है कि वह अपने देशके दोनों पक्षोंके मनुष्योंकी इसप्रकार देख भाल रक्खे, या उनकी रक्षा करे, जिससे कि वे शत्रुके वशमें कदापि न जासकें ।

कृतमहामात्रापसर्पः पौरजानपदानपसर्पयेत् ॥१॥ सत्रिणो द्वंद्विनस्तीर्थसभाशालापूगजनसमवायेषु विवादं कुर्युः ॥ २ ॥

प्रधान अमात्य, मन्त्री, पुरोहित आदिके समीप गुप्तचरोंको नियुक्त करके फिर नगर वासी तथा जनपद निवासी पुरुषोंके अनुराग और अपरागको जाननेके लिये वहांपर भी गुप्तचर पुरुषोंको नियुक्त करे ॥१॥ गुप्तचर पुरुष आपसमें झगड़ पड़ें, और नदी आदिके तीर्थ स्थानोंमें, ब्राह्मण आदिकी सभाओंमें, भोजन तथा पीने आदिकी दूकानोंमें, राजकीय कर्मचारियोंके समूहमें, तथा अन्य नाना प्रकारके पुरुषोंके झुण्डोंमें, निम्नलिखित रीतिसे आपसमें विवाद करना प्रारम्भ करें ॥ २ ॥

सर्वगुणसंपन्नश्चायं राजा श्रूयते ॥ ३ ॥ न चास्य कश्चि-द्गुणो दृश्यते यः पौरजानपदान्दण्डकराभ्यां पीडयतीति ॥ ४ ॥ तत्र ये ऽनुप्रशंसेयुस्तानितरस्तं प्रतिषेधयेत् ॥ ५ ॥

'यह राजा सर्वगुणसम्पन्न सुना जाता है; ॥ ३ ॥ परन्तु इसका कोई गुण दीखता तो है नहीं, और उलटा, नगर निवासी तथा जनपद निवासी पुरुषोंको दण्ड देकर और अच्छी तरह कर वसूल करके पीड़ा पहुंचाता है।' इत्यादि ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन तीर्थ आदि स्थानों पर, उपर्युक्त निन्दाके अनुसार राजाकी निन्दा करने वाले अन्य पुरुषोंको, तथा उस पूर्वनियुक्त गुप्तचर को रोककर दूसरा गुप्तचर कहे कि ॥ ५ ॥

मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे ॥ ६ ॥ धान्यषड्भागं पण्यदशभागं हिरण्यं चास्य भागधेयं प्रकल्पयामासुः ॥ ७ ॥

देखो, पहिले प्रजामें यह अवस्था थी कि जैसे बड़ी मछली छोटी मछलीको खा जाती है, इसी प्रकार शक्तिशाली व्यक्ति निर्बल पुरुषोंको तंग करते थे, तब सम्पूर्ण प्रजाने मिलकर विवस्वान्‌के पुत्र मनुको अपना राजा बनाया ॥ ६ ॥ खेतीका छठा हिस्सा, व्यापारकी आमदनीका दसवां हिस्सा तथा कुछ सुवर्ण, राजाके लिये इतना भाग नियत कर दिया ॥ ७ ॥

तेन भृता राजानः प्रजानां योगक्षेमवहास्तेषां किल्बिषमद-ण्डकरा हरन्ति अयोगक्षेमवहाश्च प्रजानाम् ॥ ८ ॥ तस्मादुञ्छ-षड्भागमारण्यका अपि निवपन्ति तस्यैतद्भागधेयं यो ऽस्मान्गो-पायतीति ॥ ९ ॥

उस हिस्सेको ग्रहण करते हुए राजाओंने प्रजाके योग क्षेमका भार अपने ऊपर लिया इस प्रकार राजा प्रयुक्त किये गये दण्ड और करोंसे प्रजाकी बुराइयोंको नष्ट करते हैं, तथा प्रजाके योग क्षेमका सम्पादन करते हैं ॥ ८ ॥ इसीलिये जंगलमें रहने वाले ऋषि मुनिजन भी, अपने बीने हुए नाज का भी छठा हिस्सा राजाको दे देते हैं, कि यह उस राजाका ही हिस्सा है, जो हमारी रक्षा करता है ॥ ९ ॥

इन्द्रयमस्थानमेतद्राजानः प्रत्यक्षहेडप्रसादाः ॥ १० ॥ तानवमन्यमानान्दैवो ऽपि दण्डः स्पृशति ॥ ११ ॥ तस्माद्राजानो नावमन्तव्या इति क्षुद्रकान्प्रतिषेधयेत् ॥ १२ ॥

ये राजा लोग प्रत्यक्षही प्रजाओंका निग्रह और उनपर अनुग्रह करने वाले होते हैं, इसीलिए ये इन्द्र और यमके समान हैं ॥ १० ॥ अतएव जो उनका तिरस्कार करता है, उसपर दैवी विपत्ति भी अवश्य आती है ॥ ११ ॥ इसलिये राजाओंका कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिये, इत्यादि बातें कहकर साधारण जनताको राजाकी निन्दा करने से रोक देवे ॥ १२ ॥

किंवदन्तीं च विद्युः ॥ १३ ॥ ये चास्य धान्यपशुहिरण्यान्याजीवन्ति तैरुपकुर्वन्ति व्यसने ऽभ्युदये वा कुपितं बन्धुं राष्ट्रं वा व्यावर्तयन्त्यमित्रमाटविकं वा प्रतिषेधयन्ति तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनास्तुष्टातुष्टत्वं विद्युः ॥ १४ ॥

गुप्तचर पुरुष किंवदन्ती अर्थात् अफवाहोंको भी जानें ॥ १३ ॥ जो पुरुष धान्य, पशु तथा हिरण्य आदि पदार्थोंको राजाके लिए देते हैं, या व्यसन अथवा अभ्युदयके समयमें धान्य आदिके द्वारा राजाका उपकार करते हैं, या कुपित हुए बन्धु बान्धव तथा अन्य जनताको क्रोध करने से रोक देते हैं; इस प्रकारके लोगोंकी प्रसन्नता और अप्रसन्नताको भी, मुण्ड अथवा जटिल वेषमें रहने वाले गुप्तचर जानें ॥ १४ ॥

तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत् ॥ १५ ॥ अतुष्टांस्तुष्टिहेतोस्त्यागेन साम्ना च प्रसादयेत् ॥ १६ ॥ परस्पराद्वा भेदयेदेनान्सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धेभ्यश्च ॥ १७ ॥

जो राजासे सन्तुष्ट अर्थात् प्रसन्न न हों, उन्हें धन और सत्कार आदिसे और अधिक सत्कृत करे ॥ १५ ॥ तथा जो प्रसन्न न हों, उन्हें प्रसन्न करनेके लिए धन आदि देवे; और साम अर्थात् सान्त्वनासे भी उन्हें प्रसन्न करे ।

॥१६॥ अथवा इन अप्रसन्न व्यक्तियोंमें परस्पर ही भेद डालदे, और सामन्त आटविक तथा उनके खान्दानी और मिलने जुलने वाले लोगोंसे भी इनका भेद करवा दे। जिससे कि ये सन्तुष्ट पुरुष सामन्त आदिको बहका न सकें। ॥ १७ ॥

तथाप्यतुष्यतो दण्डकरसाधनाधिकारेण वा जनपदविद्वेषं ग्राहयेत् ॥ १८ ॥ विद्विष्टानुपांशुदण्डेन जनपदकोपेन वा साधयेत् ॥ १९ ॥

यदि फिर भी ये अप्रसन्नही रहें, अपने वशमें न आवें, तो दण्ड सम्बन्धी अधिकारोंके द्वारा, अथवा कर सम्बन्धी अधिकारोंके द्वारा सम्पूर्ण जनपदके साथ इनका द्वेष करा देवें ॥ १८ ॥ जब जनपद निवासी लोग इनसे द्वेष करने लगें, तो इनका चुपचाप वध करवा दिया जाय अथवा जनपदके क्रोधके द्वाराही इनका दमन किया जाय। तात्पर्य यह है कि प्रान्त निवासी जनही अपना विरोधी होनेके कारण इसको मार डालें ॥ १९ ॥

गुप्तपुत्रदारानाकरकर्मान्तेषु वा वासयेत् ॥ २० ॥ परेषामास्पदभयात् ॥२१॥ क्रुद्धलुब्धभीतावमानिनस्तु परेषां कृत्याः ॥२२॥

अथवा इन असंतुष्ट पुरुषोंके पुत्र और स्त्रियोंको अपने अधिकारमें करके, उन्हें खानके काम करनेमें नियुक्त कर देवें ॥ २० ॥ क्योंकि सम्भव है, ऐसा न करने पर ये लोग शत्रुसे जाकर मिल जांय ॥ २१ ॥ क्रोधी, लोभी, डरपोक और तिरस्कृत पुरुषही शत्रुके वशमें आजाने के योग्य होते हैं ॥ २२ ॥

तेषां कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः परस्पराभिसंबन्धममित्राटविकप्रतिसंबन्धं वा विद्युः ॥ २३ ॥

इस प्रकारके लोगोंके आपसके सम्बन्धको, और शत्रुके साथ किये गये सम्बन्धको, कार्तान्तिक (पहिले कर्मोंको जानने वाला) नैमित्तिक (शुभ अशुभ शकुनोंको जानने वाला) और मौहूर्तिक (तीनों कालोंके वृत्तान्तोंको जानने वाला) के वेषमें रहने वाले गुप्तचर पुरुष जानें ॥ २३ ॥

तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत् ॥ २४ ॥ अतुष्टान्सामदानभेददण्डैः साधयेत् ॥ २५ ॥

जो व्यक्ति अपनेसे प्रसन्न हों, उन्हें अर्थ और सत्कारके द्वारा सत्कृत करे ॥ २४ ॥ और अपनेसे अप्रसन्न व्यक्तियोंको सामदान दण्ड भेद इन चारों उपायोंसे ही अपने वशमें करे ॥ २५ ॥

एवं स्वविषये कृत्यानकृत्यांश्च विचक्षणः ।
परोपजापात्संरक्षेत्प्रधानान्क्षुद्रकानपि ॥ २६ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे अधिकरणे स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणं त्रयोदशो अध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार बुद्धिमान् राजा, अपने देशमें छोटे बड़े सभी कृत्य (शत्रुके वशमें आने वाले, क्रोधी लोभी आदि) और अकृत्य (किसी तरह भी शत्रुके वशमें न आने वाले) पुरुषोंको, शत्रुके बहकानेमें आनेसे बचावें ॥ २६ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें तेरहवां अध्याय समाप्त ।

चौदहवां अध्याय ।

१० प्रकरण ।

शत्रुके देशमें कृत्य तथा अकृत्य पक्षके पुरुषों का संग्रह ।

कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः स्वविषये व्याख्यातः ॥ १ ॥ परविषये वाच्यः ॥ २ ॥

अपने देशमें कृत्य तथा अकृत्य पुरुषोंका संग्रह कह दिया गया है । ॥ १ ॥ अब शत्रुके देशमें, उसके कृत्याकृत्य पक्षके पुरुषोंको अपने वशमें कैसे करना चाहिये, इसका निरूपण किया जायगा ॥ २ ॥

संश्रुत्यार्थान्विप्रलब्धस्तुल्याधिकारिणो शिल्पे वोपकारे वा विमानितो वल्लभावरुद्धः समाहूय पराजितः प्रवासोपतप्तः कृत्वा व्ययमलब्धकार्यः स्वधर्माद्दायाद्याद्वोपरुद्धो मानाधिकाराभ्यां भ्रष्टः कुल्यैरन्तर्हितः प्रसभाभिमृष्टस्त्रीकः कारादिन्यस्तः परोक्तदण्डितो मिथ्याचारवारितः सर्वस्वमाहारितो बन्धनपरिक्लिष्टः प्रवासितबन्धुरिति क्रुद्धवर्गः ॥ ३ ॥

क्रोधी, लोभी, भीत (डरे हुए) और मानी पुरुषही कृत्य कहाते हैं, यह बात पहिले कही जाचुकी है । उनमेंसे पहिले क्रोधी वर्गको बताते हैं, अर्थात् उन २ विशेष अवस्थाओंका निरूपण करते हैं, जिन अवस्थाओंके उपस्थित होने पर कोई पुरुष, राजा या राजासे क्रुद्ध हो सकता है, :—जिसको धन देनेकी

प्रतिज्ञा करके फिर धन न दिया गया हो (अर्थात् पहिले राजाने वचन दिया कि हम तुमको धन देंगे, परन्तु फिर उसे धन दिया नहीं गया, ऐसा पुरुष, राजासे क्रुद्ध होसकता है. इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये), किसी प्रकारके शिल्प या उपकारके कार्यमें समान रीतिसे काम करने वाले दो पुरुषोंमेंसे एकका अधिक सत्कार करके दूसरेका अपमान किया गया हो, राजाके विश्वस्त नौकरोंने जिसको राजकुलमें प्रवेश करनेसे रोक दिया हो, पहिले स्वयं बुलाकर फिर जिसका तिरस्कार किया हो, राजाकी आज्ञासे अत्यधिक प्रवास करनेके कारण दुःखी हुआ २, व्यय करके भी (रिश्वत=घूंस देकर भी) जिसका कोई सरकारी काम पूरा न किया गया हो, जो अपने कुलक्रमागत किसी आचार (जैसे दाक्षिणात्य कुलोंमें अपने मामाकी लड़कीसे विवाह करलेनेका आचार है) के करनेसे, अथवा दायभाग लेनेसे रोक दिया गया हो, सत्कार या अधिकार पदसे जिसको गिरादिया गया हो, राजकुलके अन्य पुरुषोंसे जो बदनाम किया गया हो, बलात्कार जिसकी स्त्री छीन लीगई हो, जिसको कारागारमें डालदिया गया हो, विना विचारे दूसरेके कथनमात्रसे जिसको दण्ड दिया गया हो, मिथ्या बात कहकर धर्मका आचरण करनेसे जिसको रोका गया हो, जिसका सर्वस्व अपहरण कर लिया गया हो, अशक्य कार्योंपर नियुक्त करके जिसको कष्ट दिया गया हो, जिसके पुत्र या बन्धु बान्धव आदिको देशसे निकाल दिया गया हो, इसप्रकारके पुरुष राजासे क्रुद्ध होजाते हैं। इसी लिये उन्हें बड़ी आसानीसे फोड़ा जासकता है। अर्थात् शत्रुसे भेदकर अपनी ओर मिलाया जासकता है ॥ ३ ॥

स्वयमुपहतो विप्रकृतः पापकर्माभिख्यातस्तुल्यदोषदण्डेनोद्विग्नः पर्यात्तभूमिर्दण्डेनोपनतः सर्वाधिकरणस्थः सा (स) हसोपचितार्थस्तत्कुलीनोपाशंसुः प्रद्विष्टो राज्ञा राजद्वेषी चेति भीतवर्गः ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर अब भीतवर्ग अर्थात् विजिगीषुसे डरे हुए पुरुषोंको बताते हैं, :—जो धनके लिये स्वयं किसीकी हिंसा करके दूषित होचुका हो, (ऐसा पुरुष विजिगीषुसे इसलिये डरता रहता है, कि कहीं विजिगीषु यह खयाल न कर लेवे, कि जिसतरह इसने मुझसे रुपया लेकर दूसरे आदमीको मार डाला है, इसी प्रकार शत्रुपक्षसे और अधिक रुपया लेकर कहीं मुझे न मार डाले; क्योंकि विजिगीषुके दिलमें ऐसा खयाल होनेपर वह अवश्यही मेरा बध करादेगा; इसलिये डरता रहता है); अन्तःपुर आदिमें विजिगीषुके विरुद्ध कार्योंको करने वाला, ब्रह्महत्या आदि पाप कर्मोंके कारण बदनाम हुआ २

अपने समान अपराध करने वाले पुरुषको दण्डित हुआ देखकर घबड़ाया हुआ, भूमिका अपहरण करने वाला, दण्डके द्वारा वशमें किया हुआ, सब राजकीय विभागोंपर अधिकार रखने वाला, जिसके पास अकस्मात् ही अथवा अपने परिश्रमसे बहुत सम्पत्ति इकट्ठी होगई हो, राजकुलके दायभागी किसी व्यक्तिके पास कुछ कामनासे आश्रित हुआ २, राजा जिसके साथ द्वेष करता हो, अथवा राजासे जो द्वेष करता हो; इसप्रकारके व्यक्ति सदा विजिगीषुसे डरते रहते हैं, इनकोभी सरलतासे अपनी ओर मिलाया जासकता है ॥ ४ ॥

परिक्षीणो ऽत्यात्तस्वः कदर्यो व्यसन्यत्याहितव्यवहारश्चेति लुब्धवर्गः ॥ ५ ॥

जिसका सब वैभव नष्ट होगया हो, राजाने दण्डरूप या कररूपमें जिसका धन लेलिया हो, कृपण, स्त्री तथा मद्यादि पीनेका व्यसनी, और अपव्ययी पुरुष लोभी होता है, ऐसे पुरुषोंको धन देकर बड़ी सरलतासे वशमें किया जासकता है ॥ ५ ॥

आत्मसंभावितो मानकामः शत्रुपूजामर्षितो नीचैरुपहितस्तीक्ष्णः साहसिको भोगेनासंतुष्ट इति मानिवर्गः ॥ ६ ॥

'मैं बड़ा विद्वान् या बहादुर हूं। इस प्रकार अपने आपको बहुत कुछ समझने वाला, अपनी पूजा कराने की अभिलाषा रखने वाला, शत्रुकी पूजाको सहन न करने वाला, नीच पुरुषोंके द्वारा बड़ाई कर २ के किसी कार्यमें लगाया हुआ, अपनी जानकी भी कुछ परवाह न करने वाला (तीक्ष्ण), सहसा किसी कार्यमें प्रवृत्त हो जाने वाला, प्राप्त धन आदि भोग्य पदार्थों से सन्तुष्ट न होने वाला, पुरुष मानी होता है। ऐसे पुरुष सत्कारके ही द्वारा सरलता पूर्वक वशमें कर लिए जासकते हैं ॥ ६ ॥

तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनैर्यो यद्भक्तिः कृत्यपक्षीयस्तं तेनोपजापयेत् ॥ ७ ॥

उन क्रुद्ध आदि कृत्यपक्षके पुरुषोंमेंसे जो जिस मुण्ड या जटिल वेषधारी गुप्त पुरुषका भक्त हो, उसही मुण्ड या जटिल व्यक्तिके द्वारा उन २ उपायोंसे उसको वशमें करे। अर्थात् शत्रुसे भिन्न करके उसे अपनी ओर मिलाने का यत्न करे ॥ ७ ॥

यथा मदान्धो हस्ती मत्तेनाधिष्ठितो यद्यदासादयति तत्सर्वं प्रमृद्नात्येवमयमशास्त्रचक्षुरन्धो राजा पौरजानपदवधायाभ्युत्थितः ॥ ८ ॥

गुप्त पुरुष, क्रुद्ध वर्गके पुरुषको यह कहकर उसके स्वामीसे भेद डाले कि 'देखो जैसे मस्त हाथी, प्रमादी पीलवानसे चलाया हुआ, जो कुछ अपने सामने पाता है उसेही कुचल डालता है, इसी प्रकार यह, शास्त्र रूपी चक्षुसे हीन अन्धा राजा, अपनी तरहके अन्धे मन्त्रीके साथ रहता हुआ, नगरनिवासी तथा जनपद निवासी पुरुषोंको नष्ट करने के लिये तैयार हो रहा है ॥ ८ ॥

शक्यमस्य प्रतिहस्तिप्रोत्साहनेनापकर्तुममर्षः क्रियतामिति क्रुद्धवर्गमुपजापयेत् ॥ ९ ॥

इसके साथ शत्रुता रखने वाले पुरुषोंको प्रोत्साहन देनेसे अवश्यही इसका कुछ अपकार किया जासकता है। इसलिये राजाके प्रति प्रकोप उत्पन्न करो, यह कहकर क्रुद्ध वर्गका राजासे भेद डलवावे ॥ ९ ॥

यथा भीतः सर्पो यस्माद्भयं पश्यति तत्र विषमुत्सृजत्येवमयं राजा जातदोषाशङ्कस्त्वयि पुरा क्रोधविषमुत्सृजत्यन्यत्र गम्यतामिति भीतवर्गमुपजापयेत् ॥ १० ॥

भीत वर्गके पुरुषका इस प्रकार उसके स्वामीसे भेद डलवावे, गुप्त पुरुष उससे कहे कि देखो, जिस प्रकार डरा हुआ, सांप, जिधरसे भय देखता है, वहींपर अपना विष उगल देता है, इसी प्रकार इस राजाको तुम्हारी ओरसे कुछ शंका हो गई है; और यह तुम्हारे ही ऊपर सबसे प्रथम क्रोध रूपी विष उगलने वाला है; अच्छा यही है कि तुम यहांसे और कहीं चले जाओ। इस प्रकार भीत वर्गका भेद डलवावे ॥ १० ॥

यथा श्वगणिनां धेनुः श्वभ्यो दुग्धे न ब्राह्मणेभ्य एवमयं राजा सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिहीनेभ्यो दुग्धे नात्मगुणसंपन्नेभ्यः ॥ ११ ॥

लोभी पुरुषको इस प्रकार भिन्न करे, गुप्त पुरुष उससे कहे कि जिस प्रकार चांडालों की गाय उन्हींको दूध दे सकती है, ब्राह्मणोंके लिए नहीं दे सकती, इसी प्रकार यह राजा बल बुद्धि और वाक्शक्तिसे हीन पुरुषोंके लिए ही फल दायक (या लाभदायक) हो सकता है, जो आत्मगुणोंसे सम्पन्न पुरुष हैं, उनके लिये नहीं ॥ ११ ॥

असौ राजा पुरुषविशेषज्ञस्तत्र गम्यतामिति लुब्धवर्गमुपजापयेत् ॥ १२ ॥

किन्तु वह अमुक राजा विशेष पुरुषोंको खूब समझता है, तुम्हें उसी
की सेवा करनी चाहिये। इस प्रकार कहकर लुब्ध वर्गके पुरुषको उसके स्वामी
से भिन्न करे ॥ १२ ॥

यथा चाण्डालोदपानश्चण्डालानामेवोपभोग्यो नान्येषामेव-
मयं राजा नीचो नीचानामेवोपभोग्यो न त्वाद्विधानामार्याणाम्
॥ १३ ॥

जिस प्रकार चाण्डालोंका कुआ चाण्डालोंके लिये ही उपयोगका साधन
होता है, अन्य पुरुषोंके लिये नहीं, इसी प्रकार यह नीच राजा, नीच पुरुषोंके
लिये ही उपयोग अर्थात् सुखका साधन है, तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ पुरुषोंके सुखका
साधन नहीं हो सकता ॥ १३ ॥

असौ राजा पुरुषविशेषज्ञस्तत्र गम्यतामिति मानिवर्गमुपजा-
पयेत् ॥ १४ ॥

किन्तु वह अमुक राजा विशेष पुरुषोंको खूब समझता है, तुम वहींपर
चले जाओ। इस प्रकार कहकर मानिवर्गके पुरुषोंको उसके स्वामीसे भिन्न करे।
॥ १४ ॥

तथेति प्रतिपन्नांस्तान्संहितान्पणकर्मणा।
योजयेत यथाशक्ति सापसर्पान्स्वकर्मसु ॥ १५ ॥

इस प्रकार अपने स्वामीसे भिन्न हो जाने वाले पुरुषोंको, सत्य शपथ
आदिके द्वारा उनसे सन्धि कर, गुप्त पुरुषों साथ २, उन्हें यथाशक्ति अपने २
कार्यों पर लगा देवे। अर्थात् जिन २ कार्यों पर वे पहिले राजाके पास लगे
हुए थे, उन्हीं कार्यों पर लगा देवे, परन्तु उनके साथ गुप्त पुरुषोंको अवश्य
रक्खे, जिससे उनकी प्रवृत्तिका पूरा २ पता लगता रहे ॥ १५ ॥

लभेत सामदानाभ्यां कृत्यांश्च परभूमिषु।
अकृत्यान्भेददण्डाभ्यां परदोषांश्च दर्शयेत् ॥ १६ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः
चतुर्दशो ऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस तरह शत्रुकी भूमिमें कृत्य पक्षके पुरुषोंको साम और दानके द्वारा
अपनी ओर मिलावे। परन्तु जो अकृत्य पक्षके पुरुष हों, उन्हें भेद और दण्ड
के द्वारा अपने वशमें करनेका प्रयत्न करे, और उनके सामने शत्रुके दोषोंको
बराबर दिखाता रहे, जिससे कि वे सरलतासे भिन्न हो सकें ॥ १६ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें चौदहवां अध्याय समाप्त।

पन्द्रहवां अध्याय ।

११ प्रकरण ।

मन्त्राधिकार

कृतस्वपक्षपरपक्षोपग्रहः कार्यारम्भांश्चिन्तयेत् ॥ १ ॥ मन्त्रपूर्वाः सर्वारम्भाः ॥ २ ॥

अपने देश और शत्रुके देशमें कृत्य तथा अकृत्य पुरुषोंको अपने अनुकूल बनानेके अनन्तर विजिगीषुको चाहिये कि वह अपने देशमें दुर्ग आदि तथा शत्रुके देशमें सन्धि विग्रह आदि कार्योंके प्रारम्भ करने की चिन्ता करे। ॥ १ ॥ सम्पूर्ण कार्योंका प्रारम्भ मन्त्र पूर्वकही किया जाता है। अर्थात् कार्य प्रारम्भ करनेके पूर्व उसका विचार करना अत्यन्त आवश्यक है ॥ २ ॥

तदुद्देशः संवृतः कथानामनिस्रावी पक्षिभिरप्यनालोक्यः स्यात् ॥ ३ ॥ श्रूयते हि शुकशारिकाभिर्मन्त्रो भिन्नः श्वभिरन्यैश्च तिर्यग्योनिभिः ॥ ४ ॥

जिस स्थान पर बैठकर मन्त्रणा की जाय, वह चारों ओरसे ढका हुआ होना चाहिये। आपसकी बातचीतका शब्द जिससे बाहर न जासके। तथा पक्षीभी जिसको न देख सकें ऐसा स्थान होना चाहिये ॥ ३ ॥ क्योंकि सुना जाता है पहिले कभी शुक (तोता) और सारिका (मैना) ने किसी राजाकी गुप्त मन्त्रणाको प्रकाशित कर दिया था। इसी प्रकार कुत्ते तथा अन्य पशु पक्षियों ने भी किया। इसलिये मन्त्रस्थानमें पशु पक्षियोंको भी न रहने देना चाहिये। ॥ ४ ॥

तस्मान्मन्त्रोद्देशमनायुक्तो नोपगच्छेत् ॥ ५ ॥ उच्छिद्येत मन्त्रभेदी ॥ ६ ॥ मन्त्रभेदो हि दूतामात्यस्वामिनामिङ्गिताकाराभ्याम् ॥ ७ ॥

इसलिये कोई भी व्यक्ति राजाकी आज्ञा बिना मन्त्रस्थानमें कदापि न आवे। अर्थात् जो २ पुरुष राजाकी आज्ञाके अनुसार विचार करनेके लिये नियुक्त हैं, वे ही वहां आवें, अन्य नहीं ॥ ५ ॥ यदि इनमें से ही कोई मनुष्य गुप्त विचारको प्रकाशित कर देवे, तो उसका सर्वथा उच्छेद कर देना चाहिये। ॥ ६ ॥ क्योंकि कभी २ बिना कहे भी, दूत, अमात्य तथा राजाकी चेष्टा और आकार आदिसे ही गुप्त भेद प्रकाशित हो जाता है ॥ ७ ॥

इङ्गितमन्यथावृत्तिः ॥ ८ ॥ आकृतिग्रहणमाकारः ॥ ९ ॥ तस्य संवरणमायुक्तपुरुषरक्षणमाकार्यकालादिति ॥ १० ॥

स्वाभाविक क्रियाओंसे भिन्न क्रियाओंका करना चेष्टा या इङ्गित कहाता है ॥ ८ ॥ शरीरकी स्वाभाविक परिस्थितिसे भिन्न, उन २ विशेष भावोंको बताने वाली मुखकी मलिनता आदि एक विशेष प्रकारकी अङ्गकी परिस्थितिका नाम ही आकार या आकृति है ॥ ९ ॥ विजिगीषुको आवश्यक है कि वह, जबतक किये हुए कार्यके प्रारम्भ करनेका ठीक समय न आजावे, तबतक अपने इङ्गित या आकारको दबाकर रक्खे, किसी तरह भी उन्हें प्रगट न होनेदे । और मन्त्राधिकारपर नियुक्त हुए २ दूत तथा अमात्य आदिकी भी बराबर रक्षा अर्थात् निगरानी करता रहे ॥ १० ॥

तेषां हि प्रमादमदसुप्तप्रलापकामादिरुत्सेकः ॥ ११ ॥ प्रच्छन्नो ऽवमतो वा मन्त्रं भिनत्ति ॥१२॥ तस्माद्रक्षेन्मन्त्रम् ॥१३॥

क्योंकि मन्त्रकार्यपर नियुक्त हुए २ पुरुषोंके प्रमाद (भिन्न २ कार्योंमें व्यग्र रहनेके कारण उत्पन्न हुई २ असावधानता), मद (मद्य आदि पीनेसे उत्पन्न हुआ २ चित्तविकार), सुप्तप्रलाप (सोते हुए पुरुषका बड़बड़ाना), और काम (विषय भोगकी अभिलाषा) आदि दोष तथा गर्व (अभिमान=घमंड) ये भाव एकान्त प्रदेशमें विचार किये हुए निर्णीत मन्त्रको उगल देते हैं, अर्थात् प्रकाशित करदेते हैं ॥ ११ ॥ इसी प्रकार भींत आदिके पीछे छिपकर मन्त्रको सुनने वाला, अथवा 'यह मूर्ख है' ऐसा कहकर तिरस्कार किया हुआ पुरुष भी छिपे मन्त्रको प्रकाशित करदेता है ॥ १२ ॥ इसलिये राजाको उचित है कि वह सावधानता पूर्वक प्रमाद आदिसे मन्त्रकी रक्षा करे ॥ १३ ॥

मन्त्रभेदो ह्ययोगक्षेमकरो राज्ञस्तदायुक्तपुरुषाणां च ॥१४॥ तस्माद्गुह्यमेको मन्त्रयेतेति भारद्वाजः ॥ १५ ॥ मन्त्रिणामपि हि मन्त्रिणो भवन्ति ॥ १६ ॥ तेषामप्यन्ये ॥ १७ ॥ सैषा मन्त्रिपरंपरा मन्त्रं भिनत्ति ॥ १८ ॥

क्योंकि मन्त्रका प्रकाशित होजाना, राजा तथा मन्त्राधिकारपर नियुक्त हुए २ पुरुषोंके योगक्षेमको नष्ट करने वाला होता है ॥ १४ ॥ इसलिये ऐसी गुह्य अर्थात् छिपी हुई बातोंका विचार, राजा अकेलाही करे; अर्थात् मन्त्रीको भी साथमें न लेवे, यह भारद्वाज आचार्यका मत है ॥ १५ ॥ मन्त्रियोंको भी इसलिये साथ न लेवे, क्योंकि यह देखा जाता है, कि प्रायः मन्त्रियोंके भी अपने २ अलग मन्त्री होते हैं, और वे उनसे जाकर वह मन्त्र

कह देता है ॥ १६ ॥ उनके भी फिर अपने और मन्त्री होते हैं ॥ १७ ॥ इसप्रकार इस मन्त्रिपरम्परामें पड़कर वह मन्त्र अवश्य ही प्रकाशित होजाता है ॥ १८ ॥

तस्मान्नास्य परे विद्युः कर्म किंचिच्चिकीर्षितम् ।
आरब्धारस्तु जानीयुरारब्धं कृतमेव वा ॥ १९ ॥

इसलिये इस विजिगीषुके किये जाने वाले कार्योंको कोई भी दूसरा न जान सके, ऐसा यत्न करना चाहिये । जिस समय उस कार्यका आरम्भ किया जाय, उसी समय केवल उस कार्यको आरम्भ करने वालेही जान सकें, यदि वे भी कार्यारम्भसे उसके परिणामको जाननेमें असमर्थ हों, तो उस कार्यका पता कार्यकी समाप्तिपर ही लोगोंको लगे ॥ १९ ॥

नैकस्य मन्त्रसिद्धिरस्तीति विशालाक्षः ॥ २० ॥ प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः ॥ २१ ॥

परन्तु विशालाक्ष आचार्य भारद्वाजके इस उपर्युक्त मतको ठीक नहीं समझता; वह कहता है कि एकही व्यक्तिका विचार किया हुआ मन्त्र कभी सिद्ध नहीं होसकता ॥ २० ॥ क्योंकि राजकार्य प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनोंही प्रकारके होते हैं । उनके पूरा करनेमें राजाको मन्त्री और पुरोहित आदिकी अवश्यही अपेक्षा होती है । प्रत्येक प्रकारके राजकार्यको, विना किसीकी अपेक्षा के राजा स्वयं नहीं करसकता ॥ २१ ॥

अनुपलब्धस्य ज्ञानमुपलब्धस्य निश्चयो निश्चितस्य बलाधानमर्थद्वैधस्य संशयच्छेदनमेकदेशदृष्टस्य शेषोपलब्धिरिति मन्त्रिसाध्यमेतत् ॥ २२ ॥ तस्माद्बुद्धिवृद्धैः सार्धमासीत मन्त्रम् ॥ २३ ॥

न जाने हुए कार्यका जानना, जाने हुए कार्यका निश्चय करना, निश्चित कार्यको दृढ़ करना, किसी कार्यमें सन्देह उत्पन्न हो जाने पर उस संशय का निवारण करना, कुछ जाने हुए कार्यके शेष भागकोभी जानना, ये सब कार्य मन्त्रियोंके द्वारा ही पूरे किये जासकते हैं ॥ २२ ॥ इसलिये विजिगीषु, अत्यन्त बुद्धिमान् और अनुभवी व्यक्तियोंके साथ बैठकर मन्त्रका विचार करे ॥ २३ ॥

न कंचिदवमन्येत सर्वस्य शृणुयान्मतम् ।
बालस्याप्यर्थवद्वाक्यमुपयुञ्जीत पण्डितः ॥ २४ ॥

किसीका तिरस्कार न करे, प्रत्येकके मतको अच्छी तरह सुने। यहां तक कि बालकके भी सारगर्भित वाक्यको, विचारशील राजा स्वीकार कर लेवे ॥ २४ ॥

एतन्मन्त्रज्ञानं नैतन्मन्त्ररक्षणमिति पाराशराः ॥ २५ ॥ यदस्य कार्यमभिप्रेतं तत्प्रतिरूपकं मन्त्रिणः पृच्छेत् ॥ २६ ॥

पराशर मतानुयायी आचार्य विशालाक्षके इस उपर्युक्त मतको भी स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि जो कुछ विशालाक्षने कहा है, उससे केवल मन्त्रका ज्ञान हो सकता है मन्त्रकी रक्षा नहीं हो सकती ॥२५॥ इसलिये राजा को जो कार्य अभिप्रेत, हो उसके समान ही किसी दूसरे कार्यके सम्बन्धमें मन्त्रियों से पूछे ॥ २६ ॥

कार्यमिदमेवमासीदेवं वा यदि भवेत्तत्कथं कर्तव्यमिति ॥ २७ ॥ ते यथा ब्रूयुस्तत्कुर्यात् ॥ २८ ॥ एवं मन्त्रोपलब्धिः संवृतिश्च भवतीति ॥ २९ ॥

पूछनेका प्रकार यह है, किसी ऐतिहासिक घटनाको सामने रखकर कहे, कि यह कार्य पहिले इसप्रकार किया गया था, यदि यह इसप्रकारसे करना होता, तो कैसे करना चाहिये था ॥ २७ ॥ इस विषयमें मन्त्री जो कुछ कहें, उसहीके अनुसार अपना कार्य करे ॥ २८ ॥ ऐसा करनेसे मन्त्रका ज्ञान भी होजाता है, और मन्त्रकी रक्षा भी रहती है ॥ २९ ॥

नेति पिशुनः ॥ ३० ॥ मन्त्रिणो हि व्यवहितमर्थं वृत्तमवृत्तं वा पृष्टमनादरेण ब्रुवन्ति प्रकाशयन्ति वा ॥ ३१ ॥

परन्तु पिशुन (नारद) आचार्य पराशरके इस मतको ग्राह्य नहीं समझता ॥ ३० ॥ क्योंकि इसतरह प्रकारान्तरसे मन्त्रियोंके सम्मुख किसी बातके पूछे जानेपर, वे यही समझते हैं कि हमारे द्वारा किये जाने वाले कार्योंमें भी राजा हमपर विश्वास नहीं रखता। इसलिये वे व्यवहित, पहिले हुई २ या न हुई २ घटनाके विषयमें पूछेजानेपर अनादरसे अर्थात् उपेक्षा पूर्वकही उत्तर देते हैं। और उस मन्त्रको प्रकाशित भी करदेते हैं ॥ ३१ ॥

स दोषः ॥३२॥ तस्मात्कर्मसु येषु येऽभिप्रेतास्तैः सह मन्त्रयेत् ॥३३॥ तैर्मन्त्रयमाणो हि मन्त्रबुद्धिं गुप्तिं च लभत इति ॥३४॥

यह मन्त्रके लिये एक दोष है ॥ ३२ ॥ इसलिये राजाको उचित है, कि जो पुरुष जिन २ कार्योंपर नियुक्त किये हुए हैं, तथा विचार करनेके लिये राजाको अभिमत भी हैं, उन्हीं पुरुषोंके साथ राजा मन्त्रणा करे ॥३३॥ क्योंकि

नके साथ गुप्त मन्त्रोंको विचारता हुआ राजा मन्त्र-बुद्धिको भी प्राप्त करता है, और मन्त्रकी रक्षा भी अच्छी तरह कर सकता है ॥ ३४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३५ ॥ अनवस्था ह्येषा ॥ ३६ ॥ मन्त्रिभिस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा सह मन्त्रयेत् ॥ ३७ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य वातव्याधिके भी इस मतको ठीक नहीं समझता ॥ ३५ ॥ क्योंकि वह कहता है कि यह वातव्याधि आचार्यने जो कुछ ऊपर कहा है, इसके अनुसार मन्त्र कभी व्यवस्थित नहीं होसकता । राजकार्य बहुत प्रकारके होते हैं, उन कार्योंपर पृथक् २ नियुक्त हुए २ अधिकारी भी बहुत होते हैं, प्रत्येकके साथ विचार करनेपर कभी मन्त्रकी व्यवस्था नहीं होसकती ॥ ३६ ॥ इसलिये इसी कार्यपर नियुक्त हुए २ तीन या चार मन्त्रियोंके साथ मिलकर ही मन्त्रणा करनी चाहिये ॥ ३७ ॥

मन्त्रयमाणो ह्येकेनार्थकृच्छ्रेषु निश्चयं नाधिगच्छेत् ॥ ३८ ॥ एकश्च मन्त्री यथेष्टमनवग्रहश्चरति ॥ ३९ ॥ द्वाभ्यां मन्त्रयमाणो द्वाभ्यां संहताभ्यामवगृह्यते ॥ ४० ॥

क्योंकि एकही मन्त्रीके साथ मन्त्रणा करता हुआ राजा, कठिनतामें निश्चय करने योग्य कार्योंके आपड़नेपर अर्थोंका निश्चय नहीं कर सकता ॥ ३८ ॥ और अकेले मन्त्री अपनी इच्छाके अनुसार राजाका प्रतिद्वन्द्वी बनकर प्रत्येक कार्यको करलेता है ॥ ३९ ॥ यदि केवल दो मन्त्रियोंकेही साथ राजा विचार करता है, तो यह बहुत सम्भव है कि वे दोनों आपसमें मिलकर राजाको अपने वशमें करलें ॥ ४० ॥

विगृहीताभ्यां विनाश्यते ॥ ४१ ॥ त्रिषु चतुर्षु वा नैकान्तं कृच्छ्रेणोपपद्यते महादोषम् ॥ ४२ ॥ उपपन्नंतु भवति ॥ ४३ ॥

अथवा यदि आपसमें उनका झगड़ा हो जाय, तो कार्यका ही सर्वथा नाश हो जाय । क्योंकि वे दोनों ही आपसमें झगड़ा करके मंत्रको फोड़ दें, या कार्यको उचित रीतिपर, झगड़ेके कारण, करें ही नहीं ॥ ४१ ॥ परन्तु तीन या चार मन्त्रियोंके सलाहकार होनेपर, इस प्रकारका कोई भी अनर्थकारी महानदोष कदापि उत्पन्न नहीं हो सकता । यदि किसी तरह हो भी जावे तो कठिनतासे ही होता है, अचानक नहीं ॥ ४२ ॥ फिर भी कार्यमें कोई बाधा नहीं पड़ती । वह ठीक तौरपर होता ही रहता है ॥ ४३ ॥

ततः परेषु कृच्छ्रेणार्थनिश्चयो गम्यते ॥ ४४ ॥ मन्त्रो-,

रक्ष्यते ॥ ४५ ॥ देशकालकार्यवशेन त्वेकेन सह द्वाभ्यामेको वा यथा सामर्थ्यं मन्त्रयेत ॥ ४६ ॥

यदि प्रारम्भे अधिक मंत्री हो जाय, तो फिर कार्यका निश्चय कठिनता से ही होता है। क्योंकि बहुतसे व्यक्तियोंकी सम्मति भिन्न २ होनेपर निर्णय करना कठिन हो जाता है ॥ ४४ ॥ तथा मन्त्रकी रक्षा करना भी कठिन होता है। क्योंकि मन्त्रका बहुत आदमियोंको पता होनेपर उसके फूट जानेकी अधिक सम्भावना रहती है ॥ ४५ ॥ देश, काल और कार्यके अनुसार, एक या दो मन्त्रियोंके साथभी राजा मन्त्रणा करे। सामर्थ्यके अनुसार स्वयं अकेला भी किसी कार्यका विचारकर निर्णय कर सकता है ॥ ४६ ॥

कर्मणामारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसंपद्देशकालविभागो विनिपातप्रतीकारः कार्यसिद्धिरिति पञ्चाङ्गो मन्त्रः ॥४७॥ तानेकैकशः पृच्छेत् समस्तांश्च ॥ ४८ ॥

मन्त्रके पांच अङ्ग होते हैं—(१)—कार्योंके प्रारम्भ करनेका उपाय (अपने देशमें खाई परकोटा आदिक द्वारा दुर्ग आदि बनाना, तथा दूसरेके देशमें सन्धि विग्रह आदिके लिये दूत आदिका भेजना ये कार्य कहाते हैं; इनके प्रारम्भ करनेका साधन या प्रकार; यह मन्त्रका पहिला अङ्ग है। इसी प्रकार), (२)—पुरुष और द्रव्य सम्पत्ति (पुरुष अपने देशमें, दुर्ग आदि बनानेमें अत्यन्त चतुर बढ़ई लुहार आदि और द्रव्य लकड़ी पत्थर आदि; दूसरेके देशमें पुरुष, सन्धि आदि करनेमें कुशल दूत तथा सेनापति आदि और द्रव्य रत्न सुवर्ण आदि), (३)—देश और कालका विभाग (अपने देशमें, देश दुर्ग आदिके बनानेके लिये जनपदके बीचमें अथवा जलके किनारे परका कोई उपयोगी प्रदेश, और काल सुभिक्ष दुर्भिक्ष तथा वर्षा आदि; दूसरेके देशमें, देश, सन्धि आदि करनेपर कोई उपजाऊ प्रदेश, और काल आक्रमण करने या न करनेकी अवस्था, कहाता है। इनका विभाग अर्थात् विवेचन करना मन्त्रका तीसरा अङ्ग है), (४)—विनिपात प्रतीकार (अपने दुर्ग आदिपर आने वाले या आये हुए विघ्नोंका प्रतीकार करना चौथा अङ्ग), तथा (५)—कार्य सिद्धि (उन्नति अवनति और सम अवस्था ये तीन प्रकारकी ही सिद्धि अर्थात् किसी कार्यके फल निकल सकते हैं; अर्थात् उपर्युक्त प्रकारसे कार्य करनेपर अपनी उन्नति, शत्रुकी अवनति, अथवा दोनोंकी सम अवस्थाका होनाही कार्यसिद्धि कहाजाता है।) इसप्रकार मन्त्रके ये पांच अङ्ग होते हैं ॥ ४७ ॥ इसतरह मन्त्रके विषयमें राजा पृथक् २ एक २ मन्त्रीको बुलाकर भी पूछ सकता है, अथवा सभामें समस्त मन्त्रियोंको बुलाकर पूछ सकता है कि इस कार्यको [illegible] किया जाय ॥ ४८ ॥

हेतुभिरर्थानां मतिप्रविवेकात् विद्यात् ॥ ४९ ॥ अवाप्तार्थः कालं नातिक्रामयेत् ॥ ५० ॥

युक्ति पूर्वक इनके भिन्न २ अभिप्रायोंको समझे। (किसी २ पुस्तकमें "हेतुभिरर्थैकैकं मतं प्रविशेद् विद्वान्" इस प्रकारका सूत्र पाठ है। उसका अर्थ इस तरह करना चाहिये:—'विचारशील राजा प्रत्येकके मतको समझे'। अर्थ दोनों पाठोंमें एकही है) ॥ ४९ ॥ अर्थका निश्चय करके उसको शीघ्रही कार्यमें परिणत करनेका यत्न करे। समयको व्यर्थ बिता देना अच्छा नहीं होता ॥ ५० ॥

न दीर्घकालं मन्त्रयेत ॥ ५१ ॥ न च तेषां पक्ष्यैर्येषामपकुर्यात् ॥ ५२ ॥

किसी एक कार्यको बहुत समय तक विचारते जाना भी अच्छा नहीं होता। तात्पर्य यह है, जो कुछ करना हो, उसे शीघ्र विचार पूर्वक निश्चय करके आरम्भ कर देना चाहिये। बहुत विचारनेही सहलेमें मन्त्र फूट जाता है, और कार्य पूरा नहीं होता ॥ ५१ ॥ जिन पुरुषोंका कभी कुछ अपकार किया हो, ऐसे पुरुषोंके साथ या इनके पक्षको मानने वाले पुरुषोंके साथभी कभी मन्त्रणा न करनी चाहिये। क्योंकि ऐसे पुरुष कभी मन्त्रको गुप्त नहीं रख सकते। (५१ और ५२ इन दो सूत्रोंके स्थान पर किसी २ पुस्तकमें एकही सूत्र है, वह कुछ पाठ भेद से इस प्रकार है:—'न दीर्घकालं मन्त्रयेत च तेषां च रक्षेद्येषामपकुर्यात्"। अर्थ इस प्रकार है:—'दीर्घकाल तक मन्त्रणा न करे, और उन लोगोंसे मन्त्रकी रक्षा करे, जिनका पहिले कभी कुछ अपकार कर चुका हो।' अभिप्राय दोनों पाठोंमें समान ही है।) ॥ ५२ ॥

मन्त्रिपरिषदं द्वादशामात्यान्कुर्वीतेति मानवाः ॥ ५३ ॥ षोडशेति बार्हस्पत्याः ॥ ५४ ॥ विंशतिमित्यौशनसाः ॥ ५५ ॥

मनुके अनुयायी कहते हैं कि एक मन्त्रिपरिषद्में बारह अमात्योंको नियुक्त करे। अर्थात् बारह अमात्योंकी मन्त्रिपरिषद् होनी चाहिये ॥ ५३ ॥ बृहस्पतिके अनुयायी कहते हैं कि एक मन्त्रिपरिषद्में सोलह अमात्य होने चाहियें ॥ ५४ ॥ उशना (शुक्र) आचार्यके अनुयायियोंका सिद्धान्त है कि बीस अमात्यों की एक मन्त्रिपरिषद् होनी चाहिये ॥ ५५ ॥

यथासामर्थ्यमिति कौटल्यः ॥ ५६ ॥ ते ह्यस्य स्वपक्षं परपक्षं च चिन्तयेयुः ॥ ५७ ॥ अकृतारम्भमारब्धानुष्ठानमनुष्ठितविशेषं नियोगसंपदं च कर्मणां कुर्युः ॥ ५८ ॥

परन्तु कौटल्य कहता है कि कार्य करने वाले पुरुषोंके सामर्थ्यके अनुसारही उनकी संख्या नियत होनी चाहिये ॥ ५६ ॥ उतनेही पुरुष, विजिगीषुके अपने पक्ष और परपक्षका विचार करें ॥ ५७ ॥ और जो कार्य अभीतक प्रारम्भ न किये गये हों उनका प्रारम्भ करावें; प्रारम्भ किये हुए कार्योंको पूरा करावें, जो कार्य पूरे होचुके हों उनमें और कुछ विशेषता (सफेदी कराना, तरह २ की चित्रकारी कराना आदि) करानी हों, तो वह भी करावें । तात्पर्य यह है, कि जिस २ तरहके भी कार्य हों, उन २ विभागोंके कार्यकर्त्ता अपने कार्योंको अन्त तक बहुत अच्छी तरह करवावें ॥ ५८ ॥

आसन्नैः सह कार्याणि पश्येत्, अनासन्नैः सह पत्त्रसंप्रेषणेन मन्त्रयेत ॥ ५९ ॥

जो मन्त्री राजाके समीपही रहते हों, राजा उनके साथ मिलकर कार्यों-को देखे । परन्तु जो दूर रहते हों, उनके पास लिखित पत्र आदि भेजकर कार्य-का निश्चय करे ॥ ५९ ॥

इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषदृषीणां सहस्रम् ॥ ६० ॥ स तच्चक्षुः ॥ ६१ ॥ तस्मादिमं द्व्यक्षं सहस्राक्षमाहुः ॥ ६२ ॥

इन्द्रकी मन्त्रिपरिषद्में एक हज़ार ऋषि थे ॥ ६० ॥ वे ही कार्योंके दिखाने वाले होनेके कारण इन्द्रके चक्षुके समान थे ॥ ६१ ॥ इसलिये इस दो आंखवाले इन्द्रको भी सहस्राक्ष (हज़ार आंखवाला) कहाजाता है । इसीप्रकार प्रत्येक राजाको अपनी मन्त्रिपरिषद्में सामर्थ्यानुसार अनेक मन्त्रियोंको नियुक्त करना चाहिये ॥ ६२ ॥

आत्ययिके कार्ये मन्त्रिणो मन्त्रिपरिषदं चाहूय ब्रूयात् ॥ ६३ ॥ तत्र यद्भूयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुस्तत्कुर्यात् ॥ ६४ ॥

जब कोई कठिन समस्या आपड़े, या प्राणों तकका भय हो, तो मन्त्रियों और मन्त्रिपरिषद्को बुलाकर राजा उनसे सब कुछ कहे, और उनकी सम्मति लेवे ॥ ६३ ॥ उनमेंसे अधिक मन्त्री जिस बातको कहें, अथवा जिस उपायको शीघ्रही कार्यकी सिद्धि कराने वाला बतावें, राजाको चाहिये कि उसही उपायका अनुष्ठान करे ॥ ६४ ॥

कुर्वतश्चः—

नास्य गुह्यं परे विद्युः छिद्रं विद्यात्परस्य च ।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि यत्स्याद्विवृतमात्मनः ॥ ६५ ॥

इसप्रकार अपने कार्योंको करते हुए राजाके गुप्त मन्त्रोंको कोई दूसरे पुरुष नहीं जान सकते, प्रत्युत वह दूसरोंके दोषोंको जान लेता है। जिसप्रकार कछुवा अपने अङ्गोंको संकुचित करके रखता है, उन्हें फैलने नहीं देता, इसीप्रकार राजाको चाहिये कि अपने आन्तरिक भावोंको फैलने न देवे। यत्न पूर्वक उनको छिपाकर रक्खे ॥ ६५ ॥

यथा ह्यश्रोत्रियः श्राद्धं न सतां भोक्तुमर्हति ।
एवमश्रुतशास्त्रार्थो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥ ६६ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे अधिकरणे मन्त्राधिकारः पञ्चदशो ऽध्यायः ॥ १५ ॥

जिसप्रकार वेद न पढ़ने वाला ब्राह्मण, श्रेष्ठ पुरुषोंके यहां श्राद्ध नहीं खासकता, इसीप्रकार जिसने शास्त्रके अभिप्रायको नहीं सुना या जाना है, वह मन्त्रको नहीं सुन सकता। अर्थात् राजनीति शास्त्र आदिमें अत्यन्त निपुण विद्वानोंको ही मन्त्राधिकारपर नियुक्त करना चाहिये ॥ ६६ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ।

सोलहवां अध्याय ।

१२ प्रकरण ।

दूतप्रणिधि ।

उद्धृतमन्त्रो दूतप्रणिधिः ॥ १ ॥ अमात्यसंपदोपेतो निसृष्टार्थः ॥ २ ॥ पादगुणहीनः परिमितार्थः ॥ ३ ॥ अर्धगुणहीनः शासनहरः ॥ ४ ॥

मन्त्रके निश्चित होजानेपर ही दूतको भेजना चाहिये ॥ १ ॥ दूत तीन प्रकारके होते हैं—निसृष्टार्थ, परिमितार्थ और शासनहर। अमात्यके जो गुण पहिले बतलाये गये हैं, वे सम्पूर्ण गुण जिसमें हों वह निसृष्टार्थ नामक दूत कहाता है। उन गुणोंमेंसे चौथाई गुण जिसमें कम हों वह परिमितार्थ, और जिसमें आधे कम हों वह शासनहर कहाजाता है ॥ २,३,४ ॥

सुप्रतिविहितयानवाहनपुरुषपरिवापः प्रतिष्ठेत ॥ ५ ॥ शासनमेवं वाच्यः परः, स वक्ष्यत्येवं, तस्येदं प्रतिवाक्यमेवमतिसंधातव्यमित्यधीयानो गच्छेत् ॥ ६ ॥

पालकी आदि सवारी, घोड़े आदि वाहन, नौकर चाकर और सोने बिछाने आदिके सामानका अच्छीतरह प्रबन्ध करकेही, दूतको शत्रुके देशकी ओर जाना

चाहिये ॥ ५ अपने स्वामीका सन्देश शत्रुसे इसप्रकार कहना चाहिये, वह इसका इसतरह उत्तर देगा, मुझे उसका इसप्रकार प्रत्युत्तर देना चाहिये, और अमुक २ प्रकारोंसे उसे वशमें करना चाहिये, इत्यादि बातोंका विचार करता हुआ ही दूत शत्रुके देशकी ओर जावे ॥ ६ ॥

अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेत् ॥ ७ ॥ अनीकस्थानयुद्धप्रतिग्रहापसारभूमीरात्मनः परस्य चावेक्षेत ॥ ८ ॥

आटविक, अन्तपाल (सीमारक्षक), नगर तथा राष्ट्र में निवास करने वाले अन्य मुख्य २ व्यक्तियोंसे मित्रता उत्पन्न करे ॥ ७ ॥ अपनी और शत्रुकी, सेनाओंके ठहरनेके लिये युद्धयोग्य भूमि तथा अवसर आनेपर भाग जासकने योग्यभी भूमियोंका निरीक्षण करे ॥ ८ ॥

दुर्गराष्ट्रप्रमाणं सारवृत्तिगुप्तिच्छिद्राणि चोपलभेत ॥ ९ ॥

और इस बातका जानना भी आवश्यक है, कि दुर्ग कितने हैं, राज्यकी लम्बाई चौड़ाई कितनी है, किस २ विभागसे कितनी २ आमदनी है, धान्य या सुवर्ण आदिकी उत्पत्ति कैसी होती है, सर्वसाधारण लोगोंकी जीविका क्या है, राष्ट्रकी रक्षा किस प्रकार कीजाती है, और शत्रुके अन्दर क्या २ दोष हैं। इत्यादि सबही बातोंका दूतको पता लगाना चाहिये ॥ ९ ॥

पराधिष्ठानमनुज्ञातः प्रविशेत ॥ १० ॥ शासनं च यथोक्तं ब्रूयात् ॥ ११ ॥ प्राणाबाधे ऽपि दृष्टे ॥ १२ ॥

शत्रुके स्थानमें उसकी स्वीकृति लेकरही प्रवेश करे ॥ १० ॥ प्राणोंका भय उपस्थित होनेपर भी, अपने स्वामीके सन्देशको ठीक २ कहे ॥ ११-१२ ॥

परस्य वाचि वक्त्रे दृष्ट्यां च प्रसादं वाक्यपूजनमिष्टपरिप्रश्नं गुणकथासङ्गमासन्नमासनं सत्कारमिष्टेषु स्मरणं विश्वासगमनं च लक्षयेत्तुष्टस्य ॥ १३ ॥

यदि शत्रुकी वाणीमें मुखमें, और दृष्टिमें प्रसन्नता देखे, अपने (दूतके) कथनका सत्कार, अपनी इच्छानुसार प्रश्न करना या अपना अभीष्ट (जैसा प्रश्न किया जाना दूत चाहता है, वैसाही) प्रश्न करना, अपने स्वामीका (दूतके स्वामीका) कुशल प्रश्न पूछना, उसके गुणोंका वर्णन किये जानेपर उसे ध्यान पूर्वक सुनना, अपने समीपही बैठनेके लिये आसन देना, सत्कार करना, विशेष उत्सव आदिमें दूतको याद करना, और दूतके कार्योंपर विश्वास करना, इत्यादि बातोंको शत्रुमें देखे, तो दूतको समझ लेना चाहिये कि शत्रु मुझपर प्रसन्न है ॥ १३ ॥

विपरीतमतुष्टस्य ॥ १४ ॥ न ब्रूयात् ॥ १५ ॥ दूतमुखा वै राजानस्त्वं चान्ये च ॥ १६ ॥

इससे विपरीत भाव होनेपर उसको अपनेमें अप्रसन्न समझे ॥ १४ ॥ दूत उसको (अप्रसन्न हुए शत्रुको) कहे, कि ॥ १५ ॥ आप और दूसरे सबही राजाजन दूत मुखही होते हैं ; अर्थात् दूतही उनके मुख होते हैं, वे उन्हींके द्वारा अपनी सब बातोंको एक दूसरेको सुनाते हैं ॥ १६ ॥

तस्मादुद्यतेष्वपि शस्त्रेषु यथोक्तं वक्तारस्तेषामन्तावसायिनोऽप्यवध्याः ॥ १७ ॥ किमङ्ग पुनर्ब्राह्मणाः ॥ १८ ॥ परस्यैतद्वाक्यमेष दूतधर्म इति ॥ १९ ॥

इसलिये उन्हें वध करनेके लिये शस्त्र उठाये जानेपर भी, वे (दूत) ठीक २ बातको कहने वालेही होते हैं । उनमें यदि कोई चाण्डाल भी इस कार्यको करने वाला हो, तो वहभी अवध्यही होता है । फिर ब्राह्मणका तो कहना ही क्या ? । अर्थात् दूतका कार्य करने वाला चाहे नीच चाण्डाल भी हो, वह भी वध्य नहीं होता ॥ १७–१८ ॥ क्योंकि जो कुछ वे कहते हैं, वह उनका वाक्य नहीं होता, किन्तु दूसरेका ही होता है । यहांतक दूतधर्मका निरूपण किया गया ॥ १९ ॥

वसेदविसृष्टः प्रपूजया नोत्सिक्तः ॥ २० ॥ परेषु बलित्वं न मन्येत ॥ २१ ॥ वाक्यमनिष्टं सहेत ॥ २२ ॥ स्त्रियः पानं च वर्जयेत् ॥ २३ ॥ एकः शयीत ॥ २४ ॥

जबतक शत्रु राजा उसे जानेकी आज्ञा न दे, तबतक वहीं निवास करे; शत्रुके द्वारा किये गये सत्कारसे गर्वित न होजावे ॥ २० ॥ शत्रुओंके बीचमें रहते हुए अपने आपको बहुत बलवान न समझे ॥ २१ ॥ यदि कोई बुरा वाक्य भी अपनेसे कहदे, तो उसे सहन करले ॥ २२ ॥ स्त्रीसंग तथा मद्य आदिका पीना सर्वथा छोड़ देवे ॥ २३ ॥ अपने स्थानमें अकेलाही शयन करे ॥ २४ ॥

सुप्तमत्तयोर्हि भावज्ञानं दृष्टम् ॥ २५ ॥

क्योंकि मद्य आदि पीनेसे आदमी पागल होजाता है और अपनी गुप्त बातोंको भी उगल देता है । इसीतरह सोते समय कभी २ आदमी अपने हार्दिक भावोंके अनुसार बड़बड़ाने लगता है, यदि वहां कोई दूसरा आदमी होवे, तो गुप्त रहस्योंको जान जाता है । इसलिये दूतको मद्य पीना और किसीके साथ सोना अत्यन्त वर्जित है ॥ २५ ॥

रन्ध्रं च प्रकृतीनां तापसवैदेहकव्यञ्जनाभ्यामुपलभेत ॥ २६ ॥

शत्रुके देशके कृत्यपक्ष (देखो–अधि. १, अध्या. १४) को शत्रुसे भिन्न करदेनेका कार्य, अकृत्य पक्षमें गूढपुरुषों (तीक्ष्ण, रसद आदि) का प्रयोग, अमात्य आदि प्रकृतियोंका राजामें अनुराग या अपराग तथा राजाके दोषोंको, तापस और वैदेहक (व्यापारी) के वेषमें वहां रहने वाले अपने गुप्तचरोंके द्वारा जाने ॥ २६ ॥

तयोरन्तेवासिभिश्चिकित्सकपाषण्डव्यञ्जनोभयवेतनैर्वा ॥२७॥
तेषामसंभाषायां याचकमत्तोन्मत्तसुप्तप्रलापैः ॥ २८ ॥

अथवा तापस और वैदेहकके शिष्योंके द्वारा, या चिकित्सक तथा पाषंड के वेशमें रहनेवाले गुप्तचरोंके द्वारा अथवा उभयवेतन गुप्त पुरुषोंके द्वारा, शत्रु के सब कार्योंका पता लगावे ॥ २७ ॥ यदि इन लोगोंके साथभी बातचीत करनेका अवसर न मिलसके, तो भिक्षुक, मत्त, उन्मत्त तथा सुप्तप्रलापोंके द्वारा जितनाभी मालूम होसके शत्रुके कार्योंका पता लगावे ॥ २८ ॥

पुण्यस्थानदेवगृहचित्रलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारमुपलभेत ॥२९॥
उपलब्धस्योपजापमुपेयात् ॥ ३० ॥

नदीतट आदिक पवित्र तीर्थ स्थानों, देवालयों, घरके चित्रों तथा अन्य लिखित इशारोंके द्वारा, वहांके समचार जाने ॥ २९ ॥ ठीक २ समाचारोंके मालूम हो जाने पर, उनके अनुसार यथावश्यक भेद रूप उपाय का प्रयोग करे ॥ ३० ॥

परेण चाप्तः स्वासां प्रकृतीनां परिमाणं नाचक्षीत ॥ ३१ ॥
सर्वं वेद भवानिति ब्रूयात् ॥ ३२ ॥ कार्यसिद्धिकरं वा ॥ ३३ ॥

शत्रुके पूछनेपर भी, अपनी अमात्य आदि प्रकृतियोंकी ठीक २ अवस्था को न बतावे ॥ ३१ ॥ केवल इतना कहदे कि, आप सब कुछ जानते ही हैं, मैं आपके सामने और अधिक क्या कह सकता हूं ॥ ३२ ॥ यदि इतने उत्तरसे शत्रु सन्तुष्ट न होवे, तो अपने अमात्य आदिकी उतनी ही हालत बतला देवे, जितनीसे कि अपनी कार्य सिद्धि होजाय। अर्थात् जिससे अपने कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित न हो ॥ ३३ ॥

कार्यस्यासिद्धावुपरुध्यमानस्तर्कयेत् ॥ ३४ ॥ किं भर्तुर्मे

॥ ३६ ॥ पार्ष्णिग्राहमासारं वास्य कोपमाटविकं वा समुत्थापयितुकामः ॥ ३७ ॥ मित्रमाक्रन्दं वा व्यापादयितुकामः ॥ ३८ ॥ स्वं वा परतो विग्रहमन्तःकोपमाटविकं वा प्रतिकर्तुकामः ॥३९॥ संसिद्धं मे भर्तुर्यात्राकालमभिहन्तुकामः सस्यकुप्यपण्यसंग्रहं दुर्गकर्म बलसमुत्थानं वा कर्तुकामः ॥ ४० ॥ स्वसैन्यानां वा व्यायामदेशकालावाकांक्षमाणः ॥४१॥ परिभवप्रमदाभ्यां वा ॥४२॥ संसर्गानुबन्धार्थी वा ॥ ४३ ॥ मामुपरुणद्धीति ॥ ४४ ॥

कार्यके सिद्ध होजानपर यदि शत्रु राजा दूत को अपने यहां ही रोकलेता है, अर्थात् उसे अपने देशमें चलेजाने की अभी अनुमति नहीं देता, तो दूतको विचारना चाहिये, कि यह मुझे क्यों रोक रहा है ॥ ३४ ॥ क्या इसने मेरे स्वामीपर, समीपमें ही आनेवाली किसी विपत्तिको जान लिया है?॥३५॥ या मेरे जानेसे पहिले २ अपने किसी व्यसनका प्रतीकार करना चाहता है ॥३६॥ अथवा पार्ष्णिग्राह (अपने स्वामीका शत्रु, अर्थात् शत्रु राजाका मित्रभूत) और आसार (पार्ष्णिग्राहका मित्र, अर्थात् शत्रुके मित्रका मित्र, इन) को मेरे स्वामी के साथ युद्ध करनेके लिये उभारना चाहता है। या मेरे स्वामीके अमात्य आदिको उससे कुपित कराना चाहता है, या किसी आटविकको लड़ानेके लिये तैयार करना चाहता है ॥ ३७ ॥ अथवा मित्र (विजिगीषुके सामने की ओरका मित्र) और आक्रन्द (विजिगीषुके पीछेकी ओरका मित्र। यह आगे पीछेकी कल्पना, शत्रुके देशको आगे समझकर उसीके अनुसार करनी चाहिये) को मारना चाहता है। (किसी पुस्तकमें 'मित्रमाक्रन्दाभ्यां' इस तरहका भी पाठ है, उसका अर्थ इस प्रकार करना चाहिये:—अथवा आक्रन्दोंके द्वारा मित्रको मरवाना चाहता है) ॥ ३८ ॥ अथवा दूसरोंसे अपने ऊपर किये हुए आक्रमणका अपने अन्तः कोप (अमात्य आदि अपनी प्रकृतियोंके कोप) का, या अपने आटविकका प्रतीकार करना चाहता है ॥ ३९ ॥ अथवा मेरे स्वामीके, इसपर, इस उचित आक्रमणके समय को टालना चाहता है, या इसमें रुकावट डालना चाहता है। अथवा अपने धान्य, लोहा ताँबा, तथा इसी प्रकारकी अन्य आवश्यक वस्तुओंका संग्रह, दुर्ग आदि बनवाना, तथा सेनाओंका संग्रह करना चाहता है ॥ ४० ॥ अथवा अपनी सेनाओंकी कवायद, तथा उनकी स्थितिके लिये उचित देश और कालकी आकांक्षा कर रहा है ॥ ४१ ॥ अथवा किसी प्रकारके तिरस्कार, या सहवासकी प्रीतिके कारण ॥ ४२ ॥ अथवा विवाह आदि किसी सम्बन्धके निमित्त, या मेरे विषयमें किसी प्रकारका दोष उत्पन्न करनेके

निमित्त ॥ ४३ ॥ मुझे रोक रहा है । दूत अपने रोके जानेके इन सब उपर्युक्त कारणोंका अच्छी तरह विचार करे ॥ ४४ ॥

ज्ञात्वा वसेदपसरेद्वा ॥४५॥ प्रयोजनमिष्टमवेक्षेत वा ॥४६॥ शासनमनिष्टमुक्त्वा बन्धवधभयादविसृष्टो व्यपगच्छेत् ॥ ४७ ॥ अन्यथा नियम्येत ॥ ४८ ॥

जब ठीक २ रोकनेके कारणका पता लग जावे, तो उसके अनुसार अपनी अनुकूलता देखकर वहीं निवास करे, अथवा प्रतीकूल होने पर वहांसे चलाजावे ॥४५॥ अथवा अपने स्वामीके किसी अभीष्ट प्रयोजनका विचार करता हुआ, शत्रुके नगरमें ही रहे, और गूढ़ पुरुषोंके द्वारा अपने सब समाचारोंको राजातक पहुंचाकर, राजाके द्वारा ही इन सब बातोंका प्रतीकार करावे ॥४६॥ शत्रु राजाको सर्वथा अप्रसन्न करदेनेवाले, अपने (मालिकके) सन्देश को सुना कर, दूत, अपने पकड़ेजाने, या मारे जानेके भयसे शत्रु राजाकी अनुमतिके बिनाही वहांसे चला जावे ॥ ४७ ॥ ऐसा न करनेपर, दूत पकड़ लिया जाता है ॥ ४८ ॥

प्रेषणं संधिपालत्वं प्रतापो मित्रसंग्रहः ।
उपजापः सुहृद्भेदो गूढदण्डातिसारणम् ॥ ४९ ॥

शत्रुके देशमें अपना सन्देश सुनाने और शत्रुका सन्देश सुननेके लिये भेजना, पहिलो कीहुई सन्धिकी रक्षा करना, अवसर आनेपर अपने प्रतापका प्रकाशन करना, मित्रोंका संग्रह करना, शत्रुके कृत्यपक्षके पुरुषोंमें भेद डालना, शत्रुके मित्रोंको उससे भिन्न करना, तीक्ष्ण, रसद आदि गूढपुरुषों तथा सेनाका भगा देना ॥ ४९ ॥

बन्धुरत्नापहरणं चारज्ञानं पराक्रमः ।
समाधिमोक्षो दूतस्य कर्म योगस्य चाश्रयः ॥ ५० ॥

बन्धु (अर्थात् शत्रुके) तथा रत्नोंका अपहरण करना, अर्थात् उन्हें अपने अधीन करना, शत्रुके देशमें रहते हुए गुप्तचरोंके कार्योंको ठीक २ जानना, अवसर आनेपर पराक्रम दिखाना, सन्धिकी दृढ़ताके लिये आधि (जमानत) रूपमें रक्खे हुए राजकुमार आदिका छुड़ाना, औपनिषदिक प्रकरणमें बताये हुए मारण आदिका प्रयोग करना, ये सब दूतके कर्म हैं ॥ ५० ॥

स्वदूतैः कारयेदेतत्परदूतांश्च रक्षयेत् ।
प्रतिदूतापसर्पाभ्यां दृश्यादृश्यैश्च रक्षिभिः । ५१

राजाको उचित है कि इन सब उपर्युक्त कार्योंको अपने दूतोंसे करवावे। और शत्रुके दूतोंके पीछे अपने और दूत लगादेवे, अथवा गूढपुरुषोंको लगादेवे। अपने देशमें तो वे उस दूतके प्रत्येक कार्यका प्रकट रूपमें रहते हुए ही पता लगाते रहें; शत्रुदेशमें उसके सेवक बनकर अदृश्य रूपमें उसकेही पास रहें, और उसके प्रत्येक कार्यका पता लगावें। इसप्रकार इन पुरुषोंके द्वारा राजा शत्रुके दूतोंके प्रत्येक कार्यकी गवेषणा करता रहे ॥ ५१ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें सोलहवां अध्याय समाप्त।

सत्रहवां अध्याय।

१३ प्रकरण।

राजपुत्रोंसे राजाकी रक्षा।

रक्षितो राजा राज्यं रक्षत्यासन्नेभ्यः परेभ्यश्च ॥ १ ॥ पूर्वं दारेभ्यः पुत्रेभ्यश्च ॥ २ ॥

अपने समीप रहने वाले पुत्र बन्धु बान्धव आदि तथा शत्रुओंसे रक्षा किया हुआही राजा, राज्यकी रक्षा कर सकता है ॥ १ ॥ राजाके लिये सबसे प्रथम विपत्तिस्थान, उसकी स्त्रियां और पुत्रही हैं, इसलिये प्रथम उनसेही रक्षाका उपाय करना चाहिये ॥ २ ॥

दाररक्षणं निशान्तप्रणिधौ वक्ष्यामः ॥३॥ पुत्ररक्षणम् ॥४॥

स्त्रियोंसे राजाकी रक्षा किसप्रकार करनी चाहिये, इस बातका निरूपण 'निशान्त प्रणिधि' (१७ प्रकरण) नामक प्रकरणमें किया जायगा ॥ ३ ॥ यहां पर पुत्रोंसे रक्षाका प्रकार बताया जाता है ॥ ४ ॥

जन्मप्रभृति राजपुत्रान्रक्षेत् ॥ ५ ॥ कर्कटसधर्माणो हि जनकभक्षा राजपुत्राः ॥ ६ ॥

राजाको उचित है कि जन्मसे लेकर, राजपुत्रोंकी निगरानी रक्खे, अर्थात् उनको स्वतन्त्र न होने दे, किसी प्रकारके बन्धन आदिमें ही उन्हें रक्खे ॥५॥ क्योंकि राजपुत्र, कर्कटक (कुलीरः=केकड़ा) के समान अपने पिताकोही खाने वाले होते हैं। यह लोक प्रसिद्ध है, कि केकड़ा अपने पिताको खाता हुआ ही जीवित रहता है, इसीप्रकार राजपुत्र भी अपने पिताको नष्टकर अपना ऐश्वर्य चाहा करते हैं ॥ ६ ॥

तेषामजातस्नेहे [illegible] श्रेयानिति भारद्वाजः ॥७

भारद्वाज आचार्यका मत है, कि यदि पुत्रोंमें, पिताके प्रति स्नेह उत्पन्न न हो, तो उनका उपांशुवध कर देनाही श्रेयस्कर है ॥ ७ ॥

नृशंसमदृष्टवधः क्षत्रबीजविनाशश्चेति विशालाक्षः ॥ ८ ॥ तस्मादेकस्थानावरोधः श्रेयानिति ॥ ९ ॥

परन्तु इसके विरुद्ध विशालाक्ष आचार्य कहता है कि निरपराध बच्चों-का इसप्रकार चुपचाप मारदेना घोरपाप और क्रूरता है, तथा ऐसा करसे क्षत्रिय वंशका नाश होजाना भी निश्चित है ॥ ८ ॥ इसलिये यही उचित है कि पुत्रोंको पिताके प्रति प्रीति उत्पन्न न होनेपर समीपके किसी स्थानमें कैद करके रक्खा जावे ॥ ९ ॥

अहिभयमेतदिति पाराशराः ॥ १० ॥ कुमारो हि विक्रमभयान्मां पिता रुणद्धीति ज्ञात्वा तमेवाङ्के कुर्यात् ॥ ११ ॥ तस्मादन्तपालदुर्गे वासः श्रेयानिति ॥ १२ ॥

परन्तु इसके विरुद्ध पाराशर आचार्य कहते हैं कि ऐसा करना तो सांपके भयके समान है। अर्थात् जैसे सांप, घरमें रहता हुआ भयावह होता है, इसीप्रकार, पुत्रका अपने पास कैदमें रखना भी भयावह समझना चाहिये ॥ १० ॥ क्योंकि कुमार यह समझकर कि पिता अपने वधके भयसे मुझको कैद करके रखता है, घरमें रहता हुआ सरलतासे ही उसके वध करनेका यत्न कर सकता है ॥ ११ ॥ इसलिये उचित यही है कि राजकुमारको राज्यकी सीमाके किसी दूरस्थित दुर्गमें रक्खा जावे। क्योंकि वहां दूर रहता हुआ वह सरलतासे पितापर आक्रमण नहीं कर सकता ॥ १२ ॥

औरभ्रकं भयमेतदिति पिशुनः ॥ १३ ॥ प्रत्यापत्तेर्हि तदेव कारणं ज्ञात्वान्तपालसखः स्यात् ॥ १४ ॥ तस्मात्स्वविषयादपकृष्टे सामन्तदुर्गे वासः श्रेयानिति ॥ १५ ॥

नारद आचार्यका मत है कि सीमास्थित दुर्गमें राजपुत्रका रखना मेंढेके भयके समान है, जैसे मेंढा दूसरेपर आक्रमण करनेके लिये पीछेकी ओर कुछ दूर हटजाता है, इसीप्रकार सीमादुर्गस्थित राजपुत्र भी अवसर पाकर राजा-पर आक्रमण कर सकता है ॥ १३ ॥ क्योंकि जब उसे यह मालूम होजाय कि पिताने मुझे अपने वधके भयके कारणही यहां कैद करके रक्खा है, तो अपनी कैदके इस कारणको समझकर वह अपने कार्यको पूरा करनेके लिये अन्तपालके साथ मित्रता कर सकता है। अर्थात् अन्तपाल (सीमा दुर्गका रक्षक) की

वह पितापर फिरभी आक्रमण करही सकता है ॥ १४ ॥ इसलिये

राजकुमारको अपने देशसे निकालकर सामन्त (अपने समीप देशका राजा) के दुर्गमें उसका निवास करनाही श्रेयस्कर है ॥ १५ ॥

वत्सस्थानमेतदिति कौणपदन्तः ॥ १६ ॥ वत्सेनेव हि धेनुं पितरमस्य सामन्तो दुह्यात् ॥ १७ ॥ तस्मान्मातृबन्धुषु वासः श्रेयानिति ॥ १८ ॥

परन्तु आचार्य कौणपदन्त (भीष्म) इस मतको भी ग्राह्य नहीं समझता । वह कहता है कि राजकुमारको सामन्तके दुर्गमें बसाना, गायके बछड़ेको दूसरेके हाथमें देनेके समान है । अर्थात् जैसे बछड़ेके, दूसरेके हाथमें चलेजानेपर, वह बछड़ेके द्वारा जब चाहे गायको दुह सकता है । इसीप्रकार सामन्त भी उस पुत्रके द्वारा जब चाहे विजिगीषुसे इच्छानुसार धन आदि लेसकता है ॥ १६–१७ ॥ इसलिये राजकुमारको माताके बन्धुओंके पासही राजकुमारका वास कराना श्रेयस्कर है ॥ १८ ॥

ध्वजस्थानमेतदिति वातव्याधिः ॥ १९ ॥ तेन हि ध्वजेनादितिकौशिकवदस्य मातृबान्धवा भिक्षेरन् ॥२०॥ तस्माद्ग्राम्यधर्मेष्वेनमवसृजेयुः ॥ २१ ॥ सुखोपरुद्धा हि पुत्राः पितरं नाभिद्रुह्यन्तीति ॥ २२ ॥

परन्तु आचार्य वातव्याधि (उद्धव) इस मतको भी हेय समझता है । वह कहता है कि राजकुमारको उसके मातृ कुलमें रखना एक ध्वजाके समान है ॥ १९ ॥ क्योंकि जिसप्रकार ध्वजा (चिन्ह विशेष) को दिखाकर, अदिति (भिन्न २ देवताओंकी प्रतिकृति दिखाकर भिक्षा एकत्रित करने वाले भिक्षुको) और कौशिक (सपेरे, सांपको पकड़कर, उसे दिखा २ कर जीविका करने वाले) अपनी जीविका निर्वाह करनेके लिये भिक्षा एकत्रित करते है, इसीप्रकार राजकुमारके मातृकुलके पुरुष भी उसे दिखा २ कर लोगोंसे धन इकट्ठा कर सकते हैं ॥ २० ॥ इसलिये इस राजकुमारको ग्राम्यधर्म अर्थात् स्त्रियों आदिमें उसकी इच्छानुसार लगा रहनेदे ॥ २१ ॥ क्योंकि वैषयिक सुखोंमें रुके हुए पुत्र, अपने पिताके साथ कभी द्रोह नहीं करते ॥ २२ ॥

जीवन्मरणमेतदिति कौटल्यः ॥ २३ ॥ काष्ठमिव हि घुणजग्धं राजकुलमविनीतपुत्रमभियुक्तमात्रं भज्येत ॥ २४ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस सिद्धान्तको कदापि उपादेय नहीं समझता, वह कहता है, कि पुत्रोंको इसप्रकार विषयोंमें फंसाकर रखना तो उन्हें जीतेही मारदेना है । अर्थात् उनका इसप्रकारका जीवन सर्वथा मरणकेही समान है

॥ २३ ॥ क्योंकि जिसप्रकार घुण (एक प्रकारका कीड़ा, जो लकड़ीको भीतरसे काट २ कर निस्सत्त्व करदेता है), से काटी हुई लकड़ी शीघ्र नष्ट होजाती है, इसीप्रकार जिस राजकुलके राजकुमार शिक्षित नहीं बनाये जाते, वह राजकुल बिना किसी युद्धादिके ही स्वयं नष्ट होजाता है ॥ २४ ॥

तस्मादृतुमत्यां महिष्यां ऋत्विजश्चरुमैन्द्रबार्हस्पत्यं निर्वपेयुः ॥ २५ ॥ आपन्नसत्वायां कौमारभृत्यो गर्भभर्मणि प्रजनने च वियतेत ॥ २६ ॥

इसलिये राजाको यह आवश्यक है कि वह इसका प्रबन्ध करदे, कि जब महारानी ऋतुमती होवे, तब ऋत्विज्, इन्द्र और बृहस्पति देवताके उद्देश्यसे चरुको सिद्ध करें । इन्द्रको ऐश्वर्यके लिये और बृहस्पतिको विद्या बुद्धिके लिये हविका देना कहागया है ॥ २५ ॥ जब महाराणी गर्भवती होजावे, तो शिशुचिकित्सक (कौमारभृत्यः), गर्भके पुष्ट करने और सुखपूर्वक प्रसव होनेके लिये पूर्ण यत्न करे ॥ २६ ॥

प्रजातायाः पुत्रसंस्कारं पुरोहितः कुर्यात् ॥ २७ ॥ समर्थं तद्विदो विनयेयुः ॥ २८ ॥

महाराणीके प्रसूता होनेपर अर्थात् पुत्र उत्पन्न होजानेपर, विद्वान् पुरोहित पुत्रका यथोचित संस्कार करे ॥ २७ ॥ तदनन्तर राजकुमारके समर्थ होजानेपर, उन २ विषयोंके निपुण विद्वान्, उसको भिन्न २ प्रकारकी उचित शिक्षा देवें ॥ २८ ॥

सत्त्रिणामेकश्चैनं मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीभिः प्रलोभयेत् ॥ २९ ॥ पितरि विक्रम्य राज्यं गृहाणेति ॥ ३० ॥ तदन्यः सत्त्री प्रतिषेधयेदित्याम्भीयाः ॥ ३१ ॥

आम्भ आचार्यके अनुयायियोंका मत है कि सत्त्रियोंमेंसे एक इस राजकुमारको मृगया (शिकार), द्यूत (जुआ), मद्य और स्त्रियोंका प्रलोभन देवे ॥ २९ ॥ और कहे कि पितापर आक्रमण करके अपना राज्य ले लो । फिर खूब मौज उड़ाओगे ॥ ३० ॥ और दूसरा सत्री कहे कि ऐसा करना बहुत बुरा है । इस प्रकार ये सब काम करने का राजकुमार को प्रतिषेध करे ॥ ३१ ॥

महादोषमबुद्धबोधनमिति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ नवं हि द्रव्यं येन येनार्थजातेनोपदिह्यते तत्तदाचूषति ॥ ३३ ॥ एवमयं नवबुद्धिर्यद्यदुच्यते तत्तच्छास्त्रोपदेशमिवाभिजानाति ॥ ३४ ॥ तस्माद्धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं च ॥ ३५ ॥

परन्तु आम्भि आचार्यके अनुयायी पाराशर इस मत के कारण बहुत दोष समझता है, वह कहता है, कि सरल स्वभाव बालकों को पितादि साथ द्रोह करना सिखाना महादोष है ॥ ३२ ॥ क्योंकि जिस प्रकार नया मृत्पात्र (मट्टी का बर्तन) आदि द्रव्य, जिस २ जल, घृत आदि वस्तुओंके साथ छुआया जाता है, तब उसको ही वह चूसता जाता है ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार इस सरलबुद्धि बालकको जो २ कुछ कहा जाता है, उन २ सब बातोंको वह शास्त्रके उपदेश की तरह समझता है ॥३४॥ इसलिये इस सरलबुद्धि बालकको सदा धर्म और अर्थ का ही उपदेश करना चाहिये, अधर्म और अनर्थ का कदापि नहीं ॥ ३५ ॥

सत्रिणस्त्वेनं तव स्म इति वदन्तः पालयेयुः ॥ ३६ ॥ यौवनोत्सेकात्परस्त्रीषु मनः कुर्वाणमार्याव्यञ्जनाभिः स्त्रीभिरमेध्याभिः शून्यागारेषु रात्रावुद्वेजयेयुः ॥ ३७ ॥

और सत्री लोग, हम तेरे ही हैं, इस प्रकार कहते हुए इसकी पालना करें ॥ ३६ ॥ यदि राजकुमार यौवन मदसे परस्त्रियोंमें अपने मनको लेजाता है, तो राजा, या उसके रक्षकोंको चाहिये, कि वे सदा अपवित्र रहने वाली, आर्या (श्रेष्ठ स्त्रीके समान) वेष बनाये हुई स्त्रियोंके द्वारा रात्रिके समय एकान्त स्थानमें उसे उद्विग्न करावें। जिससे कि खिन्न होकर वह फिर कभी अपने मनको परस्त्रियोंकी ओर न लेजावे ॥ ३७ ॥

मद्यकामं योगपानेनोद्वेजयेयुः ॥ ३८ ॥ द्यूतकामं कापटिकैः पुरुषैरुद्वेजयेयुः ॥ ३९ ॥

यदि राजकुमार, मद्य आदि पीनेकी कामना करे, तो उसे मद्यमें कोई विरस (जिसका रस बहुत खराब, चित्तको उद्विग्न करनेवाला हो, ऐसी) वस्तु मिलाकर पिलावें, जिससे वह खिन्न होकर फिर कभी मद्य न पीवे ॥३८॥ यदि राजकुमार, जुआ खेलनेकी कामना करता हो, तो उसे कापटिक अर्थात् छल पूर्वक जुआ खेलनेमें अत्यन्त चतुर पुरुषोंके साथ जुआ खिलवाकर खूब उद्विग्न करें, जिससे कि वह फिर जुआ खेलनेका नाम न ले ॥ ३९ ॥

मृगयाकामं प्रतिरोधकव्यञ्जनैस्त्रासयेयुः ॥ ४० ॥ पितरि विक्रमबुद्धिं तथेत्यनुप्रविश्य भेदयेयुः ॥ ४१ ॥

यदि वह मृगया अर्थात् शिकारकी कामना रखता हो, तो उसे, चोरोंका वेष धारण किये हुए पुरुषोंके द्वारा अच्छीतरह खिन्न करें; जिससे कि बेचैन होकर, फिर कभी वह मृगयाकी ओर ध्यान न दे ॥ ४० ॥ जो राजकुमार,

अपने पितापरही आक्रमण करनेका विचार करे, तो पहिले उसके साथ मिलकर, अर्थात् ऊपरसे यह कहकर, कि हमभी तुम्हारे साथ हैं, जैसा तुम चाहते हो कर सकते हो, फिर उसको वह काम करनेसे रोकदे ॥ ४१ ॥

अप्रार्थनीयो राजा विपन्ने घातः संपन्ने नरकपातः संक्रोशः प्रजाभिरेकलोष्टवधश्चेति ॥ ४२ ॥

उस कार्यसे रोकनेके लिये उसको यह कहें, कि देखो राजाके साथ कभी द्वेष नहीं करना चाहिये, यदि तुम अपने कार्यमें सफल न होसके तो यह निश्चय रक्खो, कि तुम्हें मार दिया जायगा, यदि तुम अपने कार्यमें सफल होगये अर्थात् तुमने धोखेसे राजाको मारडाला तो निश्चयही तुम नरकमें पड़ोगे, सम्पूर्ण प्रजाजन तुम्हारी निन्दा करेंगे, और यह भी सम्भव है कि प्रजाजन आपसमें मिलकर दुर्गतके साथ तुम्हें मारडालें । इसलिये तुम्हें पितृवध रूपी घोर-पाप कदापि न करना चाहिये ॥ ४२ ॥

विरागं प्रियमेकपुत्रं वा बध्नीयात् ॥ ४३ ॥ बहुपुत्रः प्रत्यन्तमन्यविषयं वा प्रेषयेद्यत्र गर्भः पण्यं डिम्बो वा न भवेत् ॥४४॥ आत्मसंपन्नं सैनापत्ये यौवराज्ये वा स्थापयेत् ॥ ४५ ॥

पितामें स्नेह न रखने वाला, किन्तु पिताका प्यारा एकही पुत्र यदि हो, तो उसे कैद करलेवे ॥ ४३ ॥ यदि पुत्र बहुत हों, तो उसे सीमा प्रान्त अथवा दूसरेही देशमें भेजदेवे, जहांपर कि राजपुत्रके उचित अन्न, तथा अन्य सुन्दर वस्त्र आदि सामान न मिलसकें । और जहांकी प्रजा, राजपुत्रके निमित्त किसी प्रकारका विप्लव करनेको तयार न हो ॥ ४४ ॥ जो पुत्र आत्मसंपत्तिसे (योग्य उचित गुणोंसे) युक्त हो, उसको सेनापति पदपर अथवा यौवराज्य पदपर स्थापित करे ॥ ४५ ॥

बुद्धिमानाहार्यबुद्धिर्दुर्बुद्धिरिति पुत्रविशेषाः ॥ ४६ ॥ शिष्यमाणो धर्मार्थावुपलभते चानुतिष्ठति च बुद्धिमान् ॥ ४७ ॥ उपलभमानो नानुतिष्ठत्याहार्यबुद्धिः ॥४८॥ अपायनित्यो धर्मार्थद्वेषी चेति दुर्बुद्धिः ॥ ४९ ॥

राजपुत्र तीन प्रकारके होते हैं, १ बुद्धिमान्, २ आहार्य बुद्धि, ३ दुर्बुद्धि ॥ ४६ ॥ बतलाये जानेपर, जो धर्म और अर्थको अच्छीतरह समझ लेता है, तथा फिर उसपर आचरण भी करता है; वह बुद्धिमान् कहाता है ॥ ४७ ॥ जो धर्म और अर्थको समझ तो लेता है, परन्तु उसपर फिर आचरण नहीं करता,

शत्रुके द्वारा सरलतासे जीता नहीं जासकता। एक और भी बात है, यदि एक ही व्यक्ति राजा होता है, तो उसपर व्यसन आनेपर प्रजाका ठीक पालन नहीं होता, और प्रजा अत्यन्त पीड़ित होने लगती है, परन्तु समुदायके राजा होने-पर, यदि एकमें कोई व्यसन हो भी जाय, तो भी दूसरे व्यक्ति राज्य कार्यको यथा-विधि चलाते रहते हैं, और प्रजाकी सुखमय अवस्था पृथिवीपर निरन्तर बनीही रहती है ॥ ५५ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें सत्रहवां अध्याय समाप्त।

अठारहवां अध्याय।

१४–१५ प्रकरण।

अवरुद्ध (अपने समीपसे हटकर कहीं दूसरे स्थानपर रक्खे हुए) राजकुमारका व्यव-हार, तथा अवरुद्ध राजकुमारके प्रति राजाका व्यवहार

राजपुत्रः कृच्छ्रवृत्तिरसदृशे कर्मणि नियुक्तः पितरमनुवर्तेत ॥ १ ॥ अन्यत्र प्राणाबाधकप्रकृतिकोपकपातकेभ्य ॥ २ ॥

अपने अननुरूप (जो अपनी हैसियतके मुताबिक न हो, ऐसे) कार्यमें लगाया हुआ, इसीलिये बड़ी कठिनतासे जीवन निर्वाह करने वाला राजपुत्र, अपने पिताके कथनानुसार वर्त्ताव करता रहे ॥ १ ॥ परन्तु यदि उस कार्यके करनेसे प्राणोंका भय हो, अमात्य आदि प्रकृतियोंके कुपित होजानेका भय हो, या कोई पातक (घोरपाप) हो, तो पिताकी आज्ञाका अनुसरण कदापि न करे ॥ २ ॥

पुण्यकर्मणि नियुक्तः पुरुषमधिष्ठातारं याचेत ॥ ३ ॥ पुरु-षाधिष्ठितश्च सविशेषमादेशमनुतिष्ठेत् ॥ ४ ॥ अभिरूपं च कर्म-फलमौपायनिकं च लाभं पितुरुपनाययेत् ॥ ५ ॥

किसी पुण्यकार्यमें नियुक्त किया हुआ राजपुत्र, एक अधिष्ठाता (अपने नीचे रहकर सम्पूर्ण कार्योंकी देख रेख करने वाले) पुरुषको राजासे मांग लेवे ॥ ३ ॥ उस पुरुषसे युक्त हुआ २, राजाकी आज्ञाको विशेष रूपमें पालन करे ४ कार्यके करनेपर जो कुछ अनुरूप फल प्राप्त हो तथा जो कुछ

भर आदि इस लाकर देवे यह उस सम्पूर्ण सामग्रीको अपने पिताके पास भिजवा देवे ॥ ५ ॥

तथाप्यतुष्यन्तमन्यस्मिन्पुत्रे दारेषु वा स्निह्यन्तमरण्यायापृच्छेत् ॥ ६ ॥ बन्धवधभयाद्वा यः सामन्तो न्यायवृत्तिर्धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः प्रतिग्रहीता मानयिता चाभिपन्नानां तमाश्रयेत ॥ ७ ॥

यदि फिरभी पिता सन्तुष्ट या प्रसन्न न होवे, और अपने दूसरे पुत्रों तथा स्त्रियोंमें ही स्नेह करता रहे, तो उस राजकुमारको चाहिये, कि वह जंगल में तपस्या आदि करनेको चले जानेके लिये अपने पितासे आज्ञा लेलेवे ॥ ६ ॥ अथवा यदि अपने बांधेजाने या मारे जानेका भय हो, तो जो सामन्त, न्याय पूर्वक व्यवहार करने वाला, धार्मिक, सत्यवादी, अवञ्चक (धोखा न देनेवाला), शरणमें प्राप्त हुए पुरुषोंको आश्रय देनेवाला, तथा उनका सत्कार करनेवाला हो, उसका आश्रय लेलेवे ॥ ७ ॥

तत्रस्थः कोशदण्डसंपन्नः प्रवीरपुरुषकन्यासंबन्धमटवीसंबन्धं कृत्यपक्षोपग्रहं वा कुर्यात् ॥ ८ ॥ एकचरः सुवर्णपाकमणिरागहेमरूप्यपण्याकरकर्मान्तानाजीवेत् ॥ ९ ॥

वहां स्थित हुआ २, धन और सेनासे युक्त होकर, वहांके किसी वीर पुरुषकी कन्याके साथ विवाह सम्बन्ध करके, और अपने पिताके देशके आटविक पुरुषोंके साथ मित्रता आदिका सम्बन्ध जोड़के, वहांके कृत्यपक्षके पुरुषोंको अपनी ओर मिलानेका यत्न करे ॥ ८ ॥ यदि राजकुमार अकेलाही रहे, अर्थात् उसे धन और सेनाकी सहायता कहींसे भी न मिलसके, तो सुवर्णपाक (लोहे आदिको पुटपाक देकर सोना बनाना=रसतन्त्र प्रयोग करना आदि) करके द्वारा, मणि, रंग, सुवर्ण, चांदी आदि विक्रेय पदार्थोंके व्यापार अथवा अन्य खनिज पदार्थोंके व्यापारके द्वारा अपनी जीविका करे ॥ ९ ॥

पाषण्डसङ्घद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यमाढ्यविधवाद्रव्यं वा गूढमनुप्रविश्य सार्थयानपात्राणि च मदनरसयोगेनातिसंधायापहरेत् ॥ १० ॥

अथवा पाखण्डी अधर्मी पुरुषोंके संगृहीत द्रव्यको, श्रोत्रियसे अतिरिक्त पुरुषोंके भोग्य द्रव्यको, देवताके निमित्त रक्खे हुए द्रव्यको, या किसी धनसम्पन्न विधवाके द्रव्यको, छिपकर इनके घरमें घुसकर अपहरण करले अर्थात् इस प्रकारके धनको चोरी आदि करके अपने अधिकारमें करले और जहाजमे

व्यापार करने वाले पुरुषोंके धनको भी, बेहोश करने वाली औषधि आदिका प्रयोग करके, उन्हें धोखा देकर अपहरण करलेवे ॥ १० ॥

पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत् ॥ ११ ॥ मातुः परिजनोपग्रहेण वा चेष्टेत ॥ १२ ॥

अथवा पारग्रामिक (विजिगीषु जब कहीं दूसरे गांवको जाना चाहे, तब यह वहांपर अपना कार्य करले। देखोः—दुर्गलम्भोपाय अधिकरण) उपायका अनुष्ठान करे ॥ ११ ॥ अथवा अपनी माताके सेवक जनोंको अपने अनुकूल बनाकर, उनके द्वारा अपनी वृद्धिका यत्नकरे ॥ १२ ॥

कारुशिल्पिकुशीलवचिकित्सकवाग्जीवनपाषण्डच्छद्मभिर्वा नष्टरूपस्तद्व्यञ्जनसखश्छिद्रं प्रविश्य राज्ञः शस्त्ररसाभ्यां प्रहृत्य ब्रूयात् ॥ १३ ॥

अथवा बढ़ई लुहार, चित्रकार, गाने बजाने वाले, चिकित्सक (वैद्य), कथा कहकर जीविका करने वाले, तथा वेदबाह्य पाखण्डी पुरुषोंके वेषके साथ अपने असली रूपको छिपाकर, लुहार बढ़ई आदि पुरुषोंके सम नहीं हुआ २, अपने पिता (राजा) के किसी छिद्र (दोष—कमज़ोरी) को देखकर उसकेही द्वारा, शस्त्र अथवा विष आदि रसका प्रयोग करके अर्थात इसतरह राजाको मारकर, अमात्य आदिसे कहे, कि ॥ १३ ॥

अहमसौ कुमारः सहभोग्यमिदं राज्यमेको नार्हति भोक्तुं तत्र ये कामयन्ते भर्तुं तानहं द्विगुणेन भक्तवेतनेनोपस्थास्य इति ॥ १४ ॥ इत्यवरुद्धवृत्तम् ॥ १५ ॥

मैं ही वह कुमार हूं। साथ २ भोगने योग्य इस राज्यको कोई अकेला नहीं भोग सकता। इसलिये जो अमात्य आदि राजकर्मचारी पूर्ववत् अपने अधिकारोंपर रहना चाहते हैं, वे शान्त पूर्वक रहें, मैं अपने राज्यकालमें उनको दुगना वेतन और भत्ता दूंगा ॥ १४ ॥ यहांतक अवरुद्ध राजकुमारके व्यवहारका निरूपण किया गया ॥ १५ ॥

अवरुद्धं तु मुख्यपुत्रमपसर्पाः प्रतिपाद्यानयेयुः ॥१६॥ माता वा प्रतिगृहीता ॥ १७ ॥

अवरुद्ध राजकुमारको, अमात्य आदि मुख्य पुरुषोंके पुत्र गुप्त पुरुषके भेसमें जाकर यह समझाकर लेआवें कि यदि तुम राजाके अनुकूल रहोगे, तो वह अवश्य ही तुम्हें युवराज बनालेगा ॥ १६ ॥ अथवा राजासे सत्कृत हुई २ उसकी अपनी माता ही उसे वापस लेआवे ॥ १७ ॥

त्यक्तं गूढपुरुषाः शस्त्ररसाभ्यां हन्युः ॥ १८ ॥ अत्यक्तं तुल्यशीलाभिः स्त्रीभिः पानेन मृगयया वा प्रसज्य रात्रावुपगृह्या- नयेयुः ॥ १९ ॥

यदि वह राजकुमार किसी तरहसे भी राजाके अनुकूल न होसके, तो राजाकी ओरसे परित्याग किये हुए उस राजकुमारको गूढ़पुरुष शस्त्र अथवा विष आदि रसोंके द्वारा मार डालें ॥ १८ ॥ यदि राजाने उसको अभीतक परित्याग न किया हो, तो उसके ही समान स्वभाववाली स्त्रियोंके द्वारा, मद्य आदि पिलाकर, अथवा मृगया (शिकार) में आसक्त कराके, रात्रिमें पकड़कर बांधकर राजाके समीप लेआवें ॥ १९ ॥

उपस्थितं च राज्येन मदूर्ध्वमिति सान्त्वयेत् ।
एकस्थमथ संरुन्ध्यात्पुत्रवान्त्वा प्रवासयेत् ॥ २० ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे अवरुद्धवृत्तमवरुद्धे च वृत्तिः अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

जिस समय वह राजकुमार राजाके पास आवे, तो राजा उससे कहे कि यह राज्य मेरे बाद तुम्हारा ही होगा। अर्थात धार्मिक राजपुत्रको भविष्यमें राज्य मिल जानेके कारण सान्त्वना देवे; यदि एक ही पुत्र अधार्मिक हो तो उसे कैद करके रक्खे, और अन्य पुत्रोंके होनेपर उसे प्रवासित करदे; अर्थात् अपने देशसे बाहर करदे या मरवा डाले ॥ २० ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें अठारहवां अध्याय समाप्त।

उन्नीसवां अध्याय।

१६ प्रकरण।

राजप्रणिधि।

राजानमुत्तिष्ठमानमनूत्तिष्ठन्ते भृत्याः ॥ १ ॥ प्रमाद्यन्तमनु- प्रमाद्यन्ति ॥ २ ॥ कर्माणि चास्य भक्षयन्ति ॥ ३ ॥ द्विषद्भि- श्चातिसंधीयते ॥ ४ ॥ तस्मादुत्थानमात्मनः कुर्वीत ॥ ५ ॥

राजाके उन्नतिशील होनेपर उसके अमात्य आदि भृत्यवर्ग भी उन्नति- शील होते हैं ॥ १ ॥ यदि राजा प्रमादी होजावे, तो भृत्यवर्ग भी राजकार्योंमें प्रमाद करने लगते हैं ॥ २ ॥ और इसके कार्योंको खाजाते हैं । अर्थात् राज- कार्योंको सर्वथा नष्ट करदेते हैं ॥ ३ ॥ इस प्रकारका राजा शत्रुओंसे सदा

धोखा खाता है ॥ ४ ॥ इसलिये राजाको उचित है कि वह सदा अपने आपको उन्नतिशील बनाने का यत्न करता रहे ॥ ५ ॥

नाडिकाभिरहरष्टधा रात्रिं च विभजेत ॥ ६ ॥ छायाप्रमाणेन वा ॥ ७ ॥

कार्य-विभागके सुभीतेके लिये दिन और रातको आठ आठ नाड़ियोंके द्वारा विभक्त करे। अर्थात् आठ नाड़ी (घड़ी) दिनकी और आठ रातकी॥ ६ ॥ अथवा छायाके प्रमाणसे दिनका विभाग करे। अर्थात् पुरुषकी छाया जैसे २ लम्बी या छोटी होती जाय, उसहीके अनुसार दिनका विभाग करे ॥ ७ ॥

त्रिपौरुषी पौरुषी चतुरङ्गुला चच्छाया मध्याह्न इति पूर्वे दिवसस्याष्टभागाः ॥ ८ ॥

उसका प्रकार यह है—प्रातःकाल जब सूर्य उदय हो, उस समयसे लगाकर जबतक पुरुषकी छाया तीन पुरुषोंके बराबर लम्बी रहे, वह दिनका पहिला आठवां हिस्सा है, इस छायाको त्रिपौरुषी छाया कहते हैं, इसके अनन्तर जब छाया एक पुरुषकी बराबर लम्बी रहजाय, उसे पौरुषी या एकपौरुषी छाया कहते हैं, यह दूसरा भाग है। इसके अनन्तर जब पुरुषकी छाया चार अंगुलकी रहजाय, उसे चतुरंगुला छाया कहा जाता है। यह तीसरा भाग है। इसके बादके समयको मध्यान्ह कहते हैं। यह चौथा भाग है। इस प्रकार आधे दिनके ये पहले चार भाग हैं, यह प्रत्येक सम्पूर्ण दिनका आठवां आठवां हिस्सा है ॥ ८ ॥

तैः पश्चिमा व्याख्याताः ॥ ९ ॥

इसहीके समान पिछले आधे दिनके भी हिस्से करलेने चाहियें। उनका प्रकार यह है:—मध्यान्हके अनन्तर जब पुरुषकी छाया फिर चार अंगुलकी होजाय, वह चतुरंगुला छाया, पहिला भाग समझना चाहिये। इसी प्रकार उस छायाके बढ़ते २ एक पुरुषकी बराबर होजानेपर पौरुषी और फिर तीन पुरुषकी बराबर होजानेपर त्रिपौरुषी, ये दिनके दूसरे तीसरे भाग हैं। इसके बादका चौथा हिस्सा दिनान्त कहाता है। इस प्रकार दिनके कुल आठ हिस्से होजाते हैं ॥ ९ ॥

तत्र पूर्वे दिवसस्याष्टभागे रक्षाविधानमायव्ययौ च शृणुयात् ॥ १० ॥

इस समय विभागमें से दिनके पहिले आठवें हिस्सेमें, राजा रक्षा विध न (रात्रिमें नियुक्त किये हुए रक्षा पुरुषोंके कार्य कदाचित् रात्रिमें कोई

विशेष घटना तो नहीं होगई । इसलिये सबसे पहिले इसका जानना आवश्यक है) और गत दिवसके आय व्ययको सुने, अर्थात् उसका निरीक्षण करे ॥ १०॥

द्वितीये पौरजानपदानां कार्याणि पश्येत् ॥ ११ ॥ तृतीये स्नानभोजनं सेवेत ॥ १२ ॥ स्वाध्यायं च कुर्वीत ॥१३॥ चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहमध्यक्षांश्च कुर्वीत ॥ १४ ॥

दिनके दूसरे हिस्सेमें नगर तथा जनपद निवासियोंके कार्योंका निरीक्षण करे ॥ ११ ॥ तीसरे हिस्सेमें स्नान तथा भोजन आदि करे ॥ १२ ॥ और कुछ स्वाध्याय भी इसी समयमें करे ॥ १३ ॥ दिनके चौथे हिस्सेमें गत दिवसके शेष धनको संभाले और भिन्न २ कार्योंपर अध्यक्ष आदिकी नियुक्ति करना हो तो करे ॥ १४ ॥

पञ्चमे मन्त्रिपरिषदा पत्रसंप्रेषणेन मंत्रयेत ॥ १५ ॥ चारगुह्यबोधनीयानि च बुद्ध्येत ॥ १६ ॥ षष्ठे स्वैरविहारं मंत्रं वा सेवेत ॥ १७ ॥

दिनके पांचवें हिस्सेमें मन्त्रिपरिषद्के साथ, पत्र आदि भेजकर आवश्यक विषयोंपर विचार करे ॥ १५ ॥ गुप्तचरोंके कार्य तथा अन्य जानने योग्य गुप्त बातोंको भी इसी समयमें सुने या जाने ॥ १६ ॥ छटे हिस्सेमें इच्छानुसार विहार अथवा मन्त्रणा करे ॥ १७ ॥

सप्तमे हस्त्यश्वरथायुधीयान्पश्येत् ॥१८॥ अष्टमे सेनापतिसखो विक्रमं चिन्तयेत् ॥१९॥ प्रतिष्ठितेऽहनि संध्यामुपासीत॥२०॥

सातवें हिस्सेमें हाथी घोड़े रथ तथा हथियारोंका निरीक्षण करे ॥ १८॥ आठवें हिस्सेमें सेनापतिको साथ लेकर युद्ध आदिके सम्बन्धमें विचार करे ॥ १९ ॥ इस प्रकार दिनके समाप्त होजानेपर सायंकालके समय संध्योपासना करे ॥ २० ॥

प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषान्पश्येत् ॥ २१ ॥ द्वितीये स्नानभोजनं कुर्वीत स्वाध्यायं च ॥ २२ ॥ तृतीये तूर्यघोषेण संविष्टश्चतुर्थपञ्चमौ शयीत ॥ २३ ॥

दिनमें यथोचित विभागके अनुसार कार्योंका कथन करके रात्रिके पृथक् २ भागोंमें क्या २ कार्य करने चाहियें, अब इस बातका निरूपण किया जाता है:—रात्रिके प्रथम भागमें गूढपुरुषोंको देखे ॥ २१ ॥ दूसरे भागमें स्नान भोजन तथा स्वाध्याय भी करे ॥ २२ ॥ तीसरे भागमें बाजे बजाने

आदिको सुनता हुआ, सो जावे, तथा पूरे चौथे और पांचवें भागमें शयन करे ॥ २३ ॥

षष्ठे तूर्यघोषेण प्रतिबुद्धः शास्त्रमितिकर्तव्यतां च चिन्तयेत् ॥ २४ ॥ सप्तमे मंत्रमध्यासीत गूढपुरुषांश्च प्रेषयेत् ॥ २५ ॥

पुनः रात्रिके छठे भागमें बाजे आदिके शब्दसे उठाया गया हुआ, शास्त्र (अर्थशास्त्र) तथा इतिकर्तव्यताका (जो कुछ कार्य दिनमें करने हों, उनका) चिन्तन करे ॥ २४ ॥ रात्रिके सातवें विभागमें, मन्त्र अर्थात् गूढ बातों पर विचार करे। और गूढ पुरुषोंको जहां भेजना हो, वहां भेजे ॥ २५ ॥

अष्टम ऋत्विगाचार्यपुरोहितसखः स्वस्त्ययनानि प्रतिगृह्णीयात् ॥ २६ ॥ चिकित्सकमाहानसिकमौहूर्तिकांश्च पश्येत् ॥२७॥

इसके अनन्तर आठवें हिस्सेमें, ऋत्विक्, आचार्य और पुरोहितोंके साथ २ स्वस्तिवाचन, तथा मांगलिक मन्त्र पाठोंके सहित आशीर्वाद ग्रहण करे ॥ २६ ॥ और चिकित्सक (वैद्य), माहानसिक (पाकशालामें कार्य करने वाले रसोईयोंका निरीक्षक) तथा मौहूर्तिक (शुभाशुभ मुहूर्त आदिका बताने वाला=ज्योतिषी) को देखे। अपनी शारीरिक अवस्थाको जाननेके लिये वैद्यका, अभीष्टभोजन आदि बनानेके लिये माहानसिकका और उस दिनके कार्यके शुभाशुभका पता लेनेके लिये ज्योतिषीका प्रातःकालही राजासे मिलना अत्यन्त आवश्यक होता है ॥ २७ ॥

सवत्सां धेनुं वृषभं च प्रदक्षिणीकृत्योपस्थानं गच्छेत् ॥२८॥ आत्मबलानुकूल्येन वा निशाहर्भागान्प्रविभज्य कार्याणि सेवेत ॥ २९ ॥

बछड़े सहित गाय और बैलकी प्रदक्षिणा करके दरबारमें जावे ॥ २८ ॥ दिनरातका जो कार्य विभाग ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, उसे साधारणही समझना चाहिये, इसलिये राजा अपनी शक्ति और अनुकूलताके अनुसार दिन और रातके कार्योंको विभक्त करके यथारुचि उनका अनुष्ठान कर सकता है ॥ २९ ॥

उपस्थानगतः कार्यार्थिनामद्वारासङ्गं कारयेत् ॥ ३० ॥ दुर्दर्शो हि राजा कार्याकार्यविपर्यासमासन्नैः कार्यते ॥ ३१ ॥ तेन प्रकृतिकोपमरिवशं वा गच्छेत् ॥ ३२ ॥

राजा, जब दरबारमें उपस्थित हो, तो किसी कार्यके लिये आने वाले पुरुषको खुले तौरपर आनेदे। अर्थात् ऐसे अवसरपर दरबारमें आनेके लिये पुरुषोंको　　भी रुकावट न होनी चाहिये　जिससे कि प्रत्येक पुरुष सर

[illegible] राजाका दर्शन करनेके ॥ ३० ॥ क्योंकि जो राजा दर्शन नहीं देता, या बड़ी कठिनतासे दर्शन देता है, उसके समीप रहने वाले सेवकोंके द्वारा, उसके कार्य उलट पुलट कर दिये जाते हैं। अर्थात् राजाके स्वयं दर्शन न देनेके कारण, उसके कार्य उसके समीप रहने वाले सेवकोंके द्वाराही कराये जासकते हैं, और वे इतने योग्य न होनेके कारण कार्योंमें विपर्यास करदेते हैं ॥ ३१ ॥ इसका परिणाम यह होता है, कि उस राजाके अमात्य आदि प्रकृतिजन उससे प्रकुपित हो उठते हैं। या अन्यकार्य विकृत होजाते हैं। अथवा राजा अपने शत्रुके वशमें चला जाता है। अर्थात् राजाके प्रकृतिकदमनको देखकर उसके शत्रु इसे अपने अधीन कर लेते हैं ॥ ३२ ॥

तस्माद्देवताश्रमपाषण्डश्रोत्रियपशुपुण्यस्थानानां बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथानां स्त्रीणां च क्रमेण कार्याणि पश्येत् ॥ ३३ ॥
कार्यगौरवादात्ययिकवशेन वा ॥ ३४ ॥

इसलिये राजाको उचित है, कि देवतास्थान (देवालय आदि), आश्रमस्थान (मुनि आदिके रहनेके स्थान), पाषण्डस्थान (बौद्ध या जैनोंके निवास स्थान), श्रोत्रियस्थान (वेद पढ़ने वालोंके स्थान), पशुस्थान (गाय, घोड़ा हाथी आदिके स्थान) तथा इसीप्रकारके अन्य पुण्यस्थानोंके कार्योंको; और बालक, बूढ़े, रोगी, दुःखी अनाथ, तथा स्त्रियोंके भी सब कार्योंको क्रमपूर्वक, स्वयं जाकरही निरीक्षण करे। अपने आप जाकर देखनेसे राजा, उन कार्योंको बिलकुल ठीक २ हालतमें जान सकता है ॥ ३३ ॥ यदि इन कार्योंमेंसे कोई कार्य अत्यन्त महत्वका हो, अथवा जिसका समय बहुत बीतगया हो, ऐसे कार्यके लिये राजा, उपर्युक्त कार्य दर्शनके क्रमको तोड़ सकता है, अर्थात् पहिले इन कार्योंको छोड़कर अन्य कार्योंको देख सकता है ॥ ३४ ॥

सर्वमात्ययिकं कार्यं शृणुयान्नातिपातयेत् ।
कृच्छ्रसाध्यमतिक्रान्तमसाध्यं वाभिजायते ॥ ३५ ॥

राजाको उचित है कि जिस कार्यके लिये बहुत समय बीत चुकाहो, ऐसेही कार्यको पहिले सुने, उसका और अधिक काल अतिक्रमण न करे, क्योंकि इसप्रकार उचित कार्यकालके बीत जानेपर फिर वह कार्य कष्टसाध्य (बड़ी कठिनतासे पूरा होने वाला) अथवा सर्वथा असाध्यही होजाता है ॥ ३५ ॥

अग्न्यगारगतः कार्यं पश्येद्वैद्यतपस्विनाम् ।
पुरोहिताचार्यसखः [illegible] च ॥ ३६ ॥

राजा, पुरोहित तथा आचार्यके साथ २ अग्निहोत्रशाला (यज्ञशाला) में उपस्थित होकर, वेद्य अर्थात् विद्वान् पुरुषोंके और तपस्वियोंके कार्योंको उन्हें (विद्वान् तथा तपस्वियोंको) अभ्युत्थान (आदरार्थ उनके आनेपर उठकर खड़े होजाना.) देकर तथा अभिवादन (प्रणाम) करके, देखे ॥ ३६ ॥

तपस्विनां तु कार्याणि त्रैविद्यैः सह कारयेत् ।
मायायोगविदां चैव न स्वयं कोपकारणात् ॥ ३७ ॥

तपस्वियों तथा माया प्रयोगोंको जानने वाले पुरुषोंके कार्योंका निर्णय, राजा, सम्पूर्ण वेदोंके विद्वानोंके साथ बैठकरही करे, स्वयं अकेलाही इनका निर्णय कभी न करे, क्योंकि यह सम्भव है कि वह निर्णय उन लोगोंके विरुद्ध हो, और वे इसके कारण राजासे कुपित होजावें, तथा राजाको किसी प्रकारकी हानि पहुंचानेका यत्न करें । वेद-विद्वानोंके साथ रहनेपर उस निर्णयका उत्तरदायित्व राजाके ऊपर नहीं रहता, और वह इसीलिये उनके कोपसे रक्षित रहता है ॥३७॥

राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम् ।
दक्षिणा वृत्तिसाम्यं च दीक्षितस्याभिषेचनम् ॥ ३८ ॥

उद्योग करना, यज्ञ करना, व्यवहारोंका निर्णय करना, दक्षिणा अर्थात् दान देना, शत्रु और मित्रोंमें गुण दोषोंके अनुसार उचित समान वर्त्ताव करना, तथा यज्ञादिकी दीक्षा लेकर उसे पूर्ण करके फिर पवित्र स्नान आदि करना, ये सब राजाके व्रत अर्थात् नियम हैं । राजाको चाहिये कि वह इन सब कार्योंका यथोचित अनुष्ठान करे ॥ ३८ ॥

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥ ३९ ॥

प्रजाके सुखमेंही राजाका सुख और प्रजाओंके हितमेंही राजाको अपना हित समझना चाहिये । अपने आपको प्रिय लगने वाले कार्योंका करना राजाका हित नहीं, किन्तु प्रजाओंके प्रिय कार्योंका करनाही राजाका अपना सबसे बड़ा हित है ॥ ३९ ॥

तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम् ।
अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः ॥ ४० ॥

इसलिये राजाको चाहिये, कि वह सदा उद्योगी हुआ २, व्यवहार पदोंका निर्णय तथा अन्य राज्य सम्बन्धी कार्योंको उचित रीतिपर करे । उद्योग ही सम्पत्तियोंका मूल कारण है, और उद्योगी न होना, हर तरहके अनर्थोंको उत्पन्न करदेता है ॥ ४० ॥

अनुत्थाने ध्रुवो नाशः प्राप्तस्यानागतस्य च ।
प्राप्यते फलमुत्थानाल्लभते चार्थसंपदम् ॥ ५१ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे राजप्रणिधिः एकोनविंशो ऽध्यायः ॥१९॥

राजाके उद्योगी न होनेपर, पहिले प्राप्त किये हुए अर्थोंका तथा भविष्यमें प्राप्त होने वाले अर्थोंका भी निश्चयही सर्वथा नाश होजाता है। परन्तु जो राजा उद्योगी होता है, वह अपने उद्योगसे, शीघ्रही अपने कार्योंके मीठे फलको प्राप्त करलेता है, और इच्छानुसार अर्थसम्पत्तियोंको लाभ करता है ॥ ५१ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें उन्नीसवां अध्याय समाप्त ।

बीसवां अध्याय ।

१७ प्रकरण ।

निशान्तप्रणिधि ।

[राजभवनका नाम निशान्त है । उसके सम्बन्धमें क्या कुछ करना चाहिये, इन्हींका निरूपण इस प्रकरणमें किया गया है ।]

वास्तुकप्रशस्ते देशे सप्राकारपरिखाद्वारमनेककक्ष्यापरिगतमन्तःपुरं कारयेत् ॥ १ ॥

वास्तु विद्याको जाननेवाले (गृहनिर्माण आदिको जाननेवाले=इंजिनियर) पुरुष जिस स्थानकी प्रशंसा करें, उसही स्थानमें प्राकार (परकोटा=चारों ओर की बड़ी दीवार), परिखा (चारों ओरको खाई), द्वार और अनेक कक्षाओं (ड्योढ़ियों या परिक्रमाओं) से युक्त अन्तःपुरका निर्माण कराया जावे ॥ १ ॥

कोशगृहविधानेन वा मध्ये वासगृहं गूढभित्तिसञ्चारं मोहनगृहं तन्मध्ये वा वासगृहं भूमिगृहं शासन्नकाष्ठचैत्यदेवतापिधानद्वारमनेकसुरुङ्गासंचारं प्रासादं वा गूढभित्तिसोपानं सुषिरस्तम्भप्रवेशापसारं वा वासगृहं यन्त्रबद्धतलावपातं कारयेत् ॥ २ ॥

अथवा कोशागारके निर्माणके अनुसार (देखो—'सन्निधातृनिचयकर्म' नामक प्रकरण, अधि. २ अध्या. ५) अन्तःपुरके बीचमें, राजा अपने रहनेका घर बनवावे। अथवा पहिले चारों ओर ऐसा मकान बनवावे, जिसकी भीत

और रास्तेके सिलसिलेका ठीक २ पता न लगे, इसीको मोहनगृह (भूलभुलैयां) कहा जाता है। इसके बीचमें अपने निवासका मकान बनवावे। अथवा भूमि खुदवाकर उसके भीतर मोहनगृहके बीचमें अपना वासगृह बनवावे। उस भूमिगृहके दरवाजेपर, समीपही किसी दिशाके देवालयकी प्रसिद्ध देवता दुर्गा आदिकी मूर्त्ति अवश्य होनी चाहियें, तथा उसमें जाने आनेके लिये अनेक सुरङ्ग भी बनी हुई होनी चाहियें। अथवा ऐसा महल बनवावे, जिसकी दीवारोंके भीतर छिपे तौरपर आने जानेका रास्ता हो, अथवा पोले खम्भोंके भीतरसे चढ़ने उतरने या बाहर आने जानेका मार्ग हो। अथवा ऐसा वासगृह बनवावे, जिसका नीचे का भाग यन्त्रोंके आधारपरही आश्रित हो, अर्थात् यन्त्रोंके अपने हाथमें रहनेके कारण उसे इच्छानुसार रक्खा या नीचे गिराया जासकता हो॥ २॥

आपत्प्रतीकारार्थमापदि वा कारयेत् ॥ ३ ॥ अतो ऽन्यथा वा विकल्पयेत् ॥ ४ ॥ सहाध्यायिभयात् ॥ ५ ॥

इस प्रकारके वासगृह आपत्तिके निवारणके लियेही बनाये जाते हैं। इसलिये आपत्ति आनेसे पहिलेही ऐसे स्थानोंका निर्माण राजाको करा रखना चाहिए। अथवा यदि पहिलेसे निर्माण कराया हुआ न हो तो आपत्तिके उपस्थित होनेपर भी यह कार्य करालिया जावे॥ ३॥ यदि राजाको इस बातका भय हो कि दूसरा मेरे समानही शास्त्रोंके तत्वका जानने वाला शत्रुराजा भी इन बातोंको जानकर इसीके अनुसार कार्य करसकता है, तो वह अपनी प्रतिभाके अनुसार इससे सर्वथा भिन्न प्रकारके वासगृहकी कल्पना करके, उसके अनुसारही कार्य करावे। तात्पर्य यह है कि यह कोई आवश्यक नहीं कि जो कुछ ऊपर वासगृहके सम्बन्धमें लिखा गया है, उसीके अनुसार कार्य करे, प्रत्युत वह अपनी बुद्धिके अनुसार इसमें परिवर्तन कर सकता है॥ ४-५॥

मानुषेणाग्निना त्रिरपसव्यं परिगतमन्तःपुरमग्निरन्यो न दहति ॥ ६ ॥ न चात्रान्यो ऽग्निर्ज्वलति ॥ ७ ॥ वैद्युतेन भस्मना मृत्संयुक्तेन करकवारिणावलिप्तं च ॥ ८ ॥

मनुष्यकी हड्डीमें बांसके रगड़नेसे उत्पन्न होनेवाली आगके द्वारा, अन्तःपुरका स्पर्श कराते हुए, तथा इस सम्बन्धके अथर्वके मन्त्रोंका साथ २ ही उच्चारण करते हुए, बाईं ओरसे तीन परिक्रमा यदि अन्तःपुरकी करदी जावें तो फिर उसमें और कोई दूसरी आग असर नहीं करती। अर्थात् फिर अन्तःपुरको और कोई दूसरी आग जला नहीं सकती॥ ६॥ तथा ऐसे अन्तःपुरमें

और कोई आग जल भी नहीं सकती । इसका यही तात्पर्य है कि यदि ऐसे मकानके पास आग लग जावे, तो वह वहां आते ही बुझ जाती है, ठण्डी पड़जाती है ॥ ७ ॥ इसी प्रकार बिजलीसे जले हुए पेड़ आदिकी राख लेकर, उसमें उतनी ही और मिट्टी (उस मट्टीसे तात्पर्य है जो दीवारोंपर लगाई जाती है) मिलाकर धतूरेके पानीके साथ गूंधकर, उसको दीवारपर लेपन किया जावे, तो भी उस मकानमें दूसरी आगका कोई प्रभाव नहीं होता । । किसी किसी पुस्तकमें 'कनकवारिणा' के स्थानपर 'करकवारिणा' पाठ है । करकका अर्थ ओला या वर्षा है । इसलिये इस पाठमें 'उस मट्टीको ओले या वर्षाके पानीके साथ गूंधा जावे' यही अर्थ करना चाहिये ॥ ८ ॥

जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकाभिरक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य प्रतानेन वा गुप्तं सर्पा विषाणि वा न प्रसहन्ते ॥ ९ ॥

गिलोय, शंखपुष्पी, काली पांडरी (मुष्कक) और करीरके पेड़पर लगे हुए बन्देकी माला आदिके लगानेसे रक्षित हुए २, अथवा सेमलके पेड़के ऊपर पैदा हुए २ पीपलके पत्ते आदिकी माला लगानेसे रक्षित हुए २ अन्तःपुरमें सर्प तथा अन्य विषोंका कोई प्रभाव नहीं होता ॥ ९ ॥

मार्जारमयूरनकुलपृषतोत्सर्गः सर्पान्भक्षयन्ति ॥ १० ॥ शुकः शारिका भृङ्गराजो वा सर्पविषशङ्कायां क्रोशन्ति ॥ ११ ॥ क्रौञ्चो विषाभ्याशे माद्यति ॥ १२ ॥

बिलाव, मोर, नकुल (नेवला), और मृगको घरमें छोड़नेपर, ये बिलाव आदि सर्पोंको खा जाते हैं ॥ १० ॥ तोता, मैना और बड़ा भौंरा ये, घर आदिमें सर्प विषकी आशङ्का होनेपर चिल्लाने लगते हैं ॥ ११ ॥ क्रौञ्चपक्षी विषके समीप होनेपर विह्वल होजाता है ॥ १२ ॥

ग्लायति जीवंजीवकः ॥ १३ ॥ म्रियते मत्तकोकिलः ॥ १४ ॥ चकोरस्याक्षिणी विरज्येते ॥ १५ ॥ इत्येवं अग्निविषसर्पेभ्यः प्रतिकुर्वीत ॥ १६ ॥

जीवंजीव (मोरके समान पंखवाला पक्षी, या चकोरकी जातिका एक पक्षी विशेष) नामक पक्षी, विषको देखकर ग्लानियुक्त, अर्थात् खिन्न हर्षरहित होजाता है ॥ १३ ॥ कोयल पक्षी विषको देखकर मरजाता है ॥ १४ ॥ चकोर पक्षीकी आंख विषको देखकर लाल होजाती है ॥ १५ ॥ इन सब उपायोंसे विष आदिकी परीक्षा करके, राजा अपने आपको अग्नि, विष तथा सर्पोंसे बचाकर रक्खे ॥ १६ ॥

पृष्ठतः कक्ष्याविभागे स्त्रीनिवेशो गर्भव्याधिवैद्यप्रत्याख्यातसंस्था वृक्षोदकस्थानं च ॥ १७ ॥ बहिः कन्याकुमारपुरम् ॥१८॥

राजाके वासगृहके पीछेकी ओरके कक्ष्या विभागमें अन्तःपुर अर्थात् राजास्त्रियोंके रहनेका स्थान बनवाया जावे। उसके समीपही, प्रसूता स्त्री, बीमार, तथा असाध्य रोगिणी स्त्रियोंके लिये पृथक् पृथक् तीन स्थान बनवावें। और उसके साथही छोटे २ उद्यान तथा जलाशय बनवावे ॥ १७ ॥ उससे बाहरकी ओर राजकन्याओं, तथा यौवन अवस्थाको प्राप्त न हुए २ राजकुमारोंके लिये स्थान बनवावें ॥ १८ ॥

पुरस्तादलंकारभूमिर्मन्त्रभूमिरुपस्थानं कुमाराध्यक्षस्थानं च ॥ १९ ॥ कक्ष्यान्तरेष्वन्तर्वंशिकसैन्यं तिष्ठेत् ॥ २० ॥

राजाके निवास स्थानके आगेकी ओर पहिले सुन्दर घास तथा फूलोंसे युक्त उपवन अथवा सुन्दर शोभा युक्त महल होना चाहिये। इसके आगे मन्त्र सभाका स्थान, फिर उपस्थान अर्थात् दरबारका स्थान, और इसके आगे युवा राजकुमार तथा समाहर्त्ता सन्निधाता आदि अध्यक्षोंके प्रधान कार्यालय होने चाहियें ॥ १९ ॥ कक्ष्याओंके बीच २ में कंचुकी आदि पुरुषों तथा अन्य अन्तःपुररक्षक पुरुषोंका समूह रहे ॥ २० ॥

अन्तर्गृहगतः स्थविरस्त्रीपरिशुद्धां देवीं पश्येत् ॥ २१ ॥ न कांचिदभिगच्छेत् ॥ २२ ॥

अन्तःपुरमें जाकर राजा अपने निवासके ही मकानमें, विश्वस्त किसी बूढ़ी परिचारिकाके साथ महारानीको देखे ॥ २१ ॥ किसी रानीको लक्ष्य करके स्वयं ही उसके निवास स्थान में न जावे ॥ २२ ॥

देवीगृहे लीनो हि भ्राता भद्रसेनं जघान ॥ २३ ॥ मातुः शय्यान्तर्गतश्च पुत्रः कारूशम् ॥ २४ ॥ लाजान्मधुनेति विषेण पर्यस्य देवी काशिराजम् ॥ २५ ॥

क्योंकि इसमें कभी २ बड़ा धोखा हो जाता है, सुना जाता है पहिले कभी भद्रसेन नामक किसी राजाके वीरसेन नामक भाईने उसकी रानीसे मिल कर, उसीके घरमें छिपकर, वहां भद्रसेन राजाको मार डाला था ॥ २३ ॥ इसी प्रकार माताकी शय्याके नीचे छिपे हुए राजपुत्रने अपने पिता कारूश नामक राजाको मार डाला था ॥ २४ ॥ इसी तरह काशिराजकी रानीने ही स्वयं काशिराजको, खीलोंमें मधुके बहाने विष मिला कर, और उसे खिलाकर मार डाला था ॥ २५ ॥

विषदिग्धेन नूपुरेण वैरन्त्यं मेखलामणिना सौवीरं जालूथ मादर्शेन वेण्यां गूढं शस्त्रं कृत्वा देवी विदूरथं जघान ॥ २६ ॥ तस्मादेतान्यास्पदानि परिहरेत् ॥ २७ ॥

तथा विषमें बुझे हुए नूपुर (पायजेब–पैरका आभूषण) के द्वारा वैरन्त्य राजाको उसकी अपनी रानीने, मेखला (तगड़ी–कौंधनी) की मणिके द्वारा सौवीरको, आदर्श (शीशे) के द्वारा जालूथको, और अपनी वेणी (बालोंके जूड़े) में शस्त्र छिपाकर विदूरथ नामक राजाको, उनकी अपनी २ रानियोंने ही मार डाला था ॥ २६ ॥ इसलिये राजाको चाहिये कि रानियोंके निज निवास स्थानमें रात्रिके समय कदापि न जावे। प्रत्युत उनको ही अपने निवास स्थान पर किसी विश्वस्त परिचारिका के साथ बुलवावे ॥ २७ ॥

मुण्डजटिलकुहकप्रतिसंसर्गं बाह्याभिश्च दासीभिः प्रतिषेधयेत् ॥२८॥ न चैनाः कुल्याः पश्येयुरन्यत्र गर्भव्याधिसंस्थाभ्याम् ॥२९॥

मुण्डी, जटी, तथा अन्य वञ्चक पुरुषोंके साथ, और बाहरकी दासियों के साथ रानियोंका किसी प्रकारका भी संपर्क न होने दे ॥ २८ ॥ और इनके (रानियोंके) बन्धु बान्धव भी इनको प्रसव तथा बीमारी आदिके समयके अतिरिक्त न देख सकें ॥ २९ ॥

रूपाजीवाः स्नानप्रघर्षशुद्धशरीराः परिवर्तितवस्त्रालंकाराः पश्येयुः ॥ ३० ॥

स्नान तथा उबटन आदिसे शरीरको शुद्ध करके, तथा वस्त्र और अलंकारों (आभूषणों) से सुसज्जित, होकर ही वेश्या तथा अन्य रानियां राजाको देखें ॥ ३० ॥

आशीतिकाः पुरुषाः पञ्चाशत्काः स्त्रियो वा मातापितृव्यञ्जनाः स्थविरवर्षवराभ्यागारिकाश्चावरोधानां शौचाशौचं विद्युः स्थापयेयुश्च स्वामिहिते ॥ ३१ ॥

अस्सी वर्षकी अवस्थाके पुरुष तथा पचास वर्षकी बूढ़ी स्त्रियां माता पिताके वेषमें, अर्थात् माता पिताकी तरह रानियोंका हित तथा पालन करनेवाले और बूढ़े तथा नपुंसक घरके अन्य कार्योंको करनेवाले, अवरोध अर्थात् अन्तःपुरकी रानियोंकी पवित्रता और अपवित्रताका सदा ध्यान रक्खें। तथा उनको (रानियोंको) सदा अपने स्वामीके कल्याणकी ओर ही लगाये रक्खें ॥ ३१ ॥

स्वभूमौ च वसेत्सर्वः परभूमौ न सञ्चरेत् ।
न च बाह्येन संसर्गं कश्चिदाभ्यन्तरो व्रजेत् ॥ ३२ ॥

अपने २ स्थानपर ही सब (रानी, तथा अन्य अन्तःपुरके परिचारक जन) लोग रहें, दूसरेके स्थान पर आना जाना न रक्खें । और कोई भी भीतर का आदमी बाहरके किसी आदमीसे न मिले ॥ ३२ ॥

सर्वं चावेक्षितं द्रव्यं निबद्धागमनिर्गमम् ।
निर्गच्छेदभिगच्छेद्वा मुद्रासंक्रान्तभूमिकम् ॥ ३३ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे विंशो ऽध्यायः ॥ २० ॥

जो वस्तु महलोंके भीतरसे बाहर जावे, तथा बाहरसे भीतर आवे, वह सब अच्छी तरह देख लेनी चाहिये, और उसके आने जानेका स्थान तथा उसके सम्बन्धकी अन्य आवश्यक बातें भी पुस्तकमें लिख देनी चाहियें । तथा आने जानेवाली प्रत्येक वस्तुके ऊपर मुहर भी लगा देनी चाहिये । बिना मुहरके कोई भी वस्तु बाहर भीतर न जाने आने पावे ॥ ३३ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें बीसवां अध्याय समाप्त ।

इक्कीसवां अध्याय ।

१८ प्रकरण ।

आत्मरक्षा ।

पुत्र और स्त्रियोंसे राजाकी रक्षाका निरूपण कर दिया गया है । अब अन्य व्यक्तियोंसे भी राजाकी रक्षा किसप्रकार होनी चाहिये, इसका विधान किया जाता है ।

शयनादुत्थितः स्त्रीगणैर्धन्विभिः परिगृह्येत ॥ १ ॥ द्वितीयस्यां कक्ष्यायां कञ्चुकोष्णीषिभिर्वर्षवराभ्यागारिकैः ॥ २ ॥

प्रातः काल बिस्तरेसे उठतेही राजाको, उसकी रक्षाके लिये हाथमें धनुष लिये हुए स्त्रियोंका समूह चारों ओरसे घेर लेवे । अर्थात् उसके चारों ओर उपस्थित रहे ॥ १ ॥ जब राजा अपने वासगृहसे निकलकर दूसरी कक्ष्या (महलके दूसरे विभाग) में जावे, तो वहांपर कुर्त्ते और पगड़ी पहने हुए नपुंसक तथा अन्य गृहप्रबन्ध करने वाले पुरुष, राजाको सब ओरसे सुरक्षित रक्खें ॥२॥

तृतीयस्यां कुब्जवामनकिरातैः ॥ ३ ॥ चतुर्थ्यां मन्त्रिभिः संबन्धिभिर्दौवारिकैश्च प्रासपाणिभिः ॥ ४ ॥ पितृपैतामहं महासंबन्धानुबन्धं शिक्षितमनुरक्तं कृतकर्माणं जनमासन्नं कुर्वीत ॥५॥

जब राजा तीसरी कक्ष्यामें जावे, तो वहां कुबड़े, वामन, तथा किरात आदिक पुरुष राजाकी रक्षा करें ॥ ३ ॥ और चौथी कक्ष्यामें पहुंचनेपर राजाकी रक्षा, मन्त्रियों, सम्बन्धियों, तथा हाथमें भाले आदि लिये हुए द्वारपालोंके द्वारा होनी चाहिये ॥४॥ वंश परम्परासे प्राप्त हुए, बड़े उच्च कुलोंमें उत्पन्न हुए २, शिक्षित, अपनेमें अनुराग रखने वाले; तथा प्रत्येक कार्यको समझने वाले पुरुषोंको, राजा अपने समीप रक्खे । अर्थात् ऐसे पुरुषोंको अपना देहरक्षक नियुक्त करे ॥ ५ ॥

नान्यतोदेशीयमकृतार्थमानं स्वदेशीयं वाप्यपकृत्योपगृहीतम् ॥ ६ ॥ अन्तर्वंशिकसैन्यं राजानमन्तःपुरं च रक्षेत् ॥ ७ ॥

धन सम्पत्ति तथा सत्कारको न प्राप्त हुए २ विदेशी पुरुषको, तथा पहिले एकबार अपनेसे भिन्न होकर फिर आकर मिले हुए अपने देशके पुरुषको भी, राजा कदापि अपना देहरक्षक न बनावे ॥ ६ ॥ भीतर महलोंमें नियुक्त हुई २ सेना, राजा और अन्तःपुर (रानी आदि) दोनोंकी रक्षा करे ॥ ७ ॥

गुप्ते देशे माहानसिकः सर्वमास्वादबाहुल्येन कर्म कारयेत् ॥ ८ ॥ तद्राजा तथैव प्रतिभुञ्जीत पूर्वमग्नये वयोभ्यश्च बलिं कृत्वा ॥ ९ ॥

माहानसिक (पाकशालामें कार्य करने वाले पाचकोंका अध्यक्ष या निरीक्षक=राजाका भोजनाधिकृत पुरुष), किसी सुरक्षित स्थानमें, खानेकी हरएक चीज़का स्वाद ले २ कर उन्हें अच्छीतरह तैयार करावे । अथवा हरएक चीज़को स्वादु बनवावे ॥ ८ ॥ तदनन्तर राजा, इसप्रकार तैयार हुए २ भोजनको, पहिले बलिवैश्वदेव करके, अर्थात् अग्नि और पक्षियों आदिको बलिदेकर फिर स्वयं खावे ॥ ९ ॥

अग्नेर्ज्वालाधूमनीलता शब्दस्फोटनं च विषयुक्तस्य वयसां विपत्तिश्च ॥ १० ॥ अन्नस्योष्मा मयूरग्रीवाभः शैत्यमाशुक्लिष्टस्येव वैवर्ण्यं सोदकत्वमक्लिन्नत्वं च ॥ ११ ॥

विषमिश्रित अन्नको अग्निमें डालनेसे अग्निकी लपट और धुआं दोनों नीले रंगके निकलते हैं, और उससें 'चट चट' इसप्रकार शब्द भी होता है । तथा विषमिश्रित अन्न खानेपर पक्षियोंकी विपत्ति अर्थात् मृत्यु उपस्थित

होजाती है ॥ १० ॥ विषयुक्त अन्नका भाफ़ मोरकी गर्दनके समान रंगवाली होती है, तथा वह अन्न बहुत जल्दी ठण्डा होजाता है, हाथमें छूनेसे या ज़रा तोड़ने मोड़नेसे ही उसका रंग बदल जाता है, उसमें गांठसी पड़ जाती हैं, और वह अन्न अच्छीतरह पकता भी नहीं ॥ ११ ॥

व्यञ्जनानामाशुशुष्कत्वं च क्राथश्यामफेनपटलविच्छिन्नभावो गन्धस्पर्शरसवधश्च ॥ १२ ॥

दाल आदि व्यञ्जन विषयुक्त होनेपर बहुत जल्दी सूखसे जाते हैं, यदि इनको फिर आगपर रखकर गरम किया जावे तो मठेकी तरह फट २ कर उबलते हैं, झागोंका रंग कुछ कालासा, और वे फटे २ से अलहदा २ होजाते हैं। तथा दाल आदिके असली गन्ध स्पर्श और रस (स्वाद) का भी नाश होजाता है ॥ १२ ॥

द्रव्येषु हीनातिरिक्तच्छायादर्शनम् ॥ १३ ॥ फेनपटलसीमान्तोर्ध्वराजीदर्शनं च ॥ १४ ॥

यदि रसेदार शाक भाजी आदिमें विष मिला हुआ हो, तो उसमें अपनी आकृति विकृत हुई २ दीखती है। अर्थात् कभी छोटी या कभी बड़ी दीखती है, ठीक नहीं दीखती ॥ १३ ॥ और झागोंका समूह अलहदा तथा पानी अलहदा दीखता है, और उसके ऊपर रेखासी दीखने लगती है ॥ १४ ॥

रसस्य मध्ये नीला राजी पयसस्ताम्रा मद्यतोययोः काली दध्नः श्यामा च मधुनः श्वेता ॥ १५ ॥

घी, तेल तथा रस (ईखका रस) आदिमें विष मिला हुआ होनेपर, उसमें नीले रंगकी रेखायें दीखती हैं, दूधमें ताम्रवर्णकी (तांबेके रंगकी तरहकी) शराब और पानीमें काले रंगकी, दहीमें श्याम और शहदमें सफ़ेद रंगकी रेखायें दीखने लगती हैं ॥ १५ ॥

द्रव्याणामार्द्राणामाशुप्रम्लानत्वमुत्पक्वभावः क्राथनीलश्यामता च ॥ १६ ॥

गीले भक्ष्य द्रव्य अर्थात् आम अनार आदि फलोंके विषयुक्त होनेपर, वे (फल आदि) बहुत जल्दी मुरझा जाते हैं, अर्थात् चुड़े हुएसे होजाते हैं; और उनमेंसे सड़े हुएकी तरह दुर्गन्ध आने लगती है, तथा पकानेपर वे फल कुछ काले, और बन्दरके रंगकी तरह कुछ भुरभुरेसे होजाते हैं ॥ १६ ॥

शुष्काणामाशुशातनं वैवर्ण्यं च ॥ १७ ॥ कठिनानां मृदुत्वं मृदूनां कठिनत्वं च ॥ १८ ॥ तदभ्याशे क्षुद्रसत्त्ववधश्च ॥१९॥

सूखे हुए द्रव्योंमें विष मिलाया हो, तो उन द्रव्योंका बहुत जल्दी चूरा सा बन जाता है। तथा रंग भी बदल जाता है ॥ १७ ॥ विष मिलानेसे कठिन द्रव्य मृदु (मुलायम), और मृदु द्रव्य कठिन होजाते हैं ॥ १८ ॥ विषयुक्त वस्तुके समीप गिरने वाले छोटे छोटे कीड़े (चींटी आदि) की मृत्यु होजाती है ॥ १९ ॥

आस्तरणप्रावरणानां श्याममण्डलता तन्तुरोमपक्ष्मशातनं च ॥ २० ॥ लोहमणिमयानां पङ्कमलोपदेहता ॥ २१ ॥ स्नेहरागगौरवप्रभाववर्णस्पर्शवधश्चेति विषयुक्तलिङ्गानि ॥ २२ ॥

बिछाने और ओढ़नेके कपड़ोंपर विषका प्रयोग करनेपर, कपड़ोंमें उस २ जगह कुछ काले या और किसी प्रकारके धब्बे पड़ जाते हैं। तथा उस स्थानपरसे सूत, कपड़ोंके तन्तुओंका, और ऊनी कपड़ोंके बालोंका कटना शुरू होजाता है ॥ २० ॥ सोना चांदी आदि धातुओंकी तथा रत्न आदि मणियोंकी बनी हुई वस्तुओंको यदि विषयुक्त कर दिया जावे, तो वे धूंधले मटमैले होजाते हैं, और इनके ऊपर कोई मैला कीचड़ सा चढ़ा हुआ होता है ॥ २१ ॥ तथा उनके, चिकनाहट, कान्ति, भारीपन, प्रभाव (अपना कार्य करनेकी शक्ति), और स्पर्श आदि गुणोंका सर्वथा नाश होजाता है। यहांतक विषयुक्त पदार्थोंकी पहचानके लिये उन २ विशेष लक्षणों या चिन्होंका निरूपण किया गया ॥ २२ ॥

विषप्रदस्य तु शुष्कश्याववक्त्रता वाक्सङ्गः स्वेदो विजृम्भणं चातिमात्रं वेपथुः प्रस्खलनं वाक्यविप्रेक्षणमावेगः स्वकर्मणि स्वभूमौ चानवस्थानमिति ॥ २३ ॥

अब विष देनेवाले पुरुषको पहचानकर पकड़नेके लिये, उसके भी कुछ चिन्ह बताते हैं:—विष देनेवाले पुरुषका मुंह कुछ सूखजाता, तथा विवर्ण हो-जाता है, बात चीत करते समय वाणी लड़खड़ाने लगती है, पसीना आजाता है, घबड़ाहटके कारण शरीरमें जंभाई तथा कंपकपी होने लगती है, साफ रास्ता होनेपर भी बेचैनीके कारण वह पुरुष बार बार गिरपड़ता है, यदि कोई आदमी वैसेही आपसमें बात कर रहे हों, तो ध्यानसे सुनने लगता है—कहीं ये मेरी ही तो बात नहीं कर रहे; कोई बात होनेपर झट उसे क्रोध आजाता है (किसी किसी पुस्तकमें आवेग की जगह आवश पाठ है, अर्थ दोनोंका एकही है ,

अपने कार्योंमें तथा अपने स्थानपर उसका चित्त स्थिर नहीं रहता, इधर उधर हड़बड़ाया हुआसा घूमता रहता है ॥ २३ ॥

तस्मादस्य जाङ्गलीविदो भिषजश्चासन्नाः स्युः ॥ २४ ॥ भिषग्भैषज्यागारादास्वादविशुद्धमौषधं गृहीत्वा पाचकपोषकाभ्यामात्मना च प्रतिस्वाद्य राज्ञे प्रयच्छेत् ॥ २५ ॥ पानं पानीयं चौषधेन व्याख्यातम् ॥ २६ ॥

इसलिये विषविद्याको जानने वाले, तथा अन्य चिकित्सक पुरुषभी राजाके समीप अवश्य रहें। अथवा राजा अपने देह रक्षकोंमें इन पुरुषोंको भी अवश्य रक्खे ॥ २४ ॥ चिकित्सकको उचित है, कि वह औषधशालासे स्वयं खाकर परीक्षा कीहुई औषधिको लेकर, तथा राजाके सामने ही उस औषधिमें से कुछ थोड़ीसी, उसके पकाने वाले तथा पीसने वाले पुरुषको खिलाकर, एवं यथावसर स्वयं भी खाकर फिर राजाको देवे ॥ २५ ॥ इसी तरह औषधिके समान, मद्य तथा जलके विषयमें भी समझना चाहिये। अर्थात् मद्य और जल को भी पहिले परिचारक पुरुष स्वयं पीकर फिर राजाको देवें ॥ २६ ॥

कल्पकप्रसाधकाः स्नानशुद्धवस्त्रहस्ताःसमुद्रमुपकरणमन्तर्वंशिकहस्तादादाय परिचरेयुः ॥ २७ ॥ स्नापकसंवाहकास्तरकरजकमालाकारकर्म दास्यः कुर्युः ॥ २८ ॥

दाढ़ी मूंछ बनाने वाले नाई, तथा वस्त्र अलङ्कार आदि धारण कराने वाले पुरुष; स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहन कर तथा हाथ आदि अच्छी तरह साफ करके, मोहर लगे हुए, उस्तरे आदि तथा वस्त्र अलङ्कार आदिके बक्सों को, महलोंके अन्दर काम करने वाले कञ्चुकी आदिके हाथसे लेकर राजाकी परिचर्या (सेवा) करें ॥ २७ ॥ राजाको स्नान कराना, उसके अङ्गोंका दबाना, बिस्तर आदि बिछाना, कपड़े धोना तथा माला आदि बनाना, इन सब कार्योंको दासियां ही करें ॥२८ ॥

ताभिरधिष्ठिता वा शिल्पिनः ॥ २९ ॥ आत्मचक्षुषि निवेश्य वस्त्रमाल्यं दद्युः ॥ ३० ॥ स्नानानुलेपनप्रघर्षचूर्णवासस्नानीयानि स्ववक्षोबाहुषु च ॥ ३१ ॥ एतेन परस्मादागतकं च व्याख्यातम् ॥ ३२ ॥

अथवा दासियोंकी देखरेखमें अन्य शिल्पी अर्थात् उस२ कार्यके करनेमें चतुर कारीगर लोगही इन कार्योंको करें ॥२९॥ अपनी आंखोंसे देखकर ही दासियां उन

वस्त्र तथा माला आदिको राजाको न दें। जिससे कि उसमें विष आदिके योग का सन्देह न रहे ॥ ३० ॥ स्नानके समय उपयोग की वस्तुयें उबटन आदि, चन्दन आदि अनुलेप, तथा वस्त्र आदिको सुगन्धित करने वाले अन्य चूर्ण (पाउडर) पटवास आदि, और स्नानके समय सिर आदिमें लगाने की सुगन्धित वस्तुओंको पहिले दासियां अपनी छाती तथा बांह आदि पर लगा कर देख लेवें, फिर राजाको उनका उपयोग करावें ॥ ३१ ॥ इससे दूसरे स्थान से आई हुई वस्तुके उपयोगके विषयमें भी समझ लेना चाहिये ॥ ३२ ॥

कुशीलवाः शस्त्राग्निरसवर्जं नर्मयेयुः ॥ ३३ ॥ आतोद्यानि चैषामन्तस्तिष्ठेयुरश्वरथद्विपालंकाराश्च ॥ ३४ ॥

नट आदि अपने खेलोंमें हथियार, आग तथा विष आदि प्रयोगके खेलोंको छोड़ कर दूसरे खेल ही राजाके सामने दिखावें ॥ ३३ ॥ नटोंके उपयोगमें आने वाले बाजे आदि राजभवनमें ही रक्खे रहने चाहियें, अर्थात् नट अपने बाजोंको (विष आदि प्रयोगकी शङ्का होने के कारण) राजाके सामने लाकर नहीं बजा सकते, इसी तरह इनके अन्य उपयोगी सामान घोड़े रथ हाथी तथा भिन्न २ प्रकारके अलङ्कार आदि राजभवन में ही मिलने चाहियें। ॥ ३४ ॥

मौलपुरुषाधिष्ठितं यानवाहनमारोहेत् ॥ ३५ ॥ नावं चाप्तनाविकाधिष्ठिताम् ॥ ३६ ॥ अन्यनौप्रतिबद्धां वातवेगवशां च नोपेयात् ॥ ३७ ॥ उदकान्ते सैन्यमासीत ॥ ३८ ॥

विश्वस्त प्रधान पुरुषके साथ २ ही राजा, पालकी आदि यानों तथा घोड़े आदि सवारियों पर चढ़े ॥ ३५ ॥ तथा विश्वस्त नाविकसे युक्त नौका पर चढ़े, अन्यथा नहीं ॥ ३६ ॥ दूसरी किसी नावके साथ बन्धी हुई नावपर, और वायुके वेगसे बहने वाली नाव पर कदापि न चढ़े ॥ ३७ ॥ नावके चलने पर, नदीके दोनों तटों पर रक्षाके लिये सेना उपस्थित रहनी चाहिये ॥ ३८ ॥

मत्स्यग्राहविशुद्धमवगाहेत ॥ ३९ ॥ व्यालग्राहपरिशुद्धमुद्यानं गच्छेत् ॥ ४० ॥ लुब्धकैः श्वगणिभिरपास्तस्तेनव्यालपराबाधभयं चललक्ष्यपरिचयार्थं मृगारण्यं गच्छेत् ॥ ४१ ॥

मछियारोंके द्वारा परिशोधित (जिसमें मछियारोंने घुस कर जल जन्तुओंसे किसी प्रकार का भय न होने का निर्णय कर दिया हो, ऐसे) नदी जल में ही, स्नान करनेके लिये प्रवेश करे ॥ ३९ ॥ सपेरोंसे परिशोधित उद्यानमें

ही भ्रमण आदि के लिये जावे ॥ ४० ॥ कुत्ते रखने वाले शिकारियोंके द्वारा, चोर तथा व्याघ्र आदिके भयसे रहित हरिणोंके जंगलोंमें, चलते हुए लक्ष्य पर निशाना मारने का अभ्यास करनेके लिये जावे ॥ ४१ ॥

आप्तशस्त्रग्राहाधिष्ठितः सिद्धतापसं पश्येत् ॥ ४२ ॥ मन्त्रिपरिषदा सामन्तदूतं संनद्धो ऽश्वं हास्तिनं रथं वारूढः संनद्धमनीकं गच्छेत् ॥ ४३ ॥

राजाको देखनेके लिये नये आये हुए किसी सिद्ध या तपस्वीको, शस्त्र सहित विश्वस्त पुरुषके साथ जाकर ही देखे, अर्थात् उससे मिले ॥४२॥ मन्त्रिपरिषद्के साथ २ ही सामन्तके दूतसे मिले। तथा युद्धोचित कवच आदि वेषको पहिन कर ही, घोड़े हाथी या रथपर सवार होकर युद्धके लिये तैय्यार हुई २ सेनाको देखे ॥ ४३ ॥

निर्याणे ऽभियाने च राजमार्गमुभयतः कृतारक्षं दण्डिभिरपास्तशस्त्रहस्तप्रव्रजितव्यङ्गं गच्छेत् ॥ ४४ ॥ न पुरुषसंबाधमवगाहेत ॥ ४५ ॥

दूसरे देशको जाने या वहांसे आनेके समय, हाथोंमें दण्ड लिये हुए रक्षक पुरुषोंके द्वारा दोनों ओरसे सुरक्षित राजमार्ग पर ही, राजा चले। तथा इस प्रकार का प्रबन्ध करे, कि जिससे मार्गमें कोई शस्त्र रहित पुरुष, सन्यासी या लूला लंगड़ा अङ्गहीन पुरुष न दीखे ॥ ४४ ॥ पुरुषोंकी भीड़में भीतर कभी न घुसे ॥ ४५ ॥

यात्रासमाजोत्सवप्रवहणानि दशवर्गिकाधिष्ठितानि गच्छेत् ॥ ४६ ॥

किसी देवस्थान, समाज, (सभा) उत्सव, या पार्टी (प्रवहण) आदि में जावे, तो कमसे कम सेनाके दस जवान तथा उनका नायक उस स्थानमें अवश्य उपस्थित होने चाहियें। ऐसे स्थानोंमें अकेला, तथा अपने परिमित परिवारको लेकर कदापि न जावे ॥ ४६ ॥

यथा च योगपुरुषैरन्यान्राजाधितिष्ठति ।
तथायमन्यबाधेभ्यः रक्षेदात्मानमात्मवान् ॥ ४७ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे आत्मरक्षितकम् एकविंशो ऽध्यायः ॥२१॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य विनयाधिकारिकं
प्रथममधिकरणं समाप्तम् ॥

जिस प्रकार यह प्रयत्नशील विजिगीषु राजा, अपने गूढ पुरुषोंके द्वारा दूसरोंको कष्ट पहुंचाता है। इसी प्रकार दूसरोंके द्वारा प्रयुक्त किये हुए कष्टोंसे स्वयं अपनी रक्षा भी करे ॥ ४७ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें इक्कीसवां अध्याय समाप्त।

विनयाधिकरण प्रथम अधिकरण समाप्त।

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण

पहिला अध्याय।

१९ प्रकरण।

जनपदनिवेश।

भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशापवाहनेन स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा निवेशयेत् ॥ १ ॥ शूद्रकर्षकप्रायं कुलशतावरं पञ्चशतकुलपरं ग्रामं क्रोशद्विक्रोशसीमानमन्योन्यारक्षं निवेशयेत् ॥ २ ॥

पुराने या नये जनपदको राजा, दूसरे देशसे मनुष्योंको बुलाकर अथवा अपने देशकी जन संख्याको अच्छी तरह बढ़ाकर बसावे ॥ १ ॥ जिसमें शूद्र और किसान ही प्रायः अधिक हों, ऐसे कमसे कम सौ घरों वाले और अधिक से अधिक पांचसौ घरों वाले गांवको बसावे। एक गांवका दूसरेसे एक कोस या दो कोस का फासला होना चाहिये। ये इस तरह बसाये जावें, जिससे कि अवसर आने पर एक दूसरे की सहायता कर सकें ॥ २ ॥

नदीशैलवनगृष्टिदरीसेतुबन्धशाल्मलीशमीक्षीरवृक्षानन्तेषु सीम्नां स्थापयेत् ॥३॥ अष्टशतग्राम्या मध्ये स्थानीयं चतुःशतग्राम्या द्रोणमुखं द्विशतग्राम्या खार्वटिकं दशग्रामीसंग्रहेण संग्रहणं स्थापयेत् ॥ ४ ॥ अन्तेष्वन्तपालदुर्गाणि ॥ ५ ॥

नदी, पहाड़ी, जंगल,बेरीके वृक्ष, खाई, सेतुबन्ध (तालाब आदि), सिम्भलके वृक्ष, शमी (छोंकरा) के वृक्ष, तथा बड़ आदि वृक्षोंके द्वारा, उन गांवोंकी सीमाकी स्थापना करे ॥ ३ ॥ आठ सौ गांवोंके बीचमें एक 'स्थानीय' की स्थापना करे; चारसौ गांवोंके समूहमें 'द्रोणमुख' दो सौ गांवोंमें 'खार्वटिक' (किसी पुस्तकमें 'कार्वटिक' भी पाठ है), और दस गांवोंका संग्रह करनेसे 'संग्रहण' नामके स्थान विशेषकी स्थापना करे ॥ ४ ॥ राज्यकी सीमा पर अन्तपाल नामक अध्यक्षसे अधिष्ठित दुर्गोंकी स्थापना करे ॥ ५ ॥

लगान आदि देने वाले किसानोंको बंजर भूमि दीगई है, और उन्होंने अपनेही परिश्रमसे उसे खेतीके योग्य बनाया है; राजाको चाहिये कि उन किसानोंसे उस ज़मीनको कभी न लेवे। ऐसी ज़मीनोंके ऊपर किसानोंको पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिये ॥ ११ ॥

अकृषतामाच्छिद्यान्येभ्यः प्रयच्छेत् ॥ १२ ॥ ग्रामभृतकवैदेहका वा कृषेयुः ॥ १३ ॥

यदि कोई किसान ज़मीनमें खेती नहीं करता, और उसे वैसेही पड़ी रहने देता है, राजाको चाहिये, उससे वह ज़मीन छीनकर और किसी खेती करने वाले किसानको देदेवे ॥ १२ ॥ अथवा ऐसे किसानके न मिलनेपर उस ज़मीनमें गांवके अधिकारी पुरुष या व्यापारी लोग खेती करें ॥ १३ ॥

अकृषन्तो ऽवहीनं दद्युः ॥ १४ ॥ धान्यपशुहिरण्यैश्चैनाननुगृह्णीयात्तान्यनुसुखेन दद्युः ॥ १५ ॥

यदि पहिले स्वीकार करके फिर खेती न करें, तो वे उसका हर्जाना देवें ॥ १४ ॥ राजाको उचित है कि वह धान्य (बीज आदिके लिये, अथवा यथावसर खानेके लिये भी), पशु और धन आदि खेतीके उपयोगी पदार्थोंके द्वारा, यथावसर किसानोंकी सहायता देता रहे। फसल पैदा होनेपर किसान भी अपने सुभीतेके अनुसार धीरे २, ये सब वस्तु राजाको देदेवें ॥ १५ ॥

अनुग्रहपरिहारौ चैभ्यः कोशवृद्धिकरौ दद्यात् ॥ १६ ॥

राजा, किसानोंके स्वास्थ्यके लिये परिमित धन देता रहे, जिससे कि सुपुष्ट किसान अधिक काम करके राजकोषके बढ़ानेमें सिद्ध हों। (स्वास्थ्य बढ़ानेके लिये दिया हुआ धन 'अनुग्रह' शब्दसे यहां कहागया है; यह धन अखाड़े, गदका आदि भिन्न २ प्रकारके शक्ति वर्द्धक व्यायामों में व्यय किया जावे। बिगड़े हुए स्वास्थ्यको सुधारनेके लिये दिया हुआ धन 'परिहार' शब्दसे यहांपर कहागया है; यह धन गांव २ में औषधालय आदि स्थापन करनेमें व्यय किया जावे। ये ही स्वास्थ्य संपादनके उपाय हैं।) ॥ १६ ॥

कोशोपघातिकौ वर्जयेत् ॥ १७ ॥ अल्पकोशो हि राजा पौरजानपदानेव ग्रसते ॥ १८ ॥ निवेशसमकालं यथागतकं वा परिहारं दद्यात् ॥ १९ ॥

परन्तु यदि स्वास्थ्यके लिये अनुग्रह और परिहार देनेसे राजकोशको कोई हानि पहुंचे, तो कदापि न देवे ॥ १७ ॥ क्योंकि कोश थोड़ा होनेपर

काम करनेके लिये अवश्य देवे ॥ २५ ॥ यदि ऐसा करनेमें कुछ आनाकानी करे, तो उससे, उसके अपने कामके हिस्सेका सारा खर्च लिया जावे ॥२६॥ और कार्य समाप्त होनेपर उससे,उसे कुछभी फायदा न उठाने दिया जावे ॥ २७॥

मत्स्यप्लवहरितपण्यानां सेतुषु राजा स्वाम्यं गच्छेत् ॥ २८ ॥ दासाहितकबन्धूनशृण्वतो राजा विनयं ग्राहयेत् ॥ २९ ॥

इस प्रकारके बड़े २ जलाशयोंमें उत्पन्न होने वाली, मछली, प्लव, (कारण्डव–बतखकी तरहका एक जलका पक्षी), और कमलदण्ड आदि व्यापारी वस्तुओंपर राजाकाही अधिकार रहे ॥ २८ ॥ दास (भृति लेकर सेवा करने वाले नौकर), तथा आहितक (स्वामीसे धन आदि लेकर आधिरूपसे रक्खे हुए) बन्धु या पुत्र आदि यदि अपने मालिककी आज्ञाका उल्लंघन करें, तो राजा उन्हें उचित रीतिसे शिक्षा देवे ॥ २९ ॥

बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथांश्च राजा बिभृयात् ॥ ३० ॥ स्त्रियमप्रजातां प्रजातायाश्च पुत्रान् ॥ ३१ ॥ बालद्रव्यं ग्रामवृद्धा वर्धयेयुराव्यवहारप्रापणात् ॥ ३२ ॥ देवद्रव्यं च ॥ ३३ ॥

बालक, बूढ़े, रोगी, दुःखी तथा अनाथ व्यक्तियोंका, राजा सदा भरण पोषण करे ॥ ३० ॥ अप्रजाता स्त्री (जिसके सन्तान न होती हो, अर्थात् बन्ध्या स्त्री) और प्रजाता स्त्रीके पुत्रादिकी, राजा सदा रक्षा करे, यदि वे अनाथ हों ॥ ३१ ॥ बालककी सम्पत्तिको, गांवके लोग सदा बढ़ाते रहें, जब तककि वह बालक बालिग न हो जावे ॥३२॥ इसी प्रकार जो द्रव्य देवताके निमित्तसे निश्चित किया हुआ हो, उसेभी सदा बढ़ाते रहें ॥ ३३ ॥

अपत्यदारान् मातापितरौ भ्रातॄनप्राप्तव्यवहारान्भगिनीः कन्या विधवाश्चाबिभ्रतः शक्तिमतो द्वादशपणो दण्डो ऽन्यत्र पतितेभ्यः ॥ ३४ ॥ अन्यत्र मातुः ॥ ३५ ॥

लड़के स्त्रियों, माता पिता, नाबालिग भाई, अविवाहित तथा विधवा बहिन, आदिका, जो पुरुष सामर्थ्य रखते हुएभी पालन पोषण न करे, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय। परन्तु ये लड़के स्त्री आदि पतित न हों, यदि किसी कारणसे पतित होगये हों, तो समर्थ सम्बन्धीको इनके पालन पोषणके लिये बाधित नहीं किया जासकता ॥ ३४ ॥ परन्तु यह प्रतिषेध माताके लिये नहीं है अर्थात् माता यदि पतित भी होगई हो तो भी उसकी रक्षा करनीही चाहिये ॥ ३५ ॥

पुत्रदारमप्रतिविधाय प्रव्रजतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३६ ॥ स्त्रियं च प्रव्राजयतः ॥३७॥ लुप्तव्यवायः प्रव्रजेदापृच्छ्य धर्मस्थान् ॥ ३८ ॥ अन्यथा नियम्येत ॥ ३९ ॥

पुत्र और स्त्रियोंके जीवन निर्वाहका प्रबन्ध न करके यदि कोई पुरुष सन्यासी होना चाहे, तो उसे प्रथम साहसदण्ड दिया जाय ॥ ३६ ॥ इसीप्रकार जो पुरुष अपने साथ स्त्रीको भी संन्यासी बनानेके लिये प्रेरणा करे, उसे भी प्रथम साहसदण्ड दिया जावे ॥ ३७ ॥ जब पुरुषकी मैथुनशक्ति सर्वथा नष्ट होजाय, उस समय धर्मस्थ (धर्म शास्त्रके अनुसार व्यवहारपदोंका निर्णय करने वाले) अधिकारी पुरुषोंकी अनुमति लेकर, वह संन्यासी होवे ॥३८॥ यदि कोई पुरुष इस नियमका उल्लंघन करे, तो उसे पकड़कर कारागारमें बन्द कर दिया जावे ॥ ३९ ॥

वानप्रस्थादन्यः प्रव्रजितभावः सजातादन्यः संघः सामुत्थायिकादन्यः समयानुबन्धो वा नास्य जनपदमुपनिविशेत ॥ ४० ॥

वानप्रस्थके अतिरिक्त कोई संन्यासी, इसके राज्यमें न रहने पावे, (इस जनपद निवासके निषेधका प्रयोजन यही है, कि प्रायः इसतरहके संन्यासी शङ्काकेही स्थान होते हैं, क्योंकि इस वेषमें शत्रुके पुरुषोंका अधिक रहना भी सम्भव है) इसीप्रकार राजा और राज्यके कल्याणके लिये एकत्रित हुए जनसंघसे अतिरिक्त दुष्ट जनसंघ, तथा इकट्ठे मिलकर सेतुबन्ध आदि, राजा प्रजाके हितकारी कार्योंको करने वाले पुरुषोंके समुदायसे अतिरिक्त जनपदमें द्रोह आदि उत्पन्न करनेकी अभिलाषासे कोई जनसमुदाय न रहने पावे ॥ ४० ॥

न च तत्रारामविहारार्थाः शालाः स्युः ॥ ४१ ॥ नटनर्तनगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवा वा न कर्मविघ्नं कुर्युः ॥ ४२ ॥ निराश्रयत्वाद्ग्रामाणां क्षेत्राभिरतत्वाच्च पुरुषाणां कोशविष्टिद्रव्यधान्यरसवृद्धिर्भवतीति ॥ ४३ ॥

जनपदमें सर्वसाधारणके विनोदके स्थान उपवन आदि तथा इसीप्रकारकी दर्शनीय शाला (नाट्यगृह आदि) न होनी चाहियें ॥ ४१ ॥ जिससे कि नट, नर्तक, गायक, वादक, वाग्जीवन (कथक=कथा आदि करने वाले) कुशीलव आदि वहां अपने खेल दिखाकर कृषि आदि कार्योंमें विघ्न उत्पन्न न कर सकें ॥ ४२ ॥ क्योंकि गांवोंके निराश्रय होनेसे अर्थात् ग्रामोंमें नाट्यशाला आदिके न होनेसे और ग्रामनिवासी पुरुषोंके अपने २ खेतके कामोंमें लगे रहनेसेही कोश, विष्टि (हठ पूर्वक कराये जाने वाले कार्य) द्रव्य (लकड़ी आदि) धान्य (हर

तरहके अन्न), और रस (घी तेल इक्षुरस), आदि वस्तुओंकी अच्छीतरह वृद्धि होसकती है ॥ ४३ ॥

परचक्राटवीग्रस्तं व्याधिदुर्भिक्षपीडितम् ।
देशं परिहरेद्राजा व्ययक्रीडाश्च वारयेत् ॥ ४४ ॥

शत्रुसमूह और आटविक पुरुषोंसे घिरेहुए, व्याधि और दुर्भिक्षसे पीड़ित हुए २ देशको, राजा इन आपत्तियोंसे बचावे । तथा धनका व्यय करने वाली क्रीड़ा या विलासप्रियता आदिको सर्वथा छोड़देवे ॥ ४४ ॥

दण्डविष्टिकराबाधैः रक्षेदुपहतां कृषिम् ।
स्तेनव्यालविषग्राहैः व्याधिभिश्च पशुव्रजान् ॥ ४५ ॥

दण्ड, विष्टि, और कर आदिके द्वारा उत्पन्न हुई बाधाओंके कारण नष्ट होती हुई कृषिको बचावे । अर्थात् किसानोंको उचितही दण्ड देवे, उनसे बेगार बहुत अधिक न ले, तथा कर आदि भी नियमानुसार उचितही लेवे, जिससे कि वे खेती अच्छीतरह कर सकें । इसीप्रकार चोर, हिंसक जन्तु, विषप्रयोग तथा अन्य प्रकारकी व्याधियोंसे पशुओंकी रक्षा करे ॥ ४५ ॥

वल्लभैः कार्मिकैः स्तेनैरन्तपालैश्च पीडितम् ।
शोधयेत्पशुसंघैश्च क्षीयमाणवणिक्पथम् ॥ ४६ ॥

वल्लभ (राजाके प्रिय पुरुष), कार्मिक (राजकर संग्रह करने वाले अधिकारी पुरुष=चुंगी या अन्य प्रकारके टैक्स वसूल करने वाले), चोर, अन्तपाल (सीमारक्षक), और व्याघ्र आदि हिंसक पशुओंसे पीडित; इसी लिये क्षीणताको प्राप्त होते हुए व्यापारी मार्गोंका परिशोधन राजा करे । अर्थात् इन सब आपत्तियोंसे मार्गोंकी रक्षा करे ॥ ४६ ॥

एवं द्रव्यद्विपवनं सेतुबन्धमथाकरान् ।
रक्षेत्पूर्वकृतान्राजा नवांश्चाभिप्रवर्तयेत् ॥ ४७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे जनपदनिवेशः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
आदितो द्वाविंशः ॥ २२ ॥

इसप्रकार राजा, पहिलेसे बने हुए द्रव्यवन (लकड़ीके जंगल), हस्तिवन (हाथियोंके जंगल), सेतुबन्ध और खानोंकी रक्षा करे । तथा आवश्यकतानुसार और नये द्रव्यवन आदिको बनवावे ॥ ४७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

२० प्रकरण

भूमिच्छिद्रविधान ।

जिस भूमिमें अन्न आदि उत्पन्न नहीं होसकता, उसका नाम 'भूमिच्छिद्र' है। इस प्रकारकी भूमिको किसतरह कामके योग्य बनाया जासकता है, इसी बातका निरूपण इस प्रकरणमें होगा।

अकृष्यायां भूमौ पशुभ्यो विवीतानि प्रयच्छेत् ॥ १ ॥ प्रदिष्टाभयस्थावरजङ्गमानि च ब्राह्मणेभ्यो ब्रह्मसोमारण्यानि तपोवनानि च तपस्विभ्यो गोरुतपराणि प्रयच्छेत् ॥ २ ॥

जिस भूमिमें कृषि न होसके, वहांपर पशुओंके लिये चरागाह आदि बनवा दिये जावें ॥ १ ॥ तथा स्थावर वृक्षलता आदि और जंगम मृग आदिका जहां अभयदान कियाहुआ हो, ऐसे एक गव्यूतिमात्र (चार कोसकी) दूरी तक फैले हुए, वेदाध्ययन और सोमयाग आदिके लिये अत्यन्त उचित अरण्योंको, वेदाध्यायी ब्राह्मणोंके लिये देदेवे। और इसी प्रकारके तपोवनोंको तपस्वियोंके लिये देदेवे ॥ २ ॥

तावन्मात्रमेकद्वारं खातगुप्तं स्वादुफलगुल्मगुच्छमकण्टकिद्रुम-मुत्तानतोयाशयं दान्तमृगचतुष्पदं भग्ननखदंष्ट्रव्यालं मार्गयुक-हस्तिहस्तिनीकलभं मृगवनं विहारार्थं राज्ञः कारयेत् ॥ ३ ॥

तथा चार कोस तककी फैले हुए, एक द्वार वाले, चारों ओर खोदी हुई खाईसे सुरक्षित, स्वादु फल, लता कुञ्ज, फूलोंके गुच्छे तथा कण्टक (कांटे) रहित वृक्षोंसे और थोड़े गहरे जलाशयोंसे युक्त, मनुष्योंसे परिचित मृग आदि तथा अन्य जंगली जानवरोंसे युक्त, कटे हुए नख और दाढ़ों वाले व्याघ्रोंसे युक्त, शिकारके योग्य हाथी हथिनी तथा इनके बच्चोंसे युक्त, मृगवनको राजाके विहारके लिये (अर्थात् शिकार आदि खेलनेके लिये) तयार करावे ॥ ३ ॥

सर्वातिथिमृगं प्रत्यन्ते चान्यन्मृगवनं भूमिवशेन वा निवेशयेत् ॥ ४ ॥ कुप्यप्रदिष्टानां च द्रव्याणामेकैकशो वा वनं निवेशयेत् ॥ ५ ॥ द्रव्यवनकर्मान्तानटवीश्च द्रव्यवनापाश्रयाः ॥ ६ ॥

इस वनके समीपही, योग्य भूमि होनेपर एक और मृगवन तैयार करवाया जावे उसमें सब देशोंके जानवर लाकर रक्खे जावें ४ कुप्याध्यक्ष

प्रकरणमें बताये हुए लकड़ी आदि द्रव्योंके लिये या अलहदा २ एक २ चीज़का जंगल लगाया जावे ॥ ५ ॥ द्रव्यवन सम्बन्धी (लकड़ीके जगलोंके सम्बन्धमें जितने कार्य हों, उन सब) कार्योंको, तथा अन्य जंगलोंके कार्योंको, द्रव्यवनोपजीवी (द्रव्यवनोंके सहारेपर ही अपनी जीविका करने वाले) पुरुषही सम्पादन करें ॥ ६ ॥

प्रत्यन्ते हस्तिवनमटव्यारक्ष्यं निवेशयेत् ॥ ७ ॥ नागवनाध्यक्षः पार्वतं नादेयं सारसमानूपं च नागवनं विदितपर्यन्तप्रवेशनिष्कसनं नागवनपालैः पालयेत् ॥ ८ ॥

अपने जनपदके सीमाप्रान्तमें, अटवीपाल (जंगलकी रक्षा करने वाले) पुरुषोंकी देख रेखमेंही एक हस्तिवन (हाथियोंके जंगल) की स्थापना करावे ॥ ७ ॥ हस्तिवनोंका प्रधान अध्यक्ष, पर्वतमें होने वाले, नदीके किनारेपर होने वाले, किसी बड़े भारी जलाशयके समीप होने वाले, तथा किसी जलमय प्रदेशमें होने वाले हस्तिवनोंके भीतर जाने आनेके मार्गोंको अच्छीतरह जानकर, उन २ हस्तिवनोंकी देखरेख करने वाले पुरुषोंके द्वारा, उनकी अच्छीतरह रक्षा करवावे ॥ ८ ॥

हस्तिघातिनं हन्युः ॥ ९ ॥ दन्तयुगं स्वयं मृतस्याहरतः सपादचतुष्पणो लाभः ॥ १०

जो कोई जंगली या अन्य पुरुष हाथीको मार डाले, तो उसे प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ९ ॥ अपने आप मरे हुए हाथीके दांतोंको उठाकर, लाकर जो पुरुष, रक्षकोंके सुपुर्द करदे, उसे सवाचार पण इनाम दिया जावे ॥ १० ॥

नागवनपाला हस्तिपकपादपाशिकसैमिकवनचरकपारिकर्मिकसखा हस्तिमूत्रपुरीषच्छन्नगन्धा भल्लातकीशाखाप्रतिच्छन्नाः पञ्चभिः सप्तभिर्वा हस्तिबन्धकीभिः सह चरन्तः शय्यास्थानपद्यालण्डकूलपातोद्देशेन हस्तिकुलपर्यग्रं विद्युः ॥ ११ ॥

हस्तिवनके रक्षक पुरुष; हस्तिपक (फ़ीलवान), पादपाशिक (जाल फैलाकर हाथियोंके पांवसे उन्हें फंसाने वाला), सैमिक (सीमारक्षक पुरुष), वनचरक (जंगल वासी अन्य पुरुष), और पारिकर्मिक (हाथियोंकी अच्छीतरह परिचर्या करनेमें निपुण), इन सब पुरुषोंको अपने साथ लेकर; तथा हाथीके मल मूत्रके गन्धके समानही किसी अन्य गन्धसे युक्त होकर, भिलावेकी शाखाओंसे अपने आपको ढक कर, हाथियोंका वशमें करने वाली पांच सात हथि

[illegible] साथ [illegible] पद (पद [illegible]), मल मूत्र त्यागनेके स्थान, तथा [illegible] ([illegible]) के गिराने [illegible] चिन्होंसे, इस बातका पता लगावें, कि हाथियोंके झुंड, जंगलमें कहां २ तक घूमते हैं ॥ ११ ॥

यूथचरमेकचरं निर्यूथं यूथपतिं हस्तिनं व्यालं मत्तं पोतं बंधमुक्तं च निबन्धेन विद्युः ॥ १२ ॥

झुंडके साथ घूमने वाले, अकेले घूमने वाले, झुंडसे निकले हुए, झुंडके मालिक, दुष्प्रकृति, मत्त (मस्त), पोत ([illegible] अव[illegible]), तथा बंध [illegible] हुए हाथियोंको, हस्तिवनके रक्षक पुरुष, अपनी गणना पुस्तकमें जानें ॥ १२ ॥

अनीकस्थप्रमाणैः प्रशस्तव्यञ्जनाचारान्हस्तिनो गृह्णीयुः ॥ १३ ॥ हस्तिप्रधानो हि विजयो राज्ञाम् ॥ १४ ॥ परानीकव्यूहदुर्गस्कन्धावारप्रमर्दना ह्यतिप्रमाणशरीराः प्राणहरकर्माणो हस्तिन इति ॥ १५ ॥

हस्तिशिक्षामें सुचतुर पुरुषोंके कथनानुसार, श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त हाथियोंको, राजाके कार्यके लिये पकड़ लिया जावे ॥ १३ ॥ क्योंकि राजाओंके विजयमें हाथी ही एक प्रधान साधन है ॥ १४ ॥ बड़े २ शरीर वाले हाथी ही, शत्रुकी सेना, व्यूह रचना, दुर्ग तथा छावनियोंको कुचलने वाले होते हैं, इसलिये येही शत्रुके प्राणोंका हरण करते हैं ॥ १५ ॥

कालिङ्गाङ्गगजाः श्रेष्ठाः प्राच्याश्चेति करूशजाः ।
दशार्णाश्चापरान्ताश्च द्विपानां मध्यमा मताः ॥ १६ ॥

कलिङ्ग और अङ्ग देशमें उत्पन्न हुए २ हाथी, तथा पूर्वके करूश देशमें उत्पन्न हुए २ हाथी, सब हाथियोंमें उत्तम होते हैं । दशार्ण देशमें उत्पन्न हुए तथा पश्चिममें उत्पन्न हुए २ हाथी मध्यम समझे जाते हैं ॥ १६ ॥

सौराष्ट्रिकाः पाञ्चजनाः तेषां प्रत्यवराः स्मृताः ।
सर्वेषां कर्मणा वीर्यं जवस्तेजश्च वर्धते ॥ १७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे भूमिच्छिद्रविधानं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥
आदितस्त्रयोविंशः ॥ २३ ॥

सौराष्ट्र और पञ्चजन देशोंमें उत्पन्न हुए २ हाथी अधम समझे गये हैं, यहांके हाथी सबसे घटिया होते हैं। परन्तु सबही तरहके हाथियोंका बल, वेग तथा तेज, उचित शिक्षाके द्वारा यथावश्यक बढ़ाया जासकता है ॥ १७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय।

२१ प्रकरण।

दुर्गविधान।

चतुर्दिशं जनपदान्ते सांपरायिकं दैवकृतं दुर्गं कारयेत् ॥१॥ अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमौदकं प्रस्तरं गुहां वा पार्वतं निरुदकस्तम्बमिरिणं वा धान्वनं खञ्जनोदकं स्तम्बगहनं वा वनदुर्गम् ॥ २ ॥

चारों दिशाओंमें, जनपदके सीमास्थानोंमें, युद्धके लिये उपयोगी स्वाभाविक विकट स्थानोंकोही, दुर्गके रूपमें बनवा लेवे। अर्थात् यथावसर युद्धके लिये ऐसेही स्थानोंका आश्रय लेवे ॥ १ ॥ इसप्रकारके दुर्ग मुख्यतया चार तरहके होते हैं:—औदक, पार्वत, धान्वन और वनदुर्ग। इनमें प्रत्येकके फिर दो २ भेद हैं; इन्हीं सबका द्वितीय सूत्रमें निरूपण किया जाता है:—चारों ओर नदियोंसे घिरा हुआ बीचमें टापूके समान, अथवा बड़े २ गहरे तालाबोंसे घिरा हुआ मध्यका स्थल प्रदेश, यह दो प्रकारका औदक दुर्ग कहाता है। बड़े बड़े पत्थरोंसे घिरा हुआ, अथवा स्वाभाविक गुफाओंके रूपमें बना हुआ, यह दो प्रकारका पार्वत दुर्ग होता है। जल तथा घास आदिसे रहित अथवा सर्वथा ऊपर भूमिमें बना हुआ, यह दो प्रकारका धान्वन दुर्ग कहाता है। चारों ओर दलदलसे घिरा हुआ अथवा कांटेदार घनी झाड़ियोंसे घिरा हुआ, यह दो प्रकारका वनदुर्ग कहाता है ॥ २ ॥

तेषां नदीपर्वतदुर्गं जनपदारक्षस्थानं धान्वनवनदुर्गमटवीस्थानम् आपद्यपसारो वा ॥ ३ ॥ जनपदमध्ये समुदयस्थानं स्थानीयं निवेशयेत् ॥ ४ ॥

इन दुर्गोंमेंसे नदीदुर्ग और पर्वतदुर्ग आपत्तिके समयमें जनपदकी रक्षाके स्थान होते हैं धान्वनदुर्ग तथा वनदुर्ग [illegible] रक्षाके लिये उप

युक्त होते हैं । अथवा विशेष आपत्तिके समय, राजा भी आकर इन्हीं दुर्गोंमें आश्रय ले सकता है ॥ ३ ॥ जनपदके बीचमें, धन आदिकी उत्पत्तिके मुख्यस्थान स्थानीय अर्थात् बड़े २ नगरोंको राजा बसावे ॥ ४ ॥

वास्तुकप्रशस्ते देशे नदीसङ्गमे ह्रदस्य वाविशोषस्याङ्के सरसस्तटाकस्य वा वृत्तं दीर्घं चतुरश्रं वा वास्तुकवशेन प्रदक्षिणोदकं पण्यपुटभेदनमंसवारिपथाभ्यामुपेतम् ॥ ५ ॥ तस्य परिखास्तिस्रो दण्डान्तराः कारयेत् ॥ ६ ॥

इसप्रकारके स्थानीय (बड़े २ नगर), नीचे लिखे प्रदेशोंमें बसाने चाहियें:—जिस प्रदेशको, वास्तु विद्या जानने वाले विद्वान् श्रेष्ठ बतावें; अथवा किसी नदीके संगमपर; अथवा बड़े २ अगाध जलवाले, या जिनमें कमल पैदा होते हों, ऐसे जलाशयोंके किनारेपर बसावें । वह स्थानीय, भूमिके अनुसार गोलाकार (वर्तुलाकार), अथवा लम्बा या चौकोर बनाया जाना चाहिये । उसमें चारों ओर छोटी २ नहरोंके द्वारा जलप्रवाह भरपूर बहता रहना चाहिये । उसके इधर उधर उत्पन्न होने वाली विविध वस्तुओंका यहां संग्रह तथा क्रय विक्रयका प्रबन्ध होना चाहिये । जल और स्थल दोनों प्रकारके मार्गोंसे यहां आनेका सुभीता होना चाहिये ॥ ५ ॥ उसके चारों ओर एक २ दण्डके फासलेसे तीन खाइयां खुदवावे । (चार हाथका एक दण्ड होता है । देखो:—पृ० ३८, देशकालमान=अधि० २, अध्या० २०) ॥ ६ ॥

चतुर्दश द्वादश दशेति दण्डान्विस्तीर्णाः विस्तारादवगाधाः पादोनमर्धं वा त्रिभागमूला मूले चतुरश्राः पाषाणोपहिताः पाषाणेष्टकाबद्धपार्श्वा वा तोयान्तिकीरागन्तुतोयपूर्णा वा सपरिवाहाः पद्मग्राहवतीश्च ॥ ७ ॥

वे खाई क्रमशः चौदह दण्ड, बारह दण्ड और दस दण्ड चौड़ी होनी चाहियें । जितनी चौड़ी हों, उससे चौथाई या आधी कम गहरी होनी चाहियें । अथवा चौड़ाईका तीसरा हिस्सा गहरी होनी चाहिये । नीचे तलेमें बराबर तथा पत्थर आदिसे बंधी हुई होनी चाहियें । इधर उधरके किनारे भी पत्थर अथवा ईंटोंसे मजबूत चिने हुए होने चाहिये । कहीं २ से इनको इतना गहरा खोद दिया जाय, जहांसे स्वयंही इनमें जल निकलने लगे । अथवा किसी नदी आदि से जल लाकर इनमें भर दिया जावे । इनमें जलके निकलनेका भी मार्ग अवश्य रहना चाहिये । कमल तथा नाकू आदि जलचर भी इनमें रहें ॥ ७ ॥

चतुर्दण्डावकृष्टं परिखायाः षड्दण्डोच्छ्रितमवरुद्धं तद्द्विगुणविष्कम्भं खाताद्वप्रं कारयेत् ॥ ८ ॥

परिखा (खाई) से चार दण्डके फासलेपर, छः दण्ड ऊँचा, अवरुद्ध अर्थात् सब ओरसे दृढ़; तथा जितना ऊँचा हो उससे दुगना नीचेसे चौड़ा वप्र अर्थात् सफील बनवावे, इसके बनवानेमें वही मिट्टी काममें लाई जावे, जो खाईसे खोदकर बाहर फेंकी गई है ॥ ८ ॥

ऊर्ध्वचयं मञ्चपृष्ठं कुम्भकुक्षिकं वा हस्तिभिर्गोभिश्च क्षुण्णं कण्टकिगुल्मविषवल्लीप्रतानवन्तं पांसुशेषेण वास्तुच्छिद्रं वा पूरयेत् ॥ ९ ॥

उस वप्रके बनानेके तीन प्रकार होते हैं:—ऊर्ध्वचय, मञ्चपृष्ठ तथा कुम्भकुक्षिक; जो वप्र (सफील) नीचेसे बहुत मोटा और ऊपरसे पतला हो, उसे 'ऊर्ध्वचय' कहते हैं; जो ऊपर नीचे दोनों जगहसे बराबर हो, वह 'मञ्चपृष्ठ' तथा ऊपर नीचेसे पतला और बीचमेंसे मोटा हो वह 'कुम्भकुक्षिक' कहाता है। सफीलको हाथी तथा गाय बैलोंसे खूब खुंदवाना चाहिये, जिससे कि उसकी मट्टी बैठकर वह खूब मजबूत होजाय। तथा उसके इधर उधर कांटेदार झाड़ियां और जहरीली लतायें लगा देनी चाहियें। यदि खाईयोंकी खुदी हुई मिट्टी फिर भी बच जावे तो उससे उन गड्ढोंको भर दिया जावे जहांसे मकान आदि बनानेके लिये मिट्टी खोदी गई हो ॥ ९ ॥

वप्रस्योपरि प्राकारं विष्कम्भाद्द्विगुणोत्सेधमैष्टकं द्वादशहस्तादूर्ध्वमोजं युग्मं वा आ चतुर्विंशतिहस्तादिति कारयेत् ॥ १० ॥

इस वप्रके ऊपर एक प्राकार (दीवार) खड़ा करवावे, वह अपनी चौड़ाईसे दुगना ऊँचा होना चाहिये, कमसे कम बारह हाथसे लगाकर तेरह पन्द्रह आदि विषम संख्याओंमें या चौदह सोलह आदि सम संख्याओंमें अधिकसे अधिक चौबीस हाथ तक ऊँचा होना चाहिये ॥ १० ॥

रथचर्यासंचारं तालमूलमुरजकैः कपिशीर्षकैश्चाचिताग्रं पृथुशिलासहितं वा शैलं कारयेत् ॥ ११ ॥

अथवा प्राकारको ऊपरसे इतना चौड़ा बनवावे, जिसपर एक रथ आसानीसे चलसके। ताड़वृक्षकी जड़के समान, मृदङ्ग बाजेके समान और बन्दरके सिरके समान आकार वाले छोटे बड़े पत्थरों तथा ईंटके चूरेसे, जिसके बाहर या ऊपरकी ओरका हिस्सा बनाया गया हो अथवा जो केवल बड़ी २ शिलाओंसेही बनाया गया हो ऐसे प्राकारको वप्रके ऊपर करवावे ॥ ११ ॥

न त्वेव काष्ठमयम् ॥ १२ ॥ अग्निरवहितो हि तस्मिन्वसति ॥१३॥ विष्कम्भचतुरश्रमट्टालकमुत्सेधसमावक्षेपसोपानं कारयेत् त्रिंशद्दण्डान्तरं च ॥ १४ ॥

यह प्राकार लकड़ीका कभी नहीं बनवाना चाहिये ॥ १२ ॥ क्योंकि इसमें अग्नि सदा सन्निहित रहता है। अर्थात् इसमें आग लगने का भय सदा ही बना रहता है ॥ १३ ॥ प्राकारके आगे एक अट्टालक बनवावे; जो कि प्राकारके विस्तार या ऊंचाईके समान ही विस्तृत या ऊंचा होना चाहिये। तथा ऊंचाईके बराबर ही जिसमें चढ़ने उतरनेके लिये सीढ़ियां (पैड़ियां) होनी चाहियें। एक अट्टालक का दूसरे से तीस दण्ड का फासला होना चाहिये। अर्थात् तीस २ दण्डके पर प्राकारके ऊपर अट्टालक बनवाये जावें ॥ १४॥

द्वयोरट्टालकयोर्मध्ये सहर्म्यद्वितलां द्व्यर्धायामां प्रतोलीं कारयेत् ॥ १५ ॥ अट्टालकप्रतोलीमध्ये त्रिधानुष्काधिष्ठानं सपिधानच्छिद्रफलकसंहतमिन्द्रकोशं कारयेत् ॥ १६ ॥

दो अट्टालकोंके बीचमें, हर्म्य सहित दो मंजिली, चौड़ाईसे ड्योढ़ी लम्बी प्रतोली (गृह विशेष) बनवावे ॥ १५ ॥ अट्टालक और प्रतोलीके बीचमें एक इन्द्रकोश (स्थान विशेष) बनवावे जो इतना बड़ा होना चाहिये जिसमें तीन धनुर्धारी पुरुष बैठ सकें। बाहरकी ओरसे रक्षा करनेके लिये उनके आगे एक तख्ता लगा रहना चाहिये, परन्तु उस तख्तेमें यथावश्यक छिद्र अवश्य होने चाहियें, जिससे वे धानुष्क (धनुर्धारी पुरुष) बाहरकी वस्तुओंको देख सकें, तथा अवसरपर बाण आदि चला सकें ॥ १६ ॥

अन्तरेषु द्विहस्तविष्कम्भं पार्श्वे चतुर्गुणायाममनुप्राकारमष्टहस्तायतं देवपथं कारयेत् ॥ १७ ॥ दण्डान्तरा द्विदण्डान्तरा वा चार्याः कारयेत् ॥ १८ ॥

प्राकारके साथ २, अट्टालक प्रतोली तथा इन्द्रकोशके बीचमें दो हाथ चौड़ा और प्राकारके पास इससे चतुर्गुण अर्थात् आठ हाथ चौड़ा एक देवपथ (गुप्तमार्ग) बनवाया जावे ॥ १७ ॥ एक दण्ड या दो दण्डके फासलेपर चार्या अर्थात् प्राकार आदिपर चढ़ने उतरनेका स्थान बनवाया जावे ॥ १८ ॥

अग्राह्ये देशे प्रधावितिकां निष्कुहद्वारं च ॥ १९ ॥

न दीखने योग्य प्रदेशमें, प्राकारके ऊपरही प्रधावितिका, तथा उसके पासही निष्कुहद्वार बनवावे। (शत्रुके द्वारा बाहरकी ओरसे बाण आदिके

छोड़नेपर, उसकी नजरमें बचनेके लिये सिपाहीके सरलतासे छिपने योग्य छोटेसे आवरणका नाम 'प्रधावितिका' है। इस आवरणमें छोटे बड़े कुछ छेद भी रहते हैं, जिनके द्वारा शत्रुकी प्रत्येक चेष्टाको भीतर बैठा हुआ सिपाही अच्छी तरहसे देख सकता है ; इन्हीं छेदोंका नाम 'निष्कुहद्वार' है ॥ १९ ॥

बहिर्जानुभञ्जनीं त्रिशूलप्रकरकूटावपातकण्टकप्रतिसराहिपृष्ठतालपत्रशृङ्गाटकश्वदंष्ट्रार्गलोपस्कन्दनपादुकाम्बरीषोदपानकैः छन्नपथं कारयेत् ॥ २० ॥

परिखासे बाहरकी भूमियोंमें, जानुभञ्जनी (घोंटूतक ऊँचे, लकड़ीके बने हुए खूंटे, जो रास्तेमें चलते समय घोंटुओंको तोड़नेवाले हों), त्रिशूलोंका समूह, अंधेरे गढ़े, लोहेकी शलाकाओं तथा तिनकोंसे ढके हुए गढ़े, लोहेके बने हुए कांटोंका ढेर, सांपके अस्थिपञ्जर तथा तालपत्रके समान बने हुए लोहेके जालों, तीन २ नोकवाले लोहेके नुकीले कांटों, कुत्तेकी डाढ़के समान तीक्ष्ण लोहेकी कीलों, बड़े २ लट्ठों, अथवा गिर जानेके लिये एकही पैरकी बराबर बनाये कीचड़से भरे हुए गढ़ों, तथा अग्निके गढ़ों और दूषित जलके गढ़ोंसे दुर्गके मार्गको पाट देवे। तात्पर्य यह है कि खाईके बाहरकी भूमिमें, दुर्गके लिये आनेवाले रास्तेपर इन २ वस्तुओंको बिछा देवे, या भूमिमें गाढ़ देवे, जिससे कि शत्रु दुर्गकी ओर न आसके ॥ २० ॥

प्राकारमुभयतो मण्डपकमध्यर्धदण्डं कृत्वा प्रतोलीषट्तलान्तरं द्वारं निवेशयेत् ॥ २१ ॥ पञ्चदण्डादेकोत्तरवृद्ध्याष्टदण्डादिति चतुरश्रं द्विदण्डं वा षड्भागमायामादधिकमष्टभागं वा ॥ २२॥

जिस जगहपर दरवाजा बनानेकी इच्छा हो, वहां पहिले नीचे प्राकारके दोनों भागोंमें डेढ़ दण्ड लम्बा चौड़ा मण्डप अर्थात् चबूतरासा बनाया जावे; तदनन्तर उसके ऊपर प्रतोलीके समान छः खम्भे खड़े करके द्वारका निर्माण कराया जावे ॥ २१ ॥ द्वारका विस्तार पांच दण्डसे लगाकर एक २ दण्डकी वृद्धि करते जानेसे, अधिकसे अधिक आठ दण्डतक प्राकारके अनुसार चौकोर होना चाहिये। अथवा दो दण्डका ही दरवाजा होवे, यह भी कोई विद्वान् कहते हैं। अथवा नीचे आधारके परिमाणसे छठा या आठवां हिस्सा अधिक करके ऊपर दरवाजा बनाया जावे ॥ २२ ॥

पञ्चदशहस्तादेकोत्तरमष्टादशहस्तादिति तलोत्सेधः ॥ २३ ॥ स्तम्भस्य परिक्षेपाः षडायामा द्विगुणो निखातः चूलिकायाश्चतु

भागः ॥ २४ ॥ आदितलस्य पञ्च भागाः शाला वापी सीमागृहं च ॥ २५ ॥

नीचेके तलसे खम्भोंकी ऊँचाई पन्द्रह हाथसे लगाकर अठारह हाथतक होनी चाहिये ॥ २३ ॥ और खम्भोंकी परिधि अर्थात् मोटाई, खम्भेकी ऊँचाई का छठा हिस्सा होनी चाहिये। जितनी मोटाई हो उससे दुगना भूमिमें गाड़ दिया जावे, और उसका चौथाई हिस्सा, खम्भेकी ऊपरकी चूलके लिये छोड़ा जावे ॥ २४ ॥ प्रतोलिका के तीन तलोंमेंसे पहिले तलके पांच हिस्से करे। उनमेंसे बीचेके हिस्सेमें तो वापी (बावड़ी) बनवावे, उसके इधर उधर शाला और शालाके किनारोंपर सीमागृह बनवावे। (शालाओंके किनारेपर पांचवें हिस्सेमें बने हुए उस छोटे मकानको ही "सीमागृह" कहा जाता है) ॥ २५ ॥

दशभागिकौ समत्तवारणौ द्वौ प्रतिमञ्चौ अन्तरमाणि ॥२६॥ हर्म्यं च समुच्छ्रयादर्धतलं स्थूणावबन्धश्च ॥ २७ ॥

शालाके किनारोंकी ओर मुकाबलेमें दो मञ्च अर्थात् छोटे २ बैठनेके योग्य चबूतरेसे बनवावे, उनपर चोटी अर्थात् बुर्जियां भी होनी चाहियें। और शाला तथा सीमागृहके बीचमें आणि अर्थात् एक छोटासा दरवाजा होना चाहिये ॥ २६ ॥ हर्म्य अर्थात् मकान की दूसरी मंजिलकी ऊँचाई पाहिली मंजिलकी ऊँचाईसे आधी होनी चाहिये, आवश्यकतानुसार उसकी छतके नीचे छोटे २ खम्भोंका सहारा होना चाहिये। (किसी २ पुस्तकमें 'आणिहर्म्य' ऐसा इकट्ठा पाठ है, यहांपर आणिका अर्थ सीमा करना चाहिये, अर्थात् सीमागृहके ऊपरका हर्म्य, ऐसा अर्थ होना चाहिये) ॥ २७ ॥

आर्धवास्तुकमुत्तमागारं त्रिभागान्तरं वा ॥ २८ ॥ इष्टकावबन्धपार्श्वम् ॥ २९ ॥ वामतः प्रदक्षिणसोपानं गूढभित्तिसोपानमितरतः ॥ ३० ॥

उत्तमागार अर्थात् हर्म्यसे भी ऊपरकी तीसरी मंजिलकी ऊँचाई डेढ़ दण्ड होनी चाहिये। (एक वास्तुक, तीन दण्डका होता है, अर्धवास्तुक=डेढ़ दण्ड। यह परिमाण उसी समय समझना चाहिये, जब नीचे द्वारका परिमाण पांच दण्ड हो; उसहीके अनुसार यह बड़ा भी होसकता है) । अथवा द्वारका तृतीयांश परिमाण उत्तमागारका होना चाहिये ॥ २८ ॥ उत्तमागारके इधर उधरके भाग, पक्की ईंटोंसे खूब मजबूत बने हुए होने चाहियें ॥ २९ ॥ उसके

बांई ओर चक्करदार सीढ़ियां चढ़ने उतरनेके लिये होनी चाहियें । और दाहिनी ओर छिपे तौरपर भीतमें सीढ़ियां बनवाई जावें ॥ ३० ॥

द्विहस्तं तोरणशिरः ॥ ३१ ॥ त्रिपञ्चभागिकौ द्वौ कवाटयोगौ ॥ ३२ ॥ द्वौ द्वौ परिघौ ॥ ३३ ॥

द्वारका सिर अर्थात् द्वारके ऊपरका बुर्ज आदि दो हाथका बनाना चाहिये ॥ ३१ ॥ तीन अथवा पांच हिस्सोंके, दोनों किवाड़ या फाटक होने चाहियें । (तीन या पांच हिस्सेका अर्थ यह है, कि एक किवाड़ लम्बाईमें तीन तख्ते या पांच तख्तेका बना हुआ होना चाहिये) ॥३२॥ किवाड़ोंके पीछेकी ओर दो परिघ अर्थात् अर्गला होने चाहियें ॥ ३३ ॥

अरत्निरिन्द्रकीलः ॥ ३४ ॥ पञ्चहस्तमणिद्वारम् ॥ ३५ ॥ चत्वारो हस्तिपरिघा ॥ ३६ ॥

एक अरत्नि परिमाण (चौबीस अंगुल परिमाणको अरत्नि कहा जाता है इसका दूसरा नाम 'हस्त' या हाथ भी है। एक हाथ=१½ फुट) की एक इन्द्रकील (चटखनी) किवाड़ोंको बन्द करनेके लिये होनी चाहिये ॥३४॥ फाटकके बीचमें एक छोटासा पांच हाथका दरवाजा होना चाहिये ॥ ३५ ॥ सम्पूर्ण द्वार इतना बड़ा होना चाहिये, जिसमें चार हाथी एक साथ प्रवेश करसकें । (इस सूत्रमें 'हस्तिपरिघ' शब्दका लाक्षणिक अर्थ-हाथियोंके प्रवेशके लिये पर्याप्त, यही करना चाहिये) ॥ ३६ ॥

निवेशार्धं हास्तिनखः मुखसमः संक्रमोऽसंहार्यो वा भूमिमयो वा निरुदके ॥ ३७ ॥ प्राकारसमं मुखमवस्थाप्य त्रिभागगोधामुखं गोपुरं कारयेत् ॥ ३८ ॥

द्वारकी ऊंचाईसे आधी ऊंचाई वाला (अर्थात् द्वारकी ऊँचाई यदि पांच दण्ड हो तो ढाई दण्ड ऊंचा) हाथीके नाखूनके समान आवश्यकतानुसार चढ़ाव उतारवाला, दरवाजेके समान आकार वाला ही दुर्गके संचरणका मार्ग अर्थात् दुर्गपर यथावसर घूमने फिरनेका मार्ग, मजबूत लकड़ी आदि का बना हुआ, अथवा जल रहित स्थानोंमें मट्टीकाही होना चाहिये ॥ ३७ ॥ ऊँचाई आदिमें प्राकारके समानही निकलनेका मार्ग बनवाकर, उसका तृतीयांश, गोधा (गोह-एक जलचर प्राणी) के मुंहकी तरह आकार वाला गोपुर अर्थात् नगरद्वार बनवाया जावे ॥ ३८ ॥

प्राकारमध्ये कृत्वा वापीं पुष्करिणीद्वारं चतुःशालमध्यर्धान्तराणीकं कुमारीपुरं मुण्डहर्म्यं द्वितल भूमिद्रव्य-

वर्शेन वा ॥ ३९ ॥ त्रिभागाधिकायामा भाण्डवाहिनीः कुल्याः कारयेत् ॥ ४० ॥

प्राकारके बीचमेंही वापी (बावड़ी) बनाकर उसके साथही एक द्वार बनाया जावे, वापीके साथ सम्बन्ध होनेसे इस द्वारका नाम पुष्करिणीद्वार होता है । इसीप्रकार जिस दरवाजेके आसपास चार शाला बनाई जांय, और उस दरवाजेसे पहिले कहे हुए छोटे दरवाजेसे ड्योढा अधिक छोटा दरवाजा लगा हो, उसका नाम कुमारीपुरद्वार होता है । जो दरवाजा दो मञ्जिलका बनवाया जावे, तथा उसपर कंगूरे वगैरह लगे हुए न हों, सो उसे मुण्डकद्वार कहा जाता है । इसतरह भिन्न २ रीतिसे राजा दरवाजोंको बनवावे । अथवा वहांकी अपनी भूमि तथा अपनी सम्पत्तिके अनुसार इनमें उचित परिवर्तन कर सकता है, अर्थात् जैसी भूमि और जितनी सम्पत्ति हो, उसीके अनुसार इनका निर्माण करावे ॥ ३९ ॥ अन्य सामान्य नहरोंसे तिहाई हिस्सा अधिक चौड़ी नहरें बनवाई जावें, जिनके द्वारा हर तरहके सामान अन्दर बाहर लाये तथा लेजाये जासकें ॥ ४० ॥

तासु पाषाणकुद्दालकुठारीकाण्डकल्पनाः ।
मुशुण्डीमुद्गरा दण्डचक्रयन्त्रशतघ्नयः ॥ ४१ ॥

उन नहरोंके द्वारा कौनसे सामान लाये लेजाये जासकते हैं, इसीका निरूपण इन दो श्लोकोंमें किया जाता है:—पत्थर, कुद्दाल (कस्सी आदि भूमि खोदनेके उपकरण), कुठार, बाण, कल्पना (हाथियोंके उपकरण), भुशुण्डी (बन्दूक आदि शस्त्र । किसी पुस्तकमें 'मुशुण्डी' के स्थानपर 'मुसृण्ठि' पाठ है; लोहेकी कीलोंसे युक्त, लकड़ीकी बनी हुई गदाका नाम 'मुसृण्ठि' है), मुद्गर, डंडे (लाठी आदि), चक्र, यन्त्र, शतघ्नी ॥ ४१ ॥

कार्याः कार्मारिकाः शूला वेधनाग्राश्च वेणवः ।
उष्ट्रग्रीव्योऽग्निसंयोगाः कुप्यकल्पे च यो विधिः ॥४२॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे दुर्गविधानं तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आदितश्चतुर्विंशः ॥ २४ ॥

लुहारोंके काममें आनेवाला सामान, अथवा उनका बनाया हुआ सामान, तीक्ष्ण नोंके वाले भाले आदि, बांस, ऊँटकी गर्दनके आकारके हथियार, अग्नि लगाकर चलाये जाने वाले आयुध, तथा जिनका कुप्याध्यक्ष प्रकरणमें विधान किया गया है, वे सब सामान । ये पदार्थ हैं जो कि नहरके द्वारा लाये लेजाये जाते हैं ॥ ४२ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय ।

२२ प्रकरण ।

दुर्गनिवेश ।

पिछले अध्यायमें परिखा, वप्र, प्राकार, अट्टालक, प्रतोली, इन्द्रकोश, देवपथ आदिसे युक्त दुर्गके निर्माणके विषयमें निरूपण कर दिया गया है । अब इस बातका निरूपण किया जायगा, कि उस दुर्गमें राजमार्ग राजभवन अमात्यभवन आदिका निर्माण किस प्रकार होना चाहिये ।

त्रयः प्राचीना राजमार्गास्त्रय उदीचीना इति वास्तुविभागः ॥ १ ॥

तीन राजमार्ग पूरबसे पच्छिमकी ओरको, और तीनही राजमार्ग उत्तरसे दक्खिनकी ओरको होने चाहियें । अर्थात् नगर बसानेके लिये एक स्थान केन्द्र मानकर वहांसे पूरबकी ओर तीन मार्ग, पच्छिमकी ओर तीन मार्ग आमने सामनेही एक सीधमें होवें । इसीप्रकार तीन मार्ग उत्तर और तीन मार्ग दक्षिणकी ओरको होने चाहियें । इसतरह लम्बे छः मार्गोंमें वास्तु अर्थात् गृहनिर्माण आदिके लिये निश्चित भूमिका विभाग करना चाहिये ॥ १ ॥

स द्वादशद्वारो युक्तोदकभूमिच्छन्नपथः ॥ २ ॥ चतुर्दण्डान्तरा रथ्याः ॥ ३ ॥

इन विभागोंके अनुसार प्रत्येक दिशामें तीन दरवाजे होनेके कारण चारों ओर कुल मिलाकर बारह दरवाजे होंगे । इसप्रकार बारह द्वारोंसे युक्त, तथा उचित जल, भूमि और गुप्त मार्गोंसे युक्त यह वास्तुविभाग होना चाहिये ॥ २ ॥ चार दण्ड चौड़ी रथ्या (उपवीथिका=छोटी गली) बनानी चाहिये । (४ अरत्नि=१ दण्ड=२ गज़ । इसप्रकार गलीकी चौड़ाई ८ गज़=२४ फ़ीट हुई) ॥ ३ ॥

राजमार्गद्रोणमुखस्थानीयराष्ट्रविवीतपथाः संयानीयव्यूहश्मशानग्रामपथाश्चाष्टदण्डाः ॥ ४ ॥

राजमार्ग; द्रोणमुख (चारसौ गांवोंका प्रधानभूत केन्द्र स्थान), स्थानीय (आठसौ गांवोंका प्रधानभूत केन्द्रस्थान), राष्ट्र, तथा चरागाहको जाने वाला मार्ग और व्यापारी मंडियों (संयानीय) का मार्ग, सेनाका मार्ग, श्मशान तथा अन्य गांवोंको जाने वाला मार्ग; ये सब आठ २ दण्ड चौड़े होने चाहियें ॥ ४ ॥

चतुर्दण्डः सेतुवनपथः ॥५॥ द्विदण्डो हस्तिक्षेत्रपथः ॥६॥ पञ्चारत्नयो रथपथश्चत्वारः पशुपथः॥७॥ द्वौ क्षुद्रपशुमनुष्यपथः ॥ ८ ॥

जलाशयोंका मार्ग तथा जंगलोंका मार्ग भी चार दण्ड चौड़ा होना चाहिये ॥ ५ ॥ हाथियोंके चलनेका रास्ता, तथा खेतोंमें जानेका रास्ता दो दण्ड चौड़ा होना चाहिये ॥ ६ ॥ पांच अरत्नि अर्थात् ढाई गज़ चौड़ा रथोंका, तथा दो गज़ चौड़ा पशुओंका रास्ता होना चाहिये ॥ ७ ॥ दो अरत्नि अर्थात् एक गज़ चौड़ा रास्ता, मनुष्य तथा भेड़ बकरी आदि छोटे २ पशुओंके लिये होना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रवीरे वास्तुनि राजनिवेशश्चातुर्वर्ण्यसमाजीवे ॥ ९ ॥ वास्तुहृदयादुत्तरे नवभागे यथोक्तविधानमन्तःपुरं प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा कारयेत् ॥ १० ॥

खूब मज़बूत ज़मीनोंमें राजभवनोंका निर्माण कराना चाहिये । साथमें यह भी देखलेना चाहिये कि यह भूमि चारों वर्णोंकी जीविकाके लिये अत्यन्त उपयोगी है ॥ ९ ॥ वास्तुके मध्य भागसे उत्तरकी ओरके नौवें हिस्सेमें पहिले कही हुई रीतिके अनुसार (देखो:—निशान्तप्रणिधि प्रकरण) अन्तःपुरका निर्माण कराया जावे, इसका द्वार पूरब या पश्चिमकी ओर होना चाहिये ॥१०॥

तस्य पूर्वोत्तरं भागमाचार्यपुरोहितेज्यातोयस्थानं मन्त्रिणश्चावसेयुः ॥ ११ ॥ पूर्वदक्षिणं भागं महानसं हस्तिशाला कोष्ठागारं च ॥ १२ ॥

उस अन्तःपुरके पूर्वोत्तर भागमें आचार्य पुरोहितके स्थान यज्ञस्थान तथा जलाशय बनवाये जावें, और मन्त्रियोंके निवास स्थान भी इस ओर ही बनवाने चाहियें ॥११॥ पूर्वदक्षिण भागमें (अर्थात् अन्तःपुरके पूर्वदक्षिण भागमें) महानस (रसोई), हस्तिशाला अर्थात् हाथीकी पीठके समान चौरस सभागृह अथवा हाथियोंके रहनेकी जगह और कोष्ठागार (वस्तुभण्डार) बनवाना चाहिये ॥ १२ ॥

ततः परं गन्धमाल्यधान्यरसपण्याः प्रधानकारवः क्षत्रियाश्च पूर्वां दिशमधिवसेयुः ॥ १३ ॥ दक्षिणपूर्वं भागं भाण्डागारमक्षपटलं कर्मनिषद्याश्च ॥ १४ ॥ दक्षिणपश्चिमं भागं कुप्यगृहमायुधागारं च ॥ १५ ॥

उसके आगे गन्ध (खुशबू=इतर फुलेल आदि), माला, अन्न, तथा घी तेल आदिकी दुकानें, और मुख्य शिल्पी (कारीगर लोग) तथा क्षत्रियोंका निवास स्थान पूरबकी ओर होना चाहिये ॥ १३ ॥ दक्षिणपूरबके हिस्सेमें भाण्डागार (राजकीय फुटकर वस्तुओंके रखनेका मकान), अक्षपटल (आय-व्ययकी गणना करनेका मुख्य स्थान), तथा सोने चांदी आदिकी बनी हुई वस्तुओंके रखनेके लिये स्थान होने चाहियें ॥ १४ ॥ दक्षिणपश्चिम हिस्से में कुप्यगृह (सोने चांदीको छोड़कर अन्य सब धातुओंके रखनेके स्थान), तथा आयुधागार (शस्त्र अस्त्र आदि रखनेके स्थान) का निर्माण कराना चाहिये ॥१५॥

ततः परं नगरधान्यव्यावहारिककार्मान्तिकबलाध्यक्षाः पक्वान्नसुरामांसपण्याः रूपाजीवास्तालापचारा वैश्याश्च दक्षिणां दिशमधिवसेयुः ॥ १६ ॥

इसके आगे नगरव्यावहारिक (नगरके मकान आदिका व्यापार करने वाले), कार्मान्तिक (खानि आदि कार्योंके अधिकारी पुरुष) तथा सेनाध्यक्ष, (अथवा इस सूत्रके "अध्यक्ष" पदको प्रत्येकके साथ जोड़ना चाहिये और फिर नगराध्यक्ष (नगरका निरीक्षक अधिकारी पुरुष), धान्याध्यक्ष (अन्न आदिका निरीक्षक अधिकारीपुरुष), व्यावहारिकाध्यक्ष (व्यापारियोंका निरीक्षक अधिकारीपुरुष), कार्मान्तिकाध्यक्ष (खान तथा अन्य कारखानोंका निरीक्षक पुरुष) और सेनाध्यक्ष; यह अर्थ करना चाहिये) और पका हुआ अन्न बेचनेवाली दूकानें (होटल आदि) तथा शराब और मांसकी दूकानें; वेश्या तथा नट आदि और वैश्य, ये सब दक्षिण दिशाकी ओर बसाये जावें ॥ १६ ॥

पश्चिमदक्षिणं भागं खरोष्ट्रगुप्तिस्थानं कर्मगृहं च ॥ १७ ॥ पश्चिमोत्तरं भागं यानरथशालाः ॥ १८ ॥

पश्चिमदक्षिणके हिस्सेमें गधे और ऊंटोंका गुप्तिस्थान (रक्षागृह तबेले आदि), तथा कर्मगृह (ऊंट आदिके व्यापारका स्थान; अथवा ऐसी भूमि जहां नमूनोंके लिये पहिले छोटासा मकान आदि बनाकर फिर गिरा दिया जाता हो) बनवाया जावे ॥ १७ ॥ पश्चिमोत्तर भागमें शिबिका (पालकी) आदि यानोंके और रथ आदिके लिये मकान बनवाया जावे ॥ १८ ॥

ततः परमूर्णासूत्रवेणुचर्मवर्मशस्त्रावरणकारवः शूद्राश्च पश्चिमां दिशमधिवसेयुः ॥ १९ ॥ उत्तरपश्चिमं भागं पण्यभैषज्यगृहम् ॥ २० ॥ उत्तरपूर्वं भागं कोशो गवाश्वं च ॥ २१ ॥

इसके आगे ऊन सूत बांस तथा चमड़े आदिका काम करनेवाले कवच हथियार तथा इनके आवरण (कवर) बनानेवाले और अन्य शूद्र भी पश्चिमकी ओर अपना निवासस्थान बनावें ॥ १९ ॥ उत्तरपश्चिमकी ओर पण्यगृह (राजकीय विक्रेय वस्तुओंके रखनेका घर), तथा औषधालयका निर्माण कराया जावे ॥ २० ॥ उत्तरपूर्वके हिस्सेमें कोश तथा गाय बैल और घोड़ोंके लिये स्थान निर्माण कराया जावे ॥ २१ ॥

ततः परं नगरराजदेवतालोहमणिकारवो ब्राह्मणाश्चोत्तरां दिशमधिवसेयुः ॥ २२ ॥ वास्तुच्छिद्रानुशालेषु श्रेणीप्रवहणिकानिकाया आवसेयुः ॥ २३ ॥

उसके आगे उत्तर दिशाकी ओर नगरके देवतास्थान तथा राजकुलके देवतास्थान, लुहार मनिहार और ब्राह्मणोंके निवासस्थानोंका निर्माण कराया जावे ॥ २२ ॥ वास्तुके बीचकी खाली जगहोंमें (अर्थात कोनोंकी छूटी हुई जगहोंमें) धोबी, दर्जी, जुलाहे आदि, तथा बाहर विदेशसे आनेवाले अन्य व्यापारी लोग बसें ॥ २३ ॥

अपराजिताप्रतिहतजयन्तवैजयन्तकोष्ठकान् शिववैश्रवणाश्विश्रीमदिरागृहं च पुरमध्ये कारयेत् ॥ २४ ॥ कोष्ठकालयेषु यथोद्देशं वास्तुदेवताः स्थापयेत् ॥ २५ ॥

अपराजिता (दुर्गा), विष्णु, जयन्त, इन्द्र, इन देवताओंके स्थान तथा शिव, वैश्रवण (वरुण), आश्विनीकुमार, लक्ष्मी और मदिरा इन पांच देवताओंके स्थान नगरके बीचमें ही बनवाये जावें ॥ २४ ॥ पूर्व कहे हुए कोष्ठागार आदि स्थानोंमें भी अपने २ विचार या उस २ देशके अनुसार वास्तुदेवताओंकी स्थापना कीजावे ॥ २५ ॥

ब्राह्मैन्द्रयाम्यसैनापत्यानि द्वाराणि ॥ २६ ॥ बहिः परिखायाः धनुःशतापकृष्टाश्चैत्यपुण्यस्थानवनसेतुबन्धाः कार्याः, यथादिशं च दिग्देवताः ॥ २७ ॥

नगरके चारों दिशाओंके द्वारोंके भिन्न २ चार देवता होते हैं, उत्तरके द्वारका ब्रह्म देवता होता है, पूर्वका इन्द्र, दक्षिणका यम और पश्चिमका सेनापति होता है ॥ २६ ॥ नगरके चारों ओरकी परिखासे बाहर सौ दण्ड (=दो सौ गज) की दूरीपर चैत्य, पुण्यस्थान, जङ्गल तथा जलाशय बनवाये जावें। और वहींपर उस २ दिशाके अनुसार भिन्न २ दिग्देवताओं (दिशाके देवताओं) की भी स्थापना कीजावे ॥ २७ ॥

उत्तरः पूर्वो वा श्मशानवाटः ॥ २८ ॥ दक्षिणेन वर्णोत्तराणाम् ॥ २९ ॥ तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३० ॥

नगरके उत्तर या पूरबकी ओर श्मशान स्थान होना चाहिये ॥ २८ ॥ और दक्षिणकी दिशामें शूद्र आदिका श्मशान होना चाहिये ॥ २९ ॥ जो इस नियमका उल्लंघन करे, उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ३० ॥

पाषण्डचण्डालानां श्मशानान्ते वासः ॥ ३१ ॥ कर्मान्तक्षेत्रवशेन वा कुटुम्बिनां सीमानं स्थापयेत् ॥ ३२ ॥

पाषण्ड (कापालिक आदि) तथा चाण्डालोंका निवासस्थान श्मशानके समीपही बनवाया जावे ॥ ३१ ॥ नगरमें बसनेवाले परिवारोंके लिये निवासभूमिका निर्णय, उनके कार्य तथा भूमिकी परिस्थितिके अनुसारही करना चाहिये। (अर्थात् व्यापार आदि कार्य और खेत आदिके न्यूनाधिक होनेके अनुसारही परिवारोंकी निवासभूमिकी न्यूनाधिकता होवे) ॥ ३२ ॥

तेषु पुष्पफलवाटषण्डकेदारान्धान्यपण्यनिचयांश्चानुज्ञाताः कुर्युः, दशकुलीवाटं कूपस्थानम् ॥ ३३ ॥

उन खेतोंमें फूलों तथा फलोंके बाग, कमल आदिके समूह, तथा अन्य शाक आदिकी क्यारियां बनावें। और राजा तथा अधिकारी पुरुषोंकी अनुमति लेकर अन्न तथा अन्य विविध विक्रेय वस्तुओंको भी इनमें पैदा करें। साधारणतया दो हलोंसे जोती जाने योग्य भूमिका, नाम 'कुल' है, इसलिये 'दशकुलीवाट' शब्दका अर्थ—बीस हलोंसे जोती जाने योग्य भूमि, यह है। इतनी भूमिके बीचमें जलसेचनके लिये एक कुआ होना चाहिये। (किन्हीं २ विद्वानोंने 'दशकुलीवाट' शब्दका अर्थ—दश बैलोंसे जोती जाने योग्य भूमि, यह किया है) ॥ ३३ ॥

सर्पिस्नेहधान्यक्षारलवणभैषज्यशुष्कशाकयवसवल्लूरतृणकाष्ठलोहचर्माङ्गारस्नायुविषविषाणवेणुवल्कलसारदारुप्रहरणाश्मनिचयाननेकवर्षोपभोगसहान्कारयेत् ॥३४॥ नवेनानवं शोधयेत् ॥३५॥

घी, तेल, अन्न, क्षार, नमक, दवाई, सूखेशाक, भुस, सूखामांस, घास, लकड़ी (सोख्ता=जलाने आदिकी लकड़ी), लोहा, चमड़ा, कोयला, स्नायु (तांत), विष, सींग, बांस, छाल, सारदारु (बढ़िया मजबूत लकड़ी मकान आदिके लिये; अथवा चन्दन आदि), हथियार, कवच तथा पत्थर इन सबही वस्तुओंको दुर्गमें इतनी अधिक संख्यामें जमा करे जोकि अनेक वर्षोंतक उप

योगमें लाई जासकें ॥ ३४ ॥ जो वस्तु पुरानी होजावें, उनके स्थानपर दूसरी नई वस्तुओंको रखदिया जावे ॥ ३५ ॥

हस्त्यश्वरथपादातमनेकमुख्यमवस्थापयेत् ॥ ३६ ॥ अनेकमुख्यं हि परस्परभयात्परोपजापं नोपैतीति ॥ ३७ ॥ एतेनान्तपालदुर्गसंस्कारा व्याख्याताः ॥ ३८ ॥

हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल इन चारों प्रकारकी सेनाओंको, अनेक मुख्य अधिकारियोंके निरीक्षणमें रक्खे ॥ ३६ ॥ क्योंकि अनेक मुख्य व्यक्तियोंके होनेपर, एक दूसरेके भयसे, उनमेंसे कोई भी शत्रुसे जाकर नहीं मिल सकता। यदि एकही मुख्य निरीक्षक हो, तो वह अपने समान दूसरे किसीके न होनेके कारण निर्भय हुआ २ लोभ आदिके वशीभूत होकर कदाचित् शत्रुसे मिल सकता है ॥ ३७ ॥ इसी तरह अन्तपालोंके दुर्गोंका निर्माण तथा प्रबन्ध आदि भी समझ लेना चाहिये। अर्थात् नगरके दुर्गोंके समानही जनपदकी सीमाके दुर्गोंका भी सब प्रबन्ध होना चाहिये ॥ ३८ ॥

न च बाहिरिकान्कुर्यात्पुरराष्ट्रोपघातकान् ।
क्षिपेज्जनपदस्यान्ते सर्वान्वा दापयेत्करान् ॥ ३९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे दुर्गनिवेशश्चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥
आदितः पञ्चविंशः ॥ २५ ॥

राजाको चाहिये कि वह नट, नर्तक, धूर्त तथा जुआरी आदिको किसी तरह भी नगरमें न बसने देवे, क्योंकि ये लोग नगर तथा जनपदनिवासी पुरुषोंको अपने काम दिखाकर कुमार्गमें प्रवृत्त करानेवाले होते हैं। यदि राजा इनको बसानाही चाहे तो जनपदके सीमाप्रान्तमें बसावे। और वहांपर रहने वाले अन्य परिवारोंकी तरह इनसे भी राज्यकर वसूल किया जावे ॥ ३९ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त।

पांचवां अध्याय।

२३ प्रकरण।

सन्निधाताका निचयकर्म।

सन्निधाता, भाण्डागाराधिपति या कोशाध्यक्षको कहते हैं। वह द्रव्यका किस प्रकार संग्रह करे, तथा किस तरह उसकी रक्षा करे, यही सब इस प्रकरणमें निरूपण किया

संनिधाता कोशगृहं पण्यगृहं कोष्ठागारं कुप्यगृहमायुधागारं बन्धनागारं च कारयेत् ॥ १ ॥

सन्निधाता अर्थात् कोशाध्यक्ष कोशगृह, पण्यगृह (राजकीय विक्रेय वस्तुओंके रखनेका घर), कोष्ठागार (खाने योग्य अन्न तथा घृत आदि वस्तुओंके रखनेका घर), कुप्यगृह, आयुधागार और बन्धनागार (कारागृह) का निर्माण करावे ॥ १ ॥

चतुरश्रां वापीमनुदकोपस्नेहां खानयित्वा पृथुशिलाभिरुभयतः पार्श्वं मूलं च प्रचित्य सारदारुपञ्जरं भूमिसमं त्रितलमनेकविधानं कुट्टिमदेशस्थानतलमेकद्वारं यन्त्रयुक्तसोपानं देवतापिधानं भूमिगृहं कारयेत् ॥ २ ॥

पानी और नमीसे अर्थात् सीलसे रहित बावड़ी (बावड़ीके समान एक गढा) खुदवाकर, चारों ओरसे उसकी दीवारोंको और नीचेकी तलीको बड़ी २ शिलाओंसे चिनकर मज़बूत बना दिया जावे, उसके बीचमें मजबूत लकड़ियोंके बने हुए पिंजरेके समान तितल्ला (तीन मंज़िल वाला), अनेक कोठरियोंसे युक्त, नीचे बीचमें तथा सबसे ऊपरके तलेमें बढ़िया फ़र्श लगे हुए, दरवाजे वाले, यन्त्र युक्त सीढ़ियोंके सहित (अर्थात् जिसकी सीढ़ियोंपर विशेष नियम या समयके अनुसारही पुरुष चढ़ सकता हो, अन्यथा नहीं, ऐसा), तथा देवताओंकी आकृतिसे युक्त किवाड़ों वाला एक भूमिगृह बनवाया जावे ॥ २ ॥

तस्योपर्युभयतोनिषेधं सप्रग्रीवमैष्टकं भाण्डवाहिनीपरिक्षिप्तं कोशगृहं कारयेत् ॥ ३ ॥ प्रासादं वा जनपदान्ते ध्रुवनिधिमापदर्थमभित्यक्तैः पुरुषैः कारयेत् ॥ ४ ॥

उसके ऊपर, दोनों ओरसे रुका हुआ (अर्थात् बाहर भीतर दोनों ओरसे बन्द होनेवाला), सामने बरांडेसे युक्त, पक्की ईंटोंसे मज़बूत बना हुआ, चारों ओरसे विविधि द्रव्योंसे भरे हुए मकानोंसे घिरा हुआ कोशगृह अथवा प्रासाद बनाया जावे ॥ ३ ॥ जनपदके मध्य प्रान्तमें, वध्य पुरुषोंके द्वारा, विपत्तिमें काम आनेके लिये एक ध्रुवनिधि (स्थायी कोश, जिसमेंसे हर समय व्यय न किया जाय, ऐसे गुप्त खज़ाने) का निर्माण कराया जाय। (यह कार्य वध्य पुरुषोंसे इसलिये कराया जाता है, कि जिससे उनको इस कार्यके समाप्त होते ही मार दिया जाय, ताकि वे इस गुप्त रहस्यका किसीको पता न दे-सकें) ॥ ४ ॥

पक्केष्टकास्तम्भं चतुःशालमेकद्वारमनेकस्थानतलं विवृतस्तम्भापसारमुभयतः पण्यगृहं कोष्ठागारं च दीर्घबहुलशालं कक्ष्यावृतकुड्यमन्तः कुप्यगृहं तदेव भूमिगृहयुक्तमायुधागारं पृथग्धर्मस्थीयं महामात्रीयं विभक्तस्त्रीपुरुषस्थानमपसारतः सुगुप्तकक्ष्यं बन्धनागारं कारयेत् ॥ ५ ॥

पक्की ईंटोंसे चिना हुआ, चारों ओर चार मकानोंसे युक्त, एक द्वार वाला, अनेक कोठरियों और खनों (मंज़िलों) से युक्त, चारों ओर खुले खम्भे वाले चबूतरोंसे घिरा हुआ पण्यगृह, तथा कोष्ठागार बनाना चाहिये। लम्बी २ बहुत शालाओंसे युक्त, चारों ओर कोठरियोंसे घिरी हुई दीवारों वाला, कुप्यगृह भीतरकी ओर बनाया जावे। भूमिगृहसे युक्त उस कुप्यगृहको ही आयुधागार बनाया जावे। बन्धनागारमें, धर्मस्थसे सजा पाये हुए, तथा महामात्रसे सजा पाये हुए पुरुषोंके लिये पृथक् २ स्थान बनाये जावें। (धर्मस्थ=व्यवहार निर्णेता। महामात्र=सन्निधाता समाहर्त्ता आदि) । तथा स्त्री पुरुषोंके लिये बिल्कुल अलहदा २ स्थान बनाये जावें। बाहर निकलनेके मार्ग, तथा अन्य चारों ओरके उसके स्थानोंकी अच्छी तरह रक्षा कीजावे, इसप्रकारका बन्धनागार अर्थात् कारागृह बनवाना चाहिये ॥ ५ ॥

सर्वेषां शालाखातोदपानवच्च स्नानगृहाग्निविषत्राणमार्जारनकुलारक्षाः स्वदैवपूजनयुक्ताः कारयेत् ॥ ६ ॥

इन सबही कोशगृह आदि स्थानोंमें, शाला परिखा तथा कुओंकी तरह स्नानगृह आदिभी बनवाये जावें। तथा अग्नि और विषके प्रयोगसे इनकी रक्षा कीजावे (रक्षाका उपाय देखो:—निशान्तप्रणिधि प्रकरण) विषसे रक्षा होनेके लिये बिल्ली और न्योले आदिका रखना भी उपयोगी है। तथा इन स्थानोंकी रक्षा, रक्षक पुरुषोंके द्वारा अच्छी तरह करवावे। और इनके अपने २ देवताओंकी पूजा भी करवावे। इनके देवता इसप्रकार हैं:—कोशगृहका देवता कुबेर, पण्यगृह और कोष्ठागारकी देवता श्री, कुप्यगृहका विश्वकर्मा, आयुधागारका यम और बन्धनागारका वरुण देवता समझना चाहिये ॥ ६ ॥

कोष्ठागारे वर्षमानमरत्निमुखं कुण्डं स्थापयेत् ॥ ७ ॥ तज्जातकरणाधिष्ठितः पुराणं नवं च रत्नं सारं फल्गुकुप्यं वा प्रतिगृह्णीयात् ॥ ८ ॥

कोष्ठागारमें वृष्टिको मापने वाले एक कुण्ड (गर्त=छोटासा गढ़ा यन्त्रके समान बनाया जावे, जिसमें वृष्टिका पानी पड़नेसे वृष्टिकी इयत्ताका पता लगाया

जाय) की स्थापना कीजावे, इसके मुंहका घेरा एक अरत्नि अर्थात् चौबीस अंगुल होना चाहिये ॥ ७ ॥ कोष्ठागाराध्यक्ष, उस २ वस्तुके अच्छे जानकार पुरुषोंकी सहायतासे नये और पुरानेकी विवेचना करके रत्न, सार (चन्दन आदि), फल्गु (वस्त्र आदि), और कुप्य (लकड़ी चमड़ा बांस आदि विविध, कोष्ठागार के लिये उपयोगी वस्तुएं) आदि पदार्थोंका संग्रह करे ॥ ८ ॥

तत्र रत्नोपधावुत्तमो दण्डः कर्तुः कारयितुश्च ॥ ९ ॥ सारोपधौ मध्यमः ॥१०॥ फल्गुकुप्योपधौ तच्च तावच्च दण्डः ॥११॥

यदि कोई पुरुष असली रत्नकी जगह कोष्ठागारमें नकली देवे, और छलसे असली रत्नका अपहरण करले, तो अपहरण करने और करानेवाले दोनोंको उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ९ ॥ चन्दन आदि सार पदार्थोंमें छल करनेपर मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥ फल्गु और कुप्य पदार्थोंमें छल करनेपर, वह पदार्थ (उसकी तरहका दूसरा, या उसका मूल्य) लेलिया जावे; और उतनाही उसको दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥

रूपदर्शकविशुद्धं हिरण्यं प्रतिगृह्णीयात् ॥ १२ ॥ अशुद्धं छेदयेत् ॥ १३ ॥ आहर्तुः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १४ ॥ शुद्धं पूर्णमभिनवं च धान्यं प्रतिगृह्णीयात् ॥ १५ ॥ विपर्यये मूलद्विगुणो दण्डः ॥ १६ ॥

सिक्कोंको परखने वाले पुरुषोंके द्वारा सिक्कोंकी शुद्धताको जानकर हिरण्य (सुवर्णका सिक्का) आदिका संग्रह करे ॥ १२ ॥ और जो उन सिक्कोंमेंसे नकली या मिलावटी निकले, उसे उसी समय काट देवे, जिससे कि उसका फिर व्यवहार न हो ॥ १३ ॥ इसप्रकार बनावटी हिरण्य आदि सिक्कोंको लाने वाले पुरुषको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥ धान्याधिकारी पुरुष शुद्ध, पूरा तथा नया अन्न लेवे ॥ १५ ॥ इससे विपरीत लेनेपर उसे मूलसे (अर्थात् जितने मूल्यका वह अन्न है, उससे) दुगना दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥

तेन पण्यं कुप्यमायुधं च व्याख्यातम् ॥ १७ ॥ सर्वाधिकरणेषु युक्तोपयुक्ततत्पुरुषाणां पणादिचतुष्पणाः परमपहारेषु पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः ॥ १८ ॥

इसहीके समान, पण्य, कुप्य तथा आयुधके विषयमें भी नियम समझने चाहियें ॥ १७ ॥ प्रत्येक अधिकार स्थानपर काम करने वाले अधिकारी पुरुषको, उसके सहकारी पुरुषको, तथा इन दोनोंके नीचे काम करने वाले अन्य पुरुषोंको प्रथमवार किसी वस्तुका　　　करनेपर एक पणसे लगाकर चार

पणतक दण्ड दिया जावे। (किसी २ पुस्तकमें 'पणाद्विपणचतुष्पणाः' के स्थान पर 'पणाद्विपणचतुष्पणाः' ऐसा पाठ है। उसका अर्थ—क्रमशः उनको एक पण दो पण और चार पण दण्ड दिया जावे, यह करना चाहिये)। यदि फिर भी वे अपहरण करते चले जावें, तो अपहरणके क्रमानुसार उन्हें प्रथमसाहस, मध्यम साहस तथा उत्तमसाहस दण्ड दिया जावे। यदि पांचवीं वार फिर अपहरण करें, तो प्राण दण्ड दिया जावे ॥ १८ ॥

कोशाधिष्ठितस्य कोशावच्छेदे घातः ॥ १९ ॥ तद्वैयावृत्यकाराणामर्धदण्डः ॥ २० ॥ परिभापणमविज्ञाने ॥ २१ ॥

कोशाधिकारी पुरुष अर्थात् कोशाध्यक्ष, यदि सुरंग आदि लगाकर कोशका अपहरण करले, तो उसे प्राणदण्ड दिया जावे ॥ १९ ॥ तथा उसके नीचे कार्य करने वाले अन्य परिचारक पुरुषोंको आधा दण्ड दिया जावे ॥ २० ॥ यदि उन लोगोंको इस बातका पता न लगा हो कि सुरंगके द्वारा कोशाध्यक्षने धन अपहरण किया है, तो उनको दण्ड न दिया जाय, किन्तु केवल निन्दा पूर्वक उपालम्भ वचनोंके द्वारा उनकी भर्त्सना कीजावे ॥ २१ ॥

चोराणामभिप्रधर्षणे चित्रो घातः ॥ २२ ॥ तस्मादाप्तपुरुषाधिष्ठितः संनिधाता निचयाननुतिष्ठेत् ॥ २३ ॥

यदि अन्य चोर पुरुष इसप्रकार भीत फाड़कर धन अपहरण करलें, तो उनका चित्रवध किया जाय; अर्थात् उन्हें कष्टपूर्वक प्राण दण्ड दिया जाय ॥२२॥ इसलिये सन्निधाता अर्थात् कोशाध्यक्षको चाहिये, कि वह आप्त (विश्वस्त) पुरुषोंसे युक्त हुआ २ ही, धनसंग्रह आदिका कार्य करे ॥ २३ ॥

बाह्यमाभ्यन्तरं चायं विद्याद्वर्षशतादपि ।
यथा पृष्टो न सज्जेत व्ययशेषं च दर्शयेत् ॥ २४ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे संनिधातृनिचयकर्म पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥
आदितः षड्विंशः ॥ २६ ॥

सन्निधाताको चाहिये, कि वह बाह्य अर्थात् जनपदसे होनेवाली और आभ्यन्तर अर्थात् नगरसे होनेवाली आयको अच्छी तरहसे जाने। यहांतक जाने कि यदि उससे सौ वर्ष पीछेकी भी आय पूछी जावे, तो वह बिना किसी रुकावटके झट कहदे। और शेष बचे हुए धनको कोशमें सदा दिखाता रहे ॥ २४ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त।

छठा अध्याय ।

२४ प्रकरण ।

समाहर्त्ताका करसंग्रह कार्य ।

देशमें उत्पन्न होनेवाली सब तरहकी फसलोंका अध्यक्ष समाहर्त्ता होता है। यही उनमेंसे राजाके अंशको (राजकरको) वसूल करता है। आजकल समाहर्त्ताको कलक्टर कहा जाता है। हर्त्ताके कार्योंका निरूपण इस प्रकरणमें किया जायगा।

समाहर्ता दुर्गं राष्ट्रं खनिं सेतुं वनं व्रजं वणिक्पथं चावेक्षेत ॥ १ ॥

समाहर्त्ता, दुर्ग, राष्ट्र, खनि, सेतु, वन व्रज, तथा व्यापारीमार्गोंका निरीक्षण करे। अर्थात् इनके विषयमें उन्नति अवनतिका अच्छी तरह विचार करे ॥ १ ॥

शुल्कं दण्डः पौतवं नागरिको लक्षणाध्यक्षो मुद्राध्यक्षः सुरा सूना सूत्रं तैलं घृतं क्षारं सौवर्णिकः पण्यसंस्था वेश्या द्यूतं वास्तुकं कारुशिल्पिगणो देवताध्यक्षो द्वारबाहिरिकादेयं च दुर्गम् ॥ २ ॥

शुल्क (चुंगी), दण्ड (प्रथम साहस आदि), पौतव (तराजू बाट आदिका ठीक करना), नगराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष (खेत तथा बगीचे आदिकी सीमा, नापकर निश्चित करनेवाला अधिकारीपुरुष=पटवारी कानूनगोह आदि), मुद्राध्यक्ष मद्याध्यक्ष, प्राणिवधाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, तैलविक्रयी, घृतविक्रयी, क्षारविक्रयी (गुड़ आदिका बेचनेवाला) सौवर्णिक (सुवर्णाधिकारी पुरुष), पण्यसंस्था (दूकान), वेश्या, द्यूत, वास्तुक (गृह निर्माण करनेवाले राज आदि), बढ़ई, लुहार तथा सुनार और पच्चीकारी आदिका बारीक काम करनेवाले कारीगरोंका समूह, देवालयका निरीक्षक, नगर आदिके द्वारपाल तथा नट नर्तक आदिसे आदेय धन 'दुर्ग' कहाता है। अर्थात् चुंगी आदि बाईस उपायोंसे राजकरके रूपमें लिया हुआ धन 'दुर्ग' कहा गया है ॥ २ ॥

सीता भागो बलिः करो वणिक् नदीपालस्तरो नावः पट्टनं विवीतं वर्तनी रज्जुश्चोररज्जुश्च राष्ट्रम् ॥ ३ ॥

सीता (कृषि=खेती), भाग (धान्य आदिका छठा हिस्सा), बलि (उपहार अथवा भिक्षा) कर (फल तथा वृक्ष आदिके सम्बन्धमें राजदेय धन),

तर (नदी आदि पार करनेका टक्स), नाव (नौकाध्यक्षक द्वारा लभ्य धन), पट्टन (कस्बासे लभ्य धन), विवीत (चरागाहके द्वारा प्राप्तव्य धन), वर्त्तनी (सड़कोंका टैक्स), रज्जू (विषयपाल=भूमिनिरीक्षक पुरुषोंके द्वारा प्राप्तव्य धन), तथा चोररज्जू (चोरोंको पकड़नेके लिये गांवसे प्राप्त हुआ धन), ये सब धनसंग्रहके द्वार यहां 'राष्ट्र' शब्दसे कहे गये हैं ॥ ३ ॥

सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालशङ्खलोहलवणभूमिप्रस्तररसधातवः खनिः ॥ ४ ॥ पुष्पफलवाटषण्डकेदारमूलवापाः सेतुः ॥५॥ पशुमृगद्रव्यहस्तिवनपरिग्रहो वनम् ॥ ६ ॥

सुवर्ण, चांदी, हीरा, मरकत आदि मणि, मोती, मूंगा, शंख, लोहा, लवण, भूमि, पत्थर, तथा रसधातु, ये सब पदार्थ खानसे प्राप्त होनेके कारण 'खनि' शब्दसे कहे गये हैं ॥ ४ ॥ फूल तथा फलोंके बाग, केला सुपारी आदि, अन्नोंके खेत, अदरख तथा हलदी आदि वस्तुओंके उत्पत्तिस्थान, इन सबका यहां 'सेतु' शब्दसे कथन किया गया है ॥ ५ ॥ गवय आदि पशु, हरिण, द्रव्य (भिन्न २ प्रकारकी लकड़ी आदि), तथा हाथियोंके जंगलही यहां 'वन' शब्दसे समझने चाहियें ॥ ६ ॥

गोमहिषमजाविकं खरोष्ट्रमश्वाश्वतराश्च व्रजः ॥ ७ ॥ स्थलपथो वारिपथश्च वणिक्पथः ॥ ८ ॥ इत्यायशरीरम् ॥ ९ ॥

गाय, भैंस, बकरी, भेड़, गधा, ऊंट, घोड़े, खच्चर आदि 'व्रज' कहाते हैं ॥ ७ ॥ स्थलमार्ग और जलमार्गकोही यहां 'वणिक्पथ' कहा गया है ॥ ८ ॥ यही आयका शरीर है। अर्थात् राजाको जिन २ मार्गोंसे आय होसकती है, वे यही हैं। धनकी आमदनीके ये ही स्थान हैं ॥ ९ ॥

मूलं भागो व्याजी परिघः क्लृप्तं रूपिकमत्ययश्चायमुखम् ॥१०॥

मूल (अन्न तथा फल आदिको बेचकर प्राप्त किया धन), भाग (अन्न आदिका छठा हिस्सा), व्याजी (व्यापारियोंसे, तुला मान आदिके न्यून होनेपर, फिर न्यून न हो इसलिये दण्डरूपमें लिया हुआ आमदनीका बीसवां हिस्सा, अर्थात् प्रति सैकड़ा पांच। देखोः—अधि. २ अ० १७ सू. १५), परिघ (आतुरद्रव्य अर्थात् जिस द्रव्यका कोई वारिस न हो), क्लृप्त (नियत कर), रूपिक (नमकके व्यापारियोंसे लिया हुआ नमकका आठवां हिस्सा), अत्यय (धर्मस्थीय कण्टकशोधन आदि अधिकारियोंके द्वारा अपराधियोंपर किये गये जुरमानोंका धन), ये सब आयके स्थान, आयके मुख कहाते हैं। क्योंकि आमदनीके जितने द्वार बताये हैं, उन सबमेंसे येही मुख्य हैं ॥ १० ॥

देवपितृपूजादानार्थं स्वस्तिवाचनमन्तःपुरं महानसं दूतप्रवर्तनं कोष्ठागारमायुधागारं पुण्यगृहं कुप्यगृहं कर्मान्तो विष्टिः पत्त्यश्वरथद्विपपरिग्रहो गोमण्डलं पशुमृगपक्षिव्यालवाटाः काष्ठतृणवाटाश्चेति व्ययशरीरम् ॥ ११ ॥

देवपूजा, पितृपूजा, दान, स्वस्तिवाचन (शान्ति तथा पुष्टि आदिके निमित्त पुरोहितको दिया हुआ धन), अन्तःपुर, महानस, दूतको इधर उधर भेजना, कोष्ठागार, आयुधागार, पण्यगृह, कुप्यगृह, कर्मान्त (कृषि आदि व्यापार), विष्टि (हठपूर्वक कराये हुए कार्यका व्यय), पैदल, घोड़ा, रथ, हाथी इन चारों प्रकारकी सेनाओंका संग्रह, गाय, भैंस, बकरी आदिका व्यय, जंगली पशु, हरिण, पक्षी तथा व्याघ्र आदि हिंसक जानवरोंकी रक्षाके स्थान, लकड़ी घास तथा बगीचे आदि; ये सब व्ययका शरीर हैं। अर्थात् इनके निमित्त धन व्यय करना पड़ता है। ये व्ययके स्थान हैं ॥ ११ ॥

राजवर्षं मासः पक्षो दिवसश्च व्युष्टं वर्षाहेमन्तग्रीष्माणां तृतीयसप्तमा दिवसोनाः पक्षाः शेषाः पूर्णाः पृथगधिमासक इति कालः ॥ १२ ॥

राजाके राज्याभिषेक समयसे लगाकरवर्ष मास पक्ष और दिन, इन चार चीजोंको व्युष्ट कहा जाता है। इसका तात्पर्य यही है, कि उस राजाके समयमें जो भी कार्य हों, उनके लेखन आदिमें, इन चारोंका निर्देश किया जावे; जैसे अमुक राजवर्षके अमुक मास अमुक पक्ष और अमुक दिनमें उस पुरुषने इतना धन तथा अन्य कोई पदार्थ दिया इत्यादि। राजवर्षके तीन विभाग किये जावें, वर्षा, हेमन्त (जाड़ा), ग्रीष्म (गरमी। ये तीनों ऋतु कहे जाते हैं); इस प्रत्येक विभागमें आठ पक्ष होंगे, (वर्षा आदि एक एक ऋतु चार चार महीने का होता है, एक महीनेमें दो पक्ष = शुक्ल और कृष्ण; चार मासकी एक ऋतुमें आठ पक्ष हुए), उनमेंसे प्रत्येक ऋतुके तीसरे तथा सातवें पक्षमें एक एक दिन कम माना जावे (एक पक्ष पन्द्रह दिनका होता है, तीसरा तथा सातवां पक्ष चौदह २ दिन काही माना जावे), बाकी प्रत्येक ऋतुके छहों पक्ष पूरे (पन्द्रह २ दिनके) माने जावें। और इससे पृथक् एक अधिमास (अधिकमास=मलमास) माना जावे (सौरमासके अतिरिक्त जबकि महीनोंकी गणना चन्द्रमाकी गतिके अनुसार कीजाती है, तो प्रत्येक मासमें प्रायः दो एक दिनकी न्यूनता होती चली जाती है, चान्द्र गणनाके अनुसार हुई २ इस न्यूनताको पूरा करनेके लिये लगभग प्रत्येक ढाई वर्षके बाद, बारह महीनेके

के अतिरिक्त एक तेरहवां महीना और बढ़ा दिया जाता है, इसीका नाम अधिमास या मलमास होता है)। साधारण तथा राजकीय व्यवहारोंके लिये यही काल समझना चाहिये ॥ १२ ॥

करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवी च ॥ १३ ॥ संस्थानं प्रचारः शरीरावस्थापनमादानं सर्वसमुदयपिण्डः संजातमेतत्करणीयम् ॥ १४ ॥

समाहर्त्ताको उचित है, कि वह करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय, तथा नीवीकी ठीक २ व्यवस्था करे ॥१३॥ करणीय छः प्रकारका होता है:—संस्थान (अमुक ग्रामसे इतना धन लेना चाहिये, ऐसा निर्णय), प्रचार (देश अर्थात् पृथक् २ देशके अवान्तर विभागोंका ज्ञान), शरीरावस्थापन (जनपद और नगरोंकी इतनी आय है, इस प्रकार आयके शरीरका निश्चय), आदान (अन्न तथा हिरण्य आदिका ठीक समय पर लेलेना), सर्वसमुदयपिण्ड (प्रत्येक ग्राम तथा प्रत्येक नगरमें उत्पन्न हुए धान्य आदिका एकत्रित करना तथा उसकी जानकारी रखना), सञ्जात (प्रत्येक उपायसे प्राप्त किये हुए धनके परिमाणका ज्ञान रखना ये छः करणीय हैं । समाहर्त्ताके अवश्य करने योग्य कार्य होनेके कारण ये 'करणीय' शब्दसे कहे गये हैं ॥ १४ ॥

कोशार्पितं राजहारः पुरव्ययश्च प्रविष्टं परमसंवत्सरानुवृत्तं शासनमुक्तं मुखाज्ञप्तं चापातनीयमेतत्सिद्धम् ॥ १५ ॥

सिद्ध भी छः प्रकारका होता है, कोशार्पित (खजानेमें जमा कर दिया हुआ), राजहार (राजाने अपने निजी कार्यके लिये समाहर्त्तासे लिया हुआ), और पुरव्यय (नगरके शाला निर्माण आदि कार्योंमें खर्च हुआ २), यह तीनों प्रकारका धन 'प्रविष्ट' शब्दसे कहा जाता है । परमसंवत्सरानुवृत्त (पिछले साल का बचा हुआ धन, जो कि अभी प्रविष्ट नहीं हुआ, अर्थात् न खजानेमें जमा किया गया है, न राजाने अपने कार्य के लिये लिया है, और न नगरके कार्योंमें व्यय हुआ है), शासनमुक्त (जिस धनके सम्बन्धमें राजाने अभी तक अपनी कोई लिखित आज्ञा नहीं दी), और मुखाज्ञप्त (जिस धनके सम्बन्धमें राजाने मौखिक आज्ञा देदी है) यह तीन प्रकारका धन आपातनीय कहा जाता है । इस तरह तीन प्रकारका प्रविष्ट और तीन प्रकारका आपातनीय मिलकर कुल छः प्रकारका 'सिद्ध' कहा जाता है ॥ १५ ॥

सिद्धिप्रकर्मयोगः दण्डशेषमाहरणीयं बलात्कृतप्रतिस्तब्धमवसृष्टं च प्रशोध्यमेतच्छेषमसारमल्पसारं च ॥ १६ ॥

छः प्रकारका ही शेष होता है;—सिद्धप्रकर्मयोग (धान्य आदिके मिलजानेपर उन्हें अपने अधीन न करनेके लिये प्रवृत्ति करना) तथा दण्ड शेष (सेनाके उपयोगसे बचाहुआ धन) सुखपूर्वक लियेजासकनेके कारण इन दोनोंका नाम 'आहरणीय' है। राजाके प्रिय पुरुषोंने बलपूर्वक अपनी इच्छा-नुसार न दिया हुआ धन (तात्पर्य यह है कि जो पुरुष राजाके मुंह लगे हुए होते हैं, वे यह सोचकर कि समाहर्ता हमारा क्या करसकता है ? जान बूझकर राजदेय धन समाहर्त्ताको नहीं देते। ऐसा उन लोगोंसे प्राप्त न हुआ २ धन), और अवसृष्ट अर्थात् नगरके मुखिया लोगोंने अपनी इच्छानुसार न दिया हुआ धन 'प्रशोध्य' नामसे कहाजाता है। क्योंकि इन दोनों प्रकारके धनोंको वसूल करना समाहर्त्ताके लिये बड़ा यत्नसाध्य काम है, इसलिये इनका नाम प्रशाध्य रक्खा गया है। इस प्रकार दो तरहका 'आहरणीय' दो तरहका 'प्रशोध्य' मिलकर चार तरहका और असार (निष्फल व्यय हुआ २ धन) तथा अल्पसार (बहुत व्यय करकेभी जिसका फल थोड़ाही मिलाहो) ये सब मिलाकर छः प्रकारका शेष होता है ॥ १६ ॥

वर्तमानः पर्युषितोऽन्यजातश्चायः ॥ १७ ॥ दिवसानुवृत्तो वर्तमानः ॥ १८ ॥ परमसांवत्सरिकः परप्रचारसंक्रान्तो वा पर्यु-षितः ॥ १९ ॥

आय तीन प्रकारका होता है;—वर्त्तमान पर्युषित और अन्यजात ॥ १७ ॥ जो आय प्रतिदिन हो, अर्थात् दैनिक आय, वर्त्तमान आय कहाता है ॥ १८ ॥ पिछले वर्षका जो धन उस समय वसूल न हुआ हो, उसका अब वसूल होना; पहिले अध्यक्षके समयमें हिसाब आदिकी गड़बड़ीसे न मालूम हुए २ धनका मालूम होजाना; अथवा शत्रुके देशसे आया हुआ धन; यह 'पर्युषित' आय कहाता है ॥ १९ ॥

नष्टप्रस्मृतमायुक्तदण्डः पार्श्वं पारिहीणिकमौपायनिकं डमर-गतकस्वमपुत्रकं निधिश्चान्यजातः ॥ २० ॥

भूले हुए धनका फिर याद आजाना, अपराधी पुरुषोंसे दण्डरूपमें लिया हुआ, करसे अतिरिक्त किन्हीं वक्र उपायोंसे अथवा अपने प्रभुत्त्वके कारण प्राप्त किया हुआ धन, चौपायोंसे सस्य आदिके नष्ट किये जानेपर उसके दण्डरूपमें प्राप्त हुआ २ धन, भेंटके रूपमें प्राप्त हुआ धन, शत्रुसे कलह होनेपर उस झगड़ेमें शत्रुकी सेनासे अपहरण किया हुआ धन तथा जिस धनका कोई दायभागी न हो इस तरहका प्राप्त हुआ २ धन 'अन्य जात' आयके नामसे कहा जाता है ॥२०॥

विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषश्च व्ययप्रत्यायः ॥२१॥ विक्रये पण्यानामर्घवृद्धिरुपजा मानोन्मानविशेषो व्याजी क्रयसंघर्षे वा वृद्धिरित्यायः ॥ २२ ॥

किसी कार्यपर लगाई हुई सेनाके लिये व्यय किये जाने वाले धनमेंसे बचा हुआ धन, औषधालय आदिके व्ययके लिये निश्चित किये हुए धनमेंसे बचा हुआ धन, तथा दुर्ग या महलके लिये व्यय किये जाने वाले धनमेंसे बचा हुआ धन; यह 'व्ययप्रत्याय' कहाता है। यह भी एक प्रकारकी आय है ॥२१॥ आयके और भी पांच प्रकार हैं:—विक्रय समयमें वस्तुओंकी कीमत बढ़ जाना, उपजा (प्रतिषिद्ध वस्तुओंके बेचनेसे प्राप्त हुआ धन), बाट आदिके न्यूनाधिक करनेसे अधिक प्राप्त हुआ २ धन, व्याजी (देखो—दूसरी अध्यायका १० वां सूत्र) और किसी वस्तुके बेचनेके समयमें खरीदारोंकी परस्पर स्पर्धासे जो मूल्य बढ़कर मिल जावे। इस प्रकार यहां तक आयका निरूपण किया गया ॥ २२ ॥

नित्यो नित्योत्पादिको लाभो लाभोत्पादिक इति व्ययः ॥ २३ ॥ दिवसानुवृत्तो नित्यः ॥ २४ ॥ पक्षमाससंवत्सरलाभो लाभः ॥ २५ ॥ तयोरुत्पन्नो नित्योत्पादिको लाभोत्पादिक इति ॥२६॥ व्ययसंजातादायव्ययविशुद्धा नीवी प्राप्ता चानुवृत्ता चेति ॥ २७ ॥

अब व्ययका निरूपण करते हैं, व्यय चार प्रकारका होता है:—नित्य, नित्योत्पादिक, लाभ, लाभोत्पादिक ॥ २३ ॥ जो व्यय प्रतिदिन नियम पूर्वक होता हो, उसे नित्य कहते हैं ॥ २४ ॥ पाक्षिक, मासिक तथा वार्षिक लाभके लिये जो धन व्यय किया जाता है, उस व्ययको 'लाभ' कहते हैं ॥ २५ ॥ नित्यव्यय और लाभव्ययके साथ जो और अधिक व्यय (व्ययके लिये नियमित निर्णीत धनसे और अधिक धन, व्यय) होजावे, तो उसे यथासंख्य नित्योत्पादिक और लाभोत्पादिक कहा जाता है ॥ २६ ॥ सब तरहके व्ययसे बचा हुआ, आय और व्ययकी अच्छीतरह गणना करके ठीक २ निश्चित हुआ धन 'नीवी' कहाता है। यह दो प्रकारका होता है:—प्राप्त (जो खजानेमें जमा कर दिया गया हो) और अनुवृत्त (जो खजानेमें जमा किये जानेके लिये तैयार रक्खा हो) ॥ २७ ॥

एवं कुर्यात्समुदयं वृद्धिं चायस्य दर्शयेत् ।
ह्रासं व्ययस्य च प्राज्ञः साधयेच्च विपर्ययम् ॥ २८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनं षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥
आदितः सप्तविंशः ॥ २७ ॥

बुद्धिमान् समाहर्त्ताको चाहिये, कि वह इसीप्रकार राजधनका संग्रह करे। और आयकी वृद्धि तथा व्ययका ह्रास, हिसाब आदि ठीक करके दिखाता रहे। तात्पर्य यह है कि वह इसप्रकारका यत्न करे, जिससे आय बराबर बढ़ती जावे और व्यय यथाशक्य कम होजाय। यदि किसी अवस्थामें व्यय अधिक करके भी भविष्यमें विशेष आयकी सम्भावना हो, तो इस तरहसे भी आयकी सिद्धि करे ॥ २८ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें छठा अध्याय समाप्त।

सातवां अध्याय ।

२५ प्रकरण ।

अक्षपटलमें गाणनिक्याधिकार ।

राजकीय धनके आय व्ययका लेखा जिस स्थानमें बैठकर किया जावे, उसे 'अक्षपटल' कहते हैं। गाणनिक (गणना करने वाले क्लर्क आदि) जो कार्य करते हैं, उसका नाम गाणनिक्य है, उसका अधिकार अर्थात् निरूपण इस प्रकरणमें किया जायगा।

अक्षपटलमध्यक्षः प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा विभक्तोपस्थानं निबन्धपुस्तकस्थानं कारयेत् ॥ १ ॥

अध्यक्ष (आय व्ययका प्रधान निरीक्षक अधिकारी पुरुष), अक्षपटल (आय व्ययके प्रधान कार्यालय) का निर्माण करावे। उसका दरवाजा पूरब या उत्तरकी ओरको होना चाहिये; प्रत्येक छोटे बड़े लेखकों (क्लर्कों) के लिये पृथक् पृथक् स्थान होने चाहियें; आय व्ययके रजिस्टरोंके रखनेका, उसमें नियमित तथा सुरक्षित प्रबन्ध होना चाहिये ॥ १ ॥

तत्राधिकरणानां संख्याप्रचारसंजाताग्रं कर्मान्तानां द्रव्यप्रयोगे वृद्धिक्षयव्ययप्रयामव्याजीयोगस्थानवेतनविष्टिप्रमाणं रत्नसारफल्गुकुप्यानामर्घप्रतिवर्णकप्रतिमानमानोन्मानावमानभाण्डं

देशग्रामजातिकुलसङ्घातनां धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानं राजोपजीविना प्रग्रहप्रदेशभोगपरिहारभक्तवेतनलाभं राज्ञश्च पत्नीपुत्राणां रत्नभूमिलाभं निर्देशोत्पातिकप्रतीकारलाभं मित्रामित्राणां च संधिविक्रमप्रदानादानि निबन्धपुस्तकस्थं कारयेत् ॥ २ ॥

उस अक्षपटलमें क्या २ कार्य होने चाहियें; यह बताते हैं:—द्रव्योंके उत्पत्ति स्थानोंकी नामनिर्देशपूर्वक संख्या, जनपद तथा वहांकी हरतरहकी उपजको रजिस्टरोंमें लिखा जावे, अर्थात् अमुक जनपदमें इतने २ स्थानोंसे इतना २ धन प्राप्त हुआ। खान तथा हरप्रकारके कारखानोंके आय व्ययके सम्बन्धमें वृद्धि (व्याज), अक्ष (पुरुषोंका नियुक्त करना), व्यय (धान्य हिरण्य आदिको कार्यमें लगाना), प्रयाम (तैयार हुआ २ अन्न आदिका समूह), व्याजी (देखो:—अधि० २, अध्या० ६, सूत्र १०), योग (अच्छे और बुरे द्रव्यकी मिलावट), स्थान (ग्राम आदि), वेतन, विष्टि (बेगार) आदि सब कार्योंका उल्लेख रजिस्टरमें किया जाय। रत्न सार फल्गु और कुप्य पदार्थोंके मूल्य, प्रत्येक वस्तुका गुण, तोल, लम्बाई चौड़ाई, ऊंचाई तथा असली मूलधनका उल्लेख रजिस्टरोंमें किया जावे। देश ग्राम जाति कुल तथा सभा सोसाइटियोंके धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा विशेष परिस्थितियोंका भी उल्लेख किया जावे। राजोपजीवी पुरुषोंके प्रग्रह (पूजा, मन्त्री पुरोहित आदिके प्रति किया हुआ विशेष सत्कार), निवासस्थान, भोग (भेंट आदि), परिहार (कर आदिका न लेना), भक्त (उनके घोड़े हाथी आदिका खर्च देना), तथा वेतन आदिका भी उल्लेख किया जावे। महारानी तथा राजपुत्रोंके रत्न और भूमि आदिकी प्राप्तिका भी उल्लेख किया जावे। राजा, महारानी, और राजपुत्रोंको नित्य दिये जाने वाले धनसे अतिरिक्त दिया हुआ धन, विशेष उत्सव आदिसे प्राप्त हुआ धन, तथा रोगोंको शान्त करनेके लिये जनतासे प्राप्त हुआ धन, इनको भी रजिस्टरमें लिख लिया जावे। मित्र तथा शत्रुओंके सन्धि विग्रह और उनको दिये हुए तथा उनसे लिये हुए धन आदिका भी पुस्तकोंमें उल्लेख कर लिया जावे। ये ही सब कार्य हैं, जो कि अक्षपटल अर्थात् राजकीय कार्यालयोंमें होने चाहियें ॥ २ ॥

ततः सर्वाधिकरणानां करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवीमुपस्थानं प्रचारचरित्रसंस्थानं च निबन्धेन प्रयच्छेत् ॥ ३ ॥ उत्तममध्यमावरेषु च कर्मसु तज्जातिकमध्यक्षं कुर्यात्। ४

तदनन्तर सब अधिकरणों (उत्पत्तिस्थानों या कार्यस्थानों) के करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय, नीवी (देखोः—पिछला छठा अध्याय), उपस्थान (कार्यकर्त्ताओंकी उपस्थिति); प्रचार, चरित्र तथा संस्थान आदि सबको लिखकर राजाको दे देवे ॥ ३ ॥ उत्तम, मध्यम तथा नीच कार्योंपर उनके अनुकूलही अध्यक्ष नियत किये जावें ॥ ४ ॥

सामुदायिकेष्ववक्लृप्तिकं यमुपहत्य न राजानुतप्येत ॥५॥

एकही कार्यको करनेवाले बहुतसे कर्मचारियोंमेंसे उसहीको अध्यक्ष बनाया जावे, जोकि कार्य करनेमें सबसे निपुण हो, यदि कई कर्मचारी समानही निपुण हों, तो उनमें जो गुणी हो, तथा समान गुणियोंमें भी जो यशस्वी हो (यह 'अवक्लृप्तिक' शब्दका भाव है); इनमेंसे भी ऐसे पुरुषको अध्यक्ष बनाया जाय, जिसको कि अपराध होनेपर दण्ड देनेके पश्चात् राजाको अनुताप या पश्चात्ताप न हो, इसका तात्पर्य यह है कि राजा ऐसे अध्यक्ष पदोंपर ब्राह्मणों अथवा अपने निकट सम्बन्धियोंको नियुक्त न करे, क्योंकि किसी अपराधमें इनको दण्ड देनेपर राजाको दुःखही होता है ॥ ५ ॥

सहग्राहिणः प्रतिभुवः कर्मोपजीविनः पुत्रा भ्रातरो भार्या दुहितरो भृत्याश्चास्य कर्मच्छेदं वहेयुः ॥ ६ ॥ त्रिशतं चतुःपञ्चाशच्चाहोरात्राणां कर्मसंवत्सरः ॥ ७ ॥

यदि कोई अध्यक्ष अपहरण किये हुए राजकीय धनको फिर न देसके, तो वह धन उसके साथी (जिन्होंने अपहृत धनमें हिस्सा लिया हो), प्रतिभू (जामिन), गणक (कर्मोपजीवी—अध्यक्षके नीचे कार्य करनेवाले अन्य कर्मचारी), उसके (अध्यक्षके) पुत्र, भाई, स्त्री, लड़की, अथवा नौकर लोग देवें (पहिलेके न होनेपरही दूसरे देवें। यदि उस धनराशिको एक पूरा न कर सके, तो उसी क्रमसे और दूसरे करें) ॥ ६ ॥ तीनसौ चौवन (३५४) दिनरातका एक कर्मसंवत्सर समझना चाहिये। (प्रत्येक ऋतुमें एक २ दिन कम होते जानेसे यह समय समझना चाहिये) ॥ ७ ॥

तमाषाढीपर्यवसानमूनं पूर्णं वा दद्यात् ॥८॥ करणाधिष्ठितमधिमासकं कुर्यात् ॥ ९ ॥

उस संवत्सरको आषाढ़ मासकी पूर्णमासी तक समाप्त हुआ समझे। यदि कोई अध्यक्ष आदि बीच में ही कार्य पर नियुक्त किया गया हो, तो उसे उतने दिनको काटकर वेतन दे दिया जावे जिसने पूरा काम किया हो, उसे पूरा वेतन दे दिया जावे ॥ ८ ॥ प्रतिदिनमें कितने पुरुषने कितना काम किया

है, इस बातका पता उपस्थितिक गणक (हाजिरीका क्लर्क, अर्थात् सब कर्मचारियोंकी उपस्थिति का लेखक) से लेना चाहिये ॥ ९ ॥

अपसर्पाधिष्ठितं च प्रचारं प्रचारचरित्रसंस्थानान्यनुपलभमानो हि प्रकृतः समुदयमज्ञानेन परिहापयति ॥ १० ॥

अध्यक्षको चाहिये कि वह सम्पूर्ण जनपदके कार्यालयोंकी व्यवस्थाका ज्ञान गुप्तचरोंके द्वारा प्राप्त करता रहे। क्योंकि देशके समाचार और उसकी पूर्व स्थिति को गुप्तचरोंके द्वारा न जानता हुआ अध्यक्ष, अपनी अज्ञानतासे धनोंकी उत्पत्तिमें रुकावट डालने वाला हो जाता है, अर्थात् उसकी अनभिज्ञतासे कर्मचारियोंमें इस प्रकारके दोष उत्पन्न हो जाते हैं, कि जिससे आमदनीमें रुकावट पड़जाती है ॥ १० ॥

उत्थानक्लेशासहत्वादालस्येन शब्दादिष्विन्द्रियार्थेषु प्रमादेन संक्रोशाधर्मानर्थभीरुर्भयेन कार्यार्थिष्वनुग्रहबुद्धिः कामेन हिंसाबुद्धिः कोपेन विद्याद्रव्यवल्लभापाश्रयाद्दर्पेण तुलामानतर्कगणिकान्तरोपधानाल्लोभेन ॥ ११ ॥

अर्थोत्पत्तिमें बाधा डालने वाले निम्नलिखित आठ दोष हैं;—सबसे पहिला अज्ञान (जो पिछले सूत्रमें बताया जा चुका है), आलस्य, प्रमाद, काम, क्रोध, दर्प और लोभ; परिश्रमके दुःखको न सहन करनेके कारण आलस्यके द्वारा, गाना बजाना तथा स्त्रियों में आसक्तिके कारण प्रमादके द्वारा, निन्दा अधर्मके तथा अनर्थके कारण भयसे, किसी कार्यार्थी पर अनुग्रह करने के कारण कामके द्वारा, इसी तरह किसी पर क्रूरता करनेके कारण क्रोधके द्वारा, विद्या धन तथा राजा आदि का प्रिय होनेके कारण दर्पसे, तुला मान तर्कना तथा हिसाबमें गड़बड़ कर छलके कारण लोभ के द्वारा, कर्मचारी गण आमदनी में रुकावट डाल देते हैं ॥ ११ ॥

तेषामानुपूर्व्या यावानर्थोपघातस्तावानेकोत्तरो दण्ड इति मानवाः ॥ १२ ॥

ऐसे पुरुषोंको दण्ड दिया जावे, जो किसी प्रकार भी राजकीय धनका नाश करते हैं। मनु आचार्यके अनुयायियों का कथन है, कि जो कर्मचारी जितना अपराध (धन अपहरण आदि) करे, उसको इन अज्ञान आदि दोषों के क्रमके अनुसार एक २ गुना अधिक दण्ड दिया जावे। अर्थात् यदि अज्ञान से हानि हुई हो, तो हानि के बराबर ही उसे दण्ड दिया जाय, आलस्यके

कारण होने पर हानिसे दुगना प्रमादके कारण होने पर तिगुना इसी तरह आगे भी समझ लेना चाहिये ॥ १२ ॥

सर्वत्राष्टगुण इति पाराशराः ॥ १३ ॥ दशगुण इति बार्हस्पत्याः ॥ १४ ॥ विंशतिगुण इत्यौशनसाः ॥ १५ ॥ यथापराधमिति कौटल्यः ॥ १६ ॥

परन्तु पराशर आचार्यके अनुयायी कहते हैं, कि सब ही अपराधोंमें समानता होनेके कारण, सबको ही अठगुना दण्ड देना चाहिये ॥ १३ ॥ बृहस्पति के अनुयायी आचार्योंका सिद्धान्त है, कि सबको ही दसगुना दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥ शुक्राचार्यके शिष्य कहते हैं, कि सबको बीसगुना दण्ड मिलना चाहिये ॥ १५ ॥ परन्तु आचार्य कौटल्यका अपना मत है, कि जो जितना अपराध करे, उसको उसके अपराधके अनुसार ही दण्ड दिया जाना चाहिये ॥ १६ ॥

गाणनिक्यान्याषाढीमागच्छेयुः ॥१७॥ आगतानां समुद्रपुस्तभाण्डनीवीकानामेकत्र संभाषावरोधं कारयेत् ॥ १८ ॥

छोटे २ सब कार्यालयोंके अध्यक्ष, अपना हिसाब दिखानेके लिये, प्रतिवर्ष आषाढ़के महीनेमें प्रधान कार्यालय में आवें ॥ १७ ॥ आये हुए उन लोगोंका, उस समय तक परस्पर भाषण न होने दे, जब तक कि उनके पास राजकीय मोहर लगे हुए रजिस्टर तथा व्ययसे बचा हुआ शेष धन विद्यमान रहे । (अर्थात् जब उनका हिसाब जांच लिया जाय, और बाकी रकम लेली जाय तबही वे लोग आपस में मिल सकें ॥ १८ ॥

आयव्ययनीवीनामग्राणि श्रुत्वा नीवीमवहारयेत् ॥ १९ ॥ यच्चाग्रादायस्यान्तरवर्णे नीव्या वर्धेत व्ययस्य वा यत्परिहापयेत्तदष्टगुणमध्यक्षं दापयेत् ॥ २० ॥

आय व्यय तथा शेष परिमाणको सुन कर, जो कुछ उनके पास शेष हो वह ले लिया जावे ॥१९॥ अध्यक्षने आय धनका जितना परिमाण बताया है, यदि रजिस्टरमें उससे अधिक निकले, और इसी तरह जितना व्ययका परिमाण बताया है, रजिस्टरमें उससे कम निकले, तो वह आयकी अधिक और व्ययकी जितनी रकम कम बतलाई हो, उसका आठगुना उस अध्यक्ष पर जुर्माना किया जावे ॥ २० ॥

विपर्यये तमेव प्रति स्यात् ॥ २१ ॥ यथाकालमनागतानामपुस्तनीविकानां वा देयदशबन्धो दण्डः ॥ २२ ॥

यदि इस बातका निश्चय हो जाय, कि जितनी आमदनी हुई है, उससे कुछ अधिक रकम रजिस्टरमें लिखी गई है, अथवा वस्तुतः जितना व्यय हुआ है, उससे कम ही रजिस्टरमें दर्ज किया गया है, तो इस कारणसे शेषमें जितना अन्तर पड़े, उसके सम्बन्धमें अध्यक्षको दण्ड न दिया जाय। प्रस्तुत जो आय व्ययकी न्यूनाधिकता हुई है, वह उसीकी समझी जावे। अर्थात् व्यय में जो कम लिखा गया है, वह धन अध्यक्षको देदिया जावे ॥ २१ ॥ जो अध्यक्ष, निर्दिष्ट समयमें, अथवा अपने रजिस्टर और शेष धनको लेकर हिसाब दिखानेके लिये उपस्थित न होवे, तो उसको जितना देना हो, उससे दसगुना जुरमाना उसपर किया जाय ॥ २२ ॥

कार्मिके चोपस्थिते कारणिकस्याप्रतिबध्नतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २३ ॥ विपर्यये कार्मिकस्य द्विगुणः ॥ २४ ॥ प्रचारसमं महामात्राः समग्राः श्रावयेयुरविषममात्राः ॥ २५ ॥ पृथग्भूतो मिथ्यावादी चैषामुत्तमदण्डं दद्यात् ॥ २६ ॥

हिसाब देखनेके लिये, प्रधान अध्यक्षके ठीक समय पर उपस्थित हो जाने पर, जो अध्यक्ष अपना हिसाब न दिखावे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २३ ॥ यदि प्रधान अध्यक्ष, ठीक समय पर आकर हिसाब न देखे, तो उसे दुगना प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥ राजाके प्रधान कर्मचारी महामात्र आदि, आय व्यय तथा नीवी सम्बन्धी अथवा परस्परकी सम्पूर्ण अनुकूल प्रवृत्तियोंका, जनपदके साथ २ (अर्थात् जनपद निवासी पुरुषोंको भी अपनी सभामें मिलाकर उनके साथ २) अच्छी तरह समझावे। ॥ २५ ॥ जो इनमें (महामात्रोंमें) से प्रतिकूल अथवा मिथ्या बोले, उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २६ ॥

अकृताहोरूपहरं मासमाकाङ्क्षेत ॥ २७ ॥ मासादूर्ध्वं मासद्विशतोत्तरं दण्डं दद्यात् ॥ २८ ॥ अल्पशेषनीविकं पञ्चरात्रमाकाङ्क्षेत ततः परम् ॥ २९ ॥

द्रव्य एकत्रित करनेका जो नियत समय है, यदि संग्रहकर्ता उस समय तक न करे, तो एक महीना और भी उसकी प्रतीक्षा करे, अर्थात् एक महीनेका अवसर, संग्रह करनेके लिये और दिया जाय ॥ २७ ॥ यदि फिर भी वह द्रव्य संग्रह करके न देवे, तो उसपर प्रतिमासके हिसाबसे दोसौ मुद्रा जुरमाना किया जावे ॥ २८ ॥ जिस अध्यक्षके पास २ ३ द्य १ १

ही शप रह गया हो उसकी केवल पाच दिन तक प्रतीक्षा कर तदनन्तर उसे भी दण्डनीय समझा जाव ॥ २९ ॥

कोशपूर्वमहोरूपहरं धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानसंकलननिर्वर्तनानुमानचारप्रयोगैरवेक्षेत ॥ ३० ॥

कोशधनके साथ २ रजिस्टर आदि लाने वाले अध्यक्षको निम्नलिखित आठ बातोंसे परीक्षा किया जावे, प्रथम धर्म, अर्थात् यह देखा जावे कि यह वस्तुतः ही ऐसा धर्मात्मा है,या दम्भी है; उसके व्यवहारको देखाजावे;आचार विचारको देखा जावे, उसकी पहिली स्थितिको देखा जावे; उसके हिसाब तथा किये हुए कार्योंको देखा जावे, उसके एक कार्यको देखकर दूसरेका अनुमान किया जावे, और गुप्तचरोंके द्वारा भी उसका परीक्षण किया जावे ॥ ३० ॥

दिवसपञ्चरात्रपक्षमासचातुर्मास्यसंवत्सरैश्च प्रतिसमानयेत् ॥ ३१ ॥

दिन, पांच दिन, पक्ष (पन्द्रह दिन), महीना, चार महीना और साल, इस प्रकार विभाग करके आय व्यय तथा नीवी का लेखा करे तात्पर्य यह है:—जब वर्ष प्रारम्भ हो, एक २ दिन की अलहदा २ आय आदि जोड़ता रहे, जब पांच दिन हो जांय तो उसे इकट्ठा जोड़कर रक्खे, इसी तरह पांच पांच दिन तक के अङ्कोंको इकट्ठा जोड़कर रखता रहे, जब पन्द्रह दिन हो जांय, तो उन पांच २ दिनके तीन अङ्कोंको फिर इकट्ठा जोड़ ले, इसी तरह महीनेके बाद दो पक्षके दो अङ्कोंको, चार महीनेके बाद एक २ महीनेके चारों अङ्कोंको, और सालके बाद चार २ महीनेके तीन अङ्कोंको आपसमें जोड़कर इकट्ठा कर लेवे। इस प्रकार सब हिसाब साफ रक्खे ॥ ३१ ॥

व्युष्टदेशकालमुखोत्पत्त्यनुवृत्तिप्रमाणदायकदापकनिबन्धकप्रतिग्राहकैश्चायं समानयेत् ॥ ३२ ॥

आयके लिखनेके साथ २ इन बातोंको रजिस्टरमें और दर्ज करे:—व्युष्ट (राजाका वर्ष, मास, पक्ष और दिन, देखो अधि० २, अध्याय ६, सूत्र १२), देश, काल, मुख (आयमुख और आयशरीर), उत्पत्ति (आय आदिसे उत्पन्न हुई वृद्धि), अनुवृत्ति (एक स्थानसे दूसरे स्थानमें लेजाना), प्रमाण, कर देनेवालेका नाम, दिलानेवाले अधिकारीका नाम, लेखक और लेनेवालेका नाम। इन बातोंके लिखनेके साथ २ ही आयका लेखा करे ॥३२॥

व्युष्टदेशकालमुखलाभकारणदेययोगपरिमाणाज्ञापकोद्धारकनिधातृकप्रतिग्राहकैश्च व्ययं समानयेत् ॥ ३३ ॥

तथा व्ययके साथ इन बातोंको लिखे. व्युष्ट, देश, काल, मुख लाभ (पक्ष, मास, या वर्षमें जो प्राप्ति होवे), कारण (किस निमित्तसे व्यय हुआ है, यह कारण), देय (जो चीज दी जावे उसका नाम), योग (मिले हुए द्रव्यमें कितना अच्छा और कितना बुरा है), परिमाण, आज्ञापक (व्यय के लिए आज्ञा देनेवालेका नाम), उद्धारक (द्रव्य ग्रहण करनेवाला), निधातृक (भाण्डागारिक) प्रतिग्राहक (लेनेवाला ब्राह्मण आदि, अर्थात् वह ब्राह्मण है या अन्य क्षत्रियादि, यह भी लिखा जावे), इन सब बातोंके साथ२ व्ययका लेखा किया जावे ॥ ३३ ॥

व्युष्टदेशकालमुखानुवर्तनरूपलक्षणपरिमाणनिक्षेपभाजनगोदायकैश्च नीवीं समानयेत् ॥ ३४ ॥

नीवीके साथ इन बातोंको लिखे:—व्युष्ट, देश, काल, मुख, अनुवर्तन रूप (उस द्रव्यका स्वरूप), लक्षण (उस द्रव्यके विशेष चिन्ह आदि), परिमाण, निक्षेपभाजन (जिस पात्रमें वह द्रव्य रक्खा जावे), गोपायक (उसका रक्षक पुरुष), इन सबको लिखकर ही नीवीका लेखा किया जावे ॥३४॥

राजार्थे ऽर्थकारणिकस्याप्रतिबध्नतः प्रतिषेधयतो वाज्ञां निबन्धादायव्ययमन्यथा वा विकल्पयतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३५ ॥

जो कारणिक (गणना कार्यपर नियुक्त हुआ २ पुरुष, क्लर्क आदि), राजाके हिरण्य आदि लाभको पुस्तकमें नहीं लिखता, अथवा उसकी आज्ञाका उल्लंघन करता है, तथा अन्य व्ययके सम्बन्धमें नियमसे विपरीत कल्पना करता है, उसको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ३५ ॥

क्रमावहीनमुत्क्रममविज्ञातं पुनरुक्तं वा वस्तुकमवलिखतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ३६ ॥

क्रमविरुद्ध (जहां जिस वस्तुके लिखनेका क्रम है, उसको छोड़कर इधर उधर लिख देना), उत्क्रम (उलट पुलट लिख देना, दो वस्तुओंको एक दूसरेके स्थानपर लिख देना), अविज्ञात (किसी वस्तुको विना समझे जाने लिख देना), तथा पुनरुक्त (एक वस्तुको बार २ लिख देना, इत्यादि), लिखने वाले लेखकको १२ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३६ ॥

नीवीमवलिखतो द्विगुणः ॥३७॥ भक्षयतो ऽष्टगुणः ॥३८॥ नाशयतः पञ्चबन्धः प्रतिदानं च ॥ ३९ ॥

यदि नीवीको इस प्रकार लिखे, तो द्विगुण अर्थात् २४ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३७ ॥ यदि उलट पुलट लिखकर नीवीको खा जावे, अर्थात् ग्रहण

करले), तो आठ गुना अर्थात् ९६ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३८ ॥ यदि नीवी का नाश कर दे, अर्थात् नटनर्त्तक आदिको देकर अपव्यय करदे तो पांचगुना (अर्थात् ६० पण) दण्ड दिया जावे, और वह वस्तु वापस ली जावे ॥३९॥

मिथ्यावादे स्तेयदण्डः ॥ ४० ॥ पश्चात्प्रतिज्ञाते द्विगुणः प्रस्मृतोत्पन्ने च ॥ ४१ ॥

मिथ्या बोलनेमें चोरीका दण्ड दिया जावे ॥ ४० ॥ हिसाबके विषयमें पहिले किसी बातको स्वीकार न करके, पीछे स्वीकार कर लेनेपर अर्थात् हिसाबकी जांच के समयमें मान लेनेपर चोरीसे दुगुना दण्ड दिया जावे। पूछे जानेपर पहिले किसी बातको भूलकर, फिर पीछे सोचकर कहनेमें भी चोरीसे दुगुना दण्ड ही दिया जावे ॥ ४१ ॥

अपराधं सहेताल्पं तुष्येदल्पे ऽपि चोदये ।
महोपकारं चाध्यक्षं प्रग्रहेणाभिपूजयेत् ॥ ४२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे अक्षपटले गाणनिक्याधिकारः सप्तमो ऽध्यायः ॥ ७ ॥ आदितोऽष्टाविंशः ॥ २८ ॥

राजाको चाहिए कि वह अध्यक्षके थोड़ेसे अपराधको सहन करले, और यदि वह आमदनीको पहिलेकी अपेक्षा थोड़ा भी बढ़ावे तो उसपर अवश्य प्रसन्न अथवा सन्तुष्ट होवे। महान उपकार करनेवाले अध्यक्षका जीवन पर्यन्त, हर तरहसे सत्कार करता रहे ॥ ४२ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें सातवां अध्याय समाप्त।

आठवां अध्याय।

२६ प्रकरण

अध्यक्षोंके द्वारा अपहृत धनका प्रत्यानयन।

कोशपूर्वाः सर्वारम्भाः ॥१॥ तस्मात्पूर्वं कोशमवेक्षेत ॥ २ ॥

सम्पूर्ण कार्योंका निर्भर कोशपर है ॥ १ ॥ इसलिये राजाको उचित है, कि सबसे प्रथम वह कोशके विषयमें विचार करे, अर्थात् कोश सदा वृद्धिको ही प्राप्त होता रहे, उसका क्षय कदापि न हो, इस बातका ध्यान रक्खे ॥२॥

प्रचारसमृद्धिश्चरित्रानुग्रहश्चोरनिग्रहो युक्तप्रतिषेधः सस्यसंपत्पण्यबाहुल्यमुपसर्गप्रमोक्षः परिहारक्षयो हिरण्योपायनमिति कोशवृद्धिः ॥ ३ ॥

जनपदकी सम्पत्तिका बढ़ाना, जनपदके पुराने आचार व्यवहारका खयाल रखना, चोरोंका निग्रह करना, अध्यक्षोंको धनापहरण करनेसे रोकना (अथवा प्रजासे रिश्वत आदि लेकर प्रजाको कष्ट पहुंचाने वाले अध्यक्षोंसे उसकी रक्षा करना) छोटे बड़े सब तरहके अन्नोंकी उपज करवाना, जल स्थल में उत्पन्न होने वाली विक्रेय वस्तुओंको खूब बढ़ाना, अग्नि आदिके उपद्रवोंसे स्वयं तथा जनपदको बचाना, कर आदिका ठीक समय पर वसूल करना, (अथवा कर आदिसे किसीको माफ न करना, अर्थात् सबसे ही कर आदि लेना), और हिरण्य आदिकी भेंट लेना, ये सब कोशवृद्धिके उपाय हैं, ऐसा करनेसे कोश सदा बढ़ता ही रहता है ॥ ३ ॥

प्रतिबन्धः प्रयोगो व्यवहारोऽवस्तारः परिहापणमुपभोगः परिवर्तनमपहारश्चेति कोशक्षयः ॥ ४ ॥ सिद्धीनामसाधनमनवतारणमप्रवेशनं वा प्रतिबन्धः ॥५॥ तत्र दशबन्धो दण्डः ॥६॥

कोशके क्षयके कारण भी आठ होते हैं;—प्रतिबन्ध, प्रयोग, व्यवहार अवस्तार, परिहापण, उपभोग, परिवर्तन, और अपहार। अगले सूत्रोंसे क्रमशः इन सबके लक्षण बताते हैं:—॥४॥ राजग्राह्य कर आदिका संग्रह करना, संग्रह करके भी उसे अपने अधिकारमें न करना, तथा अधिकारमें करके भी उसे खजानेमें न पहुंचाना, यह तीन प्रकारका 'प्रतिबन्ध' होता है ॥ ५ ॥ प्रतिबन्धके द्वारा जो अध्यक्ष, कोशका क्षय करे, उसके ऊपर उस कोशसे दसगुना जुरमाना किया जावे ॥ ६ ॥

कोशद्रव्याणां वृद्धिप्रयोगाः प्रयोगः पण्यव्यवहारो व्यवहारः ॥ ७ ॥ तत्र फलद्विगुणो दण्डः ॥ ८ ॥

कोशद्रव्योंसे अपने आपही लेन देन करने लग जाना 'प्रयोग' कहाता है। तात्पर्य यह है,—अध्यक्ष, कर आदि वसूल करके अपने पास रख लेता है, उस धनको किसी पुरुषको सूद पर दे देता है, जब वह धन व्याज सहित उससे वसूल हो जाता है, तो व्याज अपने पास रख लेता है, और मूलधन खजानेमें भेज देता है, इसको 'प्रयोग' कहते हैं। तथा कोश द्रव्योंका व्यापार करने लग जाना 'व्यवहार' कहाता है ॥ ७ ॥ प्रयोग तथा व्यवहारके द्वारा जो अध्यक्ष कोशका क्षय करे, उसे उस कोशधनसे दुगना जुरमाना किया जावे ॥ ८ ॥

सिद्धं कालमप्राप्तं करोत्यप्राप्तं प्राप्तं वेत्यवस्तारः ॥ ९ ॥ तत्र पञ्चबन्धो दण्डः ॥ १० ॥

जो अध्यक्ष, राजग्राह्य धनका प्रजाओंसे ग्रहण करनेका जो समय नियत है, उसे तो टाल देता है, और उत्कोच (रिश्वत) लेनेकी इच्छासे, दूसरे समयमें प्रजाको तंग करके उस धनको एकत्रित करता है, इसको 'अव-स्तार' कहते हैं ॥ ९ ॥ अवस्तारके द्वारा जो कोशका क्षय करे, उसे क्षयसे पांचगुना दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥

क्लृप्तमायं परिहापयति व्ययं वा विवर्धयतीति परिहापणम् ॥ ११ ॥ तत्र हीनचतुर्गुणो दण्डः ॥ १२ ॥

जो अध्यक्ष अपने कुप्रबन्धके कारण नियत आयको कम कर देता है, और व्ययको बढ़ा देता है, इस प्रकारके कोशक्षयका नाम 'परिहापण' है। ॥ ११ ॥ परिहापण द्वारा जो कोशका क्षय करे, उसे क्षयसे चौगुना दण्ड दिया जावे ॥ १२ ॥

स्वयमन्यैर्वा राजद्रव्याणामुपभोजनमुपभोगः ॥ १३ ॥ तत्र रत्नोपभोगे घातः सारोपभोगे मध्यमः साहसदण्डः फल्गुकुप्यो-पभोगे तच्च तावच्च दण्डः ॥ १४ ॥

रत्न सार फल्गु कुप्य आदि राजद्रव्योंका अपने आप भोग करना, तथा अपने इष्ट मित्रोंसे इन वस्तुओंका भोग कराना 'उपभोग' कहाता है ॥ १३ ॥ जो उपभोगके द्वारा कोशका क्षय करे, उसे रत्नोंका उपभोग करने पर प्राण दण्ड, सार द्रव्योंका उपभोग करने पर मध्यम साहस दण्ड, तथा फल्गु और कुप्य द्रव्योंका उपभोग करने पर वे द्रव्य वापस लिये जावें और उतना ही दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥

राजद्रव्याणामन्यद्रव्येणादानं परिवर्तनम् ॥ १५ ॥ तदुप-भोगेन व्याख्यातम् ॥ १६ ॥

राजद्रव्योंको दूसरे द्रव्योंसे बदल देना 'परिवर्तन' कहाता है। अर्थात् अच्छेसे किसी राजद्रव्यको अपने पास रख लेना, और उसकी जगह उस तरह का दूसरा घटिया द्रव्य रख देना 'परिवर्तन' होता है ॥ १५ ॥ परिवर्तनके द्वारा कोशका क्षय करने पर 'उपभोग' के समान ही दण्ड समझना चाहिये। अर्थात् जो रत्नका परिवर्तन करे, उसे प्राण दण्ड जो सार द्रव्यका परिवर्तन करे, उसे मध्यम साहस दण्ड आदि ॥ १६ ॥

सिद्धमायं न प्रवेशयति निबद्धं व्ययं न प्रयच्छति प्राप्तां नीवीं इत्यपहारः १७ तत्र द्वादशगुणो दण्ड १८

प्राप्त हुए २ आयको जो पुस्तकमें नहीं लिखता, तथा निश्चित व्यय को पुस्तकमें लिखकर भी व्यय नहीं करता, और प्राप्त हुई नीवी का अपलाप करता है, अर्थात् अपने हाथमें होने पर भी कहता है कि मेरे पास नहीं है; यह तीन प्रकारका 'अपहार' कहाता है ॥ १७ ॥ अपहारके द्वारा जो अध्यक्ष कोशक्षय करे, उसे क्षयसे बारहगुना दण्ड दिया जावे ॥ १८ ॥

तेषां हरणोपायाश्चत्वारिंशत् ॥ १९ ॥ पूर्वं सिद्धं पश्चादवतारितम् ॥ २० ॥ पश्चात्सिद्धं पूर्वमवतारितम् ॥ २१ ॥ साध्यं न सिद्धम् ॥ २२ ॥ असाध्यं सिद्धम् ॥ २३ ॥ सिद्धमसिद्धं कृतम् ॥ २४ ॥ असिद्धं सिद्धं कृतम् ॥ २५ ॥ अल्पसिद्धं बहुकृतम् ॥ २६ ॥ बहुसिद्धमल्पं कृतम् ॥ २७ ॥ अन्यत्सिद्धमन्यत्कृतम् ॥ २८ ॥ अन्यतः सिद्धमन्यतः ॥ २९ ॥

अध्यक्ष, चालीस प्रकारसे राजद्रव्यका अपहरण कर सकते हैं। उन चालीस उपायोंका यहां इसीलिये निरूपण किया जाता है, कि राजा इन सबको जानकर, अध्यक्षोंको अपहरण करनेसे रोके, और अपहृत धनको वापस लेसके॥१९॥ वे उपाय ये हैं:—पहिली फसलमें प्राप्त हुए द्रव्यको, दूसरी फसल आने पर पुस्तकमें चढ़ाना ॥ २० ॥ दूसरी फसलमें प्राप्त होने वाले राजद्रव्यकी कुछ प्राप्तिको, पहिली ही फसलमें, किताबमें लिख लेना, (यह कार्य राजाको धोका देनेके लिये किया जाता है, जिससे कि राजा उसे बड़ा कार्य कुशल और अपना विश्वासपात्र समझले ॥ २१ ॥ राजग्राह्य करको रिश्वत आदि लेकर छोड़ देना, अर्थात् उसे वसूल न करना ॥ २२ ॥ और जिनको राजकर माफ है, अर्थात् देवालय, और विद्वान् ब्राह्मण आदि जिनको राजकर नहीं देना पड़ता, उनसे लुक छिपकर तथा डरा धमकाकर, कर वसूल कर लेना ॥ २३ ॥ कर देने वाले पुरुषके कर देदेने पर भी, इसने नहीं दिया, यह कह देना, अथवा रजिस्टरमें लिख देना ॥ २४ ॥ कर देने वाले पुरुषके कर न देने पर भी रिश्वत आदि लेकर पुस्तकमें यह लिख देना, कि इसने कर देदिया है ॥ २५ ॥ थोड़े प्राप्त हुए धनको भी, रिश्वत आदि लेकर, पूरा प्राप्त होगया है, यह किताबमें लिख देना ॥ २६ पूरे प्राप्त हुए धनको भी, थोड़ा प्राप्त हुआ है, इसप्रकार पुस्तकमें लिखदेना ॥ २७ ॥ जो द्रव्य मिला है, उसकी जगह दूसरा लिखदेना, (गेहूं मिला है, जौ लिखदेना) ॥ २८ ॥ एक पुरुषसे प्राप्त हुआ है, दूसरे पुरुषके नाम लिखदेना, (देवदत्तसे धन प्राप्त हुआ है, परन्तु यज्ञदत्तसे रिश्वत लेकर उसके नाम लिखदेना) ॥ २९ ॥

देय न दत्तम् ॥ ३० ॥ अदेयं दत्तम् ॥ ३१ ॥ काले न दत्तम् ॥ ३२ ॥ अकाले दत्तम् ॥ ३३ ॥ अल्पं दत्तं बहुकृतम् ॥ ३४ ॥ बहु दत्तमल्पं कृतम् ॥ ३५ ॥ अन्यद्दत्तमन्यत्कृतम् ॥ ३६ ॥ अन्यतो दत्तमन्यतः कृतम् ॥ ३७ ॥

देय वस्तुको न देना. (राजाने किसीको स्वर्ण या रजत देनेकी आज्ञा दी है, उसे स्वर्ण आदि न देना); ॥ ३० ॥ तथा कालान्तरमें अदेय (फल्गु कुप्य आदि) वस्तु किसी तरहसे देदेना ॥ ३१ ॥ समयपर किसीको न देना (राजाने यज्ञादि करनेके लिये किसीको धन देनेकी आज्ञा दी है, उसे उस समयपर न देना) ॥ ३२ ॥ तथा रिश्वत आदि लेकर फिर पीछेसे देना ॥ ३३ ॥ फिर भी थोड़ा देकर बहुत लिख देना; (अथवा राजाने किसीको सौ मुद्रा देनेको कहा, अध्यक्षने सौकी जगह डेढ़सौ लिखकर सौ उसे देदेना, और पचास अपनेपास रख लेना) ॥ ३४ ॥ तथा बहुत देकर थोड़ा लिखना; (अथवा राजाने किसीको सौ मुद्रा देनेको कहा, किताबमें सौ लिख लेना, किन्तु उसे अस्सीही देना) ॥ ३५ ॥ और कोई द्रव्य देनेको कहा गया, तथा उसकी जगह और कुछ देदिया (राजाने किसीको सोना दे देनेकी आज्ञा दी, उसे उसकी जगह चांदी देदी गई) ॥ ३६ ॥ दूसरेको देनेके लिये कहे जानेपर, उससे दूसरेको दे देना (देवदत्तको देनेके लिये कहे जानेपर, यज्ञदत्तको रिश्वत लेकर दे देना) ॥ ३७ ॥

प्रविष्टमप्रविष्टं कृतम् ॥३८॥ अप्रविष्टं प्रविष्टं कृतम् ॥३९॥ कुप्यमदत्तमूल्यं प्रविष्टम् ॥ ४० ॥ दत्तमूल्यं न प्रविष्टम् ॥४१॥

राजग्राह्य धन वसूल करके, तथा अपने अधिकारमें करके भी उससे इन्कार करदेना अर्थात् उसे खजानेमें जमा न करना; (अथवा किसी विशेष आवश्यकताके बहानेसे प्रजाओंसे धन वसूल करके भी, उसे कोशमें जमा न करना) ॥ ३८ ॥ कर न लेकरही अर्थात् कोशमें धन न जमा किये जानेपर भी, रिश्वत लेकर जमा हो गया है, इस प्रकार पुस्तकमें लिख देना ॥ ३९ ॥ वस्त्र आदि कुप्य द्रव्य, राजाकी आज्ञासे उस समय मूल्य न देकरही लेकर, फिर पीछेसे उनका थोड़ासा मूल्य कपड़ेवालेको देदेना ॥ ४० ॥ बहुतसा मूल्य देकर खरीदा हुआ कुप्य द्रव्य, उसका उतना मूल्य किताबमें न लिखना ॥ ४१ ॥

संक्षेपो विक्षेपः कृतः ॥ ४२ ॥ विक्षेपः संक्षेपो वा ॥४३॥ महार्घमल्पार्घेण परिवर्तितम् ॥ ४४ ॥ अल्पार्घं महार्घेण वा

॥ ४५ ॥ समारोपितो ऽर्घः ॥ ४६ ॥ प्रत्यवरोपितो वा ॥४७॥ रात्रयः समारोपिता वा ॥ ४८ ॥ प्रत्यवरोपिता वा ॥ ४९ ॥

बहुतसे मनुष्योंसे मिलकर इकट्ठा लिया जानेवाला 'कर' पृथक् २ सबसे बांट २ कर लेना ॥ ४२ ॥ जो पृथक् २ लेना हो, उसे सबसे इकट्ठा मिलकर लेना ॥ ४३ ॥ बहुमूल्य वस्तुको अल्प मूल्यकी वस्तुके साथ परिवर्त्तन कर लेना ॥ ४४ ॥ अथवा अल्पमूल्यकी वस्तुको बहुमूल्य वस्तुके साथ परिवर्त्तन करलेना ॥४५॥ बाज़ारमें वस्तुओंका भाव बढ़ा देना ॥४६॥ तथा इसीप्रकार वस्तुओं का भाव घटा देना; (इस तरह पण्याध्यक्ष धन अपहरण करता है) ॥ ४७ ॥ वेतनके दिन बढ़ाकर लिख देना, (अर्थात् पांच दिनका वेतन देकर सात दिन-का वेतन दिया गया है, इसप्रकार लिख देना) ॥ ४८ ॥ अथवा वेतनके दिन घटाकर देना, (अर्थात् दस दिनके वेतनकी स्वीकृति होनेपर, भृत्यको आठ दिनकाही वेतन देना) ॥ ४९ ॥

संवत्सरो मासविषमः कृतः ॥ ५० ॥ मासो दिवसविषमो वा ॥ ५१ ॥ समागमविषमः ॥ ५२ ॥ मुखविषमः ॥ ५३ ॥ धार्मिकविषमः ॥ ५४ ॥ निर्वर्तनविषमः ॥ ५५ ॥ पिण्डविषमः ॥ ५६ ॥ वर्णविषमः ॥ ५७ ॥ अर्घविषमः ॥ ५८ ॥ मान-विषमः ॥ ५९ ॥ मापनविषमः ॥ ६० ॥ भाजनविषमः ॥६१॥ इति हरणोपायाः ॥ ६२ ॥

अधिक मास रहित संवत्सरको अधिक मास वाला बताकर, उस मास-के लाभको स्वयं लेलेना ॥ ५० ॥ अथवा महीनेके दिन घटा बढ़ाकर, (उसके अधिक लाभको स्वयं लेलेना ॥ ५१ ॥ नौकरोंमें गड़बड़ करके धन लेना, (बहु-तसे कार्य करने वाले नौकरोंमेंसे दो एकके नाम वैसेही लिखे हुए हों, उनके नामका वेतन और भत्ता स्वयं लेलेना) ॥ ५२ ॥ एक आयमुखसे हुई २ आम-दनीको, दूसरे आयमुखसे प्रसिद्ध करदेना ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणादिको धर्मार्थ दिये जाने वाले धनमेंसे, कुछ उन्हें देकर शेष स्वयं लेलेना ॥ ५४ ॥ किसी कार्यके करनेमें कुटिल उपायसे अतिरिक्त धन वसूल करलेना, (जैसे कर उघरानेके समयमें, आज सबको करदेना पड़ेगा, ऐसी आज्ञा देकर, किन्हींसे रिश्वत लेकर उन्हें छोड़ देना, अर्थात् उसदिन उनसे कर न उघराना) ॥ ५५ ॥ बहुतसे मनुष्योंसे इकट्ठा मिलकर लिये जाने वाले करमें, किसीसे रिश्वत लेकर उसे छोड़ देना, तथा बाकी मनुष्योंसे पूरा धन वसूल करलेना ॥ ५६ ॥ ब्राह्मण आदि वर्णोंकी विषमतासे धनका अपहरण करना (जैसे आज नामसे केवल

ब्राह्मणही पार हुए हैं, उनसे शुल्क नहीं लिया गया, यह कहकर नावध्यक्ष उस दिनकी आयको अपहरण कर सकता है ॥ ५७ ॥ छावनियोंमें मूल्य आदिके व्यवस्थित न रहनेसे, उसको कुछ अधिक बढ़ाकर लाभ उठाना ॥ ५८ ॥ तोल आदिमें फ़र्क डालकर फ़ायदा उठाना ॥ ५९ ॥ नापनेमें विषमता उत्पन्न करके लाभ उठाना ॥ ६० ॥ पात्र विषयक विषमतासे लाभ उठाना, (जैसे—घृतसे भरे हुए सौ घड़े देदो, इसप्रकार मालिकके कहनेपर छोटे २ सौ घड़े देदेना, और बड़े २ सौ घड़े दिये हैं, यह पुस्तकमें लिख देना) ॥ ६१ ॥ यहांतक अपहरण करनेके चालीस उपायोंका निरूपण किया गया ॥ ६२ ॥

तत्रोपयुक्तनिधायकनिबन्धकप्रतिग्राहकदायकदापकमन्त्रिवैयावृत्यकरानेकैकशो ऽनुयुञ्जीत ॥ ६३ ॥ मिथ्यावादे चैषां युक्तसमो दण्डः ॥ ६४ ॥

यदि किसी अध्यक्षके विषयमे, राजाको धन अपहरण करनेका सन्देह होजावे, तो राजा, उसके (उस अध्यक्षके) प्रधान निरीक्षक अधिकारी पुरुषको, भाण्डागारिक (ख़जानची) को, लेखकको, लेने वालेको, कर दिलाने वाले राजपुरुषको, अपराधीके सलाहकारको, तथा उस मन्त्रीके नौकरोंको पृथक् २ बुलाकर यह पूछे, कि इस अध्यक्षने धनका अपहरण किया है या नहीं ॥६३॥ यदि इनमेंसे कोई झूंठ बोले, तो उसे अपराधीके समानही दण्ड दिया जावे ॥ ६४ ॥

प्रचारे चावघोषयेत् अमुना प्रकृतेनोपहताः प्रज्ञापयन्त्विति ॥ ६५ ॥ प्रज्ञापयतो यथोपघातं दापयेत् ॥ ६६ ॥

और राजा सम्पूर्ण जनपदमें घोषणा करवादेवे, कि अमुक अध्यक्ष यदि किसीको पीड़ा देकर धन अपहरण करे, तो वे यहां आकर सूचना देवें ॥ ६५ ॥ अपहरणकी सूचना दिये जानेपर, उस पुरुषको अध्यक्षसे उतनाही धन दिलवाया जावे ॥ ६६ ॥

अनेकेषु चाभियोगेष्वपव्ययमानः सकृदेव परोक्तः सर्वं भजेत ॥ ६७ ॥ वैषम्ये सर्वत्रानुयोगं दद्यात् ॥ ६८ ॥

अनेक अभियोगोंके होनेपर, (अर्थात् एकही समयमें यदि बहुतसे पुरुष अपना धन अपहरण किये जानेकी सूचना देवें,) यदि अभियुक्त सब अभियोगोंको स्वीकार न करे, तो एकही अभियोगमें पूरी गवाही, तथा अन्य पूरे सबूत मिलनेपर सब अभियोगोंका अपराधी उसे समझा जावे ॥ ६७ ॥ यदि अभियुक्त अनेक अभियोगोंमेंसे कुछ अभियोगोंको स्वीकार करले, और

कुछ न करे तो जिनका स्वीकार न करे उनके लिये अपनी सफाईके गवाह, तथा अन्य सबूतोंको भी उपस्थित करे ॥ ६८ ॥

महत्यर्थापहारे चाल्पेनापि सिद्धः सर्वं भजेत ॥६९॥ कृत-प्रतिघातावस्थः सूचको निष्पन्नार्थः षष्ठमंशं लभेत ॥ ७० ॥ द्वादशमंशं भृतकः ॥ ७१ ॥

बहुत अधिक अर्थका अपहरण करनेपर, यदि थोड़ेसे धनके भी गवाह मिल जावें, तो सम्पूर्ण धनका अपहरण करनेका अपराध, उसपर सिद्ध समझा जावे ॥ ६९ ॥ यदि धनका अपहरण करने वाले अपराधीकी सूचना, कोई व्यक्ति राजाके हितकी कामनासेही देता है, (अर्थात् किसीको नुकसान पहुंचाने या द्वेषादिके कारण नहीं देता); ऐसे व्यक्तिको, अपहृत धनका ठीक पता लगजाने-पर, धनका छठा हिस्सा देदिया जावे ॥ ७० ॥ यदि सूचना देने वाला व्यक्ति, उसका भृत्य हो, तो उसे उस धनका बारहवां हिस्सा देना चाहिये ॥ ७१ ॥

प्रभूताभियोगादल्पनिष्पत्तौ निष्पन्नस्यांशं लभेत ॥ ७२ ॥ अनिष्पन्ने शारीरं हैरण्यं वा दण्डं लभेत ॥७३॥ न चानुग्राह्यः ॥७४॥

यदि बहुतसे धनके अपहरणका अभियोग हो, अभियोगके सिद्ध होने-पर उसमेंसे थोड़ाही धन वसूल होवे, तो सूचना देने वाले व्यक्तिको उतनेही धनमेंसे हिस्सा दिया जावे ॥ ७२ ॥ यदि अभियुक्तपर अपराध सिद्ध न हो सके, तो सूचना देने वाले पुरुषको शारीर दण्ड दिया जावे, अथवा उचित आर्थिक दण्ड दिया जावे ॥ ७३ ॥ इसप्रकारके अपराधी पर अनुग्रह कदापि न करना चाहिये ॥ ७४ ॥

निष्पत्तौ निक्षिपेद्वादमात्मानं वापवाहयेत् ।
अभियुक्तोपजापात्तु सूचको वधमाप्नुयात् ॥ ७५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनमष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ आदितः एकोनत्रिंशः ॥ २९ ॥

यदि अभियोग सच्चा सिद्ध होजावे, तो सूचना देनेवाला पुरुष, अपने आपको उस अभियोगके सम्बन्धसे अलहदा कर सकता है, अर्थात् फिर सरकारही अपनी ओरसे उस मुकद्दमेको चला सकती है। यदि अभियुक्त सूचना देने वाले पुरुषको रिश्वत आदि देकर फुसला लेवे, और राजाके सामने वह सच्ची २ बात न कहे, तो उसे (सूचकको) प्राण दण्ड देना चाहिये ॥ ७५ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें आठवां अध्याय समाप्त ।

नौवा अध्याय ।

२७ प्रकरण ।

उपयुक्तपरीक्षा ।

प्रत्येक कार्योपर नियुक्त किये गये छोटे २ अधिकारियोंको 'युक्त' कहाजाता है; जो इनके भी ऊपर निरीक्षक अधिकारी नियुक्त हों, उन्हें 'उपयुक्त' कहते हैं। 'युक्त' कर्मचारियोंके सम्बन्धमें पिछले अध्यायमें कहा जा चुका है; अब 'उपयुक्त' कर्मचारियोंके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा।

अमात्यसंपदोपेताः सर्वाध्यक्षाः शक्तितः कर्मसु नियोज्याः ॥ १ ॥ कर्मसु चैषां नित्यं परीक्षां कारयेत् ॥ २ ॥ चित्तानित्यत्वान्मनुष्याणाम् ॥ ३ ॥

सबही अध्यक्षोंको अमात्यके गुणोंसे युक्त होना चाहिये (अर्थात् अमात्योंके जो गुण पीछे कहे गये हैं, अध्यक्षोंमें भी वे गुण यथावश्यक अवश्य होने चाहियें। देखो:—अधि १, अध्या. ९ सू. १); तथा इनको (अध्यक्षोंको) इनकी शक्तिके अनुसार उन २ कार्योंपर नियुक्त किया जावे ॥ १ ॥ कार्योंपर नियुक्त किये जानेपर, राजा इनकी सदाही परीक्षा करवाता रहे ॥ २ ॥ क्योंकि मनुष्योंके चित्त सदा एकसे नहीं रहते ॥ ३ ॥

अश्वसधर्माणो हि मनुष्या नियुक्ताः कर्मसु विकुर्वते ॥४॥ तस्मात्कर्तारं कारणं देशं कालं कार्यं प्रक्षेपमुदयं चैषु विद्यात् ॥५॥

देखा जाता है, कि आदमियोंकी भी घोड़ोंकी तरह आदत होती है; जबतक घोड़ा अपने थानपर बंधा रहता है, बड़ा शान्त मालूम होता है, परन्तु जब वह रथ आदिमें जोड़ा जाता है, तो बिगड़ जाता है बड़ी उछल कूद मचाता है; इसीप्रकार प्रथम शान्त दीखने वाला पुरुष भी कार्यपर नियुक्त होजानेपर कभी २ विकारको प्राप्त होजाता है ॥ ४ ॥ इसलिये राजाको चाहिये, कि वह कर्त्ता (अध्यक्ष), कारण (नीचे कार्य करने वाले कर्मचारी), देश, काल, कार्य, नौकरोंका वेतन, और उदय अर्थात् लाभ, इनको अध्यक्षोंके विषयमें अवश्य जानता रहे ॥ ५ ॥

ते यथासंदेशमसंहता अविगृहीताः कर्माणि कुर्युः ॥ ६ ॥ संहता भक्षयेयुः ॥ ७ ॥ विगृहीता विनाशयेयुः ॥ ८ ॥

व अध्यक्ष, अपने मालिककी आज्ञानुसार, एक दूसरे अध्यक्षके साथ न मिलते हुए, तथा एक दूसरेके साथ विरोध न करते हुए, अपने २ कार्योंमें तत्पर रहें ॥ ६ ॥ क्योंकि यदि वे आपसमें मिल जायेंगे, तो गुट करके राजाके धनको खायेंगे ॥ ७ ॥ और यदि आपसमें विरोध करेंगे, तो राजाके कार्यको नष्ट करेंगे। क्योंकि वे अपनेही झगड़ोंमें लगे रहेंगे, राजाका कार्य नष्ट होगा। इसलिये राजाको ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये, जिससे कि वे न आपसमें गुट बना सकें, और न उनका आपसमें कोई राजकार्यका हानिकर विरोध हो ॥ ८ ॥

न चानिवेद्य भर्तुः किंचिदारम्भं कुर्युरन्यत्रापत्प्रतीकारेभ्यः ॥९॥ प्रमादस्थानेषु चैषामत्ययं स्थापयेद्दिवसवेतनव्ययद्विगुणम् ॥ १० ॥

मालिकको बिना निवेदन किये, किसी नये कार्यका वे (अध्यक्ष) प्रारम्भ करें; परन्तु जो कार्य किसी आपत्तिको प्रतीकार करनेके लिये किये जारहे हों, उनको करनेके लिये, उसी समय राजाकी अनुमतिकी आवश्यकता नहीं, वे राजाको निवेदन किये बिना भी, किये जासकते हैं ॥ ९ ॥ यदि वे (अध्यक्ष) अपने किसी कार्यमें प्रमाद करें, तो इनके लिये दण्डकी व्यवस्था होनी चाहिये; साधारण दण्ड, इनके दैनिक वेतन व्ययसे दुगना होना चाहिये। (अर्थात् एक दिनका जितना वेतन हो, उससे दुगना दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥

यश्चैषां यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा करोति स स्थानमानौ लभेत ॥ ११ ॥

जो इन अध्यक्षोंमेंसे, अपने मालिककी आज्ञानुसार ठीक काम करता है, तथा उससे भी अधिक और विशेष काम (जिन कार्योंके लिये मालिकने नहीं भी कहा है, ऐसे उसके हितकर कार्य) करता है, उसको विशेष उन्नति दीजावे, (अर्थात् पदके खयालसे उसकी तरक्की करदी जावे) और अन्य प्रकारसे (धनादि द्वारा) भी उसका उचित सत्कार किया जावे ॥ ११ ॥

अल्पायतिश्चेन्महाव्ययो भक्षयति ॥ १२ ॥ विपर्यये यथायतिव्ययश्च न भक्षयतीत्याचार्याः ॥ १३ ॥

किन्हीं प्राचीन आचार्योंने बेईमान और ईमानदार अध्यक्षोंके निम्न लिखित उपाय बताये हैं। वे कहते हैं, कि जिस अध्यक्षको आमदनी थोड़ी होती हो, तथा वह खर्च बहुत अधिक करता हो, तो समझना चाहिये कि यह अवश्यही राजाके धनका अपहरण करता है ॥ १२ ॥ इससे विपरीत होनेपर अथवा आमदनीके अनुसार खर्च करने वाले अध्यक्षको ईमानदार समझना चाहिये, वह राजाके धनको नहीं खाता ॥ १३ ॥

अपसर्पेणैवोपलभ्यत इति कौटल्यः । १४

परन्तु आचार्य कौटल्य इस मतको स्वीकार नहीं करता। वह कहता है कि अध्यक्षोंकी ईमानदारी और बेईमानीका पता गुप्तचरोंके द्वाराही लगाना चाहिये। क्योंकि एक बड़े परिवार वाला अध्यक्ष, स्वयं थोड़ा खर्च करता हुआभी परिवार पोषणके लिये धन अपहरण करसकता है। तथा अत्यधिक धन अपहरण करता हुआभी कंजूस आदमी कभी अधिक खर्च नहीं करता। इसलिये आचार्योंके कथनानुसार अध्यक्षोंकी दुष्टताका ठीक पता नहीं लगसकता। अतः यह कार्य गुप्तचरोंके द्वाराही कराना चाहिए ॥ १४ ॥

यः समुदयं परिहापयति स राजार्थं भक्षयति ॥ १५ ॥ स चेदज्ञानादिभिः परिहापयति तदेनं यथागुणं दापयेत् ॥ १६ ॥

जो अध्यक्ष समुदय (द्रव्योंका लाभ=निश्चित आय) में न्यूनता करता है अर्थात् राजाको नियमानुसार जितनी आय होनी चाहिये, उसमें वह कमी करदेता है, तो समझना चाहिये कि वह अध्यक्ष उस राजाके धनमें से अवश्य कुछ न कुछ खाता है ॥ १५ ॥ यदि वह अपने अज्ञान अर्थात् प्रमाद आलस्य आदिके कारण, इसप्रकार आमदनीमें कमी करता है, तो वह कम हुआ २ धन उससे अपराधके अनुसार दुगना तिगना करके लिया जावे ॥ १६ ॥

यः समुदयं द्विगुणमुद्भावयति स जनपदं भक्षयति ॥ १७ ॥ स चेद्राजार्थमुपनयत्यल्पापराधं वारयितव्यः ॥ १८ ॥ महति यथापराधं दण्डयितव्यः ॥ १९ ॥

जो अध्यक्ष, समुदय दुगना इकट्ठा करता है, अर्थात् जितनी नियत आय है, उससे दुगना वसूल करता है; समझना चाहिए, यह जनपदको खाता है, अर्थात प्रजाको पीड़ा पहुंचाकरही इतना धन वसूल करता है, अन्यथा नियत आयसे अधिक कैसे प्राप्त करसकता है ॥ १७ ॥ यदि वह उस अधिक संग्रह कियेहुए धनको राजाके लिये भेजदेता है, तो उसे प्रजाको पीड़ा पहुंचानेके थोड़ेसे अपराधकाही दण्ड दियाजावे, जिससे कि वह फिर आगे इसप्रकार प्रजाको पीड़ा पहुंचाकर धन संग्रह न करे ॥ १८ ॥ यदि वह अधिक अपराध करता है, अर्थात् उस धनको राजाके पास न भेजकर स्वयं अपहरण करलेता है, तो प्रजापीड़न और धनापहरण दोनों अपराधोंका उसे उचित दण्ड दियाजावे ॥ १९ ॥

यः समुदयं व्ययमुपनयति स पुरुषकर्माणि भक्षयति ॥२०॥ स कर्मदिवसद्रव्यमूलपुरुषवेतनापहारेषु यथापराधं दण्डयितव्यः ॥ २१ ॥

जो अध्यक्ष व्ययके लिये नियत किएहुए धनको व्यय न करके लाभमें शामिल करदेता है, वह पुरुषों (काम करनेवाले मजदूरों) तथा राजकार्यको खाता अर्थात् नष्ट करता है यह समझना चाहिए। तात्पर्य यह है, कि किसी कार्यको करनेके लिये नियत कियेहुए धनको व्यय न करनेसे, एक तो मजदूरोंका पालन नहीं होता, मजदूरी न मिलनेसे वे कष्ट उठाते हैं, दूसरे वह राजकार्य नहीं होता, जिसके लिये वह बजट पास किया गया है। उसका जो रु० बचता है, उसे अध्यक्ष आयकी ओर करके नियमित आयसे अधिक आयको अपनेवर रखलेता है ॥ २० ॥ ऐसा करनेवाले अध्यक्षको, उस कार्यकी हानि (कार्य करनेपर उस दिनमें जितना काम होजाय, उसके मूल्यकी कल्पना करके हानिका निर्णय कियाजाय); और पुरुषोंके वेतनका अपहरण करनेके सम्बन्धमें, अपराधके अनुसार उचित दण्ड दियाजावे ॥ २१ ॥

तस्मादस्य यो यस्मिन्नधिकरणे शासनस्थः स तस्य कर्मणो याथातथ्यमायव्ययौ च व्याससमासाभ्यामाचक्षीत ॥ २२ ॥ मूलहरतादात्विककदर्यांश्च प्रतिषेधयेत् ॥ २३ ॥

इसलिये राजाका, जो जिस स्थानमें शासन करनेवाला अधिकारी अध्यक्ष नियुक्त हो, वह उस कार्यकी यथार्थताको और उसके आय व्ययको आवश्यकतानुसार संक्षेप और विस्तारके साथ, राजासे निवेदन करे ॥ २२ ॥ और जो मूलहर, तादात्विक तथा कदर्य पुरुष हों, उनकोभी उनके अपने कार्यसे सदा रोकता रहे ॥ २३ ॥

यः पितृपैतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहरः ॥ २४ ॥ यो यद्यदुत्पद्यते तत्तद्भक्षयति स तादात्विकः ॥ २५ ॥ यो भृत्यात्मपीडाभ्यामुपचिनोत्यर्थं स कदर्यः ॥ २६ ॥

जो पुरुष अपनी पितृपितामह परम्परासे प्राप्त हुई सम्पत्तिको अन्याय पूर्वक खाता, अर्थात् उपभोग करता है, उसे 'मूलहर' कहते हैं। ऐसे पुरुषोंको इन कार्योंके करनेसे रोकते रहना चाहिये, जिससे कि ये अपनी पुरानी सम्पत्तिको नष्ट न करडालें ॥ २४ ॥ जो पुरुष जितना उत्पन्न करता है, उतनाही उस समय खालेता है, अर्थात् व्यय कर देता है, शेष कुछ नहीं बचाता, उसे 'तादात्विक' कहते हैं ॥ २५ ॥ तथा जो पुरुष अपने भृत्यों और अपने आपको कष्ट देकर धनका संग्रह करता है वह 'कदर्य' कहाता है ॥ २६ ॥

स पक्षवांश्चेदनादेयः ॥२७॥ विपर्यये पर्यादातव्यः ॥२८

यदि निषेध करने परभी मूलहर आदि अपने कामोंको करते ही चले जाते हैं, तो उन्हें अपने बन्धु बान्धवोंकी सम्पत्ति पर दायभागका अधिकार नहीं रहता। अथवा ऐसे पुरुषोंको (जिनकोकि बन्धु बान्धव हैं। इस सूत्रमें 'पक्ष' शब्दका अर्थ बन्धु बान्धव है) आर्थिक दण्ड न दिया जाय (क्योंकि आर्थिक दण्ड देनेसे उनके बन्धु बान्धव आदि कुपित हो सकते हैं), किन्तु उनको केवल पदच्युत कर दिया जाय ॥ २७ ॥ यदि उनके बन्धु बान्धव आदि नहीं, तो उनकी सम्पत्तिको जब्त कर लिया जावे ॥ २८ ॥

यो महत्यर्थसमुदये स्थितः कदर्यः संनिधत्ते ऽवनिधत्ते ऽवस्रावयति वा संनिधत्ते स्ववेश्मन्यवनिधत्ते पौरजानपदेष्ववस्रावयति परविषये तस्य सत्री मन्त्रिमित्रभृत्यबन्धुपक्षमागतिं गतिं च द्रव्याणामुपलभेत ॥ २९ ॥

जो कदर्य (कंजूस) अध्यक्ष, महान अर्थ लाभ करता हुआ, धनको अपने घरमें भूमि आदिमें गाड़ देता है, नगरनिवासी या जनपदनिवासी पुरुषोंके समीप रक्षाके लिये रख देता है, अथवा शत्रुके देशमें अपने धनको भेजकर वहीं कहीं पर जमा करता जाता है; उस अध्यक्षके मन्त्री (सलाहकार), मित्र, भृत्य तथा बन्धु बान्धवोंको, और द्रव्योंके आय व्ययको, सत्री (गुप्त पुरुष) अवश्य देखे ॥२९॥

यश्चास्य परविषयतया संचारं कुर्यात्तमनुप्रविश्य मन्त्रं विद्यात् ॥ ३० ॥ सुविदिते शत्रुशासनापदेशेनैनं घातयेत् ॥३१॥

तथा इस कदर्थ अध्यक्षके धनको जो पुरुष शत्रुके देशमें भिजवानेका प्रबन्ध करता हो, उसके साथ मिलकर अर्थात् उसका मित्र या भृत्य बनकर सत्री इस गुप्तरहस्यको अच्छी तरह जान लेवे ॥ ३० ॥ जब सत्रीके द्वारा इसका यह गुप्तरहस्य अच्छी तरह मालूम होजावे, तो राजा शत्रुकी आज्ञाके बहानेसे इस कदर्यको मरवा देवे। (*तात्पर्य यह है:—एक बनावटी चिट्ठी लिखवाकर, जोकि शत्रुकी ओरसे इस कदर्यको लिखी गई हो, उस शत्रुके देशसे अपने देशमें आते हुए किसी आदमीके हाथमें देवे, उस पुरुषको राज्यकी सीमापर अन्तपाल* गिरफ्तार करके राजाके पास उपस्थित करे, तदनन्तर राजा उस चिट्ठीके आधार पर, यह कदर्य अध्यक्ष शत्रुसे पत्र व्यवहार रखता है, तथा वहां धन आदि भेजता है, इस प्रकार प्रसिद्ध करके उसको मरवा देवे ॥ ३१ ॥

तस्मादस्याध्यक्षाः संख्यायकलेखकरूपदर्शकनीवीग्राहको-त्तराध्यक्षसखाः कर्माणि कुर्युः ॥ ३२ ॥

इस लिये सब अध्यक्षोंको चाहिये कि वे संख्यायक (गणक—गणना लेखा करने वाला), लेखक, रूपदर्शक (राजकीय मुद्रा तथा अन्य मणिमुक्ता स्वर्ण आदिके खरे खोटेपनको पहचानने वाला कर्मचारी), तथा नीवीग्राहक (आय व्ययसे शेष बचे हुए धनको संभालने वाला अधिकारी , तथा उत्तराध्यक्ष (बड़ा, अध्यक्षोंके ऊपर निरीक्षण करने वाला, प्रधानाधिकारी) इनके साथ मिलकरही राजाके सब कार्योंको करें ॥ ३२ ॥

उत्तराध्यक्षाः हस्त्यश्वरथारोहाः ॥ ३३ ॥ तेषामन्तेवासिनःशिल्पशौचयुक्ताःसङ्ख्यायकादीनामपसर्पाः ॥ ३४ ॥

हाथी घोड़े तथा रथों पर सवार होने वालेही उत्तराध्यक्ष बनने चाहियें। (तात्पर्य यह है:—जो पुरुष वृद्ध तथा अत्यन्त अनुभवी हैं, वृद्ध होनेके कारण युद्ध आदिमें जानेका सामर्थ्य नहीं रखते, साधारणतया चलने फिरनेमेंभी सवारियोंका ही सहारा लेते हैं, ऐसे विशेष व्यक्तियोंको उत्तराध्यक्ष अर्थात् अन्य अध्यक्षोंका निरीक्षण करने वाला प्रधानाध्यक्ष बनाया जावे) ॥ ३३ ॥ इन उत्तराध्यक्षोंके पास कुछ ऐसे शिष्य रहने चाहियें, जोकि आज्ञा पालन करनेमें बड़े चतुर, तथा हृदयके पवित्र हों; वे संख्यायक गणक आदि कर्मचारियोंकी प्रत्येक प्रवृत्तिको जाननेके लिये गुप्तपुरुषका कार्य करें ॥३४॥

बहुमुख्यमनित्यं चाधिकरणं स्थापयेत् ॥ ३५ ॥

प्रत्येक अधिकरण अर्थात् कार्यस्थानमें अनेक मुख्य पुरुषोंको रक्खाजावे। जिससे कि वे एक दूसरेका भय रखते हुए राजकार्यको अच्छी तरहसे करें । तथा उन मुख्य पुरुषोंकी स्थिति चिरस्थायी नहीं होनी चाहिये; क्योंकि ऐसी अवस्थामें वे कर्मचारियोंसे मित्रताकर अपने दोषोंको छिपा सकते हैं, और जनता भी उनके दोषोंको इस भयसे प्रकट नहीं करती, कि ये आगे हमारा कोई अपकार कर सकते हैं ॥ ३५ ॥

यथा ह्यनास्वादयितुं न शक्यं
जिह्वातलस्थं मधु वा विषं वा ।
अर्थस्तथा ह्यर्थचरेण राज्ञः
स्वल्पो ऽप्यनास्वादयितुं न शक्यः ॥ ३६ ॥

जिस प्रकार जीभ पर रक्खे हुए शहद या जहरके सम्बन्धमें कोई यह चाहे कि मैं इसका स्वाद न लूं, यह नहीं हो सकता, जीभ पर रक्खी हुई चीजका इच्छा न होने परभी स्वाद आही जाता है; ठीक इसी प्रकार राजाके अर्थ सम्बन्धी कार्यों पर नियुक्त हुए २ कर्मचारी इस अर्थका थोड़ाभी स्वाद न लें, यह

कदापि नहीं हो सकता, वे थोड़ा बहुत कुछ न कुछ धन आदिका अपहरण अवश्य करते ही हैं ॥ ३६ ॥

मत्स्या यथान्तः सलिले चरन्तो
ज्ञातुं न शक्याः सलिलं पिबन्तः ।
युक्तास्तथा कार्यविधौ नियुक्ताः
ज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः ॥ ३७ ॥

तथा जिस प्रकार पानीमें रहती हुई मछलियां पानी पीती हुई नहीं मालूम होतीं, इसीप्रकार अर्थकार्योंपर नियुक्त हुए २ राज कर्मचारी, अर्थोंका अपहरण करते हुए मालूम नहीं होते ॥ ३७ ॥

अपि शक्या गतिर्ज्ञातुं पततां खे पतत्रिणाम् ।
न तु प्रच्छन्नभावानां युक्तानां चरतां गतिः ॥ ३८ ॥

आकाशमें उड़ते हुए पक्षीकी गतिको जाना जासकता है, परन्तु गुप्त रूपसे कार्य करते हुए अध्यक्षोंकी गतिको पहिचानना बड़ा कठिन काम है । इन दोनों श्लोकोंका तात्पर्य यही है कि जलमें मछलीके पानी पीनेके समान तथा आकाशमें उड़ते हुए पक्षीकी गतिके समान अध्यक्षोंके द्वारा अपहरण किया जाता हुआ धन, राजाके लिये जानना दुष्कर कार्य है ॥ ३८ ॥

आस्रावयेच्चोपचितान्विपर्यस्येच्च कर्मसु ।
यथा न भक्षयन्त्यर्थं भक्षितं निर्वमन्ति वा ॥ ३९ ॥

इसलिये इसप्रकारके अध्यक्षोंके विषयमें राजाको उचित है, कि वह पहिले, धनोंको अपहरण कर २ के समृद्ध हुए २ अध्यक्षोंके धनको, उनकी समृद्धिसे अथवा गुप्तचरोंके द्वारा अच्छी तरह जानकर, उनसे छीन लेवे । और उन कर्मचारियोंको उच्च पदसे पदच्युत करके नीचकार्योंपर नियुक्त करे । जिससे कि वे फिर अर्थका अपहरण न करें, तथा अपहरण किये हुए धनको स्वयं ही उगल देवें ॥ ३९ ॥

न भक्षयन्ति ये त्वर्थान्न्यायतो वर्धयन्ति च ।
नित्याधिकाराः कार्यास्ते राज्ञः प्रियहिते रताः ॥ ४० ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे उपयुक्तपरीक्षा नवमो ऽध्यायः ॥ ९ ॥

आदितस्त्रिंश ॥ ३० ॥

जो अध्यक्ष कभी अर्थका अपहरण नहीं करते तथा सदा न्यायपूर्वक उसकी वृद्धिमे ही तत्पर रहते हैं; और राजाका प्रिय तथा हित करनेमें ही लगे रहते हैं; राजाको चाहिये, कि वह इसप्रकारके अध्यक्षोंको सदा उनके अधिकारपदपर बनाये रक्खे ॥ ४० ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें नौवां अध्याय समाप्त ।

दसवां अध्याय ।

२८ प्रकरण ।

शासनाधिकार ।

लिखित आज्ञा तथा संदेश आदिको ही 'शासन' कहते हैं । इस प्रकरणमें उसहीका निरूपण किया जायगा ।

शासने शासनमित्याचक्षते ॥१॥ शासनप्रधाना हि राजानः ॥ २ ॥ तन्मूलत्वात्संधिविग्रहयोः ॥ ३ ॥

पत्र आदिपर लिखित अर्थको ही, विद्वान् आचार्य 'शासन' कहते हैं । अर्थात् वाचनिक अर्थको कभी 'शासन' नहीं कहा जासकता ॥ १ ॥ राजाजन शासनका ही विशेष आदर करते हैं, वाचनिकका नहीं ॥ २ ॥ क्योंकि सन्धि और विग्रह आदि सम्बन्धी कार्य शासन मूलकही होते हैं । (इस सूत्रमें सन्धि विग्रह पदोंको छओं गुणोंका उपलक्षण मानकर, सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव इन छओं गुणोंका ग्रहण कर लेना चाहिये । अर्थात् षाड्गुण्य सम्बन्धी सबही कार्य लेखद्वारा होनेपरही ठीक समझे जाते हैं) ॥ ३ ॥

तस्मादमात्यसंपदोपेतः सर्वसमयविदाशुग्रन्थश्चार्वक्षरो लेखवाचनसमर्थो लेखकः स्यात् ॥ ४ ॥ सो ऽव्यग्रमना राज्ञः संदेशं श्रुत्वा निश्चितार्थं लेखं विदध्यात् ॥ ५ ॥

इसलिये अमात्यके गुणोंसे युक्त, हर तरहके (वर्णाश्रम सम्बन्धी) आचार विचारोंको जानने वाला, शीघ्रताके साथ सुन्दर वाक्य योजना करने वाला, सुन्दर अक्षर लिखने वाला, सब तरहके लेख लिखने और पढ़नेमें समर्थ लेखक होना चाहिये । (अर्थात् षाड्गुण्य सम्बन्धी शासन आदि लिखने पढ़नेके लिये इसप्रकारके लेखकको राजा नियुक्त करे) ॥ ४ ॥ वह लेखक सावधान होकर, राजाके सन्देशको अच्छी तरह सुनकर, दूसरेके लेखके पूर्वापर अर्थोंपर विचार कर उसके अनुसार, निश्चित अर्थ वाले लेखको लिखे ॥ ५ ॥

देशैश्वर्यवंशनामधेयोपचारमीश्वरस्य देशनामधेयोपचारमनी-श्वरस्य ॥ ६ ॥

वह लेखपत्र यदि किसी राजाके सम्बन्धमें अर्थात् राजाके लिये लिखा जाता हो, तो उसमें उसके देश, ऐश्वर्य, वंश और नामका पूर्ण कथन होना चाहिये। यदि किसी अमात्य आदिके नाम लिखा जावे, तो उसमें केवल उसके देश और नामकाही पूर्ण निर्देश होना चाहिये ॥ ६ ॥

जातिं कुलं स्थानवयः श्रुतानि
कर्मर्द्धिशीलान्यथ देशकालौ ।
यौनानुबन्धं च समीक्ष्य कार्ये
लेखं विदध्यात्पुरुषानुरूपम् ॥ ७ ॥

इसके अतिरिक्त प्रत्येक राजकार्य सम्बन्धी लेखपत्रमें जाति (ब्राह्मण आदि), कुल, स्थान (अधिकारस्थान), आयु, विद्वत्ता (शास्त्रज्ञान), कार्य, धन सम्पत्ति, सदाचार, देश (निवास स्थान), काल, विवाहसम्बन्ध (विवाह आदि सम्बन्ध किन वंशोंके साथ होते हैं, इत्यादि; इसीका नाम 'यौनानुबन्ध' है), आदि इन सब बातोंको अच्छी तरह सोचकर, उन २ पुरुषों (उत्तम, मध्यम, नीच पुरुषों) के अनुकूल अवश्य लिखे ॥ ७ ॥

अर्थक्रमः संबन्धः परिपूर्णता माधुर्यमौदार्यं स्पष्टत्वमिति लेखसंपत् ॥ ८ ॥ तत्र यथावदनुपूर्वक्रियाप्रधानस्यार्थस्य पूर्वमभिनिवेश इत्यर्थस्य क्रमः ॥ ९ ॥ प्रस्तुतस्यार्थस्यानुरोधादुत्तरस्य विधानमासमाप्तेरिति संबन्धः ॥ १० ॥

अर्थक्रम, सम्बन्ध, परिपूर्णता, माधुर्य, औदार्य, और स्पष्टता, ये छः गुण लेखके होते हैं ॥ ८ ॥ अर्थानुसार ठीक २ आनुपूर्वीका रखना, अर्थात् सबसे प्रधान अर्थको पहिले रखना, फिर इसीके अनुसार सब बातोंका निरूपण करते जाना, 'अर्थक्रम' कहाता है ॥ ९ ॥ प्रस्तुत अर्थकी बाधा न करते हुए अगले अर्थका निरूपण करना, इसीप्रकार समाप्ति पर्यन्त करते चले जाना 'सम्बन्ध' कहाता है। तात्पर्य यह है कि अगला अर्थ पहिले अर्थका बाधक न होना चाहिये, ऐसा होनेपर ही वह अर्थ सम्बद्ध कहा जासकता है ॥ १० ॥

अर्थपदाक्षराणामन्यूनातिरिक्तता हेतूदाहरणदृष्टान्तैरर्थोपवर्णनाश्रान्तपदतेति परिपूर्णता ॥ ११ ॥ सुखोपनीतचार्वर्थशब्दा-

देशैश्वर्यवंशनामधेयोपचारमीश्वरस्य देशनामधेयोपचारमनी-श्वरस्य ॥ ६ ॥

वह लेखपत्र यदि किसी राजाके सम्बन्धमें अर्थात् राजाके लिये लिखा जाता हो, तो उसमें उसके देश, ऐश्वर्य, वंश और नामका पूर्ण कथन होना चाहिये। यदि किसी अमात्य आदिके नाम लिखा जावे, तो उसमें केवल उसके देश और नामकाही पूर्ण निर्देश होना चाहिये ॥ ६ ॥

जातिं कुलं स्थानवयः श्रुतानि
कर्मर्द्धिशीलान्यथ देशकालौ ।
यौनानुबन्धं च समीक्ष्य कार्ये
लेखं विदध्यात्पुरुषानुरूपम् ॥ ७ ॥

इनके अतिरिक्त प्रत्येक राजकार्य सम्बन्धी लेखपत्रमें जाति (ब्राह्मण आदि), कुल, स्थान (अधिकारस्थान), आयु, विद्वत्ता (शास्त्रज्ञान), कार्य, धनसम्पत्ति, सदाचार, देश (निवास स्थान), काल, विवाहसम्बन्ध (विवाह आदि सम्बन्ध किन वंशोंके साथ होते हैं, इत्यादि; इसीका नाम 'यौनानुबन्ध' है), आदि इन सब बातोंको अच्छी तरह सोचकर, उन २ पुरुषों (उत्तम, मध्यम, अधम पुरुषों) के अनुकूल अवश्य लिखे ॥ ७ ॥

अर्थक्रमः सम्बन्धः परिपूर्णता माधुर्यमौदार्यं स्पष्टत्वमिति लेखसंपत् ॥ ८ ॥ तत्र यथावदनुपूर्वीक्रियाप्रधानस्यार्थस्य पूर्वम-भिनिवेश इत्यर्थक्रमः ॥ ९ ॥ प्रस्तुतस्याथस्यानुरोधादुत्तरस्य विधानमासमाप्तेरिति संबन्धः ॥ १० ॥

अर्थक्रम, सम्बन्ध, परिपूर्णता, माधुर्य, औदार्य, और स्पष्टता, ये छः गुण लेखके होते हैं ॥ ८ ॥ अर्थानुसार ठीक २ आनुपूर्वीका रखना, अर्थात् सबसे प्रधान अर्थको पहिले रखना, फिर इसीके अनुसार सब बातोंका निरूपण करते जाना, "अर्थक्रम" कहाता है ॥ ९ ॥ प्रस्तुत अर्थकी बाधा न करते हुए अगले अर्थका निरूपण करना, इसीप्रकार समाप्ति पर्यन्त करते चले जाना 'सम्बन्ध' कहाता है। तात्पर्य यह है कि अगला अर्थ पहिले अर्थका बाधक न होना चाहिये, ऐसा होनेपर ही वह अर्थ सम्बद्ध कहा जासकता है ॥ १० ॥

अर्थपदाक्षराणामन्यूनातिरिक्तता हेतूदाहरणदृष्टान्तैरर्थोपव-र्णनाश्रान्तपदतेति परिपूर्णता ॥ ११ ॥ सुखोपनीतचार्वर्थशब्दा-

भिधानं माधुर्यम् ॥ १२ ॥ अग्राम्यशब्दाभिधानमौदार्यम् ॥ १३ ॥ प्रतीतशब्दप्रयोगः स्पष्टत्वमिति ॥ १४ ॥

अर्थपद तथा अक्षरोंका न्यून अधिक न होना; हेतु (कारण), उदाहरण (शास्त्रीय संवाद आदिका कथन), तथा दृष्टान्त (लौकिक अर्थात् लोक प्रसिद्ध अर्थका निदर्शन) पूर्वक अर्थका निरूपण करना; और शब्द कार्पण्य या ढीले शब्दोंका प्रयोग न करना 'परिपूर्णता' कहाता है ॥ ११ ॥ सुखपूर्वक अर्थात् सरलतासे अर्थका बोधन करने वाले सुन्दर २ शब्दोंका प्रयोग करना 'माधुर्य' कहाता है ॥ १२ ॥ अग्राम्य (सभ्यतासे भरे हुए) शब्दोंके प्रयोग करनेको ही 'औदार्य' कहते हैं ॥ १३ ॥ तथा सुप्रसिद्ध शब्दोंके प्रयोग करने का नाम 'स्पष्टता' है ॥ १४ ॥

अकारादयो वर्णाः त्रिषष्टिः ॥ १५ ॥ वर्णसंघातः पदम् ॥ १६ ॥ तच्चतुर्विधं नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चेति ॥ १७ ॥ तत्र नाम सत्त्वाभिधायि ॥ १८ ॥ अविशिष्टलिङ्गमाख्यातं क्रियावाचि ॥ १९ ॥ क्रियाविशेषकाः प्रादय उपसर्गाः ॥ २० ॥ अव्ययाश्चादयो निपाताः ॥ २१ ॥

अकार आदि वर्ण त्रेसठ (६३) होते हैं ॥ १५ ॥ वर्णोंके समुदायको 'पद' कहते हैं ॥ १६ ॥ वह पद चार प्रकारका होता है:—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात ॥ १७ ॥ सत्त्वको कहने वाला अर्थात् जाति गुण तथा द्रव्यका वाचक पद 'नाम' कहाता है ॥ १८ ॥ स्त्री पुरुष आदि विशेष लिङ्गोंसे रहित, क्रियावाचक पदको 'आख्यात' कहते हैं ॥ १९ ॥ क्रियाओंके विशेष अर्थोंका द्योतन करने वाले, क्रियाओंके साथ लगे हुए प्र आदि पद 'उपसर्ग' कहाते हैं ॥ २० ॥ च आदि अव्ययोंको 'निपात' कहते हैं ॥ २१ ॥

पदसमूहो वाक्यमर्थपरिसमाप्तौ ॥ २२ ॥ एकपदावरास्त्रिपदपराः परपदार्थानुरोधेन वर्गः कार्यः ॥ २३ ॥

पूर्ण अर्थको (अर्थात् निराकांक्ष अर्थको=जिस पदसमूहके उच्चारण करदेनेपर तत्सम्बन्धी अर्थकी आकांक्षा न रहे, ऐसे अर्थको) कहने वाले पदसमूहका नाम 'वाक्य' है ॥ २२ ॥ कमसे कम एक पदपर और अधिकसे अधिक तीन पदपर मुख्य पदके अनुसार विराम करना चाहिये ॥ २३ ॥

लेखकी परिसमाप्ति द्योतन करनेके लिये 'इति' शब्दका प्रयोग किया जाता है; यदि लेखमें पूरी बात न लिखी जावे, या लिखनी उचित न समझी जावे, तो अन्तमें 'वाचिकमस्य (लेखहरमुखाच्छ्रोतव्यम्)' ऐसा लिखदेना चाहिये; अर्थात् 'इस लेखका शेष अंश, इस पत्रको लाने वाले पुरुषके मुंहसे सुन लेना' इसप्रकार लिख दिया जावे ॥ २४ ॥

निन्दा प्रशंसा पृच्छा च तथाख्यानमथार्थना।
प्रत्याख्यानमुपालम्भः प्रतिषेधोऽथ चोदना ॥ २५ ॥
सान्त्वमभ्युपपत्तिश्च भर्त्सनानुनयौ तथा।
एतेष्वर्थाः प्रवर्तन्ते त्रयोदशसु लेखजाः ॥ २६ ॥

निन्दा, प्रशंसा, पृच्छा, आख्यान, अर्थना, प्रत्याख्यान, उपालम्भ, प्रतिषेध, चोदना, सान्त्व (सान्त्वना) अभ्युपपत्ति, भर्त्सना और अनुनय इन तेरह बातोंमें ही पत्रसे प्रकट होने वाले अर्थ, प्रवृत्त होते हैं; अर्थात् पत्रमें इन तेरह बातोंमेंसे ही किसी न किसीके सम्बन्धमें लिखा जाता है ॥ २५-२६ ॥

तत्राभिजनशरीरकर्मणां दोषवचनं निन्दा ॥ २७ ॥ गुणवचनमेतेषामेव प्रशंसा ॥ २८ ॥ कथमेतदिति पृच्छा ॥ २९ ॥ एवमित्याख्यानम् ॥ ३० ॥ देहीत्यर्थना ॥ ३१ ॥ न प्रयच्छामीति प्रत्याख्यानम् ॥ ३२ ॥

किसीके अभिजन (वंश), शरीर तथा कार्यमें दोषारोपण करना अर्थात् इनके सम्बन्धमें बुरा कहना 'निन्दा' कहाता है ॥ २७ ॥ और इन्हींके (वंश आदिके) सम्बन्धमें गुणोंका कथन करना 'प्रशंसा' कहाता है ॥ २८ ॥ यह बात कैसे हुई ?, इसप्रकार पूछनेको ही 'पृच्छा' कहते हैं ॥ २९ ॥ यह इस तरह करना चाहिये' यह कहना आख्यान कहाता है ॥ ३० ॥ 'दो' इसप्रकार कहकर मांगनेका नामही 'अर्थना' है ॥ ३१ ॥ 'नहीं देता हूं' इसप्रकार निषेध करदेना ही 'प्रत्याख्यान' कहाता है ॥ ३२ ॥

अननुरूपं भवत इत्युपालम्भः ॥ ३३ ॥ मा कार्षीरिति प्रतिषेधः ॥ ३४ ॥ इदं क्रियतामिति चोदना ॥ ३५ ॥ योऽहं स भवान्यन्मम द्रव्यं तद्भवत इत्युपग्रहः सान्त्वम् ॥ ३६ ॥

'यह आपने अपने अनुरूप (सदृश) नहीं किया' इसप्रकार साभिप्राय वचन कहना उपालम्भ कहाता है ॥ ३३ ॥ ऐसा मत करो' इसप्रकार

आज्ञा पूर्वक रोकना 'प्रतिषेध' कहाता है ॥ ३४ ॥ 'यह करना चाहिये' इस प्रकारकी प्रेरणाकाही 'चोदना' कहते हैं ॥ ३५ ॥ जो मैं हूं, वही आप हैं, जो मेरा द्रव्य है वह आपकाही है, इसप्रकार कहकर किसीको तसल्ली देना, तथा अपने अनुकूल बनाना 'सान्त्व' या 'सान्त्वना' कहाता है ॥ ३६ ॥

व्यसनसाहाय्यमभ्युपपत्तिः ॥ ३७ ॥ सदोषमायतिप्रदर्शनमभिभर्त्सनम् ॥ ३८ ॥ अनुनयस्त्रिविधोऽर्थकृतावतिक्रमे पुरुषादिव्यसने चेति ॥ ३९ ॥

व्यसन (आपत्ति) के समयमें सहायता करना 'अभ्युपपत्ति' कहाता है ॥ ३७ ॥ दोष सहित भविष्यका दिखलाना, अर्थात् 'यदि तुम जल्दीही इस प्रकार न करदोगे, तो मैं तुम्हें मरवा डालूंगा या कारागारमें बन्द करदूंगा' इस तरह कहना 'भर्त्सन' (घुड़कना) कहाता है ॥ ३८ ॥ अनुनय तीन प्रकारका होता है;—अर्थकरण निमित्तक, अतिक्रम निमित्तक तथा पुरुषादिव्यसननिमित्तक; किसी अवश्यमेव करने योग्य कार्यको करनेके लिये जो मित्रकी ओरसे अनुनय हो वह पहिला है। किसी तरह कुपित हुए २ पुरुषको शान्त करनेके लिये जो अनुनय किया जाय वह दूसरा है। तथा पिता भाई पुत्र मित्र आदिके मरनेके कारण आई हुई विपत्तिमें जो अनुनय किया जावे, वह तीसरा अनुनय है। अनुनय शब्दका अर्थ अनुग्रह है ॥ ३९

प्रज्ञापनाज्ञापरिदानलेखास्तथा परीहारनिसृष्टिलेखौ।
प्रावृत्तिकश्च प्रतिलेख एव सर्वत्रगश्चेति हि शासनानि ॥४०॥

शासन अर्थात् लेखके, ये और भी निम्नलिखित आठ भेद हैं:—प्रज्ञापन, आज्ञा परिदान, परीहार, निसृष्टि, प्रावृत्तिक, प्रतिलेख और सर्वत्रग। इन आठोंका क्रमशः लक्षण करते हैं ॥ ४० ॥

अनेन विज्ञापितमेवमाह तद्दीयतां चेद्यदि तत्त्वमस्ति।
राज्ञः समीपे वरकारमाह प्रज्ञापनैषा विविधोपदिष्टा ॥४१॥

गुप्त राजपुरुषके द्वारा राजाको बताये जानेपर (अर्थात् किसी महामात्रको कहींसे धन मिलगया, और उसने वह अपनेही पास रखलिया; एक गुप्त पुरुषने आकर राजाको खबर देदी, तब) राजा महामात्र आदिसे कहता है, कि यदि वह बात ठीक है, तो तुम वह धन देदो; वह राजाके सामने धन देदेनेकी स्वीकृति करलेता है; इसप्रकारके लेखपत्रका नाम 'प्रज्ञापना' है। यह प्रज्ञापना नामक लेखपत्र अनेक प्रकारका होता है ॥ ४१ ॥

भर्तुराज्ञा भवेद्यत्र निग्रहानुग्रहौ प्रति ।
विशेषेण तु भृत्येषु तदाज्ञालेखलक्षणम् ॥ ४२ ॥

जिस लेखपत्र में, राजाकी निग्रह या अनुग्रह रूप आज्ञा होवे । विशेष कर जो लेखपत्र भृत्योंके सम्बन्धमें लिखा जावे, वह 'आज्ञा' कहाता है ॥ ४२ ॥

यथार्हगुणसंयुक्ता पूजा यत्रोपलक्ष्यते ।
अप्याधौ परिदाने वा भवतस्तावुपग्रहौ ॥ ४३ ॥

जिस लेखपत्रमें उचित गुणोंसे युक्त सत्कारके भाव प्रगट किये जावें, वह 'परिदान' कहाता है । यह दो अवस्थाओंमें लिखा जाता है, एक तो उस समय जब कि अपने भृत्यों का कोई बन्धु बान्धव आदि मर गया हो, और उसके कारण उन्हें व्यथा हो, दूसरा उनकी रक्षाके लिये राजा जब कभी विशेष दयाभाव प्रगट करे । ऐसी अवस्थाओंमें राजाकी ओरसे भृत्योंको लिखा हुआ इस प्रकार का लेख, उन्हें राजाके अनुकूल बना देता है ॥ ४३ ॥

जातेर्विशेषेषु पुरेषु चैव ग्रामेषु देशेषु च तेषु तेषु ।
अनुग्रहो यो नृपतेर्निदेशात्तज्ज्ञः परीहार इति व्यवस्येत् ॥४४॥

विशेष २ जातियों, उन २ नगरों, ग्रामों तथा देशोंपर, राजाकी आज्ञानुसार जो अनुग्रह किया जावे, विशेष पुरुष इसीको 'परीहार' कहते हैं ॥ ४४ ॥

निसृष्टिस्थापना कार्या करणे वचने तथा ।
एषा वाचिकलेखः स्याद्भवेन्नैसृष्टिको ऽपि वा ॥ ४५ ॥

किसी कार्यके करने तथा कहनेमें, किसी आप्त पुरुषके प्रामाण्यका कथन करना 'निसृष्टि' कहाता है । अर्थात् अमुकका जो काम है, वही मेरा काम है, अमुकका जो वचन है वही मेरा वचन है, इसप्रकार अपने कार्य तथा वचनमें किसी आप्त प्रामाणिक पुरुषका कथन करना 'निसृष्टि' है । यह दो प्रकारका है, एक वाचिक (जिसमें वचनके प्रामाण्यका कथन हो), और दूसरा नैसृष्टिक (जिसमें कार्यके प्रामाण्यका कथन किया जाय) ॥ ४५ ॥

विविधां दैवसंयुक्तां तत्त्वजां चैव मानुषीम् ।
द्विविधां तां व्यवस्यन्ति प्रवृत्तिं शासनं प्रति ॥ ४६ ॥

अनेक प्रकारकी दैवी (सुभिक्ष दुर्भिक्ष अतिवृष्टि सुवृष्टि अवृष्टि अग्निका उत्पात आदि अनेक प्रकारकी दैव सम्बन्धी), परमार्थभूत (ठीक २ हालत बताने वाली) तथा मानुषी (चोर आदिके द्वारा होने वाले उपद्रव), लेखविषयक प्रवृत्ति दो प्रकारकी होती है । तात्पर्य यह है, कि प्रावृत्तिक (प्रवृत्ति=समाचार

अर्थात् जिसके द्वारा केवल परिस्थितिकी सूचना दूसरेको दी जाये, ऐसे) लेख में अनुकूल प्रतिकूल आपातका, चाहे वे दैवसे हों या मनुष्योंके द्वारा, तथा आपातशून्य वास्तविक अवस्थाकाही उल्लेख किया जाता है; ये सब प्रकारकी प्रवृत्ति दो भागोंमें विभक्त हैं, एक शुभ और दूसरी अशुभ । इसलिये प्रावृत्तिक लेखभी शुभ अशुभ रूपसे दो प्रकारकाही समझना चाहिये ॥ ४६ ॥

दृष्ट्वा लेखं यथातत्त्वं ततः प्रत्यनुभाष्य च ।
प्रतिलेखो भवेत्कार्यो यथा राजवचस्तथा ॥ ४७ ॥

दूसरेके भेजे हुए लेखको अच्छी तरह देखकर अर्थात् ठीक तौरपर पहिले स्वयं उसको बांचकर, फिर राजाके सामने बांचकर, राजाकी आज्ञाके अनुसार जो उसका उत्तर लिखावावे, उसीको 'प्रतिलेख' कहते हैं । ॥ ४८ ॥

यत्रेश्वरांश्चाधिकृतांश्च राजा रक्षोपकारौ पथिकार्थमाह ।
सर्वत्रगो नाम भवेत्स मार्गे देशे च सर्वत्र च वेदितव्यः ॥४८॥

जिस लेखपत्रमें राजा, पथिकोंकी रक्षा और उपकार करनेके लिये दुर्गपाल राष्ट्रपाल.अन्तपाल आदिको तथा अन्य समाहर्त्ता प्रशास्ता आदि अधिकारियोंको लिखता है; उस लेखका नाम 'सर्वत्रग' है; क्योंकि वह मार्ग देश तथा राष्ट्र आदि सबही जगहोंपर लिखा जाता है ॥ ४८ ॥

उपायाः सामोपप्रदानभेददण्डाः ॥ ४९ ॥

उपाय चार हैं, :—साम दान दण्ड भेद । (इस बातको पहिले कहा जाचुका है कि सन्धिविग्रह आदि लेखकेही अधीन हैं, इसलिये लेखकको उनका ज्ञान अवश्य होना चाहिये । अब साम दान आदि उपायोंकाभी ज्ञान लेखकको होना आवश्यक है, यह बताया जायगा) ॥ ४९ ॥

तत्र साम पञ्चविधम्-गुणसंकीर्तनं संबन्धोपाख्यानं परस्परोपकारसंदर्शनमायतिप्रदर्शनमात्मोपनिधानमिति ॥ ५० ॥

उनमें साम पांच प्रकारका होता है:—गुणसंकीर्तन, सम्बन्धोपाख्यान, परस्परोपकारसंदर्शन, आयतिप्रदर्शन, तथा आत्मोपनिधान । इनका क्रमशः पृथक् २ लक्षण करते हैं:— ॥ ५० ॥

तत्राभिजनशरीरकर्मप्रकृतिश्रुतद्रव्यादीनां गुणागुणग्रहणं प्रशंसास्तुतिर्गुणसंकीर्तनम् ॥ ५१ ॥

अभिजन (वंश), शरीर, कार्य, स्वभाव, विद्वत्ता, तथा अन्य हाथी घोड़े रथ आदि द्रव्योंके गुण और अगुणोंको जानकर उनकी प्रशंसा या स्तुति करना 'गुणसंकीर्तन' कहाता है ॥ ५१ ॥

ज्ञातियौनमौखस्रौवकुलहृदयमित्रसंकीर्तनं संबन्धोपाख्यानम् ॥ ५२ ॥

ज्ञाति (समान कुलमें उत्पन्न होना), योनिकुलसम्बन्ध (विवाह आदि), मुखकुलसम्बन्ध (गुरु शिष्य आदि, मुखके द्वारा अध्ययनाध्यापनसे उत्पन्न हुआ २ सम्बन्ध), स्रुवाकृत सम्बन्ध (स्रुवा यज्ञके एक पात्रविशेषका नाम है, उसके द्वारा जो सम्बन्ध हो, याज्ययाजक आदि), कुलकृत सम्बन्ध (कुलपरम्परासे चला आया हुआ सम्बन्ध), हार्दिक सम्बध (स्वयं अपने हृदयके द्वारा किया हुआ सम्बन्ध), तथा मित्रसम्बन्ध (उपकार आदिके द्वारा हुआ २ सम्बन्ध), इन सात प्रकारके सम्बन्धोंमेंसे किसीका कथन करना 'सम्बन्धोपाख्यान' कहाता है ॥ ५२ ॥

स्वपक्षपरपक्षयोरन्योन्योपकारसंकीर्तनं परस्परोपकारसंदर्शनम् ॥ ५३ ॥ अस्मिन्नेवं कृत इदमावयोर्भवतीत्याशाजननमायतिप्रदर्शनम् ॥ ५४ ॥

अपने और पराये पक्षमें, एक दूसरेका एक दूसरेके द्वारा किए हुए उपकारका कथन करना 'परस्परोपकारसंदर्शन' कहाता है ॥५३॥ इस कार्यके ऐसा करनेपर, हम दोनोंको यह फल होगा, इसप्रकार आशाका उत्पन्न करना 'आयतिप्रदर्शन' कहाता है ॥ ५४ ॥

यो ऽहं स भवान्यन्मम द्रव्यं तद्भवता स्वकृत्येषु प्रयोज्यतामित्यात्मोपनिधानमिति ॥ ५५ ॥

जो मैं हूं वही आप हैं, मेरा धन आपकाही धन है, आप उसे इच्छानुसार अपने कार्योंमें लगा सकते हैं, इसप्रकार अपने आपको समर्पण करदेना 'आत्मोपनिधान' कहाता है ॥ ५५ ॥

उपप्रदानमर्थोपकारः ॥ ५६ ॥ शङ्काजननं निर्भर्त्सनं च भेदः ॥ ५७ ॥ वधः परिक्लेशो ऽर्थहरणं दण्ड इति ॥ ५८ ॥

धन आदिके द्वारा उपकार करना 'उपप्रदान' या 'दान' कहाता है ॥ ५६ ॥ शत्रुके हृदयमें शङ्का उत्पन्न करदेना या धमकाना 'भेद' कहाता है ॥ ५७ ॥ उसे मारदेना, तथा अन्यप्रकारसे पीड़ा पहुंचाना, या उसके धन आदिका अपहरण करलेना 'दण्ड' कहा जाता है ॥ ५८ ॥

अकान्तिर्व्याघातः पुनरुक्तमपशब्दः संप्लव इति लेखदोषाः ५९ तत्र काल . ।६०

अकान्ति, व्याघात, पुनरुक्त, अपशब्द और संप्लव ये पांच लेखके दोष होते हैं ॥ ५९ ॥ उनमेंसे स्याही पड़े हुए कागज़पर अथवा स्वभावसेही मलिन कागज़पर लिखना, असुन्दर अक्षर बनाना, छोटे बड़े अक्षरोंका होजाना, और फीकी स्याहीसे लिखना, यह लेखका 'अकान्ति' नामक दोष कहाता है ॥६०॥

पूर्वेण पश्चिमस्यानुपपत्तिर्व्याघातः ॥ ६१ ॥ उक्तस्याविशेषेण द्वितीयमुच्चारणं पुनरुक्तम् ॥ ६२ ॥

पहिले लेखके साथ अगले लेखका विरोध होजाना, अथवा पहिले लेखसे अगले लेखकी बाधा होजाना 'व्याघात' कहाता है ॥ ६१ ॥ जो बात पहिले कहदीगई है, उसके समानही फिर दुबारा कहदेना 'पुनरुक्त' दोष कहाता है ॥६२॥

लिङ्गवचनकालकारकाणामन्यथाप्रयोगो ऽपशब्दः ॥ ६३ ॥ अवर्गे वर्गकरणं वर्गे चावर्गक्रिया गुणविपर्यासः संप्लव इति ॥६४॥

लिङ्ग (स्त्रीलिङ्ग पुल्लिङ्ग आदि), वचन (एकवचन द्विवचन आदि), काल (भूत भविष्यत् आदि), तथा कारक (कर्ता कर्म आदि), का अन्यथा प्रयोग करदेना, अर्थात स्त्रीलिंगकी जगह पुलिंग, एकवचनकी जगह बहुवचन आदि विपरीत प्रयोगोंका करना 'अपशब्द' कहाता है ॥ ६३ ॥ जहां लेखमें विराम करना चाहिये वहां विराम न करना, तथा जहां न करना चाहिये वहां करदेना, और गुणोंका विपर्यास अर्थात् अर्थक्रम आदिके अनुसार लेखका न लिखना 'संप्लव' नामक पांचवां दोष होता है ॥ ६४ ॥

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च ।
कौटल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः ॥ ६५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे शासनाधिकारः दशमो ऽध्यायः ॥ १० ॥
आदित एकत्रिंशः ॥ ३१ ॥

कौटल्यने सब शास्त्रोंको अच्छी तरह जानकर, और उनके प्रयोगोंको अच्छी तरह समझकर फिर राजाके लिये इस शासनविधिका उपदेश किया है ॥ ६५ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें दशवां अध्याय समाप्त ।

ग्यारहवां अध्याय ।

२९ प्रकरण

कोशमें प्रवेश करने योग्य रत्नोंकी परीक्षा ।

{ भाण्डागारका नाम कोश है, मणि मुक्ता आदि रत्नोंकी तथा सार फल्गु और कुप्य आदि अन्य संग्राह्य द्रव्योंकी परीक्षाकाभी इस प्रकरणमें निर्देश किया जावेगा । }

कोशाध्यक्षः कोशप्रवेश्यं रत्नं सारं फल्गु कुप्यं वा तज्जातकरणाधिष्ठितः प्रतिगृह्णीयात् ॥ १ ॥

कोशाध्यक्षको उचित है, कि वह कोशमें रखने योग्य रत्न, सार, फल्गु, तथा कुप्य द्रव्योंको, उन २ द्रव्योंका सदा व्यापार करनेवाले अच्छे जानकार पुरुषोंसे युक्त हुआ २ ही ग्रहण करे । तात्पर्य यह है कि ये पुरुष जब रत्नादिकी परीक्षा करके उसे ठीक बतावें, तब ही उसे कोशमें जमा करनेकेलिये लेवे ॥ १॥

ताम्रपार्णिकं पाण्ड्यकवाटकं पाशिक्यं कौलेयं चौर्णेयं माहेन्द्रं कार्दमिकं स्रौतसीयं ह्रादीयं हैमवतं च मौक्तिकम् ॥ २ ॥

सबसे प्रथम मोतीकी परीक्षा बताते हैः—मोतीके दश उत्पत्ति स्थान हैं, उन स्थानोंके नामसे दश प्रकारका मोती होता है,—ताम्रपर्णिक (पाण्ड्य देशमें ताम्रपर्णी नदी है, उसके समुद्र–संगममें होनेवाला मोती 'ताम्रपार्णिक' कहाता है), पाण्ड्यकवाटक (मलयकोटि नामक पहाड़पर उत्पन्न होनेवाला), पाशिक्य पाटलिपुत्रके समीपकी पाशिका नामक नदीमें उत्पन्न हुआ २), कौलेय (सिंहलद्वीपकी कुला नामक नदीमें उत्पन्न होनेवाला), चौर्णेय (केरल देश के मुरचि नामके नगर के समीप चूर्णी नदी में उत्पन्न होने वाले) माहेन्द्र (महेन्द्र पहाड़के पास समुद्रमें उत्पन्न होनेवाला). कार्दमिक (फ़ारस देशकी कर्दमा नामक नदीमें उत्पन्न होनेवाला), स्रौतसीय (बर्बरके किनारे स्रोतसी नामक नदीमें उत्पन्न होनेवाला), ह्रादीय (बर्बरके किनारे समुद्रके पास लगेहुए श्रीघण्ट नामक झीलमें उत्पन्न होनेवाला), हैमवत (हिमालय पहाड़पर उत्पन्न होनेवाला), ये दश तरहके मोती होते हैं ॥ २ ॥

शुक्तिः शङ्खः प्रकीर्णकं च योनयः ॥ ३ ॥

मोतियोंकी उत्पत्तिके तीन कारण होते हैं–शुक्ति, शंख और प्रकीर्णक, (हाथी सांप आदिके मस्तक तथा अन्य साधनोंसे उत्पन्न हुए २ मोती प्रकीर्णक शब्दसे यहां कहे गये हैं

मसूरकं त्रिपुटकं कूर्मकमर्धचन्द्रकं कञ्चुकितं यमकं कर्तकं खरकं सिक्थकं कामण्डलुकं श्यावं नीलं दुर्विद्धं चाप्रशस्तम् ॥४॥

मसूरक (मसूरकी तरह आकारवाला), त्रिपुटक (तीन खूंटवाला, अथवा छोटी इलायचीके समान आकारवाला), कूर्मक (कछुएके समान आकारवाला), अर्द्धचन्द्रक (आधे चांदके समान) कञ्चुकित (ऊपर मोटे छिलकेवाला), यमक (जुड़ा हुआ), कर्तक (कटाहुआ), खरक (खरखरा) सिक्थक (दागवाला), कामण्डलुक (कमण्डलुके समान आकारवाला), श्याव (बन्दरके समान रंगवाला), नील (नीले रंगका), तथा दुर्विद्ध (बेमौके विंधाहुआ, अर्थात जिस जगहसे विंधना चाहिये, उस जगहसे न विंधाहुआ), ये तेरह प्रकारके मोती दूषित समझे जाते हैं ॥ ४ ॥

स्थूलं वृत्तं निस्तलं भ्राजिष्णु श्वेतं गुरु स्निग्धं देशविद्धं च प्रशस्तम् ॥ ५ ॥

मोटा, गोलाकार, निस्तल (तल रहित=चिकनी जगहपर न ठहरनेवाला अर्थात् झट लुढकजानेवाला), दीप्तियुक्त, सफेद, भारी, चिकना तथा ठीक मौकेपर विंधा मोती उत्तम समझा जाता है ॥ ५ ॥

शीर्षकमुपशीर्षकं प्रकाण्डकमवघाटकं तरलप्रतिबन्धं चेति यष्टिप्रदेशाः ॥ ६ ॥

यष्टि अर्थात् लड़ (जंजीरी=पिरोएहुए मोतियोंकी एक लम्बी शृंखला) के पांच भेद हैं,—शीर्षक (जिसके बीचमें एक मोती बड़ा हो, तथा उसके दोनों ओर बराबर २ के छोटे मोती लगे हुए हों), उपशीर्षक (एक मोती बड़ा बीचमें, और उसके दोनों ओर छोटे २ बराबरके दो मोती हों, इसी तरहके तीन २ मोतियोंके समूहसे बनी हुई, अर्थात् एक बड़े मोतीके बाद बराबर २ के दो छोटे मोती, फिर एक बड़ा मोती, फिर दो बराबर २ के छोटे, इसी क्रमसे बनी हुई मालाको 'उपशीर्षक' कहते हैं), प्रकाण्डक (एक बीचमें बड़ा और उसके दोनों ओर छोटे बराबर २ के दो दो मोती हों, इसी तरहके पांच २ के समूहसे बनी हुई, अर्थात् एक मोतीके बाद चार छोटे २ बराबरके, फिर एक बड़ा, फिर उसके बाद चार छोटे बराबर २ के, इसी क्रमसे बनी हुई मालाका नाम प्रकाण्ड है), अवघाटक (एक बड़ा मोती बीचमें लगाकर और उसके दोनों ओर उत्तरोत्तर छोटे २ मोती लगाते हुए जो माला तैयार कीजावे, उसे अवघाटक कहते हैं), और तरलप्रतिबन्ध (सब बराबर २ के मोतियोंकी माला का नाम तरलप्रतिबन्ध है) ॥ ६

यष्टीनामष्टसहस्रमिन्द्रच्छन्दः ॥ ७ ॥ ततोऽर्धं विजयच्छन्दः ॥ ८ ॥ शतं देवच्छन्दः ॥ ९ ॥ चतुष्षष्टिरर्धहारः ॥१०॥ चतुष्पञ्चाशद्रश्मिकलापः ॥ ११ ॥ द्वात्रिंशद्गुच्छः ॥ १२ ॥ सप्तविंशतिर्नक्षत्रमाला ॥ १३ ॥ चतुर्विंशतिरर्धगुच्छः ॥१४॥ विंशतिर्माणवकः ॥ १५ ॥ ततोऽर्धमर्धमाणवकः ॥ १६ ॥

एक हजार आठ (१००८) यष्टि अर्थात् लड़ोंकी माला (आभूषण विशेष) को 'इन्द्रच्छन्द' कहते हैं ॥ ७ ॥ जो इससे आधी अर्थात् पांचसौ चार (५०४) यष्टियोंकी हो, उसका नाम 'विजयच्छन्द' है ॥ ८ ॥ सौ (१००) यष्टिका नाम 'देवच्छन्द' है ॥ ९ ॥ चौंसठ (६४) का 'अर्धहार' ॥ १० ॥ चौंवन (५४) का 'रश्मिकलाप' ॥ ११ ॥ बत्तीस (३२) का 'गुच्छ' ॥१२॥ सत्ताईस (२७) की 'नक्षत्रमाला' ॥ १३ ॥ चौबीस (२४) का 'अर्धगुच्छ' ॥ १४ ॥ बीस (२०) का 'माणवक' ॥ १५ ॥ और उससे आधा अर्थात् दस (१०) का 'अर्धमाणवक' नाम कहा जाताहै ॥ १६ ॥

एत एव मणिमध्यास्तन्माणवका भवन्ति ॥ १७ ॥ एकशीर्षकः शुद्धो हारः ॥ १८ ॥

इन्हीं इन्द्रच्छन्द आदिके बीचमें यदि मणि लगादी जावे, तो उसका 'इन्द्रच्छन्दमाणवक' आदि नाम होजाता है। इसी तरह 'विजयच्छन्दमाणवक' आदि समझना चाहिये ॥ १७ ॥ यदि इन्द्रच्छन्द आदि किसी हारमें शीर्षक नामक यष्टिके ढंगसेही सम्पूर्ण मोती पिरोये हुए होवें तो वह इन्द्रच्छन्द और शीर्षकको जोड़कर शुद्धहार कहाता है, अर्थात् उसका नाम 'इन्द्रच्छन्दशीर्षक शुद्धहार' यह होता है। इसीप्रकार यदि विजयच्छन्दमें सम्पूर्ण मोती शीर्षकके समान पिरोये हुए होंगे, तो उसे 'विजयच्छन्दशीर्षकशुद्धहार' कहा जायगा। इसीतरह आगेभी 'देवच्छन्दशीर्षकशुद्धहार' आदि नाम समझने चाहियें ॥१८॥

तद्वच्छेषाः ॥ १९ ॥

ऊपरके सूत्र (१८) में केवल शीर्षक नामक यष्टिको लेकर कहागया। इसीतरह उपशीर्षक आदि यष्टियोंके सम्बन्धमेंभी समझना चाहिये। अर्थात् इन्द्रच्छन्द आदिमें यदि उपशीर्षकके समान मोती पिरोये हुए होवें, तो वह 'इन्द्रच्छन्दोपशीर्षक शुद्धहार' कहलावेगा। इसीतरह विजयच्छन्दोपशीर्षक शुद्धहार, देवच्छन्दोपशीर्षक शुद्धहार, अर्धहारोपशीर्षक शुद्धहार आदि नाम समझने चाहियें इसीतरह यदि एक　　　समान सम्पूर्ण मोती पिरोये होवें,

तो इन्द्रच्छन्दप्रकाण्डक शुद्धहार आदि नाम होंगे। इसके अनुसार ही एकही अवघाटक या तरलप्रतिबन्ध यष्टिके समान मोती पिरोये जानेपर नामोंकी कल्पना करलेनी चाहिये। अर्थात् इन्द्रच्छन्दावघाटक शुद्धहार और इन्द्रच्छन्द तरलप्रतिबन्धशुद्धहार आदि नाम समझलेने चाहियें॥ १९॥

मणिमध्योऽर्धमाणवकः॥ २०॥

यदि इन शुद्धहारोंके बीचमें मणि लगादी जावे, तो वह बजाय शुद्ध हारके अर्धमाणवक कहाता है, उसका नाम इन्द्रच्छन्दशीर्षकार्धमाणवक होगा। इसीतरह उपशीर्षक आदिको लेकरभी नाम समझलेने चाहियें। (पहिले जो माणवकको लेकर इन्द्रच्छन्दमाणवक आदि भेद बतलाये हैं, उनमें एक शीर्षक आदिका नियम नहीं है, वे संकीर्ण हैं शुद्ध नहीं; अर्थात् उनमें शीर्षक उपशीर्षक प्रकाण्डक आदि हरतरहसे मोती पिरोयेजाकरही इन्द्रच्छन्द आदिको तय्यार करलिया जाता है, उनमें यदि बीचमें मणि डालदी जावे तो वह इन्द्रच्छन्द माणवक आदि नामोंसे पुकारा जायगा। यदि शुद्ध अर्थात् जिसमें एक शीर्षक आदिका नियम है, उसमें मोतियोंके बीच में मणि लगादी जावे तो, वह न माणवक और न शुद्ध कहलावेगा, प्रत्युत उसमें शीर्षक आदिके साथही अर्धमाणवक विशेषण लगेगा। उसका पूरा नाम इन्द्रच्छन्दशीर्षकार्धमाणवक, इन्द्रच्छन्दोपशीर्षकार्धमाणवक, इन्द्रच्छन्दप्रकाण्डकार्धमाणवक, इत्यादि रूपसे कल्पना करना चाहिये। इसीतरह आगे विजयच्छन्द आदिको लेकर विजयच्छन्दशीर्षकार्धमाणवक, विजयच्छन्दोपशीर्षकार्धमाणवक आदि नाम समझलेने चाहियें)॥ २०॥

त्रिफलकः फलकहारः पञ्चफलको वा॥ २१॥

यदि किसीभी मोतीकी मालामें सोनेके तीन या पांच दाने लगेहुए होंगे, तो उसका नाम 'फलकहार' होगा। (महामहोपाध्याय गणपति शास्त्रीने २० और २१ दोनों सूत्रोंको इकट्ठा करदिया है। और उसका अर्थ इसप्रकार किया है,—'अर्धमाणवक अर्थात् दश यष्टिकी (जिसका कि वर्णन १६ वें सूत्रमें होचुका है) मालामें यदि सोनेके तीन या पांच दाने हों तो उसे 'फलकहार' कहाजाता है। हमारे विचारमें यदि कौटल्यको अर्धमाणवककाही विशेष अवस्थामें 'फलकहार' नाम रखना था, तो २० वें सूत्रमें उसे 'मणिमध्य' पद देनेकी कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि अर्धमाणवक होताही मणिमध्य है, उसका लक्षण १६ वें सूत्रमें करदिया गया है, फिर मणिमध्य विशेषण देना व्यर्थ था। इसलिये ये दो सूत्र पृथक् २ ही ठीक मालूम होते हैं; इनका अर्थ ऊपर करदिया गया है)॥ २१॥

सूत्रमेकावली शुद्धा ॥ २२ ॥ सैव मणिमध्या यष्टिः ॥२३॥ हेममणिचित्रा रत्नावली ॥ २४ ॥ हेममणिमुक्तान्तरो ऽपवर्तकः ॥ २५ ॥ सुवर्णसूत्रान्तरं सोपानकम् ॥ २६ ॥

शुद्ध अर्थात् एकशीर्षक आदि क्रमसे बनीहुई एकावली अर्थात् एकही लड़की मालाको 'सूत्र' कहाजाता है ॥ २२ ॥ यदि उसहीके बीचमें मणि लगादी जावे, तो उसका नाम 'यष्टि' होजायगा ॥ २३ ॥ सोनेके दाने और मणियोंसे बनीहुई चित्र मालाका नाम 'रत्नावली' होगा ॥ २४ ॥ यदि सोनेके दाने, मणि और मोती ये एक २ के बाद सिलसिलेवार गुथे हुए होवें, तो उसका नाम 'अपवर्तक' होगा ॥ २५ ॥ यदि बीचमें मणि लगीहुई न होवे, मोतियोंके साथ केवल सोनेकेही दाने लगे होवें, तो उसका नाम 'सोपानक' होता है ॥ २६ ॥

मणिमध्यं वा मणिसोपानकम् ॥२७॥ तेन शिरोहस्तपादकटीकलापजालकविकल्पा व्याख्याताः ॥ २८ ॥

यदि बीचमें मणि लगादी जावे, तो उसे 'मणिसोपानक' कहते हैं ॥ २७ ॥ इससे सिर हाथ पैर और कमरकी, भिन्न २ प्रकारकी मालाओंका व्याख्यान समझलेना चाहिये। इन्हींके अनुसार उनकीभी कल्पना करलेनी चाहिये। यहांतक मोतियोंके सम्बन्धमें निरूपण कियागया। अब मणिके सम्बन्धमें कहा जायगा ॥ २८ ॥

मणिः कौटो मौलेयकः पारसमुद्रकश्च ॥ २९ ॥

मणियोंके तीन मुख्य उत्पत्ति स्थान हैं, इसलिये मणि तीन प्रकारकी कहीजाती है,:—कौट (मलयसागरके समीप कोटि नामक स्थान है, वहांपर उत्पन्न होनेवाली) मौलेयक (मलय देशके एक हिस्सेमें कर्णीवन नामक पर्वत माला है, वहांपर उत्पन्न होनेवाली मणि) और पारसमुद्रक (समुद्रके पार सिंहल आदि द्वीपोंमें उत्पन्न होनेवाली मणि) ये मणियोंके तीन भेद हैं ॥२९॥

सौगन्धिकः पद्मरागोऽनवद्यरागः पारिजातपुष्पको बालसूर्यकः ॥ ३० ॥

मणियोंमें पांच प्रकारका माणिक्य समझा जाता है,—सौगन्धिक (सौगन्धिक नामक कमलके समान रंगवाला; यह कमल साधारणतया सायंकाल के समय खिलता है इसका रंग कुछ नीलेपनको लिएहुए लाल होता है), पद्मराग (पद्मके समान रंगवाला); अनवद्यराग (अनवद्य केसरको कहते हैं, केसरकी तरह रंगवाला पारिजातपुष्पक (पारिजातके फूलके समान रंगवाला , तथा

बालसूर्यक (उदय होतेहुए सूर्यके समान अरुण रंगवाला) ये पांच भेद माणिकके हैं ॥ ३० ॥

वैडूर्य उत्पलवर्णः शिरीषपुष्पक उदकवर्णो वंशरागः शुकपत्रवर्णः पुष्यरागो गोमूत्रको गोमेदकः ॥ ३१ ॥

वैडूर्य जातिकी मणि आठ प्रकारकी होती है,—उत्पलवर्ण (लाल कमलके समान रंगवाली), शिरीषपुष्पक (सिरसके फूलके रंगवाली), उदकवर्ण (जलके समान स्वच्छ रंगवाली), वंशराग (बांसके पत्तेके समान रंगवाली), शुकपत्रवर्ण (तोतेके पंखोंकी तरह हरे रंगवाली), पुष्यराग (हलदीके समान पीले रंगवाली), गोमूत्रक (गोमूत्रके समान रंगवाली), गोमेदक (गोरोचनाके समान रंगवाली) ये आठ भेद वैडूर्य जातिकी मणिके हैं ॥ ३१ ॥

नीलावलीय इन्द्रनीलः कलायपुष्पको महानीलो जाम्बवाभो जीमूतप्रभो नन्दकः स्रवन्मध्यः ॥ ३२ ॥

इन्द्रनील जातिकी मणिभी आठ प्रकारकी होती है;—नीलावलीय (रंग सफेद होनेपरभी जिस मणिमें नीले रंगकी धारायें हों), इन्द्रनील (मोरके पंखकी तरह नीले रंगवाली), कलायपुष्पक (कलाय मटरको कहते हैं, मटरके फूलके समान रंगवाली), महानील (भौंरेके समान गहरे काले रंगकी), जाम्बवाभ (जामुनके समान रंगकी), जीमूतप्रभ (मेघके समान वर्णकी), नन्दक (भीतरसे सफेद और बाहरसे नीला), तथा स्रवन्मध्य (जिसमेंसे जल प्रवाहके समान किरणें बहती हों), ये आठ भेद नीलम मणिके हैं ॥ ३२ ॥

शुद्धस्फटिकः मूलाटवर्णः शीतवृष्टिः सूर्यकान्तश्चेति मणयः ॥ ३३ ॥

स्फटिक (बिल्लौर) जातिकी मणि चार प्रकारकी होती है,—शुद्धस्फटिक (अत्यन्त शुक्ल वर्णकी), मूलाटवर्ण (मक्खन निकाले हुए दही अर्थात् तक्र= मठाके समान रंगवाली), शीतवृष्टि (चन्द्रकान्त=चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे पिघल जानेवाली), और सूर्यकान्त (सूर्यकी किरणोंका स्पर्श होनेपर आग उगलनेवाली मणि) ये चार भेद स्फटिक मणिके हैं । यहांतक भिन्न २ मणियोंके भेदोंका निरूपण कियागया ॥ ३३ ॥

षडश्रश्चतुरश्रो वृत्तो वा तीव्ररागसंस्थानवानच्छः स्निग्धो गुरुरर्चिष्मानन्तर्गतप्रभः प्रभानुलेपी चेति मणिगुणाः ॥ ३४ ॥

अब मणिके गुणोंका कथन करते हैं,—षडश्र (छः कोनोंवाली), चतुरश्र (चार कोनोंवाली), वृत्त (गोलाकार), गहरे रंगवाला अथवा बहुत चमकदार, जिसको यथावत् भूषण आदिमें लगानेके योग्य हो, निर्मल, चिकना, भारी, दीप्तिवाला, बीचमेंही चंचल प्रभावाला, तथा जो अपनी प्रभासे पास रक्खी हुई वस्तुको प्रभायुक्त या प्रकाशित करनेवाला हो; ये ग्यारह प्रकारके गुण मणियोंमें समझेजाते हैं ॥ ३४ ॥

मन्दरागप्रभः सशर्करः पुष्पच्छिद्रः खण्डो दुर्विद्धो लेखाकीर्ण इति दोषाः ॥ ३५ ॥

निम्न लिखित सात प्रकारके दोषभी मणियोंमें होते हैं,—हलके रंगवाली, हलकी कान्तिवाली, खरखरी (जिसके ऊपर छोटे २ दानेसे उठे हुए हों), जिसमें छोटे २ छेद या, कटीहुई हो, अनुपयुक्त स्थानपर या बेमौके जिसमें छेद होगया हो, तथा भिन्न प्रकारकी रेखाओंसे घिरीहुई हो; ये सात तरहके दोष मणियोंमें होते हैं ॥ ३५ ॥

विमलकः सस्यकोऽञ्जनमूलकः पित्तकः सुलभको लोहिताक्षो मृगाश्मको ज्योतीरसको मैलेयक आहिच्छत्रकः कूर्पः प्रतिकूर्पः सुगन्धिकूर्पः क्षीरपकः शुक्तिचूर्णकः शिलाप्रवालकः पुलकः शुक्रपुलक इत्यन्तरजातयः ॥ ३६ ॥

इन मणियोंकी अठारह अवान्तर जातियां और हैं,—विमलक (सफेद और हरे रंगसे मिश्रित), सस्यक (नीला), अञ्जनमूलक (नीला और काला मिश्रित), पित्तक (गौके पित्ताके समान रंगवाला), सुलभक (सफ़ेद) लोहिताक्ष (किनारोंकी ओर लाल रंगवाला और बीचमें काला), मृगाश्मक (सफ़ेद और काला मिलाहुआ), किसी २ पुस्तकमें 'लोहिताक्ष'के स्थानपर 'लोहितक और 'मृगाश्मक' के स्थानपर 'अमृतांशुक' पाठ है; लोहितकका अर्थ लाल और अमृतांशुकका ज़र्दी माइल सफ़ेद करना चाहिये), ज्योतीरसक (सफ़ेद और लाल मिलाहुआ), मैलेयक (शिंगरफ़के समान रंगवाला), आहिच्छत्रक (फीके रंगवाला), कूर्प (खुरदरा, जिसके ऊपर छोटी २ बूंदसी उठीहुई हों), प्रतिकूर्प (दाग़ी, जिसपर धब्बे लगेहुए हों), सुगन्धिकूर्प (मूंगके समान वर्णवाला), क्षीरपक (दूधके समान वर्णवाला), शुक्तिचूर्णक (चित्रित, मिलेहुए कई रंगवाला), शिलाप्रवालक (प्रवालक, अर्थात् मूंगेके समान रंगवाला), पुलक (जो बीचमें काला हो), तथा शुक्रपुलक (जो बीचमेंसे सफ़ेद हो) ये मणियोंके अठारह अवान्तर भेद हैं ॥ ३६ ॥

शेषाः काचमणयः ॥ ३७ ॥

इनके अतिरिक्त जो और मणि हों, उन्हें काचमणि अर्थात् काचके समान अधम जातिकीही समझना चाहिये, वे निकृष्ट मणि होती हैं ॥ ३७ ॥

सभाराष्ट्रकं मध्यमराष्ट्रकं काश्मीरराष्ट्रकं श्रीकटनकं मणिमन्तकमिन्द्रवानकं च वज्रम् ॥ ३८ ॥

अब वज्रमणि अर्थात् हीरेका निरूपण कियाजाता है, सभाराष्ट्रक (विदर्भ=बरार देशमें उत्पन्न होनेवाला), मध्यमराष्ट्रक (कोसल देशमें उत्पन्न होनेवाला), कास्तीरराष्ट्रक (कास्तीरराष्ट्रमें पैदा होनेवाला), (किसी २ पुस्तकमें 'कास्तीरराष्ट्रक' के स्थानपर 'काश्मीरराष्ट्रक' पाठ है; अर्थ स्पष्ट है), श्रीकटनक (श्रीकटननामक पर्वतपर उत्पन्न होनेवाला), मणिमन्तक (उत्तरकी ओरके मणिमन्तक नामक पर्वतपर उत्पन्न होनेवाला) तथा इन्द्रवानक (कलिङ्ग देशमें उत्पन्न होनेवाला), इन निर्दिष्ट छः स्थानोंमें उत्पन्न होनेके कारण छः प्रकारका हीरा समझना चाहिये। वस्तुतः हीरेकी उत्पत्तिके और भी अनेक स्थान हैं, इसलिये इन्हें दिग्दर्शन मात्रही समझना चाहिये ॥ ३८ ॥

खनिः स्रोतः प्रकीर्णकं च योनयः ॥ ३९ ॥

खान, कोई २ विशेष जलप्रवाह और हाथीदांतकी जड़ आदि, ये हीरेके उत्पत्ति स्थान समझने चाहियें। (खान और जलप्रवाहके अतिरिक्त जहांकहींसे भी हीरा पैदा हो, उसका नाम प्रकीर्णक होगा) ॥ ३९ ॥

मार्जाराक्षकं च शिरीषपुष्पकं गोमूत्रकं गोमेदकं शुद्धस्फटिकं मूलाटीपुष्पकवर्णं मणिवर्णानामन्यतमवर्णमिति वज्रवर्णाः ॥ ४० ॥

अब हीरेके रंगोंको बतलाते हैं,—मार्जाराक्षक (मार्जार=बिलावकी आंखके समान), शिरीषपुष्पक (सिरसके फूलके समान), गोमूत्रक (गोमूत्रके समान), गोमेदक (गोरोचनाके समान), शुद्धस्फटिक (अत्यन्त श्वेतवर्ण स्फटिकके समान), मूलाटीपुष्पकवर्ण (मूलाटीके फूलके समान), तथा मणियोंके बतलायेहुए रंगोंमेंसे किसीके समान रंगवाला हीरा होता है। ये ही हीरेके रंग होते हैं ॥ ४० ॥

स्थूलं गुरु प्रहारसहं समकोटिकं भाजनलेखितं कुभ्रामि भ्राजिष्णु च प्रशस्तम् ॥ ४१ ॥

मोटा, चिकना, भारी चोटको सहने वाला, बराबर कोनोंवाला, पानीसे भरेहुए पीतल आदिके बर्तनमें हीरा [illegible] उस बर्तनके हिलानेपर

सेंभमें लकार वालदेनेवाला, तकचकी तरह घूमनेवाला (तकवा चर्खोंमें लगी हुई उस लोहेकी शलाकाका नाम है, जिसपर सूत लपेटा जाता है), और चमकदार हीरा प्रशस्त अर्थात् उत्तम समझा जाता है ॥ ४१ ॥

नष्टकोणं निराश्रि पार्श्वापवृत्तं चाप्रशस्तम् ॥ ४२ ॥

नष्टकोण अर्थात् शिखर रहित (कोनों से रहित), अश्रि रहित (तीक्ष्ण कोने से रहित), तथा एक ओर को अधिक निकले हुए कोनोंवाला हीरा अप्रशस्त अर्थात् दूषित समझा जाता है ॥ ४२ ॥

प्रवालकमालकन्दकं वैवर्णिकं च रक्तं पद्मरागं च करटं गर्भिणिकावर्जमिति ॥ ४३ ॥

प्रवाल अर्थात् मूंगा के दो उत्पत्तिस्थान हैं, इसलिये दो प्रकारका मूंगा समझना चाहिये,—आलकन्दक (अलकन्द नामका, म्लेच्छ देशोंमें समुद्रके किनारे एक स्थान है, वहांपर उत्पन्न होनेवाला) वैवर्णिक (यूनान देशके समीप विवर्ण नामक समुद्रका एक भाग है, वहांपर उत्पन्न होनेवाला)। लाल तथा पद्मके समान रंग, यह दो प्रकारका मूंगेका रंग होता है। यह कीड़ेका खायाहुआ न होना चाहिये, तथा बीचमेंसे मोटा या उठाहुआ न होना चाहिये; अर्थात् इन दो प्रकारके दोषोंसे रहित होना चाहिये। यहांतक रत्नोंकी परीक्षाके सम्बन्धमें निरूपण कियागया। अब इसके आगे चन्दन आदि सार पदार्थोंका निरूपण किया जायगा ॥ ४३ ॥

चन्दनं सातनं रक्तं भूमिगन्धि ॥ ४४ ॥ गोशीर्षकं कालताम्रं मत्स्यगन्धि ॥ ४५ ॥ हरिचन्दनं शुकपत्त्रवर्णमाम्रगन्धि ॥ ४६ ॥ तार्णसं च ॥ ४७ ॥

चन्दनके सातन आदि सोलह उत्पत्तिके स्थान है, लाल आदि नौ रंग, और भूमिगन्ध आदि छः प्रकारके गन्ध हैं, चन्दनमें गुण ग्यारह होते हैं, इन्हीं सब बातोंका यथाक्रम निरूपण कियाजाता है:—सातन देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन लाल रंगका तथा भूमिके गंधके समान गंधवाला होता है, (भूमिगन्धि= भूमिपर पहिलेही जल डालनेपर जैसा गन्ध मालूम होता है, उसके समान) ॥ ४४ ॥ गोशीर्ष देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन कुछ काला और लाल मिले हुए रंगका होता है, तथा इसका गन्ध, मछलीके गन्धके समान होता है। (भट्टस्वामीने 'मत्स्यगन्धि' शब्दका अर्थ 'लाल करोंदेके गन्धके समान गन्धवाला' किया है) ॥ ४५ ॥ हरिचन्दन अर्थात् हरि नामक देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन, तोतके पङ्खके समान हरे रंगका, आमके गंधके समान गंध

वाला होता है ॥ ४६ ॥ और तृणसा नामक नदीके किनारेपर होनेवाला चन्दनभी हरिचन्दनके समानही होता है ॥ ४७ ॥

ग्रामेरुकं रक्तं रक्तकालं वा बस्तमूत्रगन्धि ॥ ४८ ॥ दैवसभेयं रक्तं पद्मगन्धि ॥ ४९ ॥ जावकं च ॥ ५० ॥

ग्रामेरु प्रदेशमें होनेवाला चन्दन लाल रंगका अथवा लाल और काले मिलेहुए रंगका होता है; इसका गन्ध, बकरेके पेशाबके समान होता है। (किसी २ व्याख्याकारने 'बस्त' शब्दका अर्थ कस्तूरीहिरणभी किया है, तब इसके पेशाबके समान गन्ध समझना चाहिये ॥ ४८ ॥ देवसभा नामक स्थान में होनेवाला चन्दन लाल रंगका, तथा पद्मके समान गन्धवाला होता है ॥४९॥ तथा जावक देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दनभी लाल रंग तथा पद्मके समान गन्धवाला होता है ॥ ५० ॥

जोङ्गकं रक्तं रक्तकालं वा स्निग्धम् ॥ ५१ ॥ तौरूपं च ॥ ५२ ॥ मालेयकं पाण्डुरक्तम् ॥ ५३ ॥ कुचन्दनं कालवर्णकं गोमूत्रगन्धि ॥ ५४ ॥

जोंग देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन लाल रंगका अथवा लाल और काले मिलेहुए रंगका तथा चिकना होता है। इसका गन्ध पद्मके समानही होता है ॥ ५१ ॥ तुरूप देशका चन्दनभी जोङ्गक (जोंग देशके चन्दन) के सर्वथा समानही होता है ॥ ५२ ॥ माला स्थानके चन्दनका रंग कुछ पीला और लाल मिलाहुआ होता है। इसका गन्धभी पद्मके समान समझना चाहिये ॥ ५३ ॥ कुचन्दन काले रंगका तथा गोमूत्रके समान गन्धवाला होता है। (किसी २ व्याख्याकारने गोमूत्र शब्दका अर्थ नीला कमलभी किया है ॥५४॥

कालपर्वतकं रूक्षमगुरुकालं रक्तं रक्तकालं वा ॥ ५५ ॥ कोशकारपर्वतकं कालं कालचित्रं वा ॥ ५६ ॥

कालपर्वत देशमें पैदा होनेवाला चन्दन रूक्ष (अर्थात् कुछ रूखा सा= खरखरा), तथा अगरके समान काला, अथवा लाल या लाल और काले मिलेहुए रंगका होता है। इसका गन्ध गोमूत्रके समानही समझना चाहिये। (५४ और ५५ मूल सूत्रोंके स्थानपर किसी २ पुस्तक में "कुचन्दनं कालरूक्षमगरुकालं रक्तं रक्तकालं वा। कालपर्वतकमनवद्यवर्णं वा" ऐसा पाठ है। इस पाठमें कुछ शब्द इधर उधर होगये हैं, गन्ध बतलाने वाला कोई शब्द नहीं आया, जो अवश्य आना चाहिये; और कोई विशेष अर्थ-भेद नहीं है। 'अनवद्यवर्ण' शब्दका अर्थ केसरके समान रंग वाला करना चाहिए) ॥ ५५ ॥ कोशकारपर्वत नामक देशमें होनेवाला चन्दन, काला अथवा चितकबरा होता है ॥५६॥

शीतोदकीयं पद्माभं कालस्निग्धं वा ॥ ५७ ॥ नागपर्वतकं रुक्षं शैवलवर्णं वा ॥ ५८ ॥ शाकलं कपिलमिति ॥ ५९ ॥

शीतोदक देशमें होनेवाला चन्दन पद्मके समान रंगका अथवा काला तथा स्निग्ध होता है ॥ ५७ ॥ नागपर्वत प्रदेशमें उत्पन्न हुआ २ चन्दन रूखा और जलकी काई या सिरवालके समान रंगवाला होता है ॥ ५८ ॥ शाकल देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन कपिल (कुछ पीला और कुछ लाल मिलेहुए) रंगका होता है । इन (५६ वें सूत्र से यहांतक बताए हुए सबही) चन्दनोंका गन्ध गोमूत्रके समान ही समझना चाहिये ॥ ५९ ॥

लघु स्निग्धमश्यानं सर्पिस्नेहलेपि गन्धसुखं त्वगनुसार्यनुल्बणमविराग्युष्णसहं दाहग्राहि सुखस्पर्शनमिति चन्दनगुणाः ॥६०॥

चन्दनमें निम्नलिखित ये ग्यारह गुण होते हैं;:-लघु (हलका होना), चिकना, बहुत दिनमें सूखनेवाला, घृतके समान देहमें लगने वाला, मनोहर गन्धवाला, खालके भीतर प्रविष्ट होकर सुख देनेवाला, अनुल्बण अर्थात् फटाहुआ सा न दीखनेवाला, शरीरपर लेप करलेनेपर जिसके वर्ण या गन्धमें कोई भी विकार न हो. गरमीको सहन करनेवाला (अर्थात् देहपर लेप करनेसे देहकी गरमीको शान्त करने वाला, सन्तापको हरण करने वाला, तथा स्पर्श करनेमें अत्यन्त सुखकर प्रतीत होना, ये ग्यारह चन्दन के गुण होते हैं ॥६०॥

अगुरु जोङ्गकं कालं कालचित्रं मण्डलाचित्रं वा ॥ ६१ ॥ श्यामं दोङ्गकम् ॥ ६२ ॥ पारसमुद्रकं चित्ररूपमुशीरगन्धि नवमालिकागन्धि वेति ॥ ६३ ॥

अब अगरके विषयमें निरूपण किया जायगा,:—जोङ्गक नामक अगर तीन तरह का होता है, काला, चितकबरा (जिसमें सफेद और काले रंगकी रेखायें सी हों), तथा जिसमें काली और सफेद बूंदसी पड़ी हों। अर्थात सफेद और काले दागों से युक्त हो ॥ ६१ ॥ इसी तरह दोङ्गक नाम का अगर काला होता है । यह दोनों ही जोङ्गक और दोङ्गक आसाम देशमें उत्पन्न होते हैं ॥ ६२ ॥ समुद्र के पारका अर्थात् सिंहल द्वीप आदिमें उत्पन्न होने वाला अगर चित्र रूपका होता है, इनका गन्ध उशीर (खस) तथा नई चमेलीके समान होता है ॥ ६३ ॥

गुरु स्निग्धं पेशलगन्धि निर्हार्यग्निसहमसंप्लुतधूमं समगन्धं विमर्दसहमित्यगुरुगुणाः ॥ ६४ ॥

भारी, चिकना, मनोहर गन्धवाला, दूर तक फैल जाने वाली गन्धसे युक्त, अग्नि को सहन करने वाला, जिसका धुआं व्याकुलता उत्पन्न करने वाला न हो, जलाते समय आगे पीछे एक जैसी गन्ध का निकलना, तथा वस्त्र आदि पूंछ देनेपर भी गन्ध का उसी तरह बने रहना, ये अगरुके गुण होते हैं ॥ ६४ ।

तैलपर्णिकमशोकग्रामिकं मांसवर्णं पद्मगन्धि ॥६५॥ जोङ्गकं रक्तपीतकमुत्पलगन्धि गोमूत्रगन्धि वा ॥ ६६ ॥

अशोकग्राम (आसाम) में होने वाला तैलपर्णिक (एक प्रकारका चन्दन) मांसके समान वर्णवाला तथा पद्मके समान गन्ध वाला होता है। (व्याख्याकार भट्ट स्वामीने, 'मांसवर्ण' शब्दका अर्थ 'हरिणकी मांसपेशी के वर्णके समान; यह किया है) ॥ ६५ ॥ जोङ्गक (अर्थात् जोङ्ग नामक, आसाम के एक आवान्तर प्रदेशमें उत्पन्न होने वाला) तैलपर्णिक लाल तथा पीले मिले हुए से रङ्ग का होता है, इसका गन्ध कमल के समान अथवा गोमूत्रके समान होता है ॥ ६६ ॥

ग्रामेरुकं स्निग्धं गोमूत्रगन्धि ॥ ६७ ॥ सौवर्णकुड्यकं रक्तपीतं मातुलुङ्गगन्धि ॥ ६८ ॥ पूर्णकद्वीपकं पद्मगन्धि नवनीतगन्धि चेति ॥ ६९ ॥

ग्रामेरु प्रदेशमें होने वाला तैलपर्णिक चिकना तथा गोमूत्र के समान गन्ध वाला होता है ॥ ६७ ॥ आसाम के सुवर्णकुड्य नामक स्थानमें होने वाला तैलपर्णिक कुछ लाल और कुछ पीले मिले हुएसे रङ्ग का होता है; तथा इसका गन्ध मातुलुङ्ग (एक तरह का नींबू) के समान होता है ॥ ६८ ॥ पूर्णक द्वीपमें उत्पन्न होने वाला तैलपर्णिक पद्मके समान अथवा मक्खनके समान गन्ध वाला होता है ॥ ६९ ॥

भद्रश्रीयं पारलौहित्यकं जातीवर्णम् ॥ ७० ॥ आन्तरवत्यमुशीरवर्णम् ॥ ७१ ॥ उभयं कुष्ठगन्धि चेति ॥ ७२ ॥

भद्रश्रीय (एक प्रकारका चन्दन । कोई २ व्याख्याकार इसको कपूर भी कहते हैं) दो प्रकारका होता है, एक पारलौहित्यक और दूसरा आन्तरवत्य, आसाम प्रान्तके लौहित्य नामक नदके पार होने वाला पारलौहित्यक कहाता है, इसका रङ्ग चमेलीके फूलके समान होता है ॥ ७० ॥ दूसरा आन्तरवत्य भी आसाम की अन्तरवती नदीके तटपर उत्पन्न होता है, तथा इसका रङ्ग खसके रङ्गके समान होता है ॥ ७१ ॥ इन दोनों का ही गन्ध कुष्ठ (कूट-एक औषधि का नाम है) के समान होता है ॥ ७२ ॥

कालेयकः स्वर्णभूमिजः स्निग्धपीतकः ॥ ७३ ॥ औत्तरपर्वतको रक्तपीतक इति साराः ॥ ७४ ॥ पिण्डक्वाथधूमसहमविरागि योगानुविधायि च ॥ ७५ ॥

कालेयक (दारु हल्दी या पीले चन्दन को कहते हैं), स्वर्ण भूमि (स्थान विशेष) में उत्पन्न होने वाला, तथा चिकना और पीले रङ्ग का होता है ॥ ७३ ॥ उत्तर पर्वत अर्थात् हिमालय पर होने वाला कालेयक लाल और पीले मिले हुए से रङ्ग का होता है। यहां तक सार वस्तुओंकी परीक्षा का कथन किया गया ॥ ७४ ॥ तैलपर्णिक, भद्रश्रीय और कालेयक, इन तीनोंके गुण निम्न लिखित हैं:—पीसने पर, पकाने पर, तथा आगमें जलाने पर, गन्धमें किसी प्रकारका विकार न होना, तथा दूसरी वस्तुके साथ मिलाने पर और देरतक रक्खे रहने पर भी इनके गन्ध आदिमें किसी तरहका भेद न आना ॥ ७५ ॥

चन्दनागरुवच्च तेषां गुणाः ॥ ७६ ॥ कान्तनावकं प्रैयकं चोत्तरपर्वतकं चर्म ॥ ७७ ॥

इसके अतिरिक्त, चन्दन और अगरुके जो गुण, पीछे बताये गये हैं, वह भी इसमें समझने चाहियें ॥ ७६ ॥ अब फल्गु पदार्थों का निरूपण किया जाता है। उनमें सबसे प्रथम चमड़ा है, चमड़ा पन्द्रह तरह की जातियोंमें विभक्त है। सौ (१००)वें सूत्र तक इन्हींका क्रमशः वर्णन किया जायगा। उनमें से दो भेद यह हैं—कान्तनावक और प्रैयक, कान्तनाव और प्रैय देशोंमें जो चमड़ा पैदा होता है, उसीके ये नाम हैं, यह दोनों प्रकारका चमड़ा औत्तरपर्वतक अर्थात् हिमालय में उत्पन्न हुआ २ कहा जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि ये दोनों ही देश हिमालय के ही अवान्तर प्रदेश हैं ॥ ७७ ॥

कान्तनावकं मयूरग्रीवाभम् ॥ ७८ ॥ प्रैयकं नीलपीतं श्वेतं लेखि बिन्दुचित्रम् ॥ ७९ ॥ तदुभयमष्टाङ्गुलायामम् ॥ ८० ॥

इन दोनों प्रकारके चमड़ोंमें से पहिला कान्तनावक, मोरकी गर्दनके समान कान्ति वाला होता है ॥ ७८ ॥ और दूसरा प्रैयक नीले पीले रङ्गका मिला हुआ तथा सफेद रङ्गका, रेखाओं वाला या बूंदोंसे विचित्रसा होता है। ॥ ७९ ॥ यह दोनों ही प्रकारका कान्तनावक और प्रैयक नामक चमड़ा आठ अगुल विस्तार वाला होता है ॥ ८० ॥

बिसी महाबिसी च द्वादशग्रामीये ॥ ८१ ॥ अव्यक्तरूपा दुहिलितिका चित्रा वा बिसी ॥ ८२ ॥ परुषा श्वेतप्राया महाबिसी ॥ ८३ ॥ द्वादशाङ्गुलायाममुभयम् ॥ ८४ ॥

द्वादश ग्राम (हिमालयमें म्लेच्छों के बारह गांव प्रसिद्ध हैं, उन) में उत्पन्न होने वाला चमड़ा बिसी और महाबिसी नामसे कहा जाता है ॥ ८१ ॥ इन दोनोंमें से जिसका रूप (बहुत रङ्गोंके मिलनेके कारण) स्पष्टतया प्रतीत न हो, बालों वाला तथा चितकबरा सा हो, वह बिसी होता है ॥ ८२ ॥ कठोर तथा प्रायः सफेद रङ्गका चमड़ा महाबिसी कहाता है ॥ ८३ ॥ इन दोनों का विस्तार बारह २ अंगुल का माना गया है ॥ ८४ ॥

श्यामिका कालिका कदली चन्द्रोत्तरा शाकुला चारोहजाः ॥ ८५ ॥ कपिला बिन्दुचित्रा वा श्यामिका ॥८६॥ कालिका कपिला कपोतवर्णा वा ॥ ८७ ॥ तदुभयमष्टाङ्गुलायामम् ॥८८॥

हिमालयके आरोह नामक स्थानमें उत्पन्न होनेवाला चमड़ा पांच प्रकारका होता है:—श्यामिका, कालिका, कदली, चन्द्रोत्तरा और शाकुला ॥ ८५ ॥ कपिल रंग (सन्ध्याके समय जैसा पश्चिमकी ओर रंग दिखाई देता है), तथा बूंदोंसे चितकबरेसे रंगका चमड़ा 'श्यामिका' कहाता है ॥ ८६ ॥ 'कालिका' नामका चमड़ाभी कपिल रंगका अथवा कबूतरके समान रंगका होता है ॥८७॥ ये दोनों प्रकारके चमड़े आठ अंगुल बिस्तारके समझे जाते हैं॥८८॥

परुषा कदली हस्तायता ॥ ८९ ॥ सैव चन्द्रचित्रा चन्द्रोत्तरा ॥ ९० ॥ कदलीत्रिभागा शाकुला कोठमण्डलचित्रा कृतकर्णिकाजिनचित्रा चेति ॥ ९१ ॥

'कदली' नामका चमड़ा कठोर खुरदरा होता है, इसकी लम्बाई एक हाथ समझी जाती है ॥ ८९ ॥ वह कदली नामक चमड़ाही यदि चांदकेसमान बूंदोंसे युक्त होवे, तो उसे 'चन्द्रोत्तरा' कहा जाता है । इन दोनोंका रंग कालिकाके समानही समझना चाहिये ॥ ९० ॥ कदलीसे तीन गुना बड़ा (अर्थात् तीन हाथका) अथवा कदलीका तीसरा हिस्सा (अर्थात् आठ अंगुल परिमाण का) 'शाकुला' नामक चमड़ा होता है, यह लाल धब्बोंसे युक्त होता है, तथा इसमें स्वभावतः ही कुछ गांठली पड़ी होती हैं ॥ ९१ ॥

सामूरं चीनसी सामूली च बाह्लवेयाः ॥ ९२ ॥ षट्त्रिंशदङ्गुलमञ्जनवर्णं सामूरम् ॥ ९३ ॥ चीनसी रक्तकाली पाण्डुकाली वा ॥ ९४ ॥ सामूली गोधूमवर्णेति ॥ ९५ ॥

हिमालयके वाल्हव नामक प्रदेशमें तीन प्रकारका चमड़ा होता है, सामूर, चीनसी और सामूली ॥ ९२ ॥ छत्तीस अंगुल परिमाण वाला तथा अञ्जनके समान काले रंगका चमड़ा 'सामूर' कहाता है ॥ ९३ ॥ लाल काले अथवा पीले और काले मिलेहुए रंगका चमड़ा 'चीनसी' होता है ॥ ९४ ॥ धौंहुए रंगका चमड़ा 'सामूली' कहाता है। इन दोनोंका परिमाण सामूरके समान छत्तीस अंगुल ही समझना चाहिये ॥ ९५ ॥

सातिना नलतूला वृत्तपुच्छा चौद्राः ॥ ९६ ॥ सातिना कृष्णा ॥ ९७ ॥ नलतूला नलतूलवर्णा ॥ ९८ ॥ कपिला वृत्त-पुच्छा च ॥ ९९ ॥ इति चर्मजातयः ॥ १०० ॥ चर्मणां मृदु स्निग्धं बहुलरोम च श्रेष्ठम् ॥ १०१ ॥

उद्र नामके जलचर प्राणीकी खाल तीन प्रकारकी होती है,—सातिना, नलतूला और वृत्तपुच्छा ॥ ९६ ॥ इनमेंसे 'सातिना' खाल काले रंगकी होती है ॥ ९७ ॥ नरसलकी बालके समान सफेद रंगकी खाल 'नलतूला' कहाती है ॥ ९८ ॥ तथा 'वृत्तपुच्छा' नामकी खाल कपिल (लाल और पीले मिलेहुएसे) रंगकी होती है ॥ ९९ ॥ यहांतक चमड़ेकी भिन्न २ जातियोंका निरूपण किया गया ॥ १०० ॥ चमड़ेमेंसे मुलायम चिकना तथा अधिक बालों वाला चमड़ा उत्तम समझा जाता है ॥ १०१ ॥

शुद्धं शुद्धरक्तं पक्षरक्तं चाविकम् ॥ १०२ ॥ खचितं वान-चित्रं खण्डसङ्घात्यं तन्तुविच्छिन्नं च ॥ १०३ ॥ कम्बलः कौचपकः कुलमितिका सौमितिका तुरगास्तरणं वर्णकं तालिच्छकं वारवाणः परिस्तोमः समन्तभद्रकं चाविकम् ॥ १०४ ॥

भेड़की ऊनसे बुनेहुए कपड़े प्रायः, सफेद, लाल, और कुछ लाल रंगके (अर्थात् जिनमें कुछ तन्तु लाल रंगके हों, और कुछ उनके साथ अन्य किसी रंगके मिले हों), होते हैं ॥ १०२ ॥ ये कपड़े बनावटके भेदसे चार प्रकारके होते हैं,—खचित (जिनपर कसीदेका काम कियाहुआ हो), वानाचित्र (बुना-वटमेंही जिनमें तरह २ के फूल वगैरह डालदिये गये हों), खण्डसंघात्य (तरह २ की बुनावटके छोटे २ टुकड़ोंको जोड़कर जो कपड़ा बनाया गया हो) और तन्तुविच्छिन्न (बुननेके समय कुछ तन्तुओंको छोड़कर जालीकी तरह बुनाहुआ कपड़ा), ॥ १०३ ॥ बनकर तैयार हुए २ ऊनके कपड़ोंके साधारण-तया दस भेद हैं;—कम्बल, कौचपक अथवा कंचलक (जंगलमें काम आने वाला शिरस्त्राण), कुलमितिका अथवा कलमितिका (हाथीके ऊपर डालने-

वाला झूल, अथवा हाथीपर अम्बारी रखते समय उसके नीचे पीटपर बिछानेका कपड़ा), सौमितिका (अम्बारीके ऊपर डालनेका काले रंगका कपड़ा), तुरगास्तरण (घोड़ेकी पीठपर डालनेका कपड़ा), वर्णक (रंगाहुआ कम्बल), तलिच्छक (यहभी एक तरहका कम्बल होता है, जो बिस्तरपर नीचे बिछानेके काममें आता है) वारवाण (कोट कुर्त्ता, या चोला आदि) परिस्तोम (धारीदार इस प्रकारका बनाहुआ कम्बल जो कुछ, बनावटकी विशेषता के कारण बड़ा सा मालूम पड़े), और समन्तभद्रक (चार खानेका कम्बल , ये सब कपड़े भेड़की ऊनसे तैयार कियेहुए होते हैं ॥ १०४ ॥

पिच्छलमार्द्रमिव च सूक्ष्मं मृदु च श्रेष्ठम् ॥ १०५ ॥ अष्टप्रोतिसङ्घात्या कृष्णा भिङ्गिसी वर्षवारणमपसारक इति नैपालकम् ॥ १०६ ॥

चिकना, चमकदार, बारीक डोरेका, मुलायम कम्बल उत्तम समझा जाता है ॥ १०५ ॥ आठ टुकड़ोंको जोड़कर बनाई हुई, काले रंगकी 'भिङ्गिसी' होती है, यह वर्षासे बचनेके काममें लाई जाती है। इसी प्रकारके एक ही सीधे (अर्थात् टुकड़ोंसे न बनेहुए) कपड़ेका नाम 'अपसारक' है। यह कपड़े नेपाल देशमें बनाए जाते हैं ॥ १०६ ॥

संपुटिका चतुरश्रिका लम्बरा कटवानकं प्रावरकः सत्तलिकेति मृगरोम ॥ १०७ ॥

छः प्रकारका कपड़ा मृगके बालोंसे बनाया जाता है,:—संपुटिका (जांघिया, अथवा सुथन), चतुरश्रिका (किनारीसे रहित, तथा कोनोंमें नौ अंगुल परिमाणमें बेल बूटोंसे युक्त), लम्बरा (ऊपर ओढ़नेका कपड़ा) कटवानक (मोटे सूत अर्थात् डोरेका बना हुआ कपड़ा), प्रावरक (ओढ़नेका कपड़ा, जिसके दोनों ओर किनारे हों), और सत्तलिका (नीचे बिछानेका कपड़ा), ये कपड़े, मृग अर्थात् भिन्न २ जंगली जानवरों की ऊनसे बनाये जाते हैं ॥ १०७ ॥

वाङ्गकं श्वेतं स्निग्धं दुकूलं पौण्ड्रकं श्यामं मणिस्निग्धं सौवर्णकुड्यकं सूर्यवर्णम् ॥ १०८ ॥

दुकूल अर्थात् दुशाला, देश भेदसे तीन प्रकारका होता है,—वाङ्गक, पौण्ड्रक, और सौवर्णकुड्यक। इनमें से वाङ्गक अर्थात् बंगालमें बना हुआ दुशाला सफेद तथा चिकना होता है। पौण्ड्रक अर्थात् पुण्ड्र देशमें बनाया

हुआ दुशाला काला तथा मणिके समान स्निग्ध होता है, और सौवर्णकुड्यक अर्थात् आसामके सुवर्णकुड्य नामक स्थानमें बनाया जानेवाला, सूर्यके समान चमकते हुए रंगका होता है ॥ १०८ ॥

मणिस्निग्धोदकवानं चतुरश्रवानं व्यामिश्रवानं च ॥१०९॥ एतेषामेकांशुकमर्धद्वित्रिचतुरंशुकमिति ॥ ११० ॥ तेन काशिकं पौण्ड्रकं च क्षौमं व्याख्यातम् ॥ १११ ॥

इन सबही दुशालों की बुनावट तीन प्रकारकी हो सकती है,–(१) पहिले दुशालेके साधन भूत तन्तु आदि द्रव्यों को जलसे भिगोकर, फिर उन्हें मणिबन्धसे रगड़ कर तन्तुओं को दृढ़ बनाकर, फिर बुनावट करना; (२) ताने और बाने में दोनों ओरसे ही बराबर एकसे बारीक तन्तुओं से बुनावट करना; (३) मिले हुए तन्तुओंसे (कपास, ऊन या रेशम आदि भिन्न २ जातियोंके, अथवा सफ़ेद नीले पीले आदि भिन्न २ रंगोंके तन्तुओंसे) बुनावट करना ॥ १०९ ॥ इन सब दुशालोंमें वही उत्तम होता है, जिसके ताने और बानेमें एकसे ही सूक्ष्म तन्तु हों; इनसे ड्योढ़े दुगने तिगुने तथा चौगने मोटे तन्तुओंके होनेपर, उत्तरोत्तर वह दुशाला कम कीमतका समझा जाता है। यहांतक दुशालोंका निरूपण किया गया ॥ ११० ॥ इससे काशी प्रान्तमें तथा पुण्ड्र देशमें उत्पन्न होने वाले अर्थात् बनाये जाने वाले क्षौम (रेशमी वस्त्रों) का भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये। (अर्थात् जो सूक्ष्म इकहरे तन्तुओंका बना हो, वह उत्तम, और इसके आगे उत्तरोत्तर स्थूल तन्तुओंके होनेसे वह कम कीमतका समझा जाता है) ॥१११॥

मागधिका पौण्ड्रिका सौवर्णकुड्यका च पत्त्रोर्णाः ॥११२॥ नागवृक्षो लिकुचो वकुलो वटश्च योनयः ॥ ११३ ॥

मगध, पुण्ड्रक तथा सुवर्ण कुड्यक, इन तीन देशोंमें उत्पन्न होनेवाली 'पत्रोर्णा' होती है। ('पत्रोर्णा' ऊनके सदृश उन तन्तुओंका नाम है, जो भिन्न २ वृक्षोंके पत्तों आदि पर कीड़ोंके द्वारा उनकी लारसे बनाये जाते हैं। किसी २ व्याख्याकारने इसका अर्थ पत्ते आदिके रेशे, जो उन्हें कूटकर निकाले जाते हैं किया है) ॥ ११२ ॥ यह पत्रोर्णा निम्न लिखित चार वृक्षोंपर ही प्रायः अधिकतासे उत्पन्न होती है,–नागवृक्ष (नागकेसर अथवा पानबेल आदि) लिकुच (बड़हर) वकुल (मौलसरी), तथा वट (बड़) ॥ ११३ ॥

पीतिका नागवृक्षिका ॥ ११४ ॥ गोधूमवर्णा लैकुची ११५ श्वेता वाकुली ११६ शेषा नवनीतवर्णा ११७

नागवृक्ष पर होने वाली पत्रोर्णा पीले रंगकी होती है ॥ ११४ ॥ लिकुच अर्थात् बड़हर पर होनेवाली गेहुंए रंगकी होती है ॥ ११५ ॥ बकुल पर उत्पन्न होने वाली सफेद ॥ ११६ ॥ और शेष बड़ आदि वृक्षोंपर होने वाली पत्रोर्णा मक्खनके समान रंगवाली होती है ॥ ११७ ॥

तासां सौवर्णकुड्यका श्रेष्ठा ॥ ११८ ॥ तया कौशेयं चीनपट्टाश्च चीनभूमिजा व्याख्याताः ॥ ११९ ॥

इन सबमें से सुवर्णकुड्य नामक देशमें उत्पन्न होनेवाली पत्रोर्णा सबसे उत्तम समझी जाती है ॥११८॥ इसके समानही अन्य रेशम, तथा चीन देशमें उत्पन्न होने वाले चीनपट्ट (चीन देशमें बने हुए रेशमी वस्त्र) भी समझ लेने चाहियें । (अर्थात् उनके भी नागवृक्ष आदि उत्पत्ति स्थान तथा पीले आदि रंग होते हैं) ॥ ११९ ॥

माधुरमापरान्तकं कालिङ्गकं काशिकं वाङ्गकं वात्सकं माहिषकं च कार्पासिकं श्रेष्ठमिति ॥ १२० ॥

मधुरा (पाण्ड्य देशकी राजधानी, इससे सम्पूर्ण देशका ग्रहण करना चाहिये), अपरान्तक (कोङ्कण देश), कलिङ्ग, काशी, वङ्ग, वत्स, और महिषक (मैसूर), इन देशोंमें उत्पन्न होने वाली कपासके कपड़े सब से उत्तम समझे जाते हैं । यहां तक फल्गु पदार्थोंका निरूपण किया गया । ॥ १२० ॥

अतः परेषां रत्नानां प्रमाणं मूल्यलक्षणम् ।
जातिं रूपं च जानीयान्निधानं नवकर्म च ॥ १२१ ॥

मौक्तिक से लगाकर कार्पासिक पर्यन्त जिन रत्न आदिका निरूपण इस प्रकरणमें कर दिया गया है, तथा जिनका निरूपण अगले प्रकरणों में किया जानेवाला है, उनसे अतिरिक्त रत्नोंके भी प्रमाण, मूल्य, लक्षण, जाति, रूप, निधान (उनके उपयोगका प्रकार), तथा नवकर्म (खान से निकलने पर उनके शोधन बेधन तथा घर्षण आदि का प्रकार) आदि सबके विषयमें अवश्य ही कोशाध्यक्ष को जानकारी प्राप्त करनी चाहिये ॥ १२१ ॥

पुराणप्रतिसंस्कारं कर्मगुह्यमुपस्करान् ।
देशकालपरीभोगं हिंस्राणां च प्रतिक्रियाम् ॥ १२२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

आदितो द्वात्रिंश ॥ ३२ ॥

तथा इसके अतिरिक्त पुराने रत्नोंका पुनः संस्कार, कर्मगुह्य (रत्नोंका छीलना, तथा उनका रंग आदि बदलना), उपस्कर (रत्नोंके साफ करनेके लिये अन्य उपयोगी साधन), देश कालके अनुसार उनके उपयोग तथा उनमें लगने वाले कीड़े या चूहे आदिका प्रतीकार भी कोशाध्यक्षको अवश्य जानना चाहिये ॥ १११ ॥

अध्यक्ष प्रचार द्वितीय अधिकरणमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त ।

बारहवां अध्याय ।

३० प्रकरण ।

खानके कार्योंका संचालन ।

आकराध्यक्षः शुल्बधातुशास्त्ररसपाकमणिरागज्ञस्तज्ज्ञसखो वा तज्जातकर्मकरोपकरणसंपन्नः किट्टमूषाङ्गारभस्मालिङ्गं वाकरं भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा भूमिप्रस्तररसधातुमत्यर्थवर्णगौरवमुग्रगन्धरसं परीक्षेत ॥ १ ॥

आकराध्यक्ष अर्थात् खानोंके अध्यक्षको चाहिये, कि वह शुल्ब शास्त्र (जिसमें तांबा आदिके सोना बनाने की विधि बतलाई गई हो, ऐसा शास्त्र), धातु शास्त्र (किसी धातुमें उचित उपायोंसे अधिक शक्ति उत्पन्न करदेनेकी विधि बताने वाला शास्त्र), रस (गुप्त रसायन आदि), पाक (सुवर्ण आदिको अग्निमें तपानेसे उनके रूपमें उत्कृष्टता उत्पन्न करदेना आदि), और मणिराग (मणियोंके वर्ण आदि बदलने) आदि के विषयमें अच्छी जानकारी प्राप्त करे । अथवा इन सब विषयोंको जानने वाले पुरुषोंके साथ रहकर, और इन चीजोंका लगातार व्यापार करने वाले पुरुषों, तथा अन्य कसी कुल्हाड़े, धौंकनी संडासी आदि आवश्यक साधनोंको साथमें लेकर; किट्ट (लोहेका मैल), मूषा (वह वस्तु, जिसके पात्रमें सुवर्ण आदिको रखकर तपाया जाता है), और अंगारभस्म (राख) आदि चिन्होंको देखकर पुरानी खानकी परीक्षा करे । तथा मट्टी, पत्थर, रस (जल आदि) आदिमें जहां धातु मिली हुई मालूम हों, या उसका रङ्ग बहुत चमकता हो, या वह मट्टी आदि बहुत भारी, अथवा तीव्र गन्धसे या तीव्र रससे युक्त हो, तो इन सब चिन्होंको

देखकर मौजूदा खानकी जाच करनी चाहिये अर्थात् यह समझना चाहिये कि यहांपर खान विद्यमान है ॥ १ ॥

पर्वतानामभिज्ञातोद्देशानां बिलगुहोपत्यकालयनिगूढखातेष्वन्तः प्रस्यन्दिनो जम्बूचूततालफलपक्कहरिद्राभेदहरितालमनःशिलाक्षौद्रहिङ्गुलुकपुण्डरीकशुकमयूरपत्त्रवर्णाः सवर्णोदकौपधीपर्यन्ताश्चिक्कणा विशदा भारिकाश्च रसाः काश्चनिकाः ॥ २ ॥

पहिले पहिचाने हुए पहाड़ोंके गढ़ों गुफाओं, तराइयों, पथरीले स्थानों तथा बड़ी २ शिलाओंसे ढके हुए छिपे छेदोंमें बहने वाले; जामुन आम तथा ताड़के फलके समान, पकी हलदी हरताल मनसिल शहद शिंगरफ कमल, और तोते तथा मोरके पङ्खोंके समान रङ्ग वाले; अपने समान वर्णके जल तथा औषधि तक फैलने वाले, चिकने पवित्र तथा भारी जलोंको देखकर यह अनुमान करना चाहिये, कि जहांसे ये इसप्रकारके जल निकलकर बहरहे हैं, वहां अवश्यही सुवर्णकी खान है, अर्थात् सोनेकी खानके ये चिन्ह होते हैं ॥ २ ॥

अप्सु निष्ठ्यतास्तैलवद्विसर्पिणः पङ्कमलग्राहिणश्च ताम्ररूप्ययोः शतादुपरि वेद्धारः ॥ ३ ॥

इसप्रकारके जलोंको यदि दूसरे साधारण जलमें मिलाया जाय, और वे उसमें तेलकी तरह फैल जावें, अथवा कतक (जलको स्वच्छ करने वाला एक फल=निरबसी) के फलके समान जलको स्वच्छ करता हुआ नीचे बैठ जावे; अथवा सौ पल तांबे या चांदीको, उसके ऊपर डाला हुआ वह एक पल जल सुनहरा बनादेवे, तो भी समझना चाहिये कि इस जलके निकासके नीचे अवश्य सोनेकी खान है ॥ ३ ॥

तत्प्रतिरूपकमुग्रगन्धरसं शिलाजतु विद्यात् ॥ ४ ॥

यदि किसी स्थानपर उसके समान केवल उग्रगन्ध या उग्ररस हो, तो समझना चाहिये कि यहांपर शिलाजतुका उत्पत्ति स्थान है, सुवर्ण आदिका नहीं ॥ ४ ॥

पीतकास्ताम्रकास्ताम्रपीतका वा भूमिप्रस्तरधातवः प्रभिन्ना नीलराजीवन्तो मुद्गमाषकृसरवर्णा वा दधिबिन्दुपिण्डचित्रा हरिद्रा हरीतकीपद्मपत्त्रशैवलयकृत्प्लीहानवद्यवर्णा भिन्नाश्चुञ्चुवालुकालेखाबिन्दुस्वस्तिकवन्तः सगुलिका न

भिद्यन्ते बहुफेनधूमाश्च सुवर्णधातवः प्रतीवापार्थास्ताम्ररूप्यवेधनाः ॥ ५ ॥

पीले रङ्गकी, तांबेके रङ्गकी अथवा दोनों मिले हुए रङ्गकी भूमिधातु (मट्टी) और प्रस्तरधातु (पत्थर आदि), तोड़नेपर बीचमें नीली रेखाओंसे युक्त, अथवा मूंग उड़द या तिलोंके समान वर्णके दानोंसे युक्त; अथवा दहीके कणोंके समान छोटी २ बूंदोंसे घिरी हुई, या दही के समान बड़ी २ बूंदोंसे युक्त, हल्दी, हरड़, कमलका पत्ता, सिरवाल, यकृत् प्लीहा तथा केसरके समान वर्णसे युक्त, तथा तोड़नेपर बारीक रेतके समान रेखाओं, बूंदों या स्वस्तिकों (त्रिकोण रूपकी विशेष रेखाओं) से युक्त; छोटी २ गोलियों जैसे मोटे रेतसे युक्त; कान्ति युक्त; तपाये जानेपर न फटने वाली तथा बहुत झाग और धुआं देनेवाली, सुवर्णधातु होती हैं; अर्थात् इसप्रकारकी भूमिधातु और प्रस्तरधातु, तांबे तथा चांदीको सोना बनादेने वाली होती हैं। इनके मेलसे तांबा और चांदी भी सोना बन जाते हैं ॥ ५ ॥

शङ्खकर्पूरस्फटिकनवनीतकपोतपारावतविमलकमयूरग्रीवावर्णाः सस्यकगोमेदकगुडमत्स्यण्डिकावर्णाः कोविदारपद्मपाटलीकलायक्षौमातसीपुष्पवर्णाः ससीसाः साञ्जनाः विस्रा भिन्नाः श्वेताभाः कृष्णाः कृष्णाभाः श्वेताः सर्वे वा लेखाविन्दुचित्रा मृदवो ध्मायमाना न स्फुटन्ति बहुफेनधूमाश्च रूप्यधातवः ॥ ६ ॥

शंख, कपूर, स्फटिक (बिल्लौर), नवनीत (मक्खन), कपोत (जङ्गली कबूतर), पारावत (ग्रामीण कबूतर), विमलक (सफ़ेद तथा लाल रङ्गका मणि), और मोरकी गर्दनके समान रङ्ग वाले; सस्यक (नीले रङ्गकी मणि), गोमेदक (गौका पित्ता), गुड़, तथा मत्स्यण्डिका (शक्कर डलीदार) के समान रंग वाले; कचनार, कमल, पाटली, मटर, क्षुमा (एक तरहकी अलसी) तथा अलसीके समान वर्ण वाले; सीसेसे युक्त, अञ्जनसे युक्त, दुर्गन्धसे पूर्ण; तोड़े जानेपर बाहरसे सफ़ेद मालूम होने वाले भीतरसे काले निकले, तथा जो बाहरसे काले हों, वे भीतरसे सफ़ेद निकलें; अथवा सबही तरह २ की रेखा तथा बूंदोंसे चित्रितसे हों, मृदु, तथा तपाये जानेपर जो फटें नहीं, किन्तु बहुत झाग और धुआं उगलें; इसप्रकारके धातु रूप्यधातु कहे जाते हैं ॥ ६ ॥

सर्वधातूनां गौरववृद्धौ सत्त्ववृद्धिः ॥ ७

सबही कहे हुए अथवा आगे कहे जाने वाले धातुओंके सम्बन्धमें यह नियम समझना चाहिये, कि उनमें जितनी गुरुता अर्थात् भारीपन अधिक होगा, उतनेही वे अधिक सारवान समझे जावेंगे ॥ ७ ॥

तेषामशुद्धा मूढगर्भा वा तीक्ष्णमूत्रक्षारभाविता राजवृक्षवटपीलुगोपित्तरोचना महिषखरकरभमूत्रलण्डपिण्डबद्धास्तत्प्रतीवापास्तदवलेपा वा विशुद्धाः स्रवन्ति ॥ ८ ॥

इन धातुओंमेंसे जो अशुद्ध हों, अथवा अपने मल आदि दोषोंसे ही जिनका सत्त्व यथार्थ प्रकट न होरहा हो, उनका शोधन करलिया जावे। शोधन के प्रकार ये हैं:—तीक्ष्ण मूत्र (मनुष्यका मूत्र अथवा हाथी घोड़ा गाय, गधा या बकरेका मूत्र), या तीक्ष्ण क्षार (अपामार्ग क्षार आदि) में इन धातुओंको कई बार भावना दीजावे। अमलतास, बड़, पीलु (विशेष वृक्ष), गौका पित्त, गोरोचना; और भैंसा, तथा बालक ऊँट, इनके मूत्र और पुरीषके पिण्डके साथ मलिन धातुओंको भावना देकर शुद्ध किया जावे। अमलतास आदिके चूर्णके साथ अथवा उनसे लेप किये हुए धातु मलको नष्ट करके अपने असली रूपको प्रकट कर देते हैं। अर्थात् शुद्ध होजाते हैं ॥ ८ ॥

यवमाषतिलपलाशपीलुक्षारैर्गोक्षीराजक्षीरैर्वा कदली वज्रकन्दप्रतीवापो मार्दवकरः ॥ ९ ॥

जौ उड़द, तिल, ढाक, और पीलुके क्षार; गाय तथा बकरीके दूधके साथ कदली तथा सूरण कन्दका योग करनेसे उनमें सोने और चांदीकी भावना दिये जानेपर ये सोने और चांदीको मृदु बनादेते हैं ॥ ९ ॥

मधुमधुकमजापयः सतैलं
घृतगुडकिण्वयुतं सकन्दलीकं।
यदपि शतसहस्रधा विभिन्नं
भवति मृदु त्रिभिरेव तन्निषेकैः ॥ १० ॥

शहद, मुलहटी, बकरीका दूध, तेल, घृत, गुड़की शराब तथा खादरमें उत्पन्न होने वाले झाड़से युक्त इन सब वस्तुओं को मिलाकर यदि तीन बारभी सोने और चांदीमें भावना दी जावे, तो चाहे वह सोना आदि सैकड़ों हजारों तरह कटाफटा या खरखरा हो, अवश्य ही मृदु होजाता है ॥ १० ॥

गोदन्तशृङ्गप्रतीवापो मृदुस्तम्भनः ॥ ११ ॥ भारिकः स्निग्धो मृदुश्च प्रस्तरधातुर्भूमिभागो वा पिङ्गलो हरितः पाटलो लोहितो वा ताम्रधातुः ॥ १२ ॥

यदि गायक दांत और सींगको चूर्ण करके, पिघले हुए सुवर्णके ऊपर बुरक दिया जावे, तो उस सुवर्णकी मृदुताका लोप होजाता है। यहांतक सुवर्ण और रूप्य धातुके सम्बन्धमें निरूपण किया गया ॥११॥ भारी, चिकना तथा मृदु प्रस्तरधातु (पाषाणधातु) अथवा भूमिभाग (अर्थात् भूमिधातु), ताम्रधातु अर्थात् ताम्रके कारण होते हैं। (तात्पर्य यह है कि जिस स्थानपर इसतरहके पत्थर तथा भूभाग हों, वहां तांबेका उत्पत्ति स्थान समझना चाहिये। उसके रङ्ग चार प्रकारके बताये गये हैं,—पिङ्गल (पीला और लाल मिला हुआ, संध्याकालके समान), हरित (नीला), पाटल (कुछ २ लालसा), और लोहित (अर्थात् लाल) ॥ १२ ॥

काकमेचकः कपोतरोचनावर्णः श्वेतराजिनद्धो वा विस्रः सीसधातुः ॥१३॥ ऊषरकर्बुरः पक्वलोष्ठवर्णो वा त्रपुधातुः ॥१४॥

जो भूमिस्थान कौएके समान काला, कबूतर या गोरोचनाके समान वर्ण वाला, अथवा सफ़ेद रेखाओंसे युक्त और दुर्गन्ध पूर्ण हो, वह सीसा नामक धातुका उत्पत्ति स्थान समझना चाहिये। अर्थात् ऐसे स्थानोंमें सीसेकी खान निकलती है ॥ १३ ॥ जो भूमिभाग, ऊसर भूमिके समान कुछ २ सफ़ेद रङ्ग-का हो; अथवा पके हुए ढेलेके समान रङ्गवाला हो, वह त्रपु अर्थात् सफ़ेद रङ्गके सीसेका उत्पत्ति स्थान समझना चाहिये ॥ १४ ॥

कुरुम्बः पाण्डुरोहितः सिन्दुवारपुष्पवर्णो वा तीक्ष्णधातुः ॥ १५ ॥ काकाण्डभुजपत्त्रवर्णो वा वैकृन्तकधातुः ॥ १६ ॥

प्रायः चिकने पत्थरोंसे युक्त, कुछ सफ़ेद तथा लाल मिले हुएसे रङ्ग वाला, अथवा निर्गुण्डीके फूलके समान रङ्गवाला भूमिभाग, तीक्ष्णधातु अर्थात् लोहेका उत्पत्ति स्थान होता है ॥ १५ ॥ कौएके अण्डे तथा भोजपत्रके समान वर्ण वाला भूभाग, वैकृन्तक अर्थात् इस्पाती लोहेका उत्पत्ति स्थान होता है। यहांतक सात प्रकारकी लोहधातुओंका निरूपण कर दिया गया ॥ १६ ॥

अच्छः स्निग्धः सप्रभो घोषवाञ्शीतस्तीव्रस्तनुरागश्च मणिधातुः ॥१७॥ धातुसमुत्थितं तज्जातकर्मान्तेषु प्रयोजयेत् ॥१८॥

स्वच्छ, (ऐसा चमकता हुआ स्थान, जिसमें प्रतिबिम्ब दीखे), स्निग्ध (चिकना), प्रभायुक्त, अग्नि जलाने या चोट देनेपर बड़ा शब्द करने वाला, अत्यन्त शीतल, फीके रङ्गवाला, भूमिभाग, मणिधातु अर्थात् मणियोंका उत्पत्ति स्थान होता है ॥ १७ ॥ थोड़ेसे धनव्यय तथा यत्नसे जो सुवर्ण आदि भूमिसे प्राप्त होवे, उसे फिर अन्य अधिक खानके ही काममें लगा देवे; जिससे कि उत्तरोत्तर सुवर्ण आदिकी प्राप्ति होता रहे ॥ १८ ॥

कृतभाण्डव्यवहारमेकमुखमत्ययं चान्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतॄणां स्थापयेत् ॥ १९ ॥

जो सुवर्ण आदि धातु बिक्रीके लिये तैयार होजावें, उनका किसी एक ही नियत स्थानमें विक्रय कराना चाहिये। (इसका यही तात्पर्य मालूम होता है, कि राज्यकी ओरसे सुवर्ण आदि खनिज पदार्थों का भिन्न २ किसी एक व्यक्तिको ही ठेका देदेना चाहिए, उन्हीं के द्वारा उन वस्तुओंका विक्रय करना उचित है)। यदि कोई व्यक्ति राजाज्ञाके बिना ही किसी स्थानमें सुवर्ण आदिकी उत्पत्ति करके क्रय विक्रय करने लगे तो उसे राजाकी ओरसे दण्ड मिलना चाहिये। अर्थात् राजाकी ओरसे जिन व्यक्तियों को इस कार्यके लिये आज्ञा मिल चुकी है, उनसे अतिरिक्त जो भी इस कार्यको करे, वह दण्डनीय समझा जावे ॥ १९ ॥

आकरिकमपहरन्तमष्टगुणं दापयेदन्यत्र रत्नेभ्यः ॥ २० ॥ स्तेनमनिसृष्टोपजीविनं च बद्धं कर्म कारयेत् ॥ २१ ॥ दण्डोपकारिणश्च ॥ २२ ॥

खनिज पदार्थोंका अपहरण करने वाले कार्यकर्ता पुरुषको, उस वस्तु से आठ गुना दण्ड, देना चाहिये। परन्तु रत्नोंकी चोरीके लिये यह दण्ड नहीं है, आगे उसका दण्ड, वध बतलाया जावेगा ॥ २० ॥ जो पुरुष चोरी करे, अथवा राजाकी अनुमतिके बिना ही खनिज पदार्थोंका व्यापार करे, उसे पकड़ कर खानके काममें लगा दिया जावे ॥ २१ ॥ और जिस पुरुषको अदालतसे किसी अपराधमें शारीरिक दण्ड दिया गया हो, परन्तु किसी विशेष कारणवश उसे यदि वह दण्ड न दिया जाता हो, तो इसके बदलेमें उस पुरुषको भी खानके कार्य करनेमें लगा दिया जावे ॥ २२ ॥

व्ययक्रियाभारिकमाकरं भागेन प्रक्रयेण वा दद्यात् ॥२३॥ लाघविकमात्मना कारयेत् ॥ २४ ॥

खानके ऊपर यदि और लोगोंका बहुत धन देना होगया हो, उस को चुकाकर ही खानकी आमदनी हो सकती हो, अथवा यह कार्य अत्यधिक यत्न से साध्य हो, तो आकराध्यक्षको चाहिए, कि वह थोड़ा २ करके, लोगोंके धन को धीरे २ चुका देवे; अथवा सुवर्णका कुछ भाग एक साथ राजाको देकर, उसके बदलेमें खजानेसे रुपया लेकर, लोगोंके धनको चूकता करदेवे ॥ २३ ॥ यदि थोड़े ही धन और परिश्रमसे यह कार्य सिद्ध होने वाला हो, तो स्वयं ही इस कार्यको पूरा करदेवे ॥ २४

लोहाध्यक्षस्ताम्रसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटवृत्तकंसताललोहकर्मा-न्तान्कारयेत् ॥ २५ ॥ लोहभाण्डव्यवहारं च ॥ २६ ॥

लोहाध्यक्षको चाहिये कि वह अपने निरीक्षणमें तांबा, सीसा, त्रपु, वैकृन्तक, आरकूट, वृत्त, कंस, ताल तथा अन्य प्रकारके लोहेके सब कार्योंको करावे ॥ २५ ॥ तथा लोहेसे बनने वाले जितने भी पदार्थ हों, उन सबके व्यवहारको भी लोहाध्यक्ष करवावे ॥ २६ ॥

लक्षणाध्यक्षश्चतुर्भागताम्रं रूप्यरूपं तीक्ष्णत्रपुसीसाञ्जनाना-मन्यतमं माषबीजयुक्तं कारयेत् पणमर्धपणं पादमष्टभागमिति ॥ २७ ॥

लक्षणाध्यक्ष अर्थात् टकसालके अध्यक्षको चाहिये कि चांदी तथा तांबे के सिक्कोंको निम्न रीतिसे बनवावे । पहिले चांदी के सिक्केका निरूपण किया जाता है, वह चार प्रकारका होता है, पण अर्धपण पादपण, तथा अष्टभागपण। १६ माष प्रमाणका एक पण होता है, उसका चौथा भाग अर्थात् चार माष उसमें तांबा होना चाहिये, एक माष, लोहा रांग सीसा तथा अंजन इन चारों मेंसे कोई एक चीज होनी चाहिये । बाकी ग्यारह माष चांदी होनी चाहिये । इस परिमाणसे सोलह माषका एक पण तैयार होता है । इसी हिसाबसे अर्ध पण, पादपण, तथा अष्टभागपण तयार करावे ॥ २७ ॥

पादाजीवं ताम्ररूपं माषकमर्धमाषकं काकणीमर्धकाकणी-मिति ॥ २८ ॥ रूपदर्शकः पणयात्रां व्यावहारिकीं कोशप्रवेश्यां च स्थापयेत् ॥ २९ ॥ रूपिकमष्टकं शतम् ॥ ३० ॥

पणके चौथे हिस्सेका व्यवहार करनेके लिये तांबेका एक अलहदा सिक्का बनाया जावे, इसका नाम माषक होता है । इसमें चौथाई हिस्सा चांदी, एक हिस्सा लोहे आदि चारोंमें से किसीका होना चाहिये, तथा ग्यारह माष तांबा होना चाहिये । इस प्रकार चांदीके पणकी तरह, यह तांबेका माषक भी सोलह माष परिमाणका होता है । इसी तरह इसके अर्धमाषकभी तयार करावे । पादमाषक और अष्टभागमाषकके लिये काकणी और अर्धकाकणी नामक सिक्कोंको बनवावे । इस तरह चार चांदीके तथा चार तांबेके सिक्के बनाये जाते हैं ॥२८॥ सिक्कोंकी परीक्षा करने वाला अधिकारी इस बातकी व्यवस्था करदेवे कि कौनसा सिक्का चलने अर्थात् व्यवहार करनेके योग्य है, और कौनसा खजाने में जमा करदेनेके योग्य है ॥ २९ ॥ सौ पणपर, जो आठपण राज्यभाग जनता से लिया जाता है, उसका नाम रूपिक है १० ॥

पञ्चकं शतं व्याजीम् ॥ ३१ ॥ पारीक्षिकमष्टभागिकं शतम् ॥ ३२ ॥ पञ्चविंशतिपणमत्ययं चान्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतृपरीक्षितृभ्यः ॥ ३३ ॥

सौ पणपर, पांचपण राज्यभाग 'व्याजी' कहाता है ॥ ३१ ॥ तथा सौ पणके आठवें हिस्से राज्यभाग को 'पारीक्षिक' कहा जाता है ॥ ३२ ॥ यदि कोई व्यक्ति इस आठवें हिस्से राज्यभागका अपहरण करे, तो उसे २५ पण दण्ड दिया जावे, यदि अधिक अपहरण करे, तो इसी ही हिसाबसे दुगना चौगना दण्ड दिया जावे, परन्तु सिक्कोंको बनाने वाले, खरीदने बेचने वाले, तथा परीक्षा करने वाले अधिकारी पुरुषोंके लिये यह दण्ड नहीं है। उनके लिये, द्रव्यकी सारासारताको देखकर पहिलेही दण्डका विधान कर दिया गया है ॥ ३३ ॥

खन्यध्यक्षः शङ्खवज्रमणिमुक्ताप्रवालक्षारकर्मान्तान्कारयेत् ॥ ३४ ॥ पणनव्यवहारं च ॥ ३५ ॥

आकराध्यक्ष (खानोंके अध्यक्ष) को चाहिये कि वह शंख, वज्र, मणि, मुक्ता, प्रवाल तथा सब तरहके क्षारों (यवक्षार आदि) की उत्पत्तिका प्रबन्ध करे ॥३४॥ तथा शंख आदिके क्रय विक्रय व्यवहारका भी प्रबन्ध करे ॥३५॥

लवणाध्यक्षः पाकमुक्तं लवणभागं प्रक्रयं च यथाकालं संगृह्णीयात् ॥ ३६ ॥ विक्रयाच्च मूल्यं रूपं व्याजीम् ॥ ३७ ॥

लवणाध्यक्षका कार्य है, कि वह तैयार किये हुए लवणको (अर्थात् खानमेंसे निकालकर बिक्री आदिके लिये तैयार हुए २ लवणको) और किसी खानसे नियमित मात्रामें शर्तके तौरपर प्राप्त होने वाले लवणको ठीक २ समयपर संगृहीत करले ॥३६॥ और व्यापारियोंके द्वारा उसके विक्रयका प्रबन्ध करे, विक्रयसे जो मूल्य प्राप्त होवे, उसे, तथा रूप और व्याजीको भी संगृहीत करे ॥ ३७ ॥

आगन्तुलवणं षड्भागं दद्यात् ॥ ३८ ॥ दत्तभागविभागस्य विक्रयः पञ्चकं शतं व्याजीं रूपं रूपिकं च ॥ ३९ ॥

परदेशसे आये हुए नमकपर, उसको बेचने वाला पुरुष, उसके मूल्यका छठा हिस्सा, राजाको करके तौरपर देवे। अर्थात् छठा हिस्सा राजाको टैक्स देवे ॥ ३८ ॥ जो बेचने वाला पुरुष, राजाके लिये छठा भाग देदेता है, तथा तोल का भी टैक्स देदेता है, वही अपने मालको बेच सकता है। और उस पुरुषको, प्रतिशत पांच, व्याजी, रूप (पारीक्षिक=सौका आठवां हिस्सा), और रूपिक भी राजाके लिये देना चाहिये ॥ ३९ ॥

क्रेता शुल्कं राजपण्याच्छेदानुरूपं च वैधरणं दद्यात् ॥४०॥ अन्यत्र क्रेता षट्छतमत्ययं च ॥ ४१ ॥

उस मालको खरीदने वाला व्यापारी नियमानुसार शुल्क (टैक्स) देवे; तथा राजाके बाज़ारमें बेचे जानेके कारण, उसकी छीजनके अनुसार ही उसकी पूर्त्ति करे। तात्पर्य यह है कि बाज़ारका टैक्स भी अलहदा देवे ॥ ४० ॥ राजकीय बाज़ारके रहते हुए जो व्यापारी, नमकको किसी अन्य स्थानमें खरीदता है, उसमें प्रतिशत छः पण लिया जावे; तथा इससे अतिरिक्त दण्ड और दिया जावे ॥ ४१ ॥

विलवणमुत्तमं दण्डं दद्यात् ॥ ४२ ॥ अनिसृष्टोपजीवी च ॥ ४३ ॥ अन्यत्र वानप्रस्थेभ्यः ॥ ४४ ॥

घटिया या मिलावटी नमक बेचने वाले व्यापारीको उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ४२ ॥ तथा जो पुरुष राजाकी अनुमति लिये बिना ही, नमकको उत्पन्न करता, तथा उसका व्यापार करता है, उसको भी उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ४३ ॥ परन्तु यह नियम वानप्रस्थ अर्थात् वनमें रहने वाले आश्रमी पुरुषोंके लिये नहीं है, अर्थात् राजाकी बिना अनुमतिके भी वे स्वयं नमकको लेकर उसका उपयोग करसकते हैं ॥ ४४ ॥

श्रोत्रियास्तपस्विनो विष्टयश्च भक्तलवणं हरेयुः ॥ ४५ ॥ अतोऽन्यो लवणक्षारवर्गः शुल्कं दद्यात् ॥ ४६ ॥

श्रोत्रिय (वेदोंका अध्ययन करने वाले), तपस्वी, तथा बलात्कार कार्य करने वाले (अर्थात् अपनी इच्छा न होनेपर भी राजाकी इच्छानुसार कार्य करने वाले=बेगारी) पुरुष, बिना शुल्कके भी, अपने उपयोग मात्रके लिये नमक लेजा सकते हैं ॥ ४५ ॥ इससे अन्य, लवण और क्षार वर्गका उपयोग करने वाले पुरुष, लवणाध्यक्ष या कोष्ठागाराध्यक्षको शुल्क देवें ॥ ४६ ॥

एवं मूल्यं विभागं च व्याजीं परिघमत्ययम् ।
शुल्कं वैधरणं दण्डं रूपं रूपिकमेव च ॥ ४७ ॥

इसप्रकार मूल्य, विभाग, व्याजी, परिघ (पारीक्षिक), अत्यय, शुल्क, वैधरण, दण्ड, रूप (चांदी तथा तांबेके सिक्के), और रूपिक ॥ ४७ ॥

खनिभ्यो द्वादशविधं धातुं पण्यं च संहरेत् ।
एवं सर्वेषु पण्येषु ४८

तथा खानोंसे निकाले हुए धातु और मिश्र २ प्रकारके अन्य विक्रय पदार्थोंका संग्रह करे। इसप्रकार सबही व्यापारी स्थानोंमें प्रधान प्रधान विक्रेय वस्तुओंका संग्रह अवश्य स्थापित करें ॥ ४८ ॥

आकरप्रभवः कोशः कोशाद्दण्डः प्रजायते।

पृथिवी कोशदण्डाभ्यां प्राप्यते कोशभूषणा ॥ ४९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे आकरकर्मान्तप्रवर्तनं द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

आदितः त्रयस्त्रिंशः ॥३३॥

कोशकी उन्नति खानोंपर निर्भर है, कोशके उन्नत होनेपर सेना भी तैयार कीजासकती है, कोशसे भूषित पृथिवी, कोश और दण्ड (सेना) के द्वाराही प्राप्त कीजासकती है ॥ ४९ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें बारहवां अध्याय समाप्त।

तेरहवां अध्याय

३१ प्रकरण

अक्षशालामें सुवर्णाध्यक्ष का कार्य

खानसे निकाले हुए सोने चांदी आदि धातुओंको जिस स्थानमें संशोधन करके तैयार किया जाय, उसे 'अक्षशाला' कहते हैं। इस कार्यका निरीक्षण करनेवाला जो अधिकारी पुरुष होता है, उसका नाम सुवर्णाध्यक्ष है। उसके कार्यों का इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा। जिसमें सुवर्णकी जाति, वर्ण, गुण, शोधन, दोषोंकी परीक्षा, अर्जन और रक्षाकरना आदि सबहीका समावेश है।

सुवर्णाध्यक्षः सुवर्णरजतकर्मान्तानामसंबन्धावेशनचतुःशालामेकद्वारामक्षशालां कारयेत् ॥ १ ॥ विशिखामध्ये सौवर्णिकं शिल्पवन्तमभिजातं प्रात्ययिकं च स्थापयेत् ॥ २ ॥

सुवर्णाध्यक्षको चाहिये, कि वह सोने चांदीके हरएक कामको करवानेके लिये, एकही प्रधान द्वारसे युक्त अक्षशालाका निर्माण करवावे। इसमें चारों ओर बड़े २ चार मकान हों, जिनका आपसमें एक दूसरेके साथ कोई सम्बन्ध हो ॥ १ ॥ विशिखामें (सुवर्णका व्यापार करनेवाले व्यापारियोंके बाजारका नाम 'विशिखा' है), बड़े कारीगर अर्थात् चतुर, कुलीन तथा विश्वस्त सौवर्णिक (सुवर्णका व्यापार करनेवाले पुरुष) की स्थापना करे। (सौवर्णिकके

कार्योंका निरूपण अगले प्रकरणमें किया जायगा। यह सुवर्णाध्यक्षके अधीन रहकरही अपना कार्य करता है, इसी बातको यहां बताया गया है) ॥ २ ॥

जाम्बूनदं शातकुम्भं हाटकं वैणवं शृङ्गशुक्तिजं, जातरूपं रसविद्धमाकरोद्गतं च सुवर्णम् ॥ ३ ॥

पांच प्रकारका, पांच वर्णोंसे युक्त सोना होता है; उसके तीन उत्पत्ति स्थान हैं, अर्थात् सुवर्ण तीन तरहसे उत्पन्न होसकता है। जाम्बूनद (मेरू पर्वतसे निकलनेवाली जम्बू नदीसे उत्पन्न होनेवाला सुवर्ण जामुन फलके रसके समान वर्णवाला होता है), शातकुम्भ (शतकुम्भ नामक पर्वतमें उत्पन्न होनेवाला सुवर्ण, कमलके रजके समान वर्णसे युक्त होता है), हाटक (सोनेकी खानसे उत्पन्न हुआ २ सोना, कांटेदार सेवतीके फूलके समान रंगवाला होता है), वैणव (वेणु पर्वतपर उत्पन्न होनेवाले सुवर्णका रंग कर्णिकार वृक्षके फूलके समान होता है), और शृङ्गिशुक्तिज (अर्थात् स्वर्ण भूमिसे उत्पन्न होनेवाला, मनसिलके समान रंगवाला होता है), यह वर्ण भेदसे पांच प्रकारका सोना होता है। इसके तीन उत्पत्ति प्रकार हैं: जातरूप (स्वयं शुद्ध, सुवर्ण रूपमें उत्पन्न हुआ २), रसविद्ध (रसोंके योगसे सोना बनाया हुआ), तथा आकरोद्गत (अशुद्ध रूपमें खानोंसे निकलनेवाला) ॥ ३ ॥

किञ्जल्कवर्णं मृदु स्निग्धमनादि भ्राजिष्णु च श्रेष्ठम् ॥ ४ ॥ रक्तपीतकं मध्यमम् ॥ ५ ॥ रक्तमवरम् ॥ ६ ॥

कमलके रजके समान वर्णवाला, मृदु, स्निग्ध, शब्द रहित, (किसी २ पुस्तकमें 'अनादि' शब्दके स्थानपर 'अनुनादि' पाठ है, उसका अर्थ 'लम्बा शब्द करनेवाला, करना चाहिये) और चमकदार सोना सबमें श्रेष्ठ समझा जाता है ॥ ४ ॥ लाल और पीले मिले हुए रंगका सोना मध्यम, ॥ ५ ॥ तथा लाल रंगका अवर अर्थात् निकृष्ट समझा जाता है ॥ ६ ॥

श्रेष्ठानां पाण्डु श्वेतं चाप्रासकम् ॥ ७ ॥ तद्येनाप्रासकं तच्चतुर्गुणेन सीसेन शोधयेत् ॥ ८ ॥

उत्तम जातिके सुवर्णोंमेंसे, जो सोना कुछ पीलासा अर्थात् भुरभुरा और सफेद रहगया हो वह 'अप्रासक' कहाता है। तात्पर्य यह है, कि संशोधन आदिके समयमें वह ठीक २ शुद्ध नहीं होता, उसमें कुछ मल आदि मिले रहते हैं, इसलिये उसे अपनी ठीक हालत तक प्राप्त न होनेके कारण अप्रासक कहाजाता है ॥ ७ ॥ उस सोनेमें जितना मैल मिलाहुआ हो, उससे चौगुना सीसा डालकर उसे शुद्ध करना चाहिये ॥ ८ ॥

सीसान्वयन भिद्यमानं शुष्कपटलैर्ध्मापयेत् ॥ ९ ॥ रूक्षत्वाद्भिद्यमानं तैलगोमये निषेचयेत् ॥ १० ॥

यदि वह सीसाके मेलसे फटने लगे, तो जंगली कंडोंकी आगमें उसे तपाया जावे ॥ ९ ॥ यदि शोधन कालमें सुवर्णके अन्दर कुछ रूक्षता अर्थात् खरखरापन आजानेसेही वह फटना हो, तो तेल और गोबर दोनोंको मिलाकर उसमें भावना देवे। अथवा जबतक ठीक न होजाय, तबतक बार २ इन दोनों चीजोंमें सोनेको भिगो २ कर निकालता जावे ॥ १० ॥

आकरोद्गतं सीसान्वयेन भिद्यमानं पाकपत्त्राणि कृत्वा गण्डिकासु कुट्टयेत् ॥ ११ ॥ कन्दलीवज्रकन्दकल्के वा निषेचयेत् ॥ १२ ॥

खानसे निकालेहुए सोनेकोभी सीसा मिलाकर शुद्ध किया जावे; यदि सीसेके मेलमें वह फटने लगे, तो पके हुए पत्ते उसके साथ मिलाकर किसी लकड़ीके तख्तेपर रखकर उसे खूब कूटे ॥ ११ ॥ अथवा कन्दली लता, थीबेर, और कमलकी जड़का क्राथ बनाकर उसमें उस सोनेको खूब भिगोवे, जबतक कि उसका फटना बिल्कुल दूर न होजाय ॥ १२ ॥

तुत्थोद्गतं गौडिकं काम्बुकं चाक्रवालिकं च रूप्यम् ॥१३॥ श्वेतं स्निग्धं मृदु च श्रेष्ठम् ॥ १४ ॥

चांदी चार प्रकारकी होती है,—तुत्थोद्गत (तुत्थ नामक पर्वतपर उत्पन्न होने वाली, इसका रंग चमेलीके फूलके समान होता है), गौडिक (आसाम देशमें उत्पन्न होने वाली, इसका रंग तगरके फूलके समान होता है), काम्बुक (काम्बु नामक पर्वतपर होने वाली, चांदीका), तथा चाक्रवालिक (अर्थात् चक्रवाल खानसे पैदा होने वाली चांदीका रंग कुन्दके फूलके समान सफेद होता है। यह कुन्दका फूल माघके महीनेमें खिलता है) ॥ १३ ॥ सफेद, स्निग्ध तथा मृदु चांदी सबसे उत्तम समझी जाती है ॥ १४ ॥

विपर्यये स्फोटनं च दुष्टम् ॥ १५ ॥ तत्सीसचतुर्भागेन शोधयेत् ॥ १६ ॥ उद्गतचूलिकमच्छं भ्राजिष्णु दधिवर्णं च शुद्धम् ॥ १७ ॥

इन गुणोंसे विपरीत अर्थात् कालापन, रूखाई, तथा खरखरापन, और फटे हुएसे होना, ये चांदीके दोष होते हैं ॥ १५ ॥ दूषित चांदीको, उससे चौथाई सीसा डालकर शुद्ध करे ॥ १६ ॥ जिसमें बुदबुदेसे उठे हुए हों, तथा

जो स्वच्छ, चमकदार और दहीके समान सफेद हो, वह चांदी शुद्ध होती है ॥ १७ ॥

शुद्धस्यैको हारिद्रस्य सुवर्णो वर्णकः ॥ १८ ॥ ततः शुल्बकाकण्युत्तरापसारिता आचतुःसीमान्तादिति षोडशवर्णकाः ॥१९॥

हलदीके समान स्वच्छ रंग वाले, शुद्ध सुवर्णका एक सोलह माषको वर्णक होता है; यह शुद्ध वर्णक कहा जाता है ॥ १८ ॥ फिर उसमें एक तांबेकी काकणी (माषका चौथा हिस्सा) मिलादी जावे, तथा उसकी बराबरका सोनेका हिस्सा उसमेंसे कम करदिया जावे, इसीतरह तांबेका हिस्सा मिलाने और सोनेका हिस्सा कम करनेसे सोलह वर्णक बन जाते हैं। क्योंकि यह एक एक काकणीका मेल चार माषतक ही होना है, और एक काकणी, एक माषका चौथा हिस्सा होता है, इसतरह चार माषमें सोलह काकणी होनेसे सोलह वर्णक बन जाते हैं। ये सोलहों मिश्रवर्णक कहाते हैं, एक पहिला शुद्ध वर्णक इनमें मिलानेसे सब वर्णक मिलकर सत्रह होजाते हैं ॥ १९ ॥

सुवर्णं पूर्वं निकष्य पश्चाद्वर्णिकां निकषयेत् ॥ २० ॥ समरागलेखमनिम्नोन्नते देशे निकषितम् ॥ २१ ॥ परिमृदितं परिलीढं नखान्तराद्वा गैरिकेणावचूर्णितमुपधिं विद्यात् ॥ २२ ॥

वर्णककी परीक्षा करनेके लिये, पहिले सुवर्णकी परीक्षा करे, अर्थात् उसे कसौटीपर घिसकर जांचे कि यह ठीक है, पश्चात् वर्णिकाको कसौटीपर घिसे ॥ २० ॥ घिसनेपर यदि समानही वर्ण और रेखा होवे, तथा घिसनेके स्थान ऊँचे नीचे नहों, तो वह कसौटीपरका परखना न्याय्य अर्थात् ठीक समझा जाता है ॥ २१ ॥ यदि बेचने वाला वर्णककी उत्कर्षता बतलानेके लिये कसौटीको उसपर ज़ोरसे रगड़ देवे, या ख़रीदने वाला, उसकी निकृष्टता बतलानेके विचारसे कसौटीको बहुत धीरेसे रगड़े; अथवा नाखूनके बीचमें कोई दूसरी गैरिक आदि पीतधातु रखकर उससे सोनेके साथ २ कसौटीपर रेखा करदे; तो इसप्रकार यह तीन प्रकारका कपट पूर्ण घिसना कहा जाता है। अर्थात् इसतरह कसौटीपर परखना कपट पूर्ण होनेसे उचित नहीं होता ॥ २२ ॥

जातिहिङ्गुलकेन पुष्पकासीसेन वा गोमूत्रभावितेन दिग्धेनाग्रहस्तेन संस्पृष्टं सुवर्णं श्वेतीभवति ॥ २३ ॥ सकेसरस्निग्धो मृदुर्भ्राजिष्णुश्च निकषरागः श्रेष्ठः ॥ २४ ॥

गोमूत्रमें भावना दिये हुए एक विशेष प्रकारके सिंगरफके साथ, तथा कैसे २ पीले रंगके हस्ताङ्कके साथ लिपटे हुए, इनके अग्रभागसे सीसेसे छुआ

करदेनपर वह सोना सफेद रंगकासा होजाता है अर्थात् उसका चमकता हुआ रंग कुछ फीकासा पड़ जाता है। सोना खरीदने वाले व्यापारी प्रायः ऐसा करते हैं ॥ २३ ॥ बहुतसी केसरके समान रंग वाली, स्निग्ध (चिकनी), मृदु तथा चमकदार, कसौटीपर खिंची हुई रेखा सबसे उत्तम समझी जाती है। अर्थात् कसौटीकी रेखाका यदि ऐसा ऐसा रंग हो तो वह श्रेष्ठ समझनी चाहिये ॥ २४ ॥

कालिङ्गकस्तापी पाषाणो वा मुद्गवर्णो निकषः श्रेष्ठः ॥२५॥ समरागी विक्रयक्रयहितः ॥ २६ ॥

कलिङ्ग देशमें महेन्द्र पर्वतसे उत्पन्न होने वाली, अथवा तापी नामक नदीसे उत्पन्न होने वाली, मूंगके समान वर्णसे युक्त, कसौटी सबसे उत्तम होती है ॥ २५ ॥ सुवर्णके ठीक २ वर्णको ग्रहण करने वाली कसौटी, क्रय तथा विक्रय करने वाले दोनों ही व्यापारियोंके लिये अनुकूल होती है ॥ २६ ॥

हस्तिच्छविकः सहरितः प्रतिरागी विक्रयहितः ॥ २७ ॥ स्थिरः परुषो विषमवर्णश्चाप्रतिरागी क्रयहितः ॥ २८ ॥

हाथीके चमड़ेके समान खरखरी तथा सूखी हुईसी, कुछ २ हरे रंगसे युक्त, मामूली सोनेके रंगको भी बढ़ाकर दिखलाने वाली, कसौटी सुवर्ण बेचने वाले व्यापारियोंके लिये हितकर होती है ॥ २७ ॥ दृढ, परुष अर्थात् कठोर या खरखरी, विषमवर्ण अर्थात् तरह २ के रंगोंसे युक्त, उत्कृष्ट सुवर्णके भी उसके असली रंगोंको न दिखाने वाली कसौटी सुवर्ण आदि खरीदने वाले व्यापारियोंके लिये हितकर होती है ॥ २८ ॥

भेदश्चिक्कणः समवर्णः श्लक्ष्णो मृदुर्भ्राजिष्णुश्च श्रेष्ठः ॥२९॥ तापे बहिरन्तरश्च समः किञ्जल्कवर्णः कुरण्डकपुष्पवर्णो वा श्रेष्ठः ॥ ३० ॥

छेद अर्थात् सोनेका कटा हुआ छोटासा टुकड़ा, चिकना, अन्दर बाहरसे एकसे रंग वाला, स्निग्ध मृदु तथा चमकदार हो, तो वह सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है ॥ २९ ॥ उस सोनेके टुकड़े को अग्निमें तपाये जानेपर यदि वह बाहर और अन्दरसे एकसे ही रंगवाला रहे, अथवा कमल रजके समान रंगवाला, या कुरण्डक के फूलके समान रंग वाला हो, तो वह श्रेष्ठ समझा जाता है ॥ ३० ॥

श्यावो नीलश्चाप्राप्तकः ॥ ३१ ॥ तुलाप्रतिमानं पौतवाध्यक्षे वक्ष्यामः ॥ ३२ ॥ तेनोपदेशेन रूप्यसुवर्णं दद्यादाददीत च ॥ ३३ ॥

यदि तपाने पर उसके रंगमें कुछ फर्क पड़ जावे, वह कुछ २ बन्दरकेसे रंगका या नीलासा होजावे, तो समझना चाहिये कि वह सोना अप्रासक अशुद्ध या खोटा है ॥३१॥ सोना चांदी आदि तोलनेके प्रकारका निरूपण पौतवाध्यक्ष नामक प्रकरणमें किया जायगा ॥ ३२ ॥ उस प्रकरणमें बतलाये हुए तोलके अनुसार ही सुवर्ण लेना और देना चाहिये ॥ ३३ ॥

अक्षशालामनायुक्तो नोपगच्छेत् ॥ ३४ ॥ अभिगच्छन्नुच्छेद्यः ॥ ३५ ॥ आयुक्तो वा सरूप्यसुवर्णस्तेनैव जीयेत ॥३६॥

अक्षशालामें वह ही पुरुष जावें, जो वहां कार्य करते हैं, बाहरका अन्य कोई पुरुष वहां न जाने पाये। (यह सब सुवर्ण आदिके रक्षा करनेका विधान है) ॥ ३४ ॥ यदि निषेध करनेपर भी कोई पुरुष जाता हुआ पकड़ा जावे, तो उसका सर्वस्व अपहरण कर लिया जावे ॥ ३५ ॥ अक्षशालामें कार्य करने वाला पुरुषभी यदि अपने साथ सोना चांदी लेकर जावे, तो उसके अनुसारही उसे दण्डित किया जावे ॥ ३६ ॥

विचितवस्त्रहस्तगुह्याः काञ्चनपृषतत्वष्टृतपनीयकारवो ध्मायकचरकपांसुधावकाः प्रविशेयुः निष्कसेयुश्च ॥ ३७ ॥

रस आदिके योगसे सुवर्ण बनाने वाले शिल्पी, छोटी २ गोली आदि बनाने वाले, बड़े २ पात्र आदि बनाने वाले कारीगर, तथा तरह २ के आभूषण आदि बनाने वाले शिल्पी, और धौंकनी देने वाले, झाडू आदि लगा कर साफ करने वाले तथा अन्य परिचारक जनभी; अपने पहने हुए वस्त्र, हाथ तथा गुह्य स्थानों (जेब आदि, अथवा धोती आदि) की जांच कराकर ही अक्षशाला में भीतर प्रवेश करें और बाहर निकलें ॥ ३७ ॥

सर्वं चैषामुपकरणमानिष्ठिताश्च प्रयोगास्तत्रैवावतिष्ठेरन् ॥३८॥ गृहीतं सुवर्णं धृतं च प्रयोगं करणमध्ये दद्यात् ॥ ३९ ॥ सायं प्रातश्च लक्षितं कर्तृकारयितृमुद्राभ्यां निदध्यात् ॥ ४० ॥

इन शिल्पियोंके उपकरण अर्थात् काम करनेके औजार आदि, तथा आधे बनाये हुए अन्य आभूषण आदि कार्य, अक्षशालामें ही रक्खे रहें, उन्हें वहांसे बाहर कदापि न लेजाया जावे ॥ ३८ ॥ भाण्डागारसे तोलकर लिया हुआ सोना तथा उससे बनाई हुई जो चीज होवे, उसे कार्य करनेके अन्तमें, भंडार के राजकीय लेखक को उसी प्रकार ठीक २ तोलकर सुपुर्द करदेवे, और उसे सब काम को राजकीय पुस्तकमें लिखवा देवे, यह सब काम सुवर्णाध्यक्ष को अवश्य करना चाहिये ॥ ३९ ॥ तथा और प्रात काल प्रति दिनके

कार्यकी समाप्ति तथा आरम्भमें, काम करने वाले सौवर्णिक, और कराने वाले सुवर्णाध्यक्ष की मुद्रा (मुहर=सील) से चिन्हित करके, भंडारका लेखक, उस सुवर्णको भण्डारमें रक्खे तथा देवे ॥ ४० ॥

क्षेपणो गुणः क्षुद्रकमिति कर्माणि ॥ ४१ ॥ क्षेपणः काचार्पणादीनि ॥ ४२ ॥ गुणः सूत्रवानादीनि ॥ ४३ ॥ घनं सुषिरं पृषतादियुक्तं क्षुद्रकमिति ॥ ४४ ॥

कर्म तीन प्रकारके होते हैं, क्षेपण, गुण तथा क्षुद्रक। (यहांपर यह अक्षशालाके कुछ आभूषण सम्बन्धी मुख्य कार्योंका ही कथन किया गया है) ॥ ४१ ॥ काचार्पण अर्थात् मणि आदिका जोड़ना (आभूषणों आदिपर जड़ाई का काम करना) ' क्षेपण ' कहाता है ॥ ४२ ॥ सोनेके बनाये हुए बारीक सूत्र आदि का ग्रथन करना ' गुण ' कहाता है ॥ ४३ ॥ ठोस तथा पोला, और छोटी २ बूंदों या गोलियोंसे युक्त आभूषण आदिका तैयार करना ' क्षुद्रक ' कर्म कहा जाता है ॥ ४४ ॥

अर्पयेत्काचकर्मणः पञ्चभागं काञ्चनं दशभागं कटुमानम् ॥ ४५ ॥ ताम्रपादयुक्तं रूप्यं रूप्यपादयुक्तं वा सुवर्णं संस्कृतं तस्माद्रक्षेत् ॥ ४६ ॥

काचकर्म अर्थात् मणिके जोड़ने की विधिका निरूपण किया जाता है:—मणिके पांचवें हिस्से नीचेके भागको, आधारभूत सुवर्णमें प्रवेश करदे। मणि को दृढ़ करनेके लिये उसके चारों ओर सोनेकी जो एक पट्टीसी लगाई जाती है, उस को कटुमान कहते हैं। मणिका जितना भाग सुवर्णके भीतर प्रवेश कर दिया गया है, उसमें आधा भाग अर्थात् दसवां हिस्सा कटुमान का होना चाहिये ॥ ४५ ॥ सुवर्णकार, संस्कृत किये जाते हुए सोने या चांदीमें कुछ मिलावट कर सकते हैं। चांदीके स्थानपर तांबेसे मिली हुई चांदी का, तथा सुवर्णके स्थानपर चांदीसे मिले हुए सुवर्णका वे लोग उपयोग करके उतने अंशका स्वयं अपहरण करसकते हैं, और वह मिश्रित सोना चांदी, शुद्ध सोना चांदीके समान ही प्रतीत होता है। इसलिये अध्यक्षको चाहिये कि वह इसप्रकारकी मिलावट की सदा निगरानी रक्खे, और यत्नपूर्वक असली चीजों की रक्षा करे ॥ ४६ ॥

पृषतकाचकर्मणस्त्रयो हि भागाः परिभाण्डं द्वौ वास्तुकम् ॥ ४७ ॥ चत्वारो वा वास्तुकं त्रयः परिभाण्डम् ॥ ४८ ॥

इसके पहिले शुद्ध काचकर्मका विधान करके, अब मिश्र काचकर्मकी विधि बताते हैं:—पृषत काचकर्म अर्थात् गुटिका आदिसे मिश्रत काचकर्मके किये जानेपर, उसके लिये जितना सुवर्ण लिया जावे, उसके पांच विभाग किये जावें, जिनमेंसे तीन भाग परिभाण्ड अर्थात् पद्म स्वस्तिक आदिका आकार बनानेके लिये होते हैं, और दो भाग उसका आधारपीठ अर्थात् उस बने हुए आकारको टिकानेके लिये होते हैं ॥ ४७ ॥ यदि मणि बड़ी २ होवें, तो उस सुवर्णके सात भाग किये जावें, जिनमेंसे चार भाग वास्तुक (आधारपीठ), और तीन भाग परिभाण्डके लिये काममें लाये जावें ॥ ४८ ॥

त्वष्टृकर्मणः शुल्बभाण्डं समसुवर्णेन संयूहयेत् ॥ ४९ ॥ रूप्यभाण्डं घनं घनसुषिरं वा सुवर्णार्धेनावलेपयेत् ॥ ५० ॥ चतुर्भागसुवर्णं वा वालुकाहिंगुलकस्य रसेन चूर्णेन वा वासयेत् ॥ ५१ ॥

अब त्वष्टृकर्म अर्थात् तांबे चांदी आदिके बनाये जाने वाले घन पत्र आदि कार्योंका प्रकार बताया जाता है:—तांबेके पात्रके साथ समान भाग सुवर्णका पत्र चढ़ावे। अर्थात् जितने तांबेका पात्र बना हुआ हो, उसके ऊपर उतने ही सोनेका पत्र चढ़वा देवे ॥ ४९ ॥ चांदीके पात्रपर (अर्थात् आभूषण आदिपर), चाहे वह ठोस हो या पोला, चांदीके भारसे आधे सुवर्णका उसपर पानी चढ़वादे। यदि पचास पल चांदीका आभूषण बना हुआ हो, तो उसपर पच्चीस पल सोनेका पत्र या पानी चढ़वादे ॥ ५० ॥ अथवा चौथा हिस्सा सोना लेकर, उसे बालू और शिंगरफके चूर्ण तथा रसके साथ मिलाकर, उसकी अग्निपर पिघलाकर बसा देवे, अर्थात् चांदीके उस आभूषण आदिपर पानीकी तरह चढ़ादेवे। इसप्रकार यहांतक बराबर आधे तथा चौथाई सुवर्णके पत्र आदिके द्वारा तीन प्रकारके त्वष्टृकर्मका निरूपण किया गया ॥ ५१ ॥

तपनीयं ज्येष्ठं सुवर्णं सुरागं समसीसातिक्रान्तं पाकपत्रपक्वं सैन्धविकयोज्ज्वालितं नीलपीतश्वेतहरितशुकपोतवर्णानां प्रकृतिर्भवति ॥ ५२ ॥

अब तपनीय कर्मका निरूपण करते हैं:—आभूषण आदिके लिये तैयार किया हुआ, कमलरज आदिके समान स्वच्छ वर्ण वाला, तथा स्निग्ध और चमकदार सुवर्ण ज्येष्ठ अर्थात् उत्तम समझा जाता है। वह सोना शुद्ध होनेके कारण, नील पीत, श्वेत हरित तथा शुकपोत (तोतेका बच्चा) के वर्णके आभूषण आदिका प्रकृति अर्थात् कारण होता है जो सुवर्ण सुराग हो, उसे [illegible]

बरका सीसा डालकर शुद्ध किया जावे; अथवा उसके पतले २ पत्रसे बनाकर, अरणे कंडोंकी आगमें तपाकर शुद्ध किया जावे। या सुराष्ट्र देश (सिन्धुदेश) की मट्टीके साथ रगड़कर साफ़ किया जावे। इसप्रकार शुद्ध करलेनेपर ही वह नील पीत आदि आभूषणोंका प्रकृति अर्थात् कारण होसकता है ॥ ५२ ॥

तीक्ष्णं चास्य मयूरग्रीवाभं श्वेतभङ्गं चिमिचिमायितं पीतचूर्णितं काकणिकः सुवर्णरागः ॥ ५३ ॥

इस सुवर्णके साथ फौलादी लोहा भी, नील पीत आदिका कारण होता है। वह लोहा मोर की गर्दनके समान आभा वाला होना चाहिये। तथा काटनेपर सफ़ेद निकले, और अत्यधिक चमकने वाला हो, उसे गरम करके चूर्ण बनाकर एक काकणी परिमाण (मापका चौथा हिस्सा) सुवर्णमें मिलादेवे, यह सुवर्णके रंगको अच्छी तरह चमका देता है ॥ ५३ ॥

तारमुपशुद्धं वास्थितुत्थे चतुः समसीसे चतुः शुष्कतुत्थे चतुः कपाले त्रिर्गोमये द्विरेवं सप्तदशतुत्थातिक्रान्तं सैन्धविकयोज्ज्वालितम् ॥ ५४ ॥

अथवा लोहेके स्थानपर अत्यन्त शुद्ध चांदीको उसमें मिलावे, वहभी इस प्रकार नील आदिकी प्रकृति हो जाती है। हड्डीके चूरेके साथ मिली हुई मट्टीसे बनी हुई मूषा (सोना आदि पिघलानेका पात्र विशेष) में चार बार; मट्टीके बराबर मिले हुए सीसेके चूरेकी बनी हुई मूषामें चार बार, कटुशर्कराकी मूषामें चार बार; शुद्ध मट्टी की मूषामें तीन बार, गोबरमें दो बार, इस तरह कुल सत्रह बार मूषाओंमें आवर्त्तित करके और फिर खारी सुराष्ट्र देशकी मट्टीसे रगड़कर उज्वलवर्ण किया हुआ, तथा संस्कृत किया हुआ रूप्यधातु शुद्ध हो जाता है ॥ ५४ ॥

एतस्मात्काकण्युत्तरापसारिता, आद्विमाषादिति सुवर्णे देयं पश्चाद्रागयोगः, श्वेततारं भवति ॥ ५५ ॥

इसमें से काकणी परिमाण (मापका चौथा हिस्सा) चांदी लेकर सोने में मिलादी जावे, तथा उसमें से इतना ही सोना निकाल दिया जावे। इस तरह क्रमपूर्वक दो माषतक चांदी मिलाई जासकती है, तथा उतना ही सोना उसमें से कम किया जासकता है। इस प्रकार सुवर्णमें चांदीका प्रक्षेप करनेसे तथा पीछेसे रंगको चमकाने वाली चीजोंका योग करनेसे वह सुवर्ण, चांदीके समान अत्यधिक चमक वाला होजाता है॥ ५५

त्रयोऽशास्तपनीयस्य द्वात्रिंशद्भागश्वेततारमूर्छितं तत् श्वेत-लोहितकं भवति ॥ ५६ ॥ ताम्रं पीतकं करोति ॥ ५७ ॥

बत्तीस विभागोंमें विभक्त किये हुए साधारण सोनेमें से तीन हिस्से निकालकर, उनकी जगह उक्त प्रकारसे शुद्ध किये हुए उतने ही सुवर्ण को मिला दिया जावे; फिर उसमें बत्तीसवां हिस्सा शुद्ध की हुई चांदी मिलाकर भावना दी जावे, तो वह सुवर्ण सफ़ेद और लाल मिले हुए रंगका होजाता है। (किसी २ व्याख्याकारने इसका अर्थ इस प्रकार किया है:—बत्तीस भागोंमें से तीन भाग शुद्ध सुवर्णके और बाकी चांदीके होने चाहियें, इनको मिलाकर आवर्त्तन करनेपर, उसका रंग सफ़ेद और लाल मिला हुआ हो जाता है) ॥ ५६ ॥ यदि पूर्वोक्त रीतिसे ही चांदीके स्थानपर तांबेको सोनेमें मिला दिया जावे, तो वह उसके रंगको पीला बना देता है। (किसी २ व्याख्याकारने इस सूत्रका अर्थ इस प्रकार किया है:—बत्तीस भाग चांदीके स्थानपर तांबे का उपयोग करके, अर्थात् चांदीके बजाय तांबा बत्तीस भाग लेकर उसमें तीन भाग शुद्ध सोना मिला दिया जावे, तो उसका रंग पीला होजाता है ॥५७॥

तपनीयमुज्ज्वाल्य रागत्रिभागं दद्यात् ॥ ५८ ॥ पीतरागं भवति ॥ ५९ ॥

साधारण सोनेको, सुराष्ट्र देशकी खारी मिट्टीके द्वारा चमकाकर, उसमें शुद्ध हुए २ सोनेका तीसरा हिस्सा मिलादेवे ॥ ५८ ॥ ऐसा करनेसे उसका रंग पीला और लाल मिला हुआ सा हो जाता है। (किसी २ व्याख्याकार ने इन दो सूत्रोंका अर्थ इस प्रकार किया है:—शुद्ध हुए २ सुवर्ण को खारी सैन्धा मट्टीसे चमकाकर, उसमें तीसरा हिस्सा तांबा मिला दिया जावे, ऐसा करनेसे उसका रंग लाल पीला होजाता है) ॥ ५९ ॥

श्वेततारभागौ द्वावेकस्तपनीयस्य मुद्गवर्णं करोति ॥ ६० ॥

शुद्ध चांदीके दो भाग और एक भाग सोनेका मिलाकर भावना देनेसे उसका रंग मूंगके रंगके समान होजाता है ॥ ६० ॥

कालायसस्यार्धभागाभ्यक्तं कृष्णं भवति ॥ ६१ ॥ प्रति-लेपिना रसेन द्विगुणाभ्यक्तं तपनीयं शुकपत्त्रवर्णं भवति ॥६२॥ तस्यारम्भे रागविशेषेषु प्रतिवर्णिकां गृह्णीयात् ॥ ६३ ॥

लोहेके आधे भागसे मिला हुआ (रंग बदलनेके लिये, जितना सोना हो उसका तीसरा हिस्सा लोहा पीछे कहा गया है, उसका आधा अर्थात् छटा हिस्सा लोहका मिला हुआ सोना काळस रंगका होजाता है ॥ ६१ ॥ पिघले

हुए लोहे तथा शुद्ध चांदीसे मिला हुआ दूगना सोना, तोतेके पंखोंके समान वर्ण वाला होजाता है ॥ ६२ ॥ पहिले कहे हुए नील पीत आदिके आरम्भोंमें, विशेष २ रंगोंके विषयमें, न्यूनाधिकताके भेदको जाननेके लिये, प्रत्येक वर्णक का ग्रहण करलेवे ॥ ६३ ॥

तीक्ष्णताम्रसंस्कारं च बुद्ध्येत ॥ ६४ ॥ तस्माद्वज्रमणिमुक्ताप्रवालरूपाणामपनेयिमानं च रूप्यसुवर्णभाण्डबन्धप्रमाणानि चेति ॥ ६५ ॥

सोनेके रंग बदलनेमें काम आने वाले लोहे और तांबेका शुद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है; इस लिये उनके शुद्ध करने की विधि अच्छी तरह जान लेनी चाहिये ॥ ६४ ॥ उत्तम प्रकारके वज्र मणि मुक्ता प्रवाल आदि में, असार (घटिया) वज्र मणि आदि मिलाकर कोई उनका अपहरण न करसके, तथा सोने चांदी आदिकी बननेवाली चीजोंमें कोई न्यूनाधिक मेल करके गड़बड़ न कर सके; इसलिये वज्र मणि मुक्ता आदिके सम्बन्धमें, और सोने चांदीके आभूषणों तथा पात्रों आदिके बन्ध (सोने चांदी आदिका नियमित मात्रासे मिलाना) और प्रमाणके सम्बन्धमें अच्छी तरह जानकारी प्राप्त करनी चाहिये ॥ ६५ ॥

समरागं समद्वन्द्वमसक्तं पृषतं स्थिरम् ।
सुविमृष्टमसंवीतं विभक्तं धारणे सुखम् ॥ ६६ ॥
अभिनीतं प्रभायुक्तं संस्थानमधुरं समम् ।
मनोनेत्राभिरामं च तपनीयगुणाः स्मृताः ॥ ६७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षस्त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

आदितश्चतुस्त्रिंशः ॥ ३४ ॥

सुवर्णके बने हुए आभूषणोंमें निम्न लिखित चौदह गुण होते हैं:— एकसा रंग होना, भार तथा रूप आदिमें एक दूसरेके समान होना, बीचमें कहीं गांठ आदिका न होना, टिकाऊ (स्थिर होना, बहुत दिनों तक नष्ट न होना), अच्छी तरह साफ करके चमकाया हुआ, ठीक ढंगपर बना हुआ, विभक्त अवयवों वाला, धारण करनेमें सुखकर होना ॥६६॥ साफ सुथरा, कान्तियुक्त, मनोहर आकृतिसे युक्त होना, एकसा होना, मन तथा नेत्रोंको सुन्दर लगने वाला होना, ये चौदह गुण सुवर्णके बने हुए आभूषणोंमें हुआ करते हैं ॥ ६७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें तेरहवां अध्याय समाप्त ।

चौदहवां अध्याय

३२ प्रकरण

विशिखामें सौवर्णिकका व्यापार।

सुवर्ण का व्यापार करने वाले व्यापारियोंके बाजारका नाम विशिखा है। उसमें, सोनेका व्यापार (कार्य) करनेके लिये नियुक्त हुए २ पुरुषोंके कार्यों का इस प्रकरण में निरूपण किया जायगा।

सौवर्णिकः पौरजानपदानां रूप्यसुवर्णमावेशनिभिः कारयेत् ॥ १ ॥ निर्दिष्टकालकार्यं च कर्म कुर्युः, अनिर्दिष्टकालं कार्यापदेशम् ॥ २ ॥

सौवर्णिक (आभूषण आदिका बड़ा व्यापारी पुरुष), नगर निवासी तथा जनपद निवासी पुरुषोंके सोने चांदीके आभूषणों को, शिल्पशालामें काम करने वाले, सुनारोंके द्वारा तैयार करावे ॥ १ ॥ शिल्पियोंको चाहिये कि वे अपने नियत समय तथा वेतन आदिका निर्णय करके कार्य करें। कार्यकी गुरुता अर्थात् कार्य की अधिकता होनेपर नियत समय आदिका निर्देश किये विनाभी वे लोग कार्य कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि कार्य यथावश्यक ठीक वादेके अनुसार ही कर देना चाहिये ॥ २ ॥

कार्यस्यान्यथाकरणे वेतननाशः तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ ३ ॥ कालातिपातेन पादहीनं वेतनं तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ ४ ॥

यदि कोई शिल्पी कार्यको अन्यथा करदेवे, अर्थात् उसे कुण्डल बनाने को दिये जावें; और रुचक बनादेवे, तो उसके वेतन (मजदूरी) को जब्त कर लिया जावे, तथा नियत वेतनसे दुगना दण्ड दिया जावे ॥ ३ ॥ यदि कोई कारीगर ठीक वादेपर काम करके न देवे, तो उसे नियत वेतनमेंसे पौना वेतन दिया जावे, अर्थात् वेतन का चौथाई हिस्सा जब्त कर लिया जावे। और जितना वेतन उसको दिया जावे, उससे दुगना दण्ड और अतिरिक्त दिया जावे ॥ ४ ॥

यथावर्णप्रमाणं निक्षेपं गृह्णीयुस्तथाविधमेवार्पयेयुः ॥ ५ ॥

कारीगर लोग जिस तरह का तथा जितना सोना चांदी आदि, आभूषण बनाने के लिये लेवें, उसी तरहका (यहांपर सुवर्णके रूप आदिकी समानता अपेक्षित है) तथा उतने ही वजनका आभूषण बनाकर देदेवें ॥ ५ ॥

कालान्तरादपि च तथाविधमेव प्रतिगृह्णीयुरन्यत्र क्षीण परिशीर्णाभ्याम् ॥ ६ ॥

सोना आदि देनेवाले पुरुष, कालान्तरमें भी (अर्थात् जिस सुनारको उन्होंने सोना, आभूषण आदि बनानेके लिये दिया है, उसके परदेस चले जानेपर या अकस्मात् मरजानेपर, उसके पुत्रादि से) उसही प्रकारके सोनेको वापस लेवें)। यदि उनका वह सोना आदि नष्ट होगया हो, या कुछ छीज गया है, तो उसके लिये शिल्पी अवश्यही दण्डभागी होगा। तात्पर्य यह है कि परदेस जाने आदि की बाधासे यदि बादमें कुछ विलम्ब होजाय, तो कारीगरकी वेतन हानि न कीजाय, और न उसे कोई दण्ड दिया जावे। परन्तु सुवर्ण आदिके नष्ट होजानेपर या कुछ न्यून हो जानेपर दण्ड होना आवश्यक है ॥ ६ ॥

आवेशनिभिः सुवर्णपुद्गललक्षणप्रयोगेषु तत्तज्जानीयात् ॥७॥ तप्तकलधौतकयोः काकणिकः सुवर्णे क्षयो देयः ॥ ८ ॥

शिल्पियोंके द्वारा किये जानेवाले सुवर्ण (उनको संस्कृत करके कमल-रजके समान बना देना, पुद्गल (आभूषण आदिका भृङ्गार=सुवर्णसे बना हुआ पात्रविशेष), तथा लक्षण (मुद्राचिन्ह) आदिके प्रयोगोंमें, उनकी विधि तथा अन्य सबही बातोंको सौवर्णिक पुरुष अच्छी तरह जाने। अर्थात् इन सबही विषयोंमें सौवर्णिक पुरुषको अच्छी जानकारी प्राप्त करनी चाहिये; जिससे कि उनकी देखरेखमें कार्य करते हुए शिल्पीजन, सुवर्णादिका अपहरण न कर सकें ॥ ७ ॥ अशुद्ध चांदी तथा सोनेको यदि आभूषण बनानेके लिये दिया जावे, तो सुवर्णकारको सुवर्णमें एक काकणी छीजन देनी चाहिये। अर्थात् सोलह माषक सुवर्णके पीछे एक काकणी (एक माषकका चौथा हिस्सा) सोना, आभूषण बनवाने वाले पुरुषको सुनारसे कम लेना चाहिये। क्योंकि इतना सोना, शुद्ध करते समय छीजनमें निकल जाता है ॥ ८ ॥

तीक्ष्णकाकणीरूप्यद्विगुणो रागप्रक्षेपस्तस्य षड्भागः क्षयः ॥ ९ ॥ वर्णहीने माषावरे पूर्वः साहसदण्डः ॥ १० ॥

सोनेका रङ्ग बदलनेके लिये, एक काकणी लोहा और उससे दुगनी चांदी उसमें मिलादी जावे; इतने लोहे और चांदीकी मिलावट सोलह माषक सुवर्णमें करनी चाहिये, इतने सुवर्णमें, मिलावट (एक काकणी लोहा और दो काकणी चांदी) का छठा हिस्सा अर्थात् आधी काकणी छीजनके लिये निकाल देनी चाहिये ॥ ९ ॥ न्यूनसे न्यून यदि एक माष सुवर्णको, सुवर्णकार वर्णहीन

(अर्थात् अपनी अज्ञानतासे कान्ति रहित) बनादेवे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥

प्रमाणहीने मध्यमः तुलाप्रतिमानोपधावुत्तमः कृतभाण्डोपधौ च ॥ ११ ॥ सौवर्णिकेनादृष्टमन्यत्र वा प्रयोगं कारयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ कर्तुर्द्विगुणः सापसारश्चेत् ॥ १३ ॥

तोलमें एक माष सोना कम होनेपर शिल्पीको मध्यम साहस दण्ड दिया जावे। तराजू बाटमें यदि कोई कपट करे, तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे। इसी प्रकार जो पुरुष, बनकर तैयार हुए २ पात्र आदिके इधर उधर परिवर्त्तन करनेमें छल कपट करे, उसे भी उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥ सौवर्णिककी अनुमतिके विना ही अथवा अनुमति लेकर भी विशिखासे बाहर जाकर यदि कोई पुरुष अलङ्कार आदिका निर्माण किसी शिल्पीसे करवावे, तो उसको बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ १२ ॥ और कार्य करने वाले कारीगर पुरुषको कराने वालेसे दुगना दण्ड दिया जावे। परन्तु यह दण्ड कार्य करने और कराने वालेको उसी समय समझना चाहिये, जब कि उनके विषयमें चोरी आदिकी आशङ्का कुछ भी न हो ॥ १३ ॥

अनपसारः कण्टकशोधनाय नीयेत ॥१४॥ कर्तुश्च द्विशतो दण्डः पणच्छेदनं वा ॥ १५ ॥

यदि उनपर चोरी आदिकी आशङ्काहोवे, तो कार्य करानेवाले पुरुषको कण्टकशोधनाधिकारी (प्रदेष्टा) के समीप उसके अपराधका यथार्थ निर्णय करानेके लिये लेजाया जावे ॥१४॥ और कार्य करने वाले कारीगर व्यक्तिको दोसौ पण दण्ड दिया जावे; यदि वह इतना धन देनेमें असमर्थ हो, तो उसकी अंगुलियां काटदी जावें ॥ १५ ॥

तुलाप्रतिमानभाण्डं पौतवहस्तात्क्रीणीयुः ॥१६॥ अन्यथा द्वादशपणो दण्डः ॥ १७ ॥

सुवर्णकारोंको चाहिये, कि वे सोना आदि तोलनेके लिये कांटा और उसके छोटे बड़े सब तरहके बाट आदि, पौतवाध्यक्षके पाससे खरीद लेवें; और उन्हींके अनुसार तोलने आदिका व्यवहार करें ॥ १६ ॥ यदि वे स्वयंही कांटा आदि बनाकर उसका उपयोग करें, या पौतवाध्यक्षसे न लेकर और कहीं से लेलेवें, तो उन्हें बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ १७ ॥

घनः घनसुषिरं संयूह्यमवलेप्यं संघात्यं वासितकं च कारुकर्म १८

घन (अर्थात् अंगूठी आदि ठोस आभूषण), घनसुषिर (ऊपरसे ठोस मालूम होने वाले, पर भीतरसे पोले कड़े आदि आभूषण), संयूह्य (जिनके ऊपर मोटा पत्र चढ़ा दिया जावे, ऐसे आभूषण आदि) अवलेप्य (जिनके ऊपर पतला पत्र चढ़ाया जावे), संघात्य (जिस आभूषणको थोड़ा २ जोड़कर बनाया जावे, जैसे तगड़ी जंजीरी आदि) तथा वासितक (जिन आभूषणोंको रस आदिसे वासित किया जावे); ये छः प्रकारके शिल्पियोंके कार्य होते हैं ॥ १८ ॥

तुलाविषममपसारणं विस्रावणं पेटकः पिङ्कश्चेति हरणोपायाः ॥ १९ ॥

इन कार्योंको करते हुए सुवर्णकार निम्नलिखित रीतिसे सुवर्ण आदिका अपहरण कर सकते हैं:—तुलाविषम, अपहरण, विस्रावण, पेटक और पिङ्क ये पांच अपहरणके उपाय हैं। अगले सूत्रोंमें इन्हींका यथाक्रम विस्तार पूर्वक निरूपण किया जाता है:—॥ १९ ॥

संनामिन्युत्कीर्णिका भिन्नमस्तकोपकण्ठी कुशिक्या सकटुकक्ष्या पारिवेल्ययस्कान्ता च दुष्टतुलाः ॥ २० ॥

पहला उपाय है—तुलाविषम, अर्थात् तराजू या कांटेका ठीक न होना, निम्नलिखित आठ प्रकारकी तुला विषम (अर्थात् ठीक २ न तोलने वाली, जिनके द्वारा तोलनेमें झट बेईमानी कीजासके, ऐसी) होती हैं:—सन्नामिनी (हलके लोहेसे बनाई हुई, जो अंगुली लगानेसे यथेच्छ चाहे जिधरको झुकाई जासके), उत्कीर्णिका (जिसके भीतर छेदोंमें लोहे आदिका चूरा भरा हुआ हो), भिन्नमस्तका (जिसके आगेके हिस्सेमें छेद हुए २ हों, उन छेदोंको वायुकी ओर करके यदि तोला जावे, तो आगेकी ओरसे वायु, उस तराजूको नीचेकी ओर झुका देती है), उपकण्ठी (जिसमें बहुत गांठेंसी पड़रही हों,), कुशिक्या (जिसका शिक्य अर्थात् पलड़ा बहुत ही खराब हो), जिसकी डोरी आदि अच्छी न हों, लगातार हिलने वाली, ऊपर डण्डीमें अयस्कान्त मणि लगाकर बनाई हुई, ये आठ प्रकारकी तराजू दुष्ट होती हैं, इनके द्वारा सुवर्ण आदिका अपहरण किया जासकता है। इसीका नाम तुलाविषम है ॥ २० ॥

रूप्यस्य द्वौ भागावेकं शुल्बस्य त्रिपुटकम् ॥ २१ ॥ तेनाकरोद्गतमपसार्यते तत्त्रिपुटकापसारितम् ॥ २२ ॥

असार द्रव्यको मिलाकर सारद्रव्यका अपहरण करदेना: इस तरहका अपसार चार प्रकारका होता है—त्रिपुटकापसारित, शुल्बापसारित, वेल्लक-

पसारित और हेमापसारित। इनका यथाक्रम निरूपण किया जाता है:—दो हिस्सा चांदी और एक हिस्सा तांबा मिलाकर जो मेल तैयार किया जावे, उसका नाम 'त्रिपुटक' है ॥ २१ ॥ शुद्ध सुवर्णमें यह त्रिपुटक मिलाकर उसमेंसे उतनाही सोना निकाल लिया जावे, और उस सोनेको किसीके खोटा बतलानेपर कह दिया जावे, कि यह तो खानसेही इस तरहका अशुद्ध सोना निकला है। इसप्रकार त्रिपुटकके द्वारा जो अपहरण किया जावे, उसका नाम त्रिपुटकापसारित है ॥ २२ ॥

शुल्बेन शुल्बापसारितम् ॥ २३ ॥ वेल्लकेन वेल्लकापसारितम् ॥ २४ ॥ शुल्बार्धसारेण हेम्ना हेमापसारितम् ॥ २५ ॥

जो केवल तांबा मिलाकर अपहरण किया जावे, उसे शुल्बापसारित कहते हैं ॥ २३ ॥ लोहा और चांदी मिलाकर जो मेल तैयार किया जावे, उसे 'वेल्लक' कहते हैं। फिर उस वेल्लकको सुवर्णमें मिलाकर जो सुवर्णका अपहरण किया जाता है, उसे 'वेल्लकापसारित' कहते हैं ॥ २४ ॥ तांबेके साथ आधा सोना मिलाकर, उस मेलको फिर सोनेमें मिलाकर जो सोनेका अपहरण किया जाता है, उसे हेमापसारित कहते हैं ॥ २५ ॥

मूकमूषा पूतिकिट्टः करटकमुखं नाली संदंशो जोङ्गनी सुवर्चिकालवणम् ॥२६॥ तदेव सुवर्णमित्यपसरणमार्गाः ॥२७॥

असार द्रव्यको मिलाने और सार द्रव्यके अपहरण करनेका ढङ्ग यह है—मूकमूषा, पूतिकिट्ट (लोहे का मैल), करटकमुख (सोना आदि कतरनेकी कैंची, कतरनी या कतनी), नाली (नाल प्रसिद्ध है), संदंश (संडासी), जोङ्गनी (लोहेकी छड़सी जिससे आग आदि कुरेदी जाय), सुवर्चिका (शोरा क्षार) तथा नमक। तात्पर्य यह है—जब शुद्ध सुवर्णको बन्द मूषामें डालकर तपाया जाता है, तब उसके मलको निकालनेके बहानेसे, शोरा या नमक आदि क्षारोंकी जगहपर, पहिलेसे तैयार किये हुए त्रिपुटक आदिके चूरेको उस तपते हुए शुद्ध सुवर्णमें डाल दिया जाता है। और फिर कतनी या संडासी आदि औजारोंके द्वारा उसमेंसे उतनाही शुद्ध सोना निकाल लिया जाता है। इस तरह सुनार, लोगोंके देखते हुए भी सोने आदिका अपहरण कर लेते हैं ॥ २६ ॥ जब कहा जाय कि तुमने यह सोना खोटा कर दिया, तो कहदेते हैं कि यह वही सोना है जो हमने आपसे लिया था, यह खानसे इसी प्रकारका निकला मालूम देता है। ये अपसरणके मार्ग हैं ॥ २७ ॥

पूर्वप्रणिहिता वा पिण्डवालुका मूषाभेदादग्निष्ठा उद्धूयन्ते ॥ २८ ॥

अथवा पहिलेसेही उस आगम मिश्र धातुओंकी बारीक बालुकासी डालदी जाती है, और फिर मूषाको जब अग्निमें रक्खा जाता है, तो या बहाना करके कि मूषा टूटगई है, और उसमेंसे यह पिघली हुई धातुकी बालुकासी निकलपड़ी है, उस सबको अग्निमेंसे उठाकर मालिकके सामनेही सोनेमें मिला दिया जाता है, और उपर्युक्त रीतिसे उतनाही सोना उसमेंसे निकाल लिया जाता है। यहभी अपसारणका एक उपाय है ॥ २८ ॥

पश्चाद्बन्धने आचितकपत्त्रपरीक्षायां वा रूप्यरूपेण परिवर्तनं विस्रावणम् ॥२९॥ पिण्डवालुकानां लोहपिण्डवालुकाभिर्वा ॥३०॥

पहिले बनाईहुई चीजके पीछेसे जोड़नेमें, अथवा बहुतसे पत्रोंकी परीक्षाके समयमें, चांदीसे सोनेका बदल लेना, अर्थात् खरे सोनेको निकाल कर खोटा सोना लगादेना 'विस्रावण' कहाता है। यह विस्रावणका एक प्रकार है ॥ २९ ॥ सोनेकी खानसे पैदा हुई २ बालुकाको, लोहेकी खानमें पैदाहुई बालुकाओंके साथ बदल देनाभी विस्रावण कहाता है। यह विस्रावण का दूसरा प्रकार है ॥ ३० ॥

गाढश्चाभ्युद्धार्यश्च पेटकः संयूह्यावलेप्यसंघात्येषु क्रियते ॥ ३१ ॥ सीसरूपं सुवर्णपत्त्रेणावलिप्तमभ्यन्तरमष्टकेन बद्धं गाढपेटकः ॥ ३२ ॥ स एव पटलसंपुटेष्वभ्युद्धार्यः ॥ ३३ ॥

पेटक दो प्रकारका होता है, एक गाढ और दूसरा अभ्युद्धार्य। इस उपायका प्रयोग संयूह्य अवलेप्य तथा संघात्य कर्मोंमें किया जाता है ॥३१॥ सीसेके पत्रको सुवर्णके पत्रसे मढ़कर, तथा बीचमें अष्टक अर्थात् लाख आदिके रससे अच्छीतरह दृढ़ताके साथ जोड़कर जो बन्धन किया जावे, उसे 'गाढ़-पेटक' कहते हैं ॥ ३२ ॥ वही बन्धन, यदि उसमें लाख आदिका रस, जोड़की दृढ़ताके लिये न लगाया जावे, और इसीलिये जो सरलतासे उखड़सकने योग्य हो; अभ्युद्धार्यपेटक कहाता है। इस प्रकार सारासार द्रव्योंके बराबरके संयूहनमें सुवर्ण आदिका अपहरण करलिया जाता है ॥ ३३ ॥

पत्त्रमाश्लिष्टं यमकपत्त्रं वावलेप्येषु क्रियते ॥ ३४ ॥ शुल्बं तारं वा गर्भः पत्त्राणाम् ॥ ३५ ॥

अवलेप्य कर्मोंमें एक ओर या दोनों ओर पतलासा सोनेका पत्र जोड़कर, उसमेंसे कुछ शुद्ध सुवर्णका अंश अपहरण करलिया जाता है ॥३४॥ तथा अवलेप्य कर्मोंमेंही बाहर पत्र लगानेके बजाय, सुवर्ण पत्रोंके बीचमें

तांबे या चांदीका पत्र लगाकर उसके बराबर सोनेका अपहरण करलिया जाता है ॥ ३५ ॥

संघात्येषु क्रियते शुल्बरूपसुवर्णपत्त्रसंहतं प्रमृष्टं सुपार्श्वम् ॥ ३६ ॥ तदेव यमकपत्त्रसंहतं प्रमृष्टं ताम्रताररूपं चोत्तरवर्णकः ॥ ३७ ॥

संघात्य कर्मोंमें, तांबे की चीजको एक ओर सोनेके पत्रोंसे मढ़कर, उसे खूब चमकाकर, एक ओरके हिस्सेको खूब सुन्दर बना दिया जाता है ॥३६॥ उस ही तांबेकी चीजके दोनों ओर सोनेके पत्र चढ़ा दिये जाते हैं, तथा उसे अच्छी तरह साफ करके चमका दिया जाता है। ऐसा करके उसमेंसे कुछ अंश सोनेका निकाल लिया जाता है। (कोई व्याख्याकार पहिले सूत्रमें बताये कार्य को 'सुपार्श्व' और इस सूत्रमें बताये हुए को 'प्रमृष्ट' नाम देते हैं) ॥ ३७ ॥

तदुभयं तापनिकषाभ्यां निःशब्दोल्लेखनाभ्यां वा विद्यात् ॥३८॥ अभ्युद्धार्यं बदराम्ले लवणोदके वा साधयन्तीति पेटकः ॥ ३९ ॥

अब पेटककी परीक्षा का प्रकार बतलाते हैं:—गाढपेटक तथा अभ्युद्धार्यपेटक इन दोनों की ही अग्निमें तपाने और कसौटी पर घिसनेसे परीक्षा करे। अथवा हलकीसी चोट देकर (जिस चोटके देनेपर शब्द न हो), या किसी तीक्ष्ण वस्तुसे निशान देकर या रेखासी खींचकर इनकी परीक्षा करे ॥ ३८ ॥ अभ्युद्धार्य पेटकको बेरीके अम्ल रसमें तथा नमकके पानीमें डालकर भी परीक्षा किया जाता है। ऐसा करनेसे उसका रङ्ग कुछ लालसा होजाता है। यहां तक अपहरणके 'पेटक' नामक उपायका निरूपण किया गया ॥ ३९ ॥

घनसुषिरे वा रूपे सुवर्णमृन्मालुकाहिङ्गुलककल्को वा तप्तो ऽवतिष्ठते ॥ ४० ॥ दृढवास्तुके वा रूपे वालुकामिश्रजतुगान्धारपङ्को वा तप्तो ऽवतिष्ठते ॥ ४१ ॥

अब पांच प्रकारके पिङ्कका, तथा उसकी परीक्षाका यथाक्रम निरूपण किया जायगा:—ठोस अथवा पोले कड़े आदि आभूषणोंमें, सुवर्णमृत्, सुवर्णमालुका और शिंगरफ़का कल्क अग्निमें तपाकर लगा दिया जाता है। यह एक अपद्रव्य या असारद्रव्य है, इसको आभूषणोंमें मिलाकर, उतनाही शुद्ध सोना उसमेंसे निकाल लिया जाता है। (सुवर्णमृत् और सुवर्णमालुका, ये दोनों भी कोई विशेष धातु ही हैं) ॥ ४० ॥ जिस आभूषणका वास्तुक (अर्थात्

पीठपन्थ=आधारभूत भाग) अच्छी तरह दृढ़ हो, उसमें, साधारण धातुओं-की बालुकाकी लाख और सिन्दूरके पङ्क (कीचड़=दोनोंका एक साथ घुले हुए होना) में मिलाकर तथा उन्हें अग्निमें तपाकर लगा दिया जाता है। और उसकी बराबरका सोना उसमेंसे निकाल लिया जाता है ॥ ४१ ॥

तयोस्तापनमवध्वंसनं वा शुद्धिः ॥ ४२ ॥ सपरिभाण्डे वा रूपे लवणमुल्कया कटुशर्करया तप्तमवतिष्ठते ॥ ४३ ॥ तस्य क्वाथनं शुद्धिः ॥ ४४ ॥

ठोस पोले तथा दृढवास्तुक अलङ्कारों को अग्निमें तपाना, तथा उनपर यथावश्यक चोट देना, उनके शोधनका उपाय है ॥ ४२ ॥ भूंददार मणिबन्ध आदि आभूषणोंमें, नमक को छोटी २ कंकड़ियोंके साथ लपटों वाली आगमें तपाकर रख लिया जाता है ॥ ४३ ॥ बेरीके अम्ल रसमें उबाल कर उसकी शुद्धि होजाती है ॥ ४४ ॥

अभ्रपटलमष्टकेन द्विगुणवास्तुके वा रूपे बध्यते, तस्य पिहितकाचकस्योदके निमज्जत एकदेशः सीदति, पटलान्तरेषु वा सूच्या भिद्यते ॥ ४५ ॥

अभ्रपटल (अभ्रक), अपनेसे दुगने वास्तुक (आभूषणोंके लिये तैयार किये हुए सुवर्ण आदि) में लाख आदिके द्वारा जोड़कर रख लिया जाता है। उसकी परीक्षा का प्रकार यह है:—उस सुवर्णके आभूषणों को, जिसमें अभ्रक मिला हुआ होवे, बेरीके अम्ल जलमें छोड़ दिया जावे, उस आभूषण का थोड़ा सा हिस्सा ही पानीमें डूबेगा, जिस ओर अभ्रक होगा वह नहीं डूबेगा। यदि अभ्रपटल के स्थान पर ताम्रपटल का ही आभरण आदि में मेल किया गया हो, तो उसकी परीक्षा किसी सूई से निशान करके ही ठीक तौरपर हो सकती है ॥ ४५ ॥

मणयो रूप्यं सुवर्णं वा घनसुषिराणां पिङ्कः ॥ ४६ ॥ तस्य तापनमवध्वंसनं वा शुद्धिरिति पिङ्कः ॥ ४७ ॥

ठोस तथा पोले आभूषणोंमें मणि (काच मणि आदि), चांदी तथा अशुद्ध सुवर्ण का मेल करके पिङ्क नामक उपाय द्वारा शुद्ध सुवर्ण का अपहरण किया जासकता है ॥ ४६ ॥ उसको अग्निमें तपाना तथा उसपर चोट देना ही उसके शोधन का प्रकार है। ऐसा करनेसे उसकी वास्तविकता की परीक्षा हो जाती है। यहांतक पिङ्कका निरूपण किया गया ॥ ४७ ॥

तस्माद्वज्रमणिमुक्ताप्रवालरूपाणां जातिरूपवर्णप्रमाणपुद्गल-लक्षणान्युपलभेत ॥ ४८ ॥

इसलिये सौवर्णिक को चाहिये कि वह वज्र मणि मुक्ता तथा प्रवाल इन चारोंके जाति (उत्पत्ति), रूप (आकार), वर्ण (रंग), प्रमाण (मापक आदि परिमाण), पुद्गल (आभरण), और लक्षण अर्थात् चिन्हों को अच्छी तरह जाने । जिससे कोई भी व्यक्ति, किसी उत्तम वस्तुका अपहरण न कर सके ॥ ४८ ॥

कृतभाण्डपरीक्षायां पुराणभाण्डप्रतिसंस्कारे वा चत्वारो हरणोपायाः ॥ ४९ ॥ परिकुट्टनमवच्छेदनमुल्लेखनं परिमर्दनं वा ॥ ५० ॥

पात्र तथा आभरण आदिके निर्माणके अनन्तर परीक्षा समयमें, उसमें से सुवर्ण आदिका अपहरण करनेके चार उपाय होते हैं:—॥ ४९ ॥ परिकुट्टन अवच्छेदन, उल्लेखन और परिमर्दन ॥ ५० ॥

पेटकापदेशेन पृषतं गुणं पिटकां वा यत्परिशातयन्ति तत्परिकुट्टनम् ॥ ५१ ॥ यद्द्विगुणवास्तुकानां वा रूपे सीसरूपं प्रक्षिप्याभ्यन्तरमवच्छिन्दन्ति तदवच्छेदनम्॥ ५२ ॥

पूर्वोक्त पेटक उपायकी परीक्षा करनेके बहानेसे, छोटी २ गोली, कड़े आदिका थोड़ासा हिस्सा या कुछ अधिक हिस्सा, जो किसी आभूषण आदिसे सुनार काट लेते हैं, उसका नाम 'परिकुट्टन' है ॥ ५१ ॥ बहुतसे पत्र आदि को जोड़कर बनाये हुये आभूषणों में, तथा सोनेसे मढ़े हुए कुछ सीसे के पत्रों को मिलाकर, फिर भीतरसे काटकर सुवर्ण निकाल लेना 'अवच्छेदन' कहाता है ॥ ५२ ॥

यद्घनानां तीक्ष्णेनोल्लिखन्ति तदुल्लेखनम् ॥ ५३ ॥ हरितालमनःशिलाहिङ्गुलकचूर्णानामन्यतमेन कुरुविन्दचूर्णेन वा वस्त्रं संयूह्य यत्परिमृद्नन्ति तत्परिमर्दनम् ॥ ५४ ॥

जो सुनार ठोस आभूषणोंको तीक्ष्ण औजार आदिसे खोद देते हैं, उसे 'उल्लेखन' कहते हैं ॥ ५३ ॥ हरताल, मनसिल तथा शिंगरफके चूरेके साथ तथा कुरुविन्द (एक तरहका पत्थर) के चूरेके साथ कपड़े को सानकर उससे जो आभूषण आदिको रगड़ा जाता है, उसका नाम "परिमर्दन" होता है ॥ ५४ ॥

तेन सौवर्णराजतानि भाण्डानि क्षीयन्ते ॥ ५५ ॥ न चैषां किंचिदवरुग्णं भवति ॥ ५६ ॥

ऐसा करनेसे सोने तथा चांदीके आभरण आदि घिस जाते हैं ॥ ५५ ॥ परन्तु इनमें किसी तरहकी चोट या विकारकी प्रतीति नहीं होती। इस प्रकार आभूषण आदिको काटे बिना ही सुवर्णके अपहरण करनेका यह एक उपाय है ॥ ५६ ॥

भग्नखण्डघृष्टानां संयूह्यानां सदृशेनानुमानं कुर्यात् ॥ ५७ ॥ अवलेप्यानां यावदुत्पाटितं तावदुत्पाट्यानुमानं कुर्यात् ॥ ५८ ॥

दृढ़ पत्रोंसे बने हुए आभूषणोंके, परिकुट्टन अवच्छेदन तथा घिसनेसे जितने हिस्से का अपहरण किया गया हो, उसका अनुमान, उसके समान-जातीय शेष अवयवोंसे करे ॥ ५७ ॥ अवलेप्य अर्थात् जिन आभूषण आदिपर सोनेका पतला पत्र ऊपर चढ़ा हुआ हो, उनपरसे काटे हुए सोनेके हिस्से को उतनी ही दूरके दूसरे हिस्सेको काटकर जाने। अर्थात् उस कटे हुए हिस्सेके परिमाणका उतने ही दूसरे हिस्सेसे अनुमान करे ॥ ५८ ॥

विरूपाणां वा तापनमुदकपेषणं च बहुशः कुर्यात् ॥ ५९ ॥

जिन आभूषण आदिमें बहुत अधिक अपद्रव्य मिलाकर उन्हें विरूप बना दिया गया हो, उनकी हानिके परिमाणका अनुमान, उनके सदृश अन्य आभूषणोंके द्वारा किया जावे। उनको अग्निमें खूब तपाकर तथा फिर जलमें फेंककर उनपर बार २ चोट देना ही उनके शोधन का उपाय है। अपहरणके परिमाणको जाननेका प्रयोजन यही है, कि उसके अनुसार अपहरण करनेवाले पुरुषको, पूर्वोक्त प्रथमसाहस आदि दण्ड दिये जावें ॥ ५९ ॥

अवक्षेपः प्रतिमानमग्निर्गण्डिका भण्डिकाधिकरणी पिच्छः सूत्रं चेल्लं बोल्लनं शिर उत्सङ्गो मक्षिका स्वकायेक्षा दृतिरुदकशरावमग्निष्ठमिति काचं विद्यात् ॥ ६० ॥

पूर्वोक्त अपहरणके उपायोंके अतिरिक्त, अवक्षेप आदि अन्य उपायोंका भी निरूपण करते हैं:—अवक्षेप (अपने हस्तलाघव अर्थात् चतुराई से देखते हुए आदमीके सामने भी सार द्रव्य का अपहरण करके उसमें असारद्रव्य का मिला देना), प्रतिमान (बदला करनेके द्वारा अपहरण करना), अग्नि (अग्निके बीचमें हरण करना), गण्डिका (जिसपर रखकर सोने को चोट लगाई जावे), भण्डिका (सोनेका मैल आदि रखने का पात्र, अथवा पिघले हुए सोनेके रखने का पात्र), अधिकरणी (लोहेका बना हुआ साधारण सुवर्णके

रखनेका पात्र), पिंछ (मोर पंख), सूत्र (सुवर्णकी तराजू की रस्सी), चेल्ल (वस्त्र), बोल्लन (कहानीके बहानेसे देखने वालेका ध्यान बटाना), शिर (सिरका खुजाना आदि), उत्संग (गोद या अन्य गुह्य स्थान), मक्षिका (मक्खीके उड़ानेके बहानेसे द्रव धातु को अपने अंगसे लगा लेना, पसीना आदि दिखानेका बहाना, धौंकनी, जलका शकोरा, अग्निमें डाला हुआ अप-द्रव्य; ये सब अपहरणके उपाय जानने चाहियें ॥ ६० ॥

राजतानां विस्रं मलग्राहि परुषं प्रस्तीनं विवर्णं वा दुष्टमिति विद्यात् ॥ ६१ ॥

जो आभूषण चांदीके बने हुए हों, उनमें पांच प्रकारके दोषके चिन्ह होते हैं:—विस्र (सीसा आदिके संसर्गसे दुर्गन्धका आने लगना), मलिन हो जाना, कठोर (अर्थात् स्पर्श करते समय खरखरा मालूम होना), कठिन होजाना (अर्थात् मृदुलताका न रहना), और विवर्ण अर्थात् अपद्रव्यके मिलने से कान्तिहीन होजाना, ये पांच प्रकारके दोष चांदीके बने आभूषणोंमें अप-द्रव्य मिलानेसे होजाते हैं। (इनके शोधनका प्रकार, पूर्व अध्यायमें (अस्थि-तुत्थ चतुः समसीस चतुः ' इत्यादि सूत्रसे बता दिया गया है ॥ ६१ ॥

एवं नवं च जीर्णं च विरूपं च विभाण्डकम् ।
परीक्षेतात्ययं चैषां यथोद्दिष्टं प्रकल्पयेत् ॥ ६२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे विशिखायां सौवर्णिकप्रचारः चतुर्दशो-ऽध्यायः ॥ १४ ॥
आदितः पञ्चत्रिंशः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार नये और पुराने, विरूप या विकृत किये हुए पात्रों आभूषण आदि को अच्छी तरह परीक्षा करके जाने । और फिर उस मिलावटके अनुसार अपराधियोंके दण्डकी व्यवस्था करे। (जैसा कि ' वर्णहीने माषकावरे ' इत्यादि सूत्रोंसे प्रतिपादन कर दिया गया है) ॥ ६२ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें चौदहवां अध्याय समाप्त ।

पन्द्रहवां अध्याय

३३ प्रकरण

कोष्ठागाराध्यक्ष ।

'कोष्ठ' पेटको कहते हैं। उसके लिये जो धान्य, तैल, घी, नमक आदि खाने योग्य पदार्थ होते हैं, उनका भी नाम कोष्ठ है। उन पदार्थोंके संग्रह तथा रक्षाके लिये जो स्थान बनाये जावें, उन्हें 'कोष्ठागार' कहते हैं। और उनके अध्यक्ष का नाम कोष्ठागाराध्यक्ष होता है, उसके कार्योंका विस्तृत निरूपण इस प्रकरणमें किया जायगा।

कोष्ठागाराध्यक्षः सीताराष्ट्रक्रयिमपरिवर्तकप्रामित्यकापमित्यकसिंहानिकान्यजातव्ययप्रत्यायोपस्थानान्युपलभेत ॥ १ ॥ सीताध्यक्षोपनीतः सस्यवर्णकः सीता ॥ २ ॥

कोष्ठागाराध्यक्ष को चाहिये, कि वह सीता, राष्ट्र, क्रयिम, परिवर्त्तक, प्रामित्यक, आपमित्यक, सिंहनिका, अन्यजात, व्ययप्रत्याय और उपस्थान इन दस बातोंका अच्छी तरह चिन्तन करे। इन सबका यथाक्रम विवरण दिया जाता है:—॥ १ ॥ सीताध्यक्ष (धान्य आदि राजकीय करका ग्रहण करने वाला अधिकारी) के द्वारा कोष्ठागारमें पहुंचाये हुए प्रत्येक जातिके धान्यका नाम 'सीता' है। कोष्ठागाराध्यक्षको चाहिये कि वह शुद्ध और पूर्ण सीताको लेकर यथोचित कोष्ठागारमें रक्खे ॥ २ ॥

पिण्डकरः षड्भागः सेनाभक्तं बलिः कर उत्सङ्गः पार्श्वं पारिहीणिकमौपायनिकं कौष्ठेयकं च राष्ट्रम् ॥ ३ ॥

पिण्डकर (उन २ गावोंसे दिया जाने वाला नियत राजकीय कर), षड्भाग (राजदेय, अन्नादिका छठा हिस्सा), सेनाभक्त (सेनाके आक्रमण करनेके समयमें तेल घृत चावल नमक आदि विशेष राजदेय भाग। किसी २ व्याख्याकारने 'सैनिकों को चावल तथा अन्य हिरण्य आदि देनेके समयमें उनके द्वारा दिये जाने वाले धनादिके कुछ अंश' ऐसा अर्थ किया है), बलि (छठे हिस्सेसे अतिरिक्त राजदेय अंश), कर (जल तथा वृक्ष आदिके सम्बन्ध का राजदेय अंश), उत्सङ्ग (राजाके पुत्र जन्मादि उत्सव होनेपर पौर जानपदोंके द्वारा दिया हुआ विशेष धन), पार्श्व (उचित करसे अधिक ग्रहण करना; योगवृत्त पञ्चम अधिकरणके, दूसरे अध्यायमें इसका निरूपण किया गया

है), पारिहीणिक (चौपायोंसे बिगाड़े हुए धान्य आदिके दण्ड रूपमें प्राप्त हुआ २ धन), औपायनिक (भेटमें प्राप्त हुआ २ धन), और कौष्ठेयक (राजाके द्वारा बनवाये हुए तालाब और बगीचोंसे प्राप्त होने वाला), यह दस प्रकार का राष्ट्र होता है ॥ ३ ॥

धान्यमूल्यं कोशनिर्हारः प्रयोगप्रत्यादानं च क्रयिमम् ॥४॥ सस्यवर्णानामर्घान्तरेण विनिमयः परिवर्तकः ॥ ५ ॥ सस्ययाचनमन्यतः प्रामित्यकम् ॥ ६ ॥

धान्यमूल्य (धान्य आदिको बेचकर मूल्य रूपमें प्राप्त हुआ २ हिरण्य आदि), कोशनिर्हार (हिरण्य आदि देकर खरीदा हुआ धान्य आदि), तथा प्रयोगप्रत्यादान (व्याज आदिसे प्राप्त हुए अधिक धान्यका कोष्ठागारमें जमा करना), यह तीन प्रकारका क्रयिम होता है ॥ ४ ॥ भिन्न २ जातिके धान्योंसे अन्य भिन्न जातिके धान्योंका न्यूनाधिक परिमाणमें बदला करना; जैसे एक प्रस्थ चावल देकर चार प्रस्थ कोदों बदलेमें लेलेना, यह 'परिवर्त्तक' कहा जाता है ॥ ५ ॥ अन्य मित्र आदिसे, सस्य (अन्न=अनाज) का मांगना, जो कि फिर लौटाया न जावे, उसे 'प्रामित्यक' कहते हैं ॥ ६ ॥

तदेव प्रतिदानार्थमापमित्यकम् ॥ ७ ॥ कुट्टकरोचकसक्तुशुक्तपिष्टकर्म तज्जीवनेषु तैलपीडनमौरभ्रचाक्रिकेष्विक्षूणां च क्षारकर्म सिंहनिका ॥ ८ ॥

जो धान्य आदि, व्याज सहित लौटा देनेके वादेपर दूसरेसे मांगा जावे, उसे 'आपमित्यक' कहते हैं ॥ ७ ॥ कूटनेका कार्य करने वाले, मूंग उड़द आदिके छड़ने, जौ आदिका सत्तू पीसने, गन्ने आदिके रससे सिरका या आसव बनाने, तथा गेहूं आदिका आटा पीसनेका कार्य करने वाले, अर्थात् इन कार्योंको करके अपनी जीविका करने वाले पुरुषोंसे; और तिलोंसे तेल निकालकर तथा भेड़ोंके बाल आदि काटकर उनसे जीविका करने वाले पुरुषोंसे; और गन्नोंके रससे गुड़ राव शक्कर आदि बनाकर अपनी जीविका करने वाले पुरुषोंसे जो राजदेय अंश लिया जावे उसे 'सिंहनिका' कहते हैं । किसी २ प्राचीन व्याख्यामें 'संहनिका' पाठ है । यह पाठ अच्छा मालूम होता है ॥ ८ ॥

नष्टप्रस्मृतादिरन्यजातः ॥ ९ ॥ विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषं च व्ययप्रत्यायः ॥ १० ॥

नष्ट हुए २ तथा भूले हुएका नाम 'अन्यजात है ॥ ९ ॥ विक्षेपशेष किसी कार्यका सिद्ध करनेके लिय भेजी हुई सेनाके व्ययसे बचा हुआ),

व्याधितशेष (औषधालय आदिके व्ययसे बचा हुआ) तथा ७ तरारम्भशेष (भातर तुषा आदिका मरम्मतसे बचा हुआ धन), यह तीन प्रकारका ' व्यय प्रत्याय ' होता है ॥ १० ॥

तुलामानान्तरं हस्तपूरणमुत्करो व्याजी पर्युषितं प्रार्जितं चोपस्थानमिति ॥ ११ ॥

तराजू या बाटोंके भेदसे अधिक प्राप्त हुआ २ (अर्थात् भारी बाटोंसे लेकर, और हलके बाटोंसे देकर अधिक पैदा किया हुआ), अन्न आदि तोलने के बाद मुट्ठी भरकर और अधिक डाला हुआ अन्न, उत्कर (धान्य आदिके ढेर-से, तुली हुई या गिरी हुई चीजें और वस्तु उठाकर डाल देना), व्याजी (सोलहवां या बीसवां अधिक लिया हुआ हिस्सा, जिससे कि फिर तोलनेमें किसी तरहकी कमी न होजाय) पर्युषित (पिछले सालका शेष) और प्रार्जित (अपनी चतुराईसे इकट्ठा किया हुआ), यह ' उपस्थान ' कहाता है। यहांतक सीता आदि पदार्थोंका विवरण किया गया ॥ ११ ॥

धान्यस्नेहक्षारलवणानाम् ॥ १२ ॥ धान्यकल्पं सीताध्यक्षे वक्ष्यामः ॥ १३ ॥ सर्पिस्तैलवसामज्जानः स्नेहाः ॥ १४ ॥ फा-णितगुडमत्स्यण्डिकाखण्डशर्कराः क्षारवर्गः ॥ १५ ॥

अब इसके आगे धान्य, स्नेह (घी तेल आदि), क्षार तथा लवण; इन पदार्थोंका निरूपण किया जावेगा ॥ १२ ॥ इन पदार्थोंमेंसे धान्यवर्गका विस्तृत विवरण, सीताध्यक्ष नामक प्रकरणमें कहा जायगा ॥ १३ ॥ घी, तेल, वसा और मज्जा ये चार प्रकारके स्नेह होते हैं ॥ १४ ॥ गन्नेसे बने हुए फाणित (राव), गुड़, मत्स्यण्डिका (गुड़ और खांडके बीचका विकार), खांड तथा शक्कर आदि ये सब क्षारवर्ग हैं ॥ १५ ॥

सैन्धवसामुद्रबिडयवक्षारसौवर्चलोद्भेदजा लवणवर्गः ॥१६॥ क्षौद्रं मार्द्वीकं च मधु ॥ १७ ॥

छः प्रकारका लवण होता है,—सैन्धव (सैंधा नमक), सामुद्र (समुद्रके पानीसे बना हुआ), बिड (एक प्रकारका नमक), यवक्षार (जवाखार आदि), सौवर्चल (सज्जीखार आदि), और उद्भेदज (ऊपरकी मट्टीसे बनाया हुआ नमक), यह लवणवर्ग है ॥ १६ ॥ मधु दो प्रकारका होता है,:—क्षौद्र (मक्खियोंके द्वारा इकट्ठा किया हुआ), तथा मार्द्वीक (मुनक्का तथा दाखके रससे बनाया हुआ) ॥ १७ ॥

ष्पलीकाथाभिषुतो मासिकः षाण्मासिकः सांवत्सरिको वा चिर्भिटोर्वारुकेक्षुकाण्डाम्रफलामलकानसुत' शुद्धो वा शुक्तवर्गः ॥१८॥

इक्षुरस (ईखका रस), गुल (गुड़), मधु (शहद), फाणित (राब), जाम्बव (जामुन फलका रस), पनस (पनस=कटहल फलका रस), इन छःओंमेंसे किसी एकको मेषशृङ्गी (मेंढासींगी) तथा पिप्पली (पीपल) के क्वाथके साथ मिलाकर, एक महीना, छः महीना तथा एक वर्षतक बन्द करके रक्खा जाये; चिर्भिट (मीठी ककड़ी), उर्वारुक (कड़वी ककड़ी), इक्षुकाण्ड (ईख) आम्रफल (आमका फल), तथा आमलक (आंवला) इन पांचों चीजोंको भी उसमें डाले, अथवा न डाले; ऐसा करनेसे जो रस तैयार हो, उसे सिरका कहते हैं। यह एक महीना छः महीना तथा सालभर समयके भेदसे यथाक्रम अधम, मध्यम तथा उत्तम होता है। यह शुक्तवर्ग है ॥ १८ ॥

वृक्षाम्लकरमर्दाम्रविदलामलकमातुलुङ्गकोलबदरसौवीरकपरूषकादिः फलाम्लवर्गः ॥ १९ ॥

इमली (किसी २ ने तिन्तिडीक शब्दका अर्थ केवल खटाई या अमलबेंत भी किया है), करौंदा, आम, अनार, आंवला, खट्टा (एक प्रकारका नींबू), झरबेरीका बेर, पेमली बेर, उन्नाब, फालसा आदि खट्टे रसके फल होते हैं। यह फलाम्लवर्ग है ॥ १९ ॥

दधिधान्याम्लादिः द्रवाम्लवर्गः ॥ २० ॥ पिप्पलीमरीचशृङ्गिबेराजाजिकिराततिक्तगौरसर्षपकुस्तुम्बुरुचोरकदमनकमरुवकशिग्रकाण्डादिः कटुकवर्गः ॥ २१ ॥ शुष्कमत्स्यमांसकन्दमूलफलशाकादि च शाकवर्गः ॥ २२ ॥

दही, कांजी तथा आदि पदसे मठा (तक्र=छाछ) आदि ये पनीली खट्टी चीजें होती हैं। यह द्रववर्ग है ॥ २० ॥ पीपल, मिरच, अदरख, जीरा, चिरायता, बंगा सरसों, धनियां, चोरक (चोरवेल) दमनक (काम्ला नामक औषधि), मरुवक (मनफल), सैंजना आदि ये सब कटु (कडुवे) पदार्थ हैं। यह कटुकवर्ग है ॥ २१ ॥ सूखी मछली, सूखा मांस, कन्द (सूरण, विदारी आदि), मूल (मूली, गाजर आदि) फल, शाक (बथुआ, मेथी आदि), यह सब शाकवर्ग है ॥ २२ ॥

ततो ऽर्धमापदर्थं जानपदानां स्थापयेत् ॥ २३ ॥ अर्धमुपयुञ्जीत ॥ २४ ॥ नवेन चानवं शोधयेत् ॥ २५ ॥

स्नेहवर्गसे लगाकर यहां तक जितने पदार्थ बतलाये गये हैं, उन सबकी उत्पत्तिमेंसे आधा, जन पदपर आपत्ति आनेके समयमें उपयोगमें लानेके लिये रखलेवे ॥ २३ ॥ और आधे सामानका भोजन आदिमें उपयोग करलेवे ॥२४॥ जब नई फसलका नया सामान आवे, तो पुराने सामानकी जगह नया भरलेवे, और पुराने सामनको उपयोगमें लेआवे ॥ २५ ॥

क्षुण्णघृष्टपिष्टभृष्टानामार्द्रशुष्कसिद्धानां च धान्यानां वृद्धिक्षयप्रमाणानि प्रत्यक्षीकुर्वीत ॥ २६ ॥

बार २ कूटा हुआ, साफ किया हुआ, पीसा हुआ, भाड़ आदिमें भूना हुआ, गीला, सुखाया हुआ, तथा पकाकर तैयार किया हुआ, जितना भी धान्य आदि सामान हो, उसके वृद्धि क्षय तथा वर्त्तमान प्रमाण (तोल आदि) को, कोष्ठागाराध्यक्ष स्वयं प्रत्यक्ष करे, अर्थात् सब चीजोंको अपने सन्मुख तुलवाकर उनके परिमाण आदिकी जांच करे ॥ २६ ॥

कोद्रवव्रीहीणामर्धं सारः ॥ २७ ॥ शालीनामर्धभागोनः ॥ २८ ॥ त्रिभागोनो वरकाणाम् ॥ २९ ॥ प्रियङ्गूणामर्धं सारः नवभागवृद्धिश्च ॥ ३० ॥ उदारकस्तुल्यः ॥ ३१ ॥

कोदों और धानमेंसे आधा माल बचता है, आधा चोकर आदिका निकल जाता है ॥ २७ ॥ बढ़िया धानकाभी आधा हिस्सा सारभूत निकलता है, बाकी आधा छिलके आदिमें चला जाता है ॥ २८ ॥ वरक अर्थात् कोभिया आदि अन्नोंका तीसरा हिस्सा चोकरका निकलता है, बाकी दो हिस्से असली माल निकल आता है ॥ २९ ॥ कांगनीका आधा हिस्सा सारभूत निकल आता है। कभी २ नौवां हिस्सा इसका अधिक भी होजाता है ॥ ३० ॥ उदारक (एक प्रकार का मोटा चावल) का कांगनीके समान ही सारभूत भाग निकलता है ॥ ३१ ॥

यवा गोधूमाश्च क्षुण्णाः ॥ ३२ ॥ तिला यवा मुद्गमाषाश्च घृष्टाः ॥ ३३ ॥ पञ्चभागवृद्धिर्गोधूमः सक्तवश्च ॥३४॥ पादोना कलायचमसी ॥ ३५ ॥

जौ और गेहूं भी कूटनेपर समान भाग ही तैयार होजाते हैं। अर्थात् इनके कूटने आदिमें कोई विशेष छीजन नहीं होती ॥ ३२ ॥ तिल, जौ, मूंग

तथा उड़द दलनेपर बराबर ही रहते हैं ॥ ३३ ॥ गेहूं और भुनेहुए जौ, पीसने पर पांचवां हिस्सा बढ़ जाते हैं ॥ ३४ ॥ मटर पीसने पर चौथाई हिस्सा कम होजाता है ॥ ३५ ॥

मुद्गमाषाणामर्धपादोनः ॥३६॥ शैम्बानामर्धं सारः ॥३७॥ त्रिभागोनः मसूराणाम् ॥ ३८ ॥

मूंग और उड़द पीसे जानेपर आठवां हिस्सा कम होजाते हैं ॥३६॥ शैब (ग्वार की फली=खुरली अथवा सेम) का आधा हिस्सा सारभूत निकलता है। आधा चोकर निकल जाता है ॥३७॥ मसूरका तीसरा हिस्सा कम हो जाता है, बाकी दो हिस्से ठीक माल निकलता है। दलने आदिके समय यह तीसरा हिस्सा कम होता है ॥ ३८ ॥

पिष्टमामं कुल्माषाश्चाध्यर्धगुणाः ॥ ३९ ॥ द्विगुणो यावकः ॥ ४० ॥ पुलाकः पिष्टं च सिद्धम् ॥ ४१ ॥

पिसे हुए कच्चे गेहूं तथा मूंग उड़द आदि पकाये जानेपर ड्योढ़े हो जाते हैं ॥ ३९ ॥ कूट छड़कर पीसे हुए जौ, पकाये जानेपर दुगने होजाते हैं ॥ ४० ॥ आधे पकाये हुए चावल और सूजी आदि भी पकाये जानेपर दुगने होजाते हैं ॥ ४१ ॥

कोद्रववरकोदारकप्रियङ्गूणां त्रिगुणमन्नम् ॥ ४२ ॥ चतुर्गुणं व्रीहीणाम् ॥ ४३ ॥ पञ्चगुणं शालीनाम् ॥ ४४ ॥

कोदों, वरक अर्थात् लोभिया आदि, उदारक और कांगनीका भात आदि अन्न पकाया जानेपर तिगुना होजाता है ॥४२॥ व्रीहि (विशेष चावल) चौगुने ॥४३॥ और शाली (बासमती आदि चावल) पांच गुने हो जाते हैं ॥४४॥

तिमितमपरान्नं द्विगुणमर्धाधिकं विरूढानाम् ॥४५॥ पञ्चभागवृद्धिः भृष्टानाम् ॥ ४६ ॥ कलायो द्विगुणः ॥ ४७ ॥ लाजा भरुजाश्च ॥ ४८ ॥

काटनेके समयमें खेतसे जो गीलाही लिया गया हो, ऐसा अन्न; तथा कच्चेही काटे हुए व्रीहि आदि दुगनेही बढ़ते हैं। यदि और कुछ अच्छी अवस्थामें काटे जावें, तो ढाई गुने बढ़ जाते हैं। (किसी २ व्याख्याकारने इसका यह भी अर्थ किया है:—गीले किये हुए चने आदि अन्न दुगने होजाते हैं, यदि चने आदिको गीलाही काट दिया जावे, तो वे ढाई गुना बढ़ जाते हैं) ॥ ४५ ॥ यदि इनको भाड़ आदिमें भूना जावे, तो इनकी पांचवां हिस्सा वृद्धि

होजाती है ॥ ४६ ॥ भुना हुआ मटर दुगना होजाता है ॥ ४७ ॥ धानकी खील और भुने हुए जौ भी दुगने होजाते हैं ॥ ४८ ॥

षट्कं तैलमतसीनाम् ॥४९॥ निम्बकुशाम्रकपित्थादीनां पञ्चभागः ॥ ५० ॥ चतुर्भागिकास्तिलकुसुम्भमधूकेङ्गुदीस्नेहाः ॥५१॥

अलसीका तेल छठा हिस्सा तैयार होता है। अर्थात् जितनी अलसी हो, उसका छठा हिस्सा उसमेंसे तेल निकलता है ॥ ४९ ॥ नीम (निंबौरी), कुशा (घासकी जड़), आम (की गुठली), और कैथमेंसे पांचवां हिस्सा तेल निकलता है ॥ ५० ॥ तिल, कुसुम्भ (कसूम), महुआ, तथा इंगुदी (गोंदा =एक पेड़का नाम है) मेंसे चौथा हिस्सा तेल निकलता है ॥ ५१ ॥

कार्पासक्षौमाणां पञ्चपले पलसूत्रम् ॥ ५२ ॥ पञ्चद्रोणे शालीनां च द्वादशाढकं तण्डुलानां कलभभोजनम् ॥ ५३ ॥

कपास तथा रेशममेंसे, पांच पलमेंसे एक पल सूत्र निकलता है। इस सूत्रमें 'क्षौम' शब्दका अर्थ—'एक विशेष वृक्षकी छाल' भी किया गया है'। तात्पर्य यह है, कि कपास और क्षौम जितना हो, उसमें उसका पांचवां हिस्सा सूत तैयार होता है) ॥ ५२ ॥ पांच द्रोण अर्थात् बीस आढक धानोंमेंसे, जब छड़ कूटकर, बारह आढक तण्डुल अर्थात् चावल रह जावें, तब यह हाथीके बच्चोंके खाने योग्य अन्न होता है ॥ ५३ ॥

एकादशकं व्यालानाम् ॥५४॥ दशकमौपवाह्यानाम् ॥५५॥ नवकं सान्नाह्यानाम् ॥ ५६ ॥ अष्टकं पत्तीनाम् ॥ ५७ ॥ सप्तकं मुख्यानाम् ॥ ५८ ॥ षट्कं देवीकुमाराणाम् ॥ ५९ ॥ पञ्चकं राज्ञाम् ॥ ६० ॥

जब, थोड़ा और साफ़ करके बीस आढकमेंसे ग्यारह आढक रह जावें, तो उसे दुष्ट हाथियों (मस्त हाथियों) के खानेके लिये उपयोग करना चाहिये ॥ ५४ ॥ इसी प्रकार दसवां हिस्सा रहनेपर उसे, राजाकी सवारीके हाथियोंके भोजनमें लगाना चाहिये ॥ ५५ ॥ और नौवां हिस्सा रहनेपर, युद्धमें काम आने वाले हाथियोंके भोजनमें उसका उपयोग करना चाहिये ॥ ५६ ॥ आठवां हिस्सा रहनेपर, पैदल सेनाओंके भोजनके लिये उसका उपयोग करना चाहिये ॥ ५७ ॥ सातवां हिस्सा रहनेपर, उसे प्रधान सेनापतियोंके भोजनके लिये उपयुक्त करना चाहिये ॥ ५८ ॥ छठा हिस्सा रहनेपर, वह रानियों तथा राजकुमारोंके भोजनके काममें आता है ॥ ५९ ॥ तथा पांचवां हिस्सा रहनेपर उसका राजाओंके लिये उपयोग करना चाहिये इसप्रकार बीस आढकमेंसे, अब

साफ़ करते २ पांच आढक अर्थात् चौथाई हिस्सा रह जावे, तब वह राजाके लिये उपयोगमें लानेके योग्य होता है। ऊपर बताये हुए हिस्सोंमें भी इसी तरह समझना चाहिये ॥ ६० ॥

अखण्डपरिशुद्धानां वा तण्डुलानां प्रस्थः ॥ ६१ ॥ चतुर्भागः सूपः सूपषोडशो लवणस्यांशः चतुर्भागः सर्पिषस्तैलस्य वा एकमार्यभक्तम् ॥ ६२ ॥

अथवा राजाके भोजनके लिये, और भी अधिक साफ़ करके, जब बीस आढकमेंसे एक प्रस्थ चावल रह जावें, तब उनका उपयोग करना चाहिये। उन साफ़ किये हुए चावलोंमें एक भी दाना टूटा हुआ न होना चाहिये। साफ़ बिना टूटा एक २ दाना चुनकर बीस आढकमेंसे एक प्रस्थ निकाल लेना चाहिये। (चार प्रस्थका एक आढक होता है, इसतरह बीस आढकके अस्सी प्रस्थ हुए, अस्सीमेंसे एक प्रस्थ चावल छांटने चाहिये) ॥ ६१ ॥ प्रस्थका चौथा हिस्सा सूप (अर्थात् दाल ¼ प्रस्थ होनी चाहिये), सूपका सोलहवां हिस्सा नमक, तथा सूपका ही चौथा हिस्सा घी अथवा तेल; मध्यमस्थितिके एक पुरुषका भोजन होता है। (राजाकी रसोईसे जिन परिचारक आदिको भत्ता दिया जाता है, उसका ही यह परिमाण बताया गया है) ॥ ६२ ॥

प्रस्थषड्भागः सूपः, अर्धस्नेहमवराणाम् ॥ ६३ ॥ पादोनं स्त्रीणाम् ॥ ६४ ॥ अर्धं बालानाम् ॥ ६५ ॥

जो अधमस्थितिके परिचारक हों, उनके लिए प्रस्थका छठा हिस्सा दाल, और पहिलेसे आधा घी अथवा तेल होना चाहिये, शेष सामान पहिलेके बराबर ही होना चाहिये॥ ६३ ॥ इसमें चौथाई हिस्सा कम भोजन स्त्रियोंके लिये होना चाहिए ॥ ६४ ॥ तथा आधा हिस्सा बालकोंके लिये होना चाहिये ॥ ६५ ॥

मांसपलविंशत्या स्नेहार्धकुडुबः पलिको लवणस्यांशः क्षारपलयोगो द्विधरणिकः कटुकयोगो दध्नश्चार्धप्रस्थः ॥ ६६ ॥

मांसके पकानेमें कौन २ सी चीज़ कितनी २ पड़नी चाहिये, अब इसका निरूपण किया जाता है:—बीस पल मांसके साथ, आधा कुडुब चिकनाई (घी या तेल) डालना चाहिये; (चार कुडुबका एक प्रस्थ होता है, प्रस्थका आठवां हिस्सा आधा कुडुब हुआ); एक पल नमक डालना चाहिये, यदि नमक न हो तो एक पलही सज्जीखार या जवाखार आदि डालदेना चाहिये, पीपल, मिरच आदि मसाला दो धरण डालना चाहिये; (अस्सी वंगा सरसोंका एक रूप्यमाषक, और सोलह माषकका एक धरण होता है सब परिमाणोंके जाननेके

लिये पौतवाध्यक्ष प्रकरण देखना चाहिये), और आधा प्रस्थ दो कुडुब, उतने मांसमें दही डालना चाहिये ॥ ६६ ॥

तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ६७ ॥ शाकानामध्यर्धगुणः ॥६८॥ शुष्काणां द्विगुणः स चैव योगः ॥ ६९ ॥

इससे अधिक मांस पकाना हो, तो इसी हिसाबसे, सब चीजें उसमें, उचित मात्रामें डाल देनी चाहियें ॥ ६७ ॥ हरे शाक बनानेके लिये यही सब मसाला (जो मांसके लिये बताया गया है) ड्योढी मात्रामें डालना चाहिये। अर्थात् बीस पल हरे शाकमें डेढ़ गुना उपर्युक्त मसाला डालना चाहिये ॥ ६८ ॥ सूखे शाक अथवा मांसमें यही मसाला दुगना डाला जावे ॥ ६९ ॥

हस्त्यश्वयोस्तदध्यक्षे विधाप्रमाणं वक्ष्यामः ॥ ७० ॥ बली-वर्दानां माषद्रोणं यवानां वा पुलाकः शेषमश्वविधानम् ॥ ७१ ॥

हाथी और घोड़ेके लिये, चावल आदिका प्रमाण, उनके अध्यक्षके प्रकरणमें, अर्थात् हस्त्यध्यक्ष तथा अश्वाध्यक्ष प्रकरणमें निरूपण किया जायगा ॥ ७० ॥ बैलोंके लिये एक द्रोण परिमाण उड़द, तथा इतनेही, आधे उबले हुए जौ जानने चाहियें, शेष सब घोड़ोंके समान ही समझना चाहिये ॥ ७१ ॥

विशेषो—घाणपिण्याकतुला कणकुण्डकं दशाढकं वा ॥७२॥

घोड़ोंकी अपेक्षा बैलोंके लिये जो विशेष है, वह भी बताते हैं:—सूखे हुए तिलोंके कल्कके सौ पल, अथवा टूटे हुए चावलोंसे मिश्रित अनाजकी भूसी आदि, दश आढक होने चाहियें ॥ ७२ ॥

द्विगुणं माहिषोष्ट्राणाम् ॥ ७३ ॥ अर्धद्रोणं खरपृषतरोहितानाम् ॥ ७४ ॥ आढकमेणकुरङ्गाणाम् ॥ ७५ ॥ अर्धाढकमजैल-कवराहाणां द्विगुणं वा कणकुण्डकम् ॥ ७६ ॥

इससे दुगना सामान भैंसा और ऊँटोंके लिये होना चाहिये ॥७३॥ यही सब सामान, गदहा और चीतल हिरणोंको, आधा द्रोण अर्थात् दो आढक देना चाहिये ॥ ७४ ॥ एण और कुरङ्ग जातिके हिरणोंको (एण और कुरङ्ग ये हिरणोंकी विशेष जातियां हैं), यही सामान एक आढक परिमाणमें देना चाहिये ॥ ७५ ॥ बकरी भेड़ तथा सूअरोंको आधा आढक देना चाहिये। चावल आदिकी कनकी और भूसी मिलाकर, इससे दुगनी अर्थात् पूरी एक आढक देनी चाहिये ॥ ७६ ॥

प्रस्थौदनः शुनाम् ॥ ७७ ॥ हंसक्रौञ्चमयूराणामर्धप्रस्थः ॥ ७८ ॥ शेषाणामतो मृगपशुपक्षिव्यालानामेकभक्तादनुमानं ग्राहयेत् ॥ ७९ ॥

कुत्तोंको एक प्रस्थ परिमित खाना देना चाहिये ॥ ७७ ॥ हंस क्रौञ्च और मोरोंको आधा प्रस्थ देना चाहिये ॥ ७८ ॥ इनसे अतिरिक्त जितने भी जंगली या ग्राम्य पशु, पक्षी, तथा सिंह आदि हिंसक प्राणी हों, उन सबके लिये; एक दिन खिलाकर, जितना वे खासकें, उसीके अनुसार अनुमानसे खानेके परिमाण आदिका निर्णय करा देवे ॥ ७९ ॥

अङ्गारांस्तुषांल्लोहकर्मान्तभित्तिलेप्यानां हारयेत् ॥ ८० ॥ कणिका दासकर्मकरसूपकाराणामतो ऽन्यदौदनिकापूपिकेभ्यः प्रयच्छेत् ॥ ८१ ॥

कोयले और चोकर या भूसीको, लुहारों तथा मकान लीपने वाले पुरुषोंको देदेवे ॥ ८० ॥ चावल आदि नाजोंमेंसे छड़ फटककर निकली हुई बारीक कनकीको, दास (क्रीत सेवक), कर्मकर (अन्य गृह कार्य करने वाले सेवक), तथा सूपकार (रसोईया) को देदेवे । वे उसको अपने खाने आदिके काममें ले आवें । इससे अतिरिक्त और जो कुछ बचे, उसको साधारण अन्न पकाने वाले तथा पकवान आदि बनाने वाले परिचारकके लिये देदेवे ॥ ८१ ॥

तुलामानभाण्डं रोचनी दृषन्मुसलोलूखलकुट्टकरोचकयन्त्रपत्त्रकशूर्पचालनिकाकण्डोलीपिटकसंमार्जन्यश्चोपकरणानि ॥८२॥

पाकशालाके विशेष उपकरण (साधन=जो रसोईके कार्योंमें काम आते हैं), निम्नलिखित हैं:—तुला (तराजू), मानभण्ड (बाट आदि; इनका परिमाण पौतवाध्यक्ष प्रकरणमें बताया जायगा), रोचनी (दाल आदि दलनेका चकला), दृषत् (दाल या मसाला आदि पीसनेकी सिल), मूसल, ओखली, कुट्टक यन्त्र (धान आदि कूटनेका यन्त्र विशेष), रोचक यन्त्र (आटा आदि पीसनेका यन्त्र=चक्की, इसके तीन प्रकार हैं:—मनुष्यके द्वारा चलाई जाने वाली, और बैलों तथा पानीसे चलाई जाने वाली; पहिलीको साधारणतया, चक्की, और आगेकी दोनोंको घराट कहते हैं; पानीसे चलाई जाने वालीका नाम पनचक्की भी है); पत्त्रक (लकड़ीका बना हुआ; छिलका आदि साफ करने वाला); शूर्प (सूप=छाज), चालनिका (चलनी=छलनी) कण्डोली (बांसकी पतली खपच्चोंसे बनी हुई छोटीसी टोकरी जिसमें बाजारसे साग

आदि लाया जासके), पिटक (पिटारी, ऐसी चीजें रखनेके लिये, जिनमें हवा लगनी रहनी आवश्यक हो), और संमार्जनी (झाडू-बुहारी) ॥ ८२ ॥

मार्जकरक्षकधरकमायककापकदायकदापकशलाकाप्रतिग्राहकदासकर्मकरवर्गश्च विष्टिः ॥ ८३ ॥

झाडू लगाने वाला, कोष्ठागारकी रक्षा करने वाला, तराजू आदि उठा कर तोलने वाला, तुलवाने वाला, इनका अधिष्ठाता, देने वाला, इसका अधिष्ठाता, बोझ आदिको उठाने वाला, दास (क्रीत दास), और कर्मकर, ये सब लोग विष्टि कहाते हैं ॥ ८३ ॥

उच्चैर्धान्यस्य निक्षेपो मूताः क्षारस्य संहताः ।
मृत्काष्ठकोष्ठाः स्नेहस्य पृथिवी लवणस्य च ॥ ८४ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे कोष्ठागाराध्यक्षः पञ्चदशो ऽध्यायः ॥ १५ ॥
आदितः षट्त्रिंशः ॥ ३६ ॥

धान्य आदिको ऊँचे स्थानमें रखना चाहिये, जहां भूमिके साथ स्पर्श न होसके, क्षार अर्थात् गुड़ राब आदिके रखनेके लिये खूब घना फूंस आदि लगाकर स्थान बनाना चाहिये; (अर्थात् ऐसा स्थान होना चाहिये, जहांपर गुड़ राब आदिमें सील न पहुंच सके; चारों ओर फूंस लगानेसे अच्छी गरमी बनी रहती है), स्नेह अर्थात् घृत तैल आदिके रखनेके लिये, मट्टीके (मृद्बान आदि) या लकड़ीके पात्र आदि बनाने चाहियें । नमक आदिको पृथिवीपर ही रखदेना चाहिये । जिन पदार्थोंके रखनेका निर्देश नहीं किया गया है,कोष्ठागाराध्यक्षको चाहिये, कि उसके रखनेका भी यथायोग्य प्रबन्ध करे ॥ ८४ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ।

सोलहवां अध्याय

३४ प्रकरण

पण्याध्यक्ष ।

विक्रीके योग्य राजद्रव्यको 'पण्य' कहते हैं, उसके क्रय विक्रय के लिये जो पुरुष नियुक्त किया जावे, उसका नाम 'पण्याध्यक्ष' है । इस प्रकरणमें राजकीय पण्यके क्रय-विक्रय व्यवहारका निरूपण किया जायगा।

पण्याध्यक्षः स्थलजलजानां नानाविधानां पण्यानां स्थलपथवारिपथोपयातानां सारफल्ग्वर्घान्तरं प्रियाप्रियतां च विद्यात् ॥ ॥ १ ॥ तथा विक्षेपसंक्षेपक्रयविक्रयप्रयोगकालान् ॥ २ ॥

पण्याध्यक्षको चाहिये कि वह स्थल और जलमें उत्पन्न होने वाले, स्थलमार्ग तथा जलमार्गसे आये हुए नाना प्रकारके पण्योंके सार तथा फल्गु मूल्यके तारतम्य को, और उनकी लोकप्रियता तथा अप्रियताको अच्छी तरह जाने । (सार और फल्गुसे तात्पर्य-बहुमूल्य और अल्पमूल्य वस्तुओंसे है, उन के मूल्यकी न्यूनाधिकताके क्रमको अवश्य जाने । जिस पदार्थका विक्रय अति शीघ्र होजावे, वह लोकप्रिय, और दूसरा अप्रिय समझना चाहिये) ॥ १ ॥ इसी तरह पण्याध्यक्षको यहभी आवश्यक है, कि वह विक्षेप (संक्षिप्त द्रव्यका विस्तार), संक्षेप (विस्तृत द्रव्यका संक्षेप), क्रय (पण्यका संग्रह=खरीदना) और विक्रय (संगृहीत पण्यका व्यय करदेना=अर्थात् बेचदेना) के उचित प्रयोग कालको अच्छी तरह पहिचाने ॥ २ ॥

यच्च पण्यं प्रचुरं स्यात्तदेकीकृत्यार्घमारोपयेत् ॥ ३ ॥ प्राप्तेऽर्घे वार्घान्तरं कारयेत् ॥ ४ ॥

जो केसर आदि पण्य अधिक मात्रामें हो, उस सबको इकट्ठा करके अधिक मूल्यपर चढ़ा देवे ॥ ३ ॥ जब उसका उचित मूल्य प्राप्त होजावे, तो फिर उसे हलके दामोंमें ही बेचदेवे ॥ ४ ॥

स्वभूमिजानां राजपण्यानामेकमुखं व्यवहारं स्थापयेत् ॥५॥ परभूमिजानामनेकमुखम् ॥ ६ ॥

अपनी भूमिमें उत्पन्न हुए राजपण्योंके विक्रय आदि व्यवहारोंकी स्थापना, राजा एक ही नियत स्थानसे करवाये । तात्पर्य यह है कि जो पण्य अपने ही देशमें उत्पन्न हो, उसका किसी एक व्यक्तिको ठेका आदि देदेवे, और उसी के द्वारा उसका विक्रय करावे ॥ ५ ॥ जो दूसरे देशमें उत्पन्न हुआ २ पण्य हो उसका अनेक स्थानोंसे विक्रय करावे ॥ ६ ॥

उभयं च प्रजानामनुग्रहेण विक्रापयेत् ॥ ७ ॥ स्थूलमपि च लाभं प्रजानामौपघातिकं वारयेत् ॥ ८ ॥

अपने देश तथा परदेशमें उत्पन्न हुए २ दोनों प्रकार के पण्यो का विक्रय आदि, राजा को इस प्रकार कराना चाहिये, जिससे कि प्रजाको किसी प्रकारका कष्ट न पहुंचे ॥ ७ ॥ यदि किसी कार्यमें बहुत अधिक भी छ्[illegible]

होता हो परन्तु उस कार्यके करनेसे प्रजाको कष्ट पहुंचता हो, तो राजा उस कार्य को तत्क्षण रोक देवे ॥ ८ ॥

अजस्रपण्यानां कालोपरोधं संकुलदोषं वा नोत्पादयेत् ॥९॥

जल्दी ही बिक जाने योग्य, शाक तथा दूध आदि पण्योंका अधिक समय तक रोके रहना तथा शाक आदि बेचने का पहिले किन्हीं व्यक्तियोंको ठेका देकर, उनका माल न बिकनेपर ही दूसरोंको, लोभके कारण ठेका देदेना, यह सर्वथा अनुचित है ॥ ९ ॥

बहुमुखं वा राजपण्यं वैदेहकाः कृतार्घं विक्रीणीरन् ॥१०॥ भेदानुरूपं च वैधरणं दद्युः ॥ ११ ॥

बहुत स्थानोंसे, अर्थात् बहुतसे व्यक्तियोंके द्वारा बेचे जाने वाले राज पण्यको, व्यापारी लोग मूल्य निश्चय करके बेचें; अर्थात् नियत मूल्यपर बेचे ॥ १० ॥ यदि विक्रय होनेपर मूल्यमें कुछ कमी होजावे, तो उसके अनुसारही व्यापारी लोग उस सारी कमीको पूरा करें। (इस पूर्त्ति करनेका नाम 'वैधरण' है) ॥ ११ ॥

षोडशभागो मानव्याजी ॥ १२ ॥ विंशतिभागस्तुलामानम् ॥ १३ ॥ गण्यपण्यानामेकादशभागः ॥ १४ ॥

व्यापारियोंसे कितना २ राजकीय अंश लेना चाहिये, इसका निरूपण किया जाता है:—जितना द्रव्य व्यापारियोंके यहां मापा जावे, उसका सोलहवां हिस्सा राजाको देना चाहिये; इसका नाम व्याजी या मानव्याजी होता है। ॥ १२ ॥ जो द्रव्य तोला जावे, उसका बीसवां हिस्सा राजाको देना चाहिये ॥ १३ ॥ जो पण्य द्रव्य गिने जावें, उनका ग्यारहवां हिस्सा राजाके लिए देना चाहिये ॥ १४ ॥

परभूमिजं पण्यमनुग्रहेणावाहयेत् ॥ १५ ॥ नाविकसार्थवाहेभ्यश्च परिहारमायतिक्षमं दद्यात् ॥ १६ ॥ अनभियोगश्चार्थेष्वागन्तूनामन्यत्र सभ्योपकारिभ्यः ॥ १७ ॥

परदेश में उत्पन्न हुए २ पण्यको, अन्तपाल तथा आटविक आदिके उपद्रवोंसे बचाकर, और व्याजी आदि छोड़ देनेका वादाकरके मंगवाये ॥ १५ ॥ नाव तथा जहाज आदिके द्वारा माल लाने लेजाने वाले व्यापारियोंसे भी राजा, अपना आदेय अंश न लेवे, अर्थात् उन्हें कुछ टेक्स माफ करदेवे। और भविष्यत् में भी किसी प्रकारकी बाधा न पहुंचानेका वचन देदेवे ॥ १६ ॥ विदेशसे आने वाले व्यापारियों पर उत्तमर्ण की ओरसे अर्थ अर्थात् ऋण

सबन्धी अभियोग नहीं चलाया जाना चाहिये अर्थात् राजा उनके सम्बन्ध मे विना ही अभियोगके ऋण आदि देनेकी व्यवस्था करदेवे। परन्तु जो पुरुष विदेशी व्यापारी का उपकार करने वाले, अर्थात् कार्यमें सहयोग देने वाले तथा अन्य कर्मचारी पुरुष हों, उनका परस्पर अभियोग अवश्य हो सकता है ॥ १७ ॥

पण्याधिष्ठातारः पण्यमूल्यमेकमुखं काष्ठद्रोण्यामेकच्छिद्रापिधानायां निदध्युः ॥ १८ ॥ अह्नश्चाष्टमे भागे पण्याध्यक्षस्यार्पयेयुः, इदं विक्रीतमिदं शेषमिति ॥ १९ ॥ तुलामानभाण्डकं चार्पयेयुः ॥ २० ॥ इति स्वविषये व्याख्यातम् ॥ २१ ॥

सरकारी माल को बेचने वाले पुरुष, बिके हुए मालकी, इकट्ठी हुई २ कीमत को, एक छेद वाली लकड़ी की बन्द सन्दूकचीमें डालदेवें ॥ १८ ॥ और दिनके आठवें भागमें, (अर्थात् सायं कालके समय, जब कि क्रय और विक्रय आदि का दैनिक व्यवहार बन्द किया जाता हो) 'इतना बेच दिया है और इतना शेष रहा है' ऐसा कहकर वह सब धन और माल पण्याध्यक्ष के सुपुर्द करदेवें ॥ १९ ॥ तराजू तथा बाट आदि आवश्यक उपकरणों को भी उसी तरह पण्याध्यक्षके सुपुर्द करदेवें ॥ २० ॥ यहांतक अपने देशमें, पण्य द्रव्योंके बेचने आदिकी विधिका विवरण किया गया ॥ २१ ॥

परविषये तु पण्यप्रतिपण्ययोरर्घमूल्यं चागमय्य शुल्कवर्तन्यातिवाहिकगुल्मतरदेयभक्तभाटकव्ययशुद्धमुदयं पश्येत् ॥२२॥

अब परदेशमें किस तरह व्यापार करना चाहिये, इसका निरूपण किया जाता है:—अपने देशके तथा परदेशके पण्य द्रव्योंके न्यून अधिक तथा समान मूल्यको और उनके पैक आदि करानेकी कीमत को अच्छी तरह जानकर, और शुल्क (शुल्काध्यक्ष प्रकरणमें कहे हुए टैक्स आदि), वर्तनीदेय (अन्तपालको दिया जाने वाला), आतिवाहिकदेय (मार्गमें सहायता करने वाली पुलिस का देय अंश), गुल्मदेय (जंगलके रक्षकका देय अंश), तरदेय (नदी आदि पारकराने वाले नाविकका देय अंश), भक्त (भोजनका व्यय) तथा भाटक (भाड़ा) आदि इन सब तरहके खर्चों को निकालकर शुद्ध आमदनी देखे। तात्पर्य यह है कि सब तरहके व्ययको निकालकर फिर जो कुछ बचता हो, उसपर विचार करे कि इतनी आयपर हम अपने मालको विदेश में लेजाकर, वहांके मालके मुकाबलेमें बेच सकते हैं या नहीं ॥ २२ ॥

असत्युदये भाण्डानिर्वहणेन पण्यप्रतिपण्यार्घेण वा लाभं पश्येत् ॥ २३ ॥ ततः सारपादेन स्थलव्यवहारमध्वना क्षेमेण प्रयोजयेत् ॥ २४ ॥

यदि इसमें कुछ लाभ न दीखता हो, तो अपने मालको विदेशमें भी लेजाकर भविष्यमें लाभकी प्रतीक्षा करते हुए, उसीके अनुसार विक्रयके द्वारा अपने लाभका विचार करे; अथवा अपने मालसे वहां के लोकप्रिय मालको बदलकर फिर अपने लाभको देखे ॥ २३ ॥ तदनन्तर विचारे हुए लाभका चौथा हिस्सा व्यय करके, उपद्रव रहित स्थलमार्गसे भी कुछ व्यापार करना आरम्भ करदे ॥ २४ ॥

अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेदनुग्रहार्थम् ॥ २५ ॥ आपदि सारमात्मानं वा मोक्षयेत् ॥ २६ ॥

अटवीपाल (जंगलका रक्षक), अन्तपाल (सीमारक्षक), नगर के मुख्य पुरुष और राष्ट्रके भी मुख्य २ पुरुषोंके साथ संगत करे, अर्थात् उनसे अच्छी तरह अपनी जान पहचान बढ़ावे; जिससे कि वे अपनेसे अनुकूल रहकर अपने व्यापारमें लाभ पहुंचा सकें ॥ २५ ॥ यदि मार्गमें अथवा रहने के स्थानमें ही कोई चोर आदि का उपद्रव होजावे तो सबसे प्रथम सार अर्थात् रत्न आदि द्रव्यों को और अपने शरीर को छुड़ावे, अर्थात् इनकी रक्षा करे । यदि दोनों की रक्षा सम्भव न हो, तो रत्न आदिका भी परित्याग कर अपने आपको ही बचावे ॥ २६ ॥

आत्मनो वा भूमिमप्राप्तः सर्वदेयविशुद्धं व्यवहरेत् ॥२७॥

परदेशमें व्यापार करता हुआ पुरुष जब तक अपने देशमें न लौट आवे, तब तक (अर्थात् जितनी देर परदेशमें व्यापार करता रहे उस समयमें) वहांके राजाके जितने भी देयअंश हों (सरकारी टैक्स हों), उन सबको नियम पूर्वक अदा करता हुआ ही अपने व्यापारको चलावे; क्योंकि कहीं ऐसा न होजाय, कि थोड़ासा टैक्स न देनेके लोभमें अपना सर्वनाश होजाय ॥ २७ ॥

वारिपथे च यानभाटकपथ्यदनपण्यप्रतिपण्यार्घप्रमाणयात्राकालभयप्रतीकारपण्यपत्तनचारित्राण्युपलभेत ॥ २८ ॥

जलमार्गसे व्यापार करने वाले व्यापारीको, यानभाटक (नाव तथा जहाज आदिके भाड़े), पथ्यदन (मार्गमें खाने पीने का व्यय), पण्य और प्रतिपण्यके मूल्यका प्रमाण (अर्थात् अपना विक्रेय द्रव्य और पराये विक्रेय द्रव्यके मूल्यकी न्यूनाधिकता=तारतम्य), यात्राकाल (कौनसी ऋतु आदिमें

यात्रा करना ठीक रहेगा, अथवा कितने दिन में यात्रा समाप्त हो सकेगी, यह बात), भयप्रतीकार (मार्गमें होने वाले चोर आदिके भयका प्रतीकार) और जिस दूसरे देशके नगरमें जाकर अपने विक्रेय मालको बेचना है, वहांके आचार व्यवहार; इत्यादि सब ही बातोंके सम्बन्धमें अच्छी तरह विचार करना चाहिये। सब बातों को अनुकूल समझ कर ही ऐसा व्यवहार करे ॥ २८ ॥

नदीपथे च विज्ञाय व्यवहारं चरित्रतः।
यतो लाभस्ततो गच्छेदलाभं परिवर्जयेत् ॥ २९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे पण्याध्यक्षः षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥
आदितः सप्तत्रिंशः ॥ ३७ ॥

इसी प्रकार न केवल समुद्रमार्गमें ही, किन्तु नदीमार्गमें भी, उन २ देशोंके चरित्र अर्थात् आचार और बनिज व्यापारको अच्छी तरह जानकर ही जिस मार्गसे लाभ हो, उसीका अनुसरण करे, थोड़ेसे लाभ या अलाभ को, तथा जिसमें प्रवास आदि का महान क्लेश हो, ऐसे मार्ग को सर्वथा छोड़देवे ॥ २९ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें सोलहवां अध्याय समाप्त।

सत्रहवां अध्याय।

३९ प्रकरण।

कुप्याध्यक्ष।

चन्दन आदिकी बढ़िया लकड़ी, बांस तथा छाल आदि सब 'कुप्य' कहाते हैं। इन पदार्थोंपर जो राजकीय अधिकारी पुरुष नियुक्त किया गया हो उसका नाम 'कुप्याध्यक्ष' है। इस प्रकरणमें उसकेही कार्योंका निरूपण किया जायगा।

कुप्याध्यक्षो द्रव्यवनपालैः कुप्यमानाययेत् ॥ १ ॥ द्रव्यवनकर्मान्तांश्च प्रयोजयेत् ॥ २ ॥ द्रव्यवनच्छिदां च देयमत्ययं च स्थापयेदन्यत्रापद्भ्यः ॥ ३ ॥

कुप्याध्यक्षको चाहिये कि वह, भिन्न २ स्थानोंके वृक्षों तथा जंगलोंकी रक्षा करने वाले पुरुषोंके द्वारा कुप्य अर्थात् बढ़िया लकड़ी मंगवावे ॥ १ ॥ और लकड़ीसे बनने वाले अन्य कार्योंको भी करवावे अर्थात् लकड़ीसे जो

और चीज बनाई जाती हैं उनका भी अनवाय ॥ २ ॥ जो पुरुष, जंगल या वृक्ष आदिका काटने वाले हों, अर्थात् यही कार्य करके अपनी आजीविका करने वाले हों, उनको वृक्ष आदि काटनेके लिये जो कुछ वेतन देना हो, वह पहिले हीसे नियत करलेना चाहिये; और आज्ञासे अन्यथा कार्य करनेपर दण्ड आदि भी नियत करदेना चाहिये। परन्तु यदि किसी आपत्तिके कारण, कार्य अन्यथा होगया हो, तो दण्ड न देना चाहिये ॥ ३ ॥

कुप्यवर्गः-शाकतिनिशधन्वनार्जुनमधूकतिलकसालशिंशपारिमेदराजादनशिरीषखदिरसरलतालसर्जाश्वकर्णसोमवल्ककशाम्रप्रियकधवादिः सारदारुवर्गः ॥ ४ ॥

अब इसके आगे कुप्य वर्गका निरूपण किया जाता है; कुप्य वर्गमें अनेक आवान्तर भेद हैं; उनमें सबसे प्रथम सारदारुवर्ग (सबसे बढ़िया लकड़ी कौन कौनसी है, इस बात) को बताते हैं:—शाक (सागून), तिनिश (तुन=तिवस=तेंदुआ), धन्वन (पपिलका वृक्ष), अर्जुन, (यह वृक्ष इसी नामसे प्रसिद्ध है), मधूक (महुआ), तिलक (फरास, इसको झाऊमस्याना भी कहते हैं; यह वृक्ष झाऊके ढङ्गका होता है, पर उससे काफी बड़ा होता है), साल (यह वृक्ष इसी नामसे प्रसिद्ध है), शिंशपा (शीशम=टाली), अरिमेद (एक प्रकारके खैर वृक्षका नाम है, इसमेंसे कुछ २ दुर्गन्ध आती है), राजादन (खिरनी), शिरीष (सिरस), खदिर (खैर), सरल (एक प्रकार देवदार; सम्भवतः यह सीधा जाने वाले यूकलिप्टसका नाम हो), ताल (ताड़), सर्ज (पीले रङ्गका साल), अश्वकर्ण (यह भी साल वृक्षकाही एक भेद है, सम्भवतः यह बड़ा सरू हो), सोमवल्क (सफेद खैर), कश (कीकर=बबूर), आम, प्रियक (कदंब), धव (गूलर); इन सबकी लकड़ी बहुत बढ़िया मजबूत होती है। आदि शब्दसे, अन्य इमली आदि सबही मजबूत लकड़ी वाले वृक्षोंका ग्रहण करलेना चाहिये। यह सब सारदारुवर्ग है ॥ ४ ॥

उटजचिमियचापवेणुवंशसातीनकण्टकभाल्लूकादिर्वेणुवर्गः ॥ ५ ॥ वेत्रशीकवल्लीवाशीश्यामलतानागलतादिर्वल्लीवर्गः ॥६॥

उटज (जो बहुत खोखला हो, और जिसकी गांठोंपर कांटेसे हों), चिमिय (ठोस तथा मुलायम छाल वाला), चाप (थोड़ासा पोला और ऊपरसे बहुत खरखरासा), वेणु (चिकना, धनुष बनाने योग्य), वंश (लम्बी पोरियों वाला), सातीन, कण्टक (ये भी बांसोंके भेद हैं), भाल्लूक (बहुत मोटा और लम्बा तथा कांटोंसे रहित); इत्यादि ये सब बांसोंके भेद हैं ॥ ५ ॥ वेत्र (बेंत), शीकवल्ली (हंस वल्ली=एक प्रकारकी लता), वाशी (अर्जुनके

फलाके समान फूल वाला एक लत) श्यामलता (काली निसात अथवा सरयाई) नागलता (नागवल्ली—नागर पानकी बेल); आदि ये सब लता-ओंके भेद हैं ॥ ६ ॥

मालतीमूर्वार्कशणगवेधुकातस्यादिर्वल्कवर्गः ॥ ७ ॥

मालती (चमेली), मूर्वा (मरोर फली), अर्क (आख=आक), शण (सन), गवेधुका (नागबला), अतसी (अलसी), आदि यह वल्कवर्ग है। अर्थात् इनकी छाल काममें आती है ॥ ७ ॥

मुञ्जवल्बजादि रज्जुभाण्डम् ॥८॥ तालीतालभूर्जानां पत्त्रम् ॥ ९ ॥ किंशुककुसुम्भकुङ्कुमानां पुष्पम् ॥ १० ॥

मुञ्ज (मूंज), बल्बज (लखा=एक प्रकारकी घास), ये रज्जु अर्थात् रस्सी बनानेके साधन हैं ॥ ८ ॥ ताली (ताड़का एक भेद), ताल (ताड़), भूर्ज (भोजपत्र), इनका पत्ता कागज आदि की तरह लिखने के काम में आता है ॥ ९ ॥ किंशुक (ढाक), कुसुम्भ (कसूम), कुंकुम (केसर), ये सब वस्त्रादिके रंगनेके साधन हैं ॥ १० ॥

कन्दमूलफलादिरौषधवर्गः ॥ ११ ॥

कन्द (विदारी सूरण आदि), मूल (जड़=खस आदि), फल (आंवला, हरीतकी आदि), ये सब औषधिवर्ग है ॥ ११ ॥

कालकूटवत्सनाभहालाहलमेषशृङ्गमुस्ताकुष्ठमहाविषवेल्लितक-गौरार्द्रबालकमार्कटहैमवतकालिङ्गकदारदकांकोलसारकोष्ट्रकादीनि विषाणि ॥ १२ ॥

कालकूट, वत्सनाभ, हालाहल, मेषशृङ्ग, मुस्ता (मोथे की तरह आकार वाला), कुष्ठ (कूटके समान), महाविष, वेल्लितक (मूलसे पैदा हुआ, काला और लाल रंगका), गौरार्द्र (कन्दसे पैदा हुआ, काले रंगका), बालक (पीपलके आकारका), मार्कट (बन्दरके समान रंगका), हैमवत (हिमालय मे उत्पन्न हुआ २) कालिङ्गक (कलिङ्ग देशमें उत्पन्न हुआ २, जौ की आकृति के समान), दारदक (दरदसे उत्पन्न होने वाला पत्रविष), अङ्कोलसारक (अङ्कोल वृक्षसे उत्पन्न हुआ २), उष्ट्रक (ऊंटके मेढ़के समान आकार वाला) इत्यादि ये सब विष होते हैं ॥ १२ ॥

सर्पाः कीटाश्च त एव कुम्भगता विषवर्गः ॥ १३ ॥

सर्प (सांप), कीट (चारी माछे मेंढक छपकी आदि) आदि

घड़ेमें बन्द करके संस्कृत किये जायें, तो विष होजाते हैं। यह विषवर्ग है ॥ १३ ॥

गोधासेरकद्वीपिशिंशुमारसिंहव्याघ्रहस्तिमहिषचमरसृमरखड्गगोमृगगवयानां चर्मास्थिपित्तस्नाय्वस्थिदन्तशृङ्गखुरपुच्छान्यन्येषां वापि मृगपशुपक्षिव्यालानाम् ॥ १४ ॥

गोह, सेरक (चन्दन गोह, सफेद खालकी गोह का नाम है, जो प्रायः स्थलमें रहती है), द्वीपी (बघेरा), शिंशुमार (एक प्रकारकी बड़ी मछली), सिंह, व्याघ्र, हाथी, भैंसा, चमर (चंवरी गाय), सृमर (जंगली पशु जाति), खड्ग (गैंडा), गाय, हरिण और नीलगाय; इनकी खाल हड्डी पित्ता स्नायु (जिससे तांत बनती है, स्नायु शब्दके आगे फिर दुबारा अस्थि शब्द आगया है। यहांपर इस शब्दका पाठ अनावश्यक होनेसे संदिग्ध है), दांत, सींग, खुर, पूंछ, आदि चीजें काममें आती हैं; अर्थात् गोह आदि पशुओं की खाल आदि चीजोंको कुप्यके अन्तर्गत होनेसे अवश्य संगृहीत करे। इनके अतिरिक्त और भी जो मृग, पशु पक्षी तथा जंगली हिंसक जानवर हों उनके चर्म आदि का भी संग्रह करे ॥ १४ ॥

कालायसताम्रवृत्तकांस्यसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटानि लोहानि ॥ १५ ॥

कालायस (काला लोहा), ताम्रवृत्त (तांबा), कांस्य (कांसा), सीस (सीसा), त्रपु (रांग), वैकृन्तक (एक प्रकार का लोहा), आरकूट (पीतल), ये सब लोहेके ही भेद कहाते हैं। ये सभी आकरकर्मान्त प्रकरणमें कहे जाकर भी, यहां कुप्यमें गणना करनेके लिये फिर कहे गये हैं॥१५॥

विदलमृत्तिकामयं भाण्डम् ॥ १६ ॥

भाण्ड अर्थात् पात्र दो प्रकारके होते हैं, एक विदलमय, दूसरे मृत्तिकामय। जो बांसकी खपच्च या इसी प्रकारकी दूसरी बारीक लकड़ियों से ही बनाये जावें, वे पिटारी टोकरी आदि पहिले; और मिट्टीसे बनाये जाने वाले घड़े सकोरे आदि दूसरे होते हैं। ये भी संग्राह्य होते हैं ॥ १६ ॥

अङ्गारतुषभस्मानि मृगपशुपक्षिव्यालवाटाः काष्ठतृणवाटाश्चेति ॥ १७ ॥

कोयले और राख आदि; मृग पशु पक्षी तथा अन्य हिंसक जंगली जानवरोंके समूह, तथा लकड़ी और घास फूंसके ढेरोंका भी कुप्य होनेके कारण संग्रह करना है ॥ १७

बहिरन्तरश्च कर्मान्ता विभक्ताः सर्वभाण्डिकाः ।
आजीवपुररक्षार्थाः कार्याः कुप्योपजीविना ॥ १८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे कुप्याध्यक्षः सप्तदशो ऽध्यायः ॥ १७ ॥
आदितो ऽष्टत्रिंशः ॥ ३८ ॥

बाहर जंगलोंके समीप तथा जनपदमें, और अन्दर दुर्ग आदिमें, पृथक् २ गाड़ी तथा लकड़ी आदिसे बनी हुई अन्य चीजें या सवारियां; सब तरहके भाण्ड (पात्र) आदिके समूह, इत्यादि सब ही आवश्यक पदार्थों का और अपनी आजीविका, तथा नगर आदिकी रक्षाके लिये अन्य आवश्यक पदार्थोंका भी; कुप्योपजीवी (कुप्यसे अपनी आजीविका करने वाले कुप्याध्यक्ष आदि) पुरुष अच्छी तरह संग्रह करें ॥ १८ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें सत्रहवां अध्याय समाप्त ।

अठारहवां अध्याय

३६ प्रकरण

आयुधागाराध्यक्ष ।

आयुधागाराध्यक्षः सांग्रामिकं दौर्गकर्मिकं परपुराभिघातिकं चक्रयन्त्रमायुधमावरणमुपकरणं च तज्जातकारुशिल्पिभिः कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः कारयेत् ॥ १ ॥

आयुधागाराध्यक्ष, संग्राममें काम आनेवाले, दुर्ग की रक्षा के काममें आनेवाले, तथा शत्रुके नगरका विध्वंस करनेमें काम आनेवाले, सर्वतोभद्र (मैशीनगन), जामदग्न्य आदि यन्त्रोंका; (किसी २ पुस्तकमें 'यन्त्रम्' के स्थानपर 'चक्रयन्त्रम्' पाठ है), शक्ति चाप आदि अन्य हथियारोंका, तथा आवरण कवच आदि और सवारी आदि अन्य साधनोंका ; उन २ कार्योंको जाननेवाले कारु (मोटा काम करनेवाले कारीगर) और शिल्पी (बारीक काम करनेवाले कारीगर) पुरुषोंके द्वारा निर्माण करावे । उन कारीगरोंसे प्रतिदिन कितना काम कराना चाहिये, अर्थात् यन्त्र आयुध आदि कितने तैयार कराने चाहियें, और कितने समय काम कराना चाहिये (अर्थात् कार्य करनेका समय कितना होना चाहिये); तथा उनका वेतन आदि कितना होना चाहिये, इन सब बातोंका पहिलेहीसे निश्चय करके फिर उन (कारीगरों) से काम कराना चाहिये ॥ १ ॥

स्वभूमिषु च स्थापयेत् ॥ २ ॥ स्थानपरिवर्तनमातपप्रवात-प्रदानं च बहुशः कुर्यात् ॥ ३ ॥

जो सामान बनकर तैयार होताजावे, उसको उसके अपने स्थानमें रखवा दियाजावे। अथवा, उस सबको अपनेही आधीन स्थानोंमें सुरक्षित रखवाया जावे ॥२॥ तथा अध्यक्ष उनका स्थान परिवर्त्तन करवाता रहे, जिससे कि वे एकही स्थानमें रक्खे २ खराब न होजावें, और बार २ उनको धूप तथा हवा देनेकाभी पूरा प्रबन्ध रक्खा जावे ॥ ३ ॥

ऊष्मोपस्नेहक्रिमिभिरुपहन्यमानमन्यथा स्थापयेत् ॥ ४ ॥ जातिरूपलक्षणप्रमाणागममूल्यनिक्षेपैश्चोपलभेत ॥ ५ ॥

जो हथियार आदि गरमी, नमी, तथा कीड़े (घुन) आदिके कारण खराब होरहे हों, उन्हें वहांसे उठवाकर इसप्रकार रखवावे, जिससे कि वे फिर खराब न होसकें ॥ ४ ॥ उनकी जाति (स्वभाव), उनका रूप (सीधा या टेढ़ा आदि), लक्षण (शास्त्रोंमें कहेहुए उत्तम मध्यम आदि चिन्ह), प्रमाण (लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई आदि), आगम (जहांसे उनकी प्राप्ति हुई है), मूल्य, तथा निक्षेप आदिके सम्बन्धमें अध्यक्ष अच्छीतरह ज्ञान प्राप्त करे ॥५॥

सर्वतोभद्रजामदग्न्यबहुमुखविश्वासघातिसङ्घाटीयानकपर्जन्य-कार्धबाहूर्ध्वबाह्वर्ध्वबाहूनि स्थितयन्त्राणि ॥ ६ ॥

अब यन्त्रोंके विषयमें निरूपण किया जाता है;—सर्वतोभद्र (वह यन्त्र होता है जो एक जगह रक्खा हुआ, चारों ओरको गोली की मार करे), जामदग्न्य (जिसके बीचमें एक छेदमेंसे ही बहुत बड़े२ गोले निकलें), बहुमुख (किले की ऊंची दीवारोंपर बनाये हुए उस स्थान विशेष का नाम है, जिसमें बैठकर अनेक योद्धा पुरुष चारों ओरको बाणवृष्टि करसकें), विश्वास घाती (नगरके बाहर तिरछा बना हुआ यन्त्रविशेष, जो कि स्पर्श करनेपर मार डाले, इसका यह अन्वर्थनाम इसी लिये है, किजो पहलेसे कुछ न मालूम पड़े, और स्पर्श करनेपर प्राणघात करदेवे), सङ्घाटि (लम्बे २ बांसोंसे बनाये हुए, ऊंचे अट्टालक आदि को प्रदीप्त करनेके लिये अग्नियन्त्रविशेष), यानक (पहियोंके ऊपर रक्खा जाने वाला लम्बासा यन्त्र, जो बीचमें से कुछ चौड़ा हो, अथवा रथ आदि सवारीपर रखकर जो चलाया जावे), पर्जन्यक (अग्नि को शान्त करनेके लिये काममें आने वाला, वरुणास्त्र), बाहुयन्त्र (पर्जन्यक के समान ही उससे आधा छोटा यन्त्र), ऊर्ध्वबाहु (ऊपर बना हुआ पर्जन्यकके बराबर बड़ाभारी स्तम्भ, जो समीप आने वालों को मारदेवे), अर्धबाहु (ऊर्ध्वबाहुसे आधे परिमाण वाला), यह दश प्रकारके यन्त्र, स्थितयंत्र कहाते हैं ॥ ६ ॥

पञ्चालिकदेवदण्डसूकरिकामुसलयष्टिहस्तिवारकतालवृन्तमुद्गरगदास्पृक्तलाकुद्दालास्फोटिमोद्घाटिमोत्पाटिमशतघ्नीत्रिशूलचक्राणि चलयन्त्राणि ॥ ७ ॥

पञ्चालिक (तीक्ष्ण मुख वाला बढ़िया लकड़ी का बना हुआ, जो परकोटेके बाहर जलके बीचमें शत्रुको रोकनेके लिये काममें लाया जाता है), देवदण्ड (कील रहित बड़ा भारी स्तम्भ, जो कि किलेके परकोटेके ऊपर रक्खा जाता है), सूकरिका (सूत और चमड़ेकी बनीहुई एक बहुत बड़ी मशकसी, जो कि बाहरसे आनेवाले बाण आदिको रोकनेके लिये गोपुर या अट्टालक आदिपर ढकदी जाती है; किसी २ ने इसका अर्थ किया है—बांससे बनीहुई तथा चमड़ेसे ढकीहुई सूकरके समान आकारवाली बहुत बड़ी मशकसी, जो कि दुर्गकी रक्षामें काम आती है), मुसलयष्टि (खैरका बनाहुआ, मूसलके समान मजबूत डंडा जिसके आगे एक शूल हो), हस्तिवारक (दो मुख या तीन मुखवाला डंडा अर्थात् द्विशूल या त्रिशूल, किसी २ ने इसका अर्थ 'हाथीको मारनेके लिये एक खास तरह का डंडा' यह किया है), तालवृन्त (चारों ओरको घूमनेवाला यन्त्र विशेष), मुद्गर, द्रुघण (मुद्गरके समानही एक अस्त्र विशेष), गदा, स्पृक्तला (कांटोंवाली गदा), कुद्दाल (कसी=फावड़ा) आस्फोटिम (चमड़ेसे ढकाहुआ, चार कोनोंवाला, मट्टीके ढेले या पत्थर आदि फेंकनेका यन्त्र), उद्घाटिम (मुद्गरके समान आकृतिवालाही एक यन्त्र विशेष), उत्पाटिम (खम्बे आदिको उखाड़नेवाला श्येन यन्त्र), शतघ्नी (मोटी और लम्बी २ कीलोंसे युक्त, बहुत बड़ा स्तम्भसा, जो कि किलेकी दीवारके ऊपर रक्खा जाता है), त्रिशूल और चक्र; ये सब यन्त्र चलयन्त्र कहेजाते हैं ॥७॥

शक्तिप्रासकुन्तहाटकभिण्डिपालशूलतोमरवराहकर्णकणयकर्पणत्रासिकादीनि च हलमुखानि ॥ ८ ॥

शक्ति (सम्पूर्ण लोहेका बनाहुआ, कनेरके पत्तेके समान मुखवाला), प्रास (चौबीस अंगुल लम्बा दुधारा, सम्पूर्ण लोहेका बनाहुआ तथा जिसके बीचमें लकड़ी लगी हुई हो), कुन्त (सात हाथका उत्तम छः हाथका मध्यम तथा पांच हाथका निकृष्ट कुन्त होता है), हाटक (कुन्तके समान तीन कांटोंवाला हथियार), भिण्डिपाल (मोटे फलेवाले कुन्तकाही यह नाम है), शूल (तीक्ष्ण एक मुखवाला, इसका प्रमाण नियत नहीं है), तोमर (चार हाथका अधम, साढ़े चार हाथका मध्यम और पांच हाथका उत्तम होता है, इसका अगला हिस्सा बाणके समान तीक्ष्ण होता है)। वराहकर्ण (सूअरके कानके समान मुखाकृति वाले प्रासकाही नाम है), कणय (सम्पूर्ण लोहेका बन

हुआ दोनों ओरसे तीन २ कांटोंसे युक्त, या चर्म मूठवाला, यह बीस अंगुल का अधम, बाईस अंगुल का मध्यम और चौबीस अंगुलका उत्तम होता है), कर्पण (तोमरके समान, हाथसे फेंकेजाने वाला एक बाण विशेष), त्रासिका (सम्पूर्ण लोहेसे बनीहुई प्रासके बराबर होती है), इत्यादि ये सब हथियार हलमुख कहाते हैं, क्योंकि इनका अग्रभाग खूब तीक्ष्ण होता है । लगभग ये सब, भालोंकेही भेद हैं ॥ ८ ॥

तालचापदारवशार्ङ्गाणि कार्मुककोदण्डद्रूणा धनूंषि ॥ ९ ॥ मूर्वार्कशणगवेधुवेणुस्नायूनि ज्याः ॥ १० ॥

ताल (ताड़का बनाहुआ), चाप (विशेष प्रकारके बांसका बना हुआ), दारव (किसी मजबूत लकड़ीका बनाहुआ), और शार्ङ्ग सींगोंका बनाहुआ), ये चार प्रकृतियोंसे धनुष बनाये जाते हैं । आकृति तथा क्रिया भेदसे इनके पृथक् पृथक् नाम कार्मुक कोदण्ड और द्रूण हैं ॥ ९ ॥ मूर्वा, आख, सन, गवेधुका, वेणु (बांसा जो केतकीके समान होता है, इसको कूटकर जो इसके रेशे निकलते हैं, उनकी रस्सी बहुत मजबूत बनती है), और स्नायु (जिसकी तांत बनती है), इन चीजोंसे धनुषकी डोरी बनानी चाहिये ॥ १० ॥

वेणुशरशलाकादण्डासननाराचाश्च इषवः ॥ ११ ॥ तेषां मुखानि छेदनभेदनताडनान्यायसास्थिदारवानि ॥ १२ ॥

वेणु (बांस, उटज चिमिय इत्यादि), शर (नरसल आदि), शलाका (किसी मजबूत लकड़ीकी बनाई हुई), दण्डासन (आधा लोहा और आधा बांस आदिका बना हुआ), नाराच (सम्पूर्ण लोहेका बनाहुआ), ये भिन्न २ प्रकारके बाण होते हैं ॥ ११ ॥ उन बाणोंके अग्रभाग (मुख=अगले हिस्से) छेदने काटनेके लिये, रक्त सहित आघात पहुंचानेके लिये, तथा रक्त रहित चोट पहुंचानेके लिये होते हैं । वे लोहे हड्डी तथा मजबूत लकड़ीके बनाये हुए होते हैं ॥ १२ ॥

निस्त्रिंशमण्डलाग्रासियष्टय खड्गाः ॥ १३ ॥ खड्गमहिषवारणविषाणदारुवेणुमूलानि त्सरवः ॥ १४ ॥

खड्ग (तलवार) तीन प्रकारके होते हैं—निस्त्रिंश (जिसका अगला हिस्सा काफी टेढ़ा हो), मण्डलाग्र (जिसका अगला हिस्सा कुछ २ गोलाकार हो), तथा असियष्टि (जिसका पतला और लम्बा आकार हो) ॥ १३ ॥ तलवारकी मूठ निम्न लिखित चीजोंकी होनी चाहियें—खड्ग (गैंडा) और भैंसे के सींग, हाथीदांत, मजबूत लकड़ियां और बांसकी जड़ ॥ १४ ॥

परशुकुठारपट्टसखनित्रकुद्दालक्रकचकाण्डच्छेदनाः क्षुरकल्पाः १५ .. यन्त्रगोष्पणमुष्टिपाषाणरोचनीदृषदश्चायुधानि ॥ १६ ॥

परशु (फरसा), कुठार (कुल्हाड़ा), पट्टस (दोनों किनारोंपर जिसके त्रिशूल हों) खनित्र (फावड़ा=कसी), कुद्दाल (कुदाली=चैसखी यह सम्पूर्ण लोहेकी बनीहुई सामनेसे चौड़े मुंहकी होती है), क्रकच (आरा), काण्डच्छेदन (काण्डासिका=गंडासी), यह सब क्षुरकल्प या क्षुरवर्ग कहाता है । छुरेके समान सीधी धार होनेके कारण इनको यह नाम दिया गया है ॥ १५ ॥ यन्त्रपाषाण (किसी यन्त्रविशेषसे फैंकाहुआ पाषाण आदि), गोष्पणपाषाण (गोफियोंसे फैंकाहुआ पाषाण आदि । गोफिया=सूत आदिके बनेहुए एक यन्त्र विशेषका नाम है, जिसमें पत्थर आदि रखकर फिर उसे घुमाकर खेतों और वागीचोंमें पक्षियोंको उड़ाया जाता है), मुष्टिपाषाण मुट्ठीसे फैंकाहुआ पाषाण आदि), रोचनी (दलनेकी यन्त्र शिला=चक्कीके पाट आदि) और दृषद् (बड़े २ पत्थर=महाशिला), आदि ये सब आयुध कहाते हैं ॥ १६ ॥

लोहजालजालिकापट्टकवचसूत्रकंकटशिंशुमारकखड्गिधेनुकहस्तिगोचर्मखुरशृङ्गसंघातं वर्माणि ॥ १७ ॥

लोहजाल (सिरके सहित सम्पूर्ण शरीरको ढकनेवाला आवरण), लोहजालिका (सिरको छोड़कर बाकी शरीर को ढकने वाला आवरण), लोह पट्ट (बाहोंको छोड़कर बाकी देहपर आजानेवाला आवरण), लोहकवच (केवल पीठ और छातीको ढकनेवाला आवरण), सूत्रकङ्कण (कपासके सूत आदिका बना हुआ कवच), और शिंशुमारक (एक प्रकारकी मछली ; किसीने इसका अर्थ ऊदबिलाव भी किया है), खड्गि (गैंडा), धेनुक (गवय=नीलगाय), हाथी तथा बैल इन पांचोंके चमड़े, खुर और सींगोंको, बड़े चातुर्यसे आपसमें मिलाकर भी कवच तैयार किया जाता है । इस प्रकार ये छः तरहके कवच तैयार किये जाते हैं ॥ १७ ॥

शिरस्त्राणकण्ठत्राणकूर्पासकञ्चुकवारवाणपट्टनागोदरिकाः पेटीचर्महस्तिकर्णतालमूलधमनिकाकवाटकिटिकाप्रतिहतवलाहकान्ताश्च आवरणानि ॥ १८ ॥

शिरस्त्राण (केवल सिरकी रक्षा करनेवाला), कण्ठत्राण (कण्ठकी रक्षा करनेवाला), कूर्पास (आधी बांहोंको आवरण करनेवाला), कञ्चुक (घोंटुओं तक शरीरको ढकनेवाला), वारवाण (पैरके टखने तक सारी देहको ढकनेवाला)

पट्ट (जिसमें बाँहें बिल्कुल न हों, तथा जो लोहेका बनाया हुआ न हो), नागोदरिका (केवल हाथकी अंगुलियोंकी रक्षा करनेवाला), ये देहपर धारण किये जानेवाले सात आवरण और होते हैं । पेटी, चर्म (चमड़ेकी बनी हुई पेटी), हस्तिकर्ण (मुंह ढकनेका आवरण), तालमूल (लकड़ीकी बनी हुई पेटी), धमनिका (सूतकी बनी हुई पेटी), कवाट (लकड़ीका बना हुआ एक विशेष पट्टा), किटिका (चमड़े और बांसको कूटकर बनाई हुई पेटी), अप्रतिहत (सम्पूर्ण हाथको ढकने वाला आवरण), बलाहककान्त (किनारोंपर लोहेके पत्तर-से बन्धा हुआ अप्रतिहत ही बलाहककान्त कहाता है), और इसी तरहके अन्य भी शरीरको ढकने वाले आवरण होते हैं ॥ १८ ॥

हस्तिरथवाजिनां योग्यभाण्डमालंकारिकं संनाहकल्पनाश्चोपकरणानि ॥१९॥ ऐन्द्रजालिकमौपनिषदिकं च कर्म ॥२०॥

हाथी, रथ तथा घोड़ोंकी शिक्षा आदिके साधन, अङ्कुश कोड़े आदि; तथा सजानेके लिये अन्य पलाका आदि साधन; और कवच तथा शरीरकी रक्षा करने वाले अन्य आवरण, ये सब उपकरण कहाते हैं ॥ १९ ॥ ऐन्द्रजालिक कर्म तथा औपनिषदिक कर्मको भी उपकरण कहते हैं । (ऐन्द्रजालिक= थोड़ीसी सेनाको बहुत सेनाके समान दिखा देना, अग्निके न होनेपर ही प्रचण्ड अग्निकी ज्वाला दिखा देना आदि । औपनिषदिक=औपनिषदक अधिकरणमें बताये हुए विषके धुएं तथा दूषित जल आदिका प्रयोगकर उनका प्रभाव दिखा देना) ॥ २० ॥

कर्मान्तानां च—॥ २१ ॥
इच्छामारम्भनिष्पत्तिं प्रयोगं व्याजमुदयम् ।
क्षयव्ययौ च जानीयात्कुप्यानामायुधेश्वरः ॥ २२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे आयुधागाराध्यक्षः अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥
आदित एकोनचत्वारिंशः ॥ ३९ ॥

पिछले दो अध्यायोंमें बताये हुए द्रव्योंके व्यापार आदिके विषयमें= (कर्मान्तानां कुप्यानाम्); राजाकी रुचिको, और रुचिके अनुसार कार्यके आरम्भ और पर्यवसान (समाप्ति) को; उपयोग, दोष तथा लाभको; उनके क्षय और व्ययको, आयुधागाराध्यक्ष अच्छी तरह समझे, कुप्याध्यक्षके लिये भी ये सब बातें जाननी आवश्यक हैं ॥ २१—२२ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें अठारहवां अध्याय समाप्त ।

उन्नीसवां अध्याय

३७ प्रकरण

तोल मापका संशोधन

पौतवाध्यक्षः पौतवकर्मान्तान्कारयेत् ॥ १ ॥ धान्यमाषा दश सुवर्णमाषकः पञ्च वा गुञ्जाः ॥ २ ॥ ते षोडश सुवर्णः कर्षो वा ॥ ३ ॥ चतुःकर्षं पलम् ॥ ४ ॥

पौतवाध्यक्ष (तोल मापका संशोधन करनेवाला राजकीय अधिकारी), पौतवकर्मान्त अर्थात् तुला और कुडुब आदि बाटोंको बनवावे ॥ १ ॥ दस धान्यमाष (उड़दके दाने) का एक सुवर्णमाष होता है; और इतने ही पांच गुञ्जा (चौंटली=रत्ती) ॥ २ ॥ सोलह माषका एक सुवर्ण अथवा एक कर्ष होता है ॥ ३ ॥ चार कर्षका एक पल होता है ॥ ४ ॥ यह सुवर्ण तोलनेके बाटों का कथन किया गया है, इसको निम्न निर्दिष्ट रीतिसे दिखाया जासकता है:—॥ ४ ॥

१० उर्दके दाने=१ एक सुवर्णमाषक अथवा ५ रत्ती
१६ माषक =१ सुवर्ण अथवा १ कर्ष
४ कर्ष =१ पल

अष्टाशीतिर्गौरसर्षपा रूप्यमाषकः ॥ ५ ॥ ते षोडश धरणम् ॥ ६ ॥ शैम्ब्यानि वा विंशतिः ॥ ७ ॥

सफेद सरसों (बंगा सरसों) के अठासी दाने की बराबर एक रूप्यमाषक होता है ॥ ५ ॥ सोलह रूप्यमाषक का एक धरण होता है ॥ ६ ॥ उसके बराबर ही बीस शैम्ब्य होते हैं (शिम्बि फलका नाम शैम्ब्य है, हिन्दी में सेंगरी कहते हैं, यह मूली की फलीका नाम है) । यह चांदीकी तोलका कथन किया गया । इसको इस प्रकार लिखाया जासकता है ॥ ७ ॥

८८ सफेद सरसों=१ रूप्यमाषक
१६ रूप्यमाषक =१ धरण=अथवा २० शैम्ब्य (मूलीके बीज)

विंशतितण्डुलं वज्रधरणम् ॥ ८ ॥

बीस चावल का एक वज्रधरण होता है । यह हीरे की तोल है ॥ ८ ॥

२० चावल=१ वज्रधरण

अर्धमाषकः माषकः द्वौ चत्वारःअष्टौ माषकाः सुवर्णो द्वौ चत्वारः अष्टौ सुवर्णाः दश विंशतिः त्रिंशत् चत्वारिंशत् शतमिति ॥ ९

तोलनेके लिये बाटोंकी संख्या निम्न लिखित रीतिसे होनी चाहिये:— अर्धमाषक (आधा माषक), माषक, दो माषक, चार माषक, आठ माषक। सुवर्ण, दोसुवर्ण, चार सुवर्ण, आठ सुवर्ण, दस सुवर्ण, बीस सुवर्ण, तीस सुवर्ण चालीस सुवर्ण, सौ सुवर्ण, इस प्रकारसे सोने आदिकी तोलके लिये ये कुल मिलाकर चौदह बाट होने चाहियें। छोटेसे छोटे अर्धमाषकसे लगाकर,सौ सुवर्णके बड़े बाट तक चौदह बाट आवश्यक हैं ॥ ९ ॥

तेन धरणानि व्याख्यातानि ॥ १० ॥

इसी तरह धरणके बाटों की कल्पना भी करलेनी चाहिये । अर्थात् धरण, दोधरण, चार धरण, आठ धरण, दस धरण, बीस धरण, तीस धरण, चालीस धरण, और सौ धरण। रूप्यमाषक की भी उपर्युक्त रीतिसे कल्पना करनी चाहिये:—अर्ध माषक, माषक, दो माषक, चार माषक, आठ माषक, ये बाट चांदी आदिकी तोलके लिये उपयुक्त होते हैं ॥ १० ॥

प्रतिमानान्ययोमयानि मागधमेकलशैलमयानि यानि वा नोदकप्रदेहाभ्यां वृद्धिं गच्छेयुरुष्णेन वा ह्रासम् ॥ ११ ॥

तोलनेके सब ही बाट लोहेके बनाये जावें, मगध या मेकल देशमें उत्पन्न होने वाले पत्थरके बनाये जावें । अथवा ऐसी चीजोंके बनाये जावें, जो पानी या और किसी लेपकी वस्तुके लगनेसे वृद्धिको प्राप्त न होवें, तथा गरमी पहुंचनेसे कम न होजावें ॥ ११ ॥

षडङ्गुलादूर्ध्वमष्टाङ्गुलोत्तरा दश तुलाः कारयेल्लोहपलादूर्ध्वमेकपलोत्तरा यन्त्रमुभयतः शिक्यं वा ॥ १२ ॥

सोना और चांदी तोलनेके लिये निम्नलिखित सब प्रकारकी तुलाओं का निर्माण कराया जावे, कमसे कम छः अंगुल की तुलासे लगाकर, फिर प्रत्येकमें आठ २ अंगुल बढ़ाते चले जावें । तात्पर्य यह है:—पहिले सबसे छोटी तुला छः अंगुलकी होनी चाहिये । उसके बाद दूसरी चौदह अंगुलकी, फिर बाईस अंगुलकी, और फिर उसके बाद चौथी तीस अंगुलकी । इसी प्रकार प्रत्येकमें आठ २ अंगुल बढ़ाते हुए, अन्तिम दसवीं तुला अठत्तर (७८) अंगुल की होगी । इनका वजन एक पल लोहेसे लगाकर प्रत्येक तुलामें एक पल बढ़ता जाना चाहिये । पहिली छः अंगुलकी तुला एक पलकी, दूसरी चौदह

अंगुलका दो पलकी होनी चाहिये। इसी प्रकार प्रत्येकमें एक २ पल बढ़ाते हुए अन्तिम अठत्तर अंगुलकी तुला दस पलकी होनी चाहिये। इसके दोनों ओर शिक्य अर्थात् पलड़े लगे हुए होने चाहिये ॥ १२ ॥

पञ्चत्रिंशत्पललोहां द्विसप्तत्यङ्गुलायामां समवृत्तां कारयेत् ॥१३॥ तस्याः पञ्चपलिकं मण्डलं बद्ध्वा समकरणं कारयेत्॥१४॥

सोना चांदी तोलनेके लिये पिछली दस तुलाओंका निरूपण किया गया है, अब और पदार्थोंको तोलनेके लिये दूसरी तुलाका निरूपण करते हैं:—पैंतीस पल लोहेकी बनी हुई, बहत्तर अंगुल अर्थात् तीन हाथ लम्बी समवृत्ता नामक, गोलाकार तुला, अन्य पदार्थोंको तोलनेके लिये होनी चाहिये ॥१३॥ उसके बीचमें पांच पलका कांटा लगवाकर, ठीक मध्यमें एक चिन्ह करवावे ॥१४॥

ततः कर्षोत्तरं पलं पलोत्तरं दशपलं द्वादश पञ्चदश विंशतिरिति पदानि कारयेत् ॥ १५ ॥

उसके बाद, उस बीचके चिन्हसे लगाकर एक कर्ष, दो कर्ष तीन कर्ष तथा एक पलके चिन्ह लगवावें; और एक पलके आगे दस पल तक (अर्थात् एक पल दो पल तीन पल इत्यादि); फिर उसके बाद बारह पल पन्द्रह पल और बीस पलका चिन्ह लगवावे। तात्पर्य यह है, उस केन्द्रस्थित कांटेकी गोलाकार परिधिमें यथाक्रम ये सब चिन्ह लगे होने चाहियें ॥ १५ ॥

तत आशताद्दशोत्तरं कारयेत् ॥ १६ ॥ अक्षेषु नान्दीपिनद्धं कारयेत् ॥ १७ ॥

फिर बीस पलके आगे सौ पल तक दस दसके अन्तरसे चिन्ह लगे रहने चाहियें, अर्थात् बीस पलके बाद तीस पल, चालीस पल, पचास पल इत्यादि प्रकारसे सौ पल तक चिन्ह लगवावें ॥ १६ ॥ प्रत्येक अक्ष अर्थात् पांच पल अन्तरके चिन्हपर, पहचानके लिये, नान्दीपिनद्ध अर्थात् स्वस्तिकका चिन्ह बनवा देना चाहिये। (किसी २ पुस्तकमें 'नान्दीपिनद्धं' के स्थानपर 'नन्धीपिनद्धं' पाठ है। नन्धी रज्जुका नाम है, प्रत्येक पांचवें अङ्कके साथ २ एक रज्जुके समान रेखा बनवा दीजावे; यही इसका अर्थ करना चाहिये), तात्पर्य यह है, कि पांचवें, दसवें तथा पन्द्रहवें आदि अङ्कोंपर पहचानके लिए एक विशेष चिन्ह लगवा देना चाहिये ॥ १७ ॥

द्विगुणलोहां तुलामतः षण्णवत्यङ्गुलायामां परिमाणीं कारयेत् ॥१८॥ तस्याः शतपदादूर्ध्वं विंशतिः पञ्चाशत् शतमिति पदानि कारयेत् ॥ १९ ॥

जिस तुलाका अभीतक वर्णन किया गया है इसका 'समवृत्ता' कहते हैं। इसमें जितना लोहा लगाया जाता है, उससे दुगने लोहेसे बनी हुई (अर्थात् सत्तर पल लोहेसे बनी हुई) और छयानवें (९६) अंगुल अर्थात् चार हाथ लम्बी, 'परिमाणी' नामक तुलाका निर्माण करावे ॥ १८ ॥ उसके ऊपर समवृत्ता नामक तुलाके अनुसार कर्पसे लगाकर सौ पल पर्यन्त चिन्ह करके, फिर उसके आगे, बीस, पचास तथा सौके चिन्ह और बनाने चाहियें। अर्थात् सौके आगे एकसौ बीस, एकसौ पचास और दोसौ पलके चिन्ह और बनाये जावें ॥ १९ ॥

विंशतितौलिको भारः ॥ २० ॥

सौ पलका नाम एक तुला है, बीस तुला परिमाणका एक भार होता है ॥ २० ॥

१०० पल=१ तुला

२० तुला=१ भार

दशधरणिकं पलम् ॥ २१ ॥ तत्पलशतमायमानी ॥२२॥

सोने चांदीके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको सौ पलसे अधिक तोलनेके लिये एक विशेष परिमाण बताते हैं:—पहिले बतलाये दस धरणिकका एक पल होता है ॥ २१ ॥ और उन सौ पलोंकी एक आयमानी नामक तुला होती है, (आय अर्थात् आमदनीको तोलने वाली तुलाका नाम ही आयमानी होता है) ॥ २२ ॥

१० धरण=१ पल

१०० पल=१ आयमानी

पञ्चपलावरा व्यवहारिकी भाजन्यन्तःपुरभाजनी च ॥२३॥

पांच पांच पल उत्तरोत्तर कम होने वाली तुला यथासंख्य 'व्यावहारिकी' 'भाजनी' और 'अन्तःपुरभाजनी' कहाती है। तात्पर्य यह है,—इन तीनों तुलाओंमेंसे पहिली तुला, आयमानीसे पांच पल कम अर्थात् पिचानवें (९५) पलकी ही होती है, इसका नाम 'व्यावहारिकी' है। दूसरी 'भाजनी' नामक तुला व्यावहारिकीसे पांच पल कम अर्थात् नव्वे (९०) पलकी होती है। इसी तरह तीसरी 'अन्तःपुरभाजनी' और पांच पल कम करके पिच्यासी (८५) पलकी ही रहजाती है। इनमेंसे पहिली क्रय विक्रय व्यवहारमें, दूसरी भृत्योंको द्रव्य देने और तीसरी रानी तथा राजकुमार आदिके द्रव्यदेनेमें काममें आती है ॥ २३ ॥

तासामर्धधरणावरं पलम् ॥ २४ ॥ द्विपलावरमुत्तरलोहम् ॥२५॥ षडङ्गुलावराश्चायामाः ॥ २६ ॥

इन व्यावहारिकी आदि तीनों तुलाओंके प्रत्येक पलमें उत्तरोत्तर आधा आधा धरण कम होता है। तात्पर्य यह है, आयमानी तुलामें दस धरणका एक पल होता है; उसमें आधा धरण कम करके साढ़ेनौ धरण (९½) का एक पल व्यावहारिकी तुलामें होना चाहिये; उससे भी आधा कम करके अर्थात् नौ (९) धरणका एक पल भाजनी नामक तुलामें होना चाहिये; इसी तरह अन्तःपुर-भाजनी नामक तुलामें साढ़े आठ (८½) धरणका एक पल होता है ॥ २४ ॥ इसी तरह इन तुलाओंके बनानेके लिये लोहा भी; उत्तरोत्तर तुलामें पहिलीसे दो दो पल कम होना चाहिये। अर्थात् आयमानी तुला यदि पैंतीस पल लोहे-की बनाई जावे, तो व्यावहारिकी तुला तैंतीस पलकी, भाजनी इकत्तीस पलकी और अन्तःपुरभाजनी उन्तीस पलकी बनाई जानी चाहिये ॥ २५ ॥ इनकी लम्बाई भी उत्तरोत्तर तुलामें पहिली तुलासे छः २ अंगुल कम होनी चाहिये। अर्थात् यदि आयमानी तुला बहत्तर अंगुलकी बनाई जावे, तो व्यावहारिकी छयासठ (६६) अंगुलकी; भाजनी साठ (६०) अंगुलकी और अन्तःपुरभा-जनी चौवन (५४) अंगुलकी बनाई जावे ॥ २६ ॥

पूर्वयोः पञ्चपलिकः प्रयामो मांसलोहलवणमणिवर्जम् ॥२७॥ काष्ठतुला अष्टहस्ता पदवती प्रतिमानवती मयूरपदाधिष्ठिता॥२८॥

पहिली दो तुलाओंमें अर्थात् परिमाणी और आयमानीमें, मांस लोहा नमक और मणियोंके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको तोलनेपर पांच पल अधिक तोला जाता है; इसीको 'प्रयाम' कहा जाता है ॥ २७ ॥ अब लकड़ीकी बनी हुई तुलाका निरूपण किया जाता है,:—यह तुला आठ हाथकी होनी चाहिये; इसपर एक दो तीन आदि चिन्होंकी रेखाएं भी अवश्य होनी चाहियें। इसके बाट आदि पत्थरके बने हुए होवें। मोरके पैरों के समान जिसके पैर अर्थात् आधार हों। ('मयूरपदाधिष्ठिता' के स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'मयूरप-दाधिष्ठाना' भी पाठ है। अर्थमें कोई भेद नहीं) ॥ २८ ॥

काष्ठपञ्चविंशतिपलं तण्डुलप्रस्थसाधनम् ॥ २९ ॥ एष प्रदेशो बह्वल्पयोः ॥३०॥ इति तुलाप्रतिमानं व्याख्यातम् ॥३१॥

पचीस पल ईंधन, एक प्रस्थ चावलोंको पकानेके लिये पर्याप्त होता है ॥ २९ ॥ इसी हिसाबसे अधिक और न्यून चावल पकानेके लिये, ईंधन उपयोगमें लाना चाहिये। (यद्यपि यह बात कोष्ठागाराध्यक्ष प्रकरणमें कहनी

उचित थी, परन्तु असार वस्तुओंकाभी बहुत परिमित व्यय करना चाहिये, फिर सार वस्तुओंकातो कहनाही क्या ? यह प्रकट करनेके लियेही इसका यहां कथन किया गया है ॥ ३० ॥ यहांतक सोलह प्रकारकी तुला और चौदह प्रकारके बांटोंका निरूपण किया गया ॥ ३१ ॥

अथ धान्यमाषद्विपलशतं द्रोणमायमानम् ॥ ३२ ॥ सप्ताशीतिपलशतमर्धपलं च व्यावहारिकम् ॥ ३३ ॥

अब इसके आगे द्रोण आढक आदि परिमाणोंका निरूपण किया जायगा—धान्यमाषके दो सौ पलका एक आयमान द्रोण होता है; अर्थात् यह द्रोण केवल राजकीय आयको तोलनेकेही काममें लाया जाता है, (आयमानी तुलाके साथ सम्बन्ध होनेसे इसका नाम आयमान है) ॥ ३२ ॥ एकसौ साढे सतासी (१८७½) पलका एक व्यावहारिक द्रोण होता है, यह क्रय विक्रय व्यवहारके समय तोलनेके काम आता है, (व्यावहारिकी तुलाके साथ सम्बन्ध होनेसे इसका नाम व्यावहारिक है ॥ ३३ ॥

पञ्चसप्ततिपलशतं भाजनीयम् ॥ ३४ ॥ द्विषष्टिपलशतमर्धपलं चान्तःपुरभाजनीयम् ॥ ३५ ॥

एकसौ पिछहत्तर (१७५) पलका एक भाजनीय द्रोण होता है, यह भृत्योंके लिये द्रव्य आदि तोलनेमें काम आता है । (भाजनी नामक तुलाके साथ इसका सम्बन्ध होनेसे इसको भाजनीय द्रोण कहा जाता है) ॥ ३४ ॥ एकसौ साढे बासठ (१६२½) पलका एक अन्तःपुरभाजनीय द्रोण होता है । इसका उपयोग, अन्तःपुरके लिये सामान आदि तोलनेमें होता है । अन्तःपुरभाजनी नामक तुलाके साथ सम्बन्ध होनेसे इस द्रोणका नाम 'अन्तःपुरभाजनीय' होता है ॥ ३५ ॥

तेषामाढकप्रस्थकुडुबाश्चतुर्भागावराः ॥ ३६ ॥

इन चार प्रकारके द्रोणोंका उत्तरोत्तर चतुर्थांश कम होकर आढक प्रस्थ और कुडुबका परिमाण निश्चित होता है । तात्पर्य यह है कि द्रोणका जितना परिमाण होता है, उससे चौथा हिस्सा कम आढकका; और आढकसे चौथा हिस्सा कम प्रस्थका; तथा प्रस्थसे चौथा हिस्सा कम कुडुबका परिमाण होता है ॥ ३६ ॥

षोडशद्रोणा खारी ॥३७॥ विंशतिद्रोणिकः कुम्भः ॥३८॥ कुम्भैर्दशभिर्वहः ३९

सोलह द्रोणकी एक खारी होती है ॥ ३७ ॥ बीस द्रोणका एक कुम्भ होता है ॥ ३८ ॥ दस कुम्भका एक 'वह' होता है ॥ ३९ ॥

१६ द्रोण	=१ खारी
२० द्रोण (१¼ खारी)	=१ कुम्भ
१० कुम्भ	=१ वह

शुष्कसारदारुमयं समं चतुर्भागशिखं मानं कारयेत् ॥४०॥ अन्तःशिखं वा ॥ ४१ ॥ रसस्य तु ॥ ४२ ॥

सूखी बढ़िया लकड़ीका बनाहुआ, नीचे ऊपरसे बराबर, शिखरमें चतुर्थांशसे युक्त (तात्पर्य यह है, नीचेके हिस्सेको तैयार करके जब उसके ऊपर उसका मुंह या गर्दन बनाई जावे, तो वह इस तरहकी बनीहुई होनी चाहिये, जिसमें कि नीचे असली भागमें आनेवाले मालका चौथाई हिस्सा समाजावे। अर्थात् यदि उस सारे मानमें बीस प्रस्थ धान आसकते हैं, तो पांच प्रस्थ उसकी गर्दनमें आने चाहियें, पन्द्रह प्रस्थ उसके नीचेके हिस्सेमें ऐसा) मान अर्थात् अनाज आदि मापनेके लिये एक बर्तन तैयार कराया जावे ॥ ४० ॥ अथवा उसकी गर्दनके हिस्सेको नीचेके भागमेंही मिला दिया जावे; (नीचेके भागसे पृथक् गर्दनको न बनाया जावे, पेटके समान नीचेके हिस्सेको ही इस प्रकार बना दिया जावे, कि उतना सम्पूर्ण अनाज उसीमें समाजावे। केवल अनाज आदिके भरने निकालनेके लिये एक मुंह रखना चाहिये ॥ ४१ ॥ रस अर्थात् घी तैल आदिके मापनेका वर्तनभी इसीतरहका (अलहदा गर्दनसे रहित) होना चाहिये ॥ ४२ ॥

सुरायाः पुष्पफलयोस्तुषाङ्गाराणां सुधायाश्च शिखामानं द्विगुणोत्तरा वृद्धिः ॥ ४३ ॥

सुरा (शराब आदि), फल, फूल, तुष (तूड़ी भुस आदि), अङ्गार (कोयला), सुधा (चूना कलई आदि), इन छः पदार्थोंको मापनेके लिये जो बर्तन बनाये जावें, उनका ऊपरका हिस्सा नीचेके हिस्सेसे दुगना बड़ा होना चाहिये। और इन बर्तनोंकी गर्दनभी नीचेके हिस्सेसे अलहदा बनीहुई होनी चाहिये ॥ ४३ ॥

सपादपणो द्रोणमूल्यम् ॥४४॥ आढकस्य पादोनः ॥४५॥ षण्माषकाः प्रस्थस्य ॥ ४६ ॥ माषकः कुडुबस्य ॥ ४७ ॥

एक द्रोणका मूल्य सवा पण होता है। (अर्थात् जिस बर्तन आदिमें एक द्रोण माल आजावे, उस बर्तनकी कीमत सवा पण होनी चाहिये) ॥४४॥ इसीतरह एक आढकका मूल्य पौन पण होता है ॥ ४५ ॥ एक प्रस्थका छः

माषक ॥ ४६ ॥ और एक कुडुबका एक माषक मूल्य होता है ॥ ४७ ॥

द्विगुणं रसादीनां मानमूल्यम् ॥ ४८ ॥ विंशतिपणाः प्रतिमानस्य ॥ ४९ ॥ तुलामूल्यं त्रिभागः ॥ ५० ॥

रस अर्थात् घी तेल आदिके मापनेके बर्त्तनोंका मूल्य, उपर्युक्त मूल्यसे दुगना होता है । एक द्रोण घी मापनेके बर्त्तनका ढाई पण मूल्य होगा; इसी तरह आढकका डेढ़, प्रस्थका बारह माषक और कुडुबका दो माषक समझना चाहिये ॥ ४८ ॥ चौदह प्रकारके सम्पूर्ण बाटोंका मूल्य बीस पण होता है । ॥ ४९ ॥ और तुलाका मूल्य इससे तिहाई अर्थात् ६⅔ पण होता है ॥ ५० ॥

चतुर्मासिकं प्रातिवेधनिकं कारयेत् ॥ ५१ ॥ अप्रातिविद्धस्यात्ययः सपादः सप्तविंशतिपणः ॥ ५२ ॥ प्रातिवेधनिकं काकणीकमहरहः पौतवाध्यक्षाय दद्युः ॥ ५३ ॥

प्रत्येक चार चार महीनेके बाद, तुला और बाट आदिका परिशोधन कराना चाहिये ॥ ५१ ॥ जो ठीक समयपर परिशोधन न करावे, उसको सवा सत्ताईस पण दण्ड देना चाहिये ॥ ५२ ॥ व्यापारियोंको चाहिये कि वे परिशोधन के निमित्त, प्रतिदिन एक काकणी के हिसाबसे, चार महीनेकी एकसौ बीस (१२०) काकणी, पौतवाध्यक्षको देवें । यह बाट आदिके परिशोधनका राजकीय टैक्स होता है ॥ ५३ ॥

द्वात्रिंशद्भागस्तप्तव्याजी सर्पिषश्चतुःषष्टिभागस्तैलस्य ॥५४॥ पञ्चाशद्भागो मानस्रावो द्रवाणाम् ॥ ५५ ॥ कुडुबार्धचतुरष्टभागानि मानानि कारयेत् ॥ ५६ ॥

यदि गरम किया हुआ घी खरीदा जावे, तो उसका बत्तीसवां हिस्सा, व्याजी अर्थात् अधिक लेना चाहिये । और तेलके ऊपर चौसठवां हिस्सा व्याजी लेना चाहिये । अर्थात् इतना भाग अधिक लेना चाहिये ॥ ५४ ॥ द्रव पदार्थों का पचासवां हिस्सा, तोलनेके समय छीजनका समझना चाहिये ॥ ५५ ॥ कुडुब आदि छोटी तोलके लिये एक कुडुब, आधा कुडुब, चौथाई कुडुब और आठवां हिस्सा कुडुब, ये चार बाट, और मापनेके लिये इतने २ ही के बर्त्तन बनाये जावें ॥ ५६ ॥

कुडुबाश्चतुराशीतिः वारकः सर्पिषो मतः ।
चतुःषष्टिस्तु तैलस्य पादश्च घटिकानयोः ॥ ५७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे तुलामानपौतवं एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

आदितश्चत्वारिंश ४० ॥

घी के तोलने के लिये चौरासी कुडुबका एक 'वारक' होता है। और तलके तोलने के लिये चौंसठ कुडुबका ही एक वारक माना गया है। इनके चौथाई हिस्सेका नाम 'घटिका' होता है। अर्थात् इक्कीस कुडुबका एक घृत घटिका, और सोलह कुडुबकी एक तैलघटिका समझनी चाहिये ॥ ५७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण में उन्नीसवां अध्याय समाप्त।

बीसवां अध्याय।

३८ प्रकरण

देश तथा कालका मान।

मानाध्यक्षो देशकालमानं विद्यात् ॥ १ ॥ अष्टौ परमाणवो रथचक्रविप्रुट् ॥ २ ॥ ता अष्टौ लिक्षा ॥ ३ ॥ ता अष्टौ यूकामध्यः ॥ ४ ॥ ते अष्टौ यवमध्यः ॥५॥ अष्टौ यवमध्या अङ्गुलम् ॥६॥ मध्यमस्य पुरुषस्य मध्यमाया अङ्गुल्या मध्यप्रकर्षो वाङ्गुलम् ॥ ७ ॥

मानाध्यक्ष (पौतवाध्यक्ष) को चाहिये कि वह देश और कालके मान को अच्छी तरह जाने ॥ १ ॥ आठ परमाणुओं का मिलकर, रथके पहिये से उड़ाई हुई धूलका एक कण होता है ॥ २ ॥ आठ धूलकण मिलाकर एक लिक्षा होती है; ॥ ३ ॥ आठ लिक्षाका एक यूकामध्य, ॥ ४ ॥ आठ यूकामध्यका एक यवमध्य, ॥ ५ ॥ और आठ यवमध्यका एक अगुंल होता है ॥ ६ ॥ अथवा मध्यम पुरुष (जो न बहुत मोटा हो, और न बहुत पतला; किन्तु इकहरे बदनका आदमी हो, उस) की बीचकी अगुंलीके बीचके ही पोरुएकी मोटाई जितनी हो, उतना ही एक अगुंल समझना चाहिये ॥ ७ ॥

८ परमाणु =१ धूलकण
८ धूलकण =१ लिक्षा
८ लिक्षा =१ यूकामध्य
८ यूकामध्य=१ यवमध्य
८ यवमध्य =१ अंगुल

चतुरङ्गुलो धनुर्ग्रहः ॥ ८ ॥ अष्टाङ्गुला धनुर्मुष्टिः ॥ ९ ॥ द्वादशाङ्गुला वितस्तिः ॥ १० ॥ छायापौरुषं च ॥ ११ ॥ चतु-

दशाङ्गुलं शमः शलः परिरयः पदं च ॥ १२ ॥ द्विवितस्तिररत्निः प्राजापत्यो हस्तः ॥ १३ ॥

चार अंगुलका एक धनुर्ग्रह होता है ॥ ८ ॥ और आठ अंगुल अथवा दो धनुर्ग्रह की एक अनुमुष्टि होती है ॥ ९ ॥ बारह अंगुलकी एक वितस्ति (बीता=बिलांयद) होती है ॥ १० ॥ छायापौरुष भी बारह अंगुलका ही होता है। अर्थात् वितस्तिको छायापुरुष भी कह सकते हैं ॥ ११ ॥ चौदह अंगुल परिमाणका नाम शम, शल, परिरय, और पद है। अर्थात् चौदह अंगुल परिमाणके लिये ये चार नाम प्रयुक्त होते हैं ॥ १२ ॥ दो वितस्तिकी एक अरत्नि, या प्रजापत्य (प्रजापति अर्थात् विश्वकर्माको सम्मत) हाथ होता है। अर्थात् इसको एक हाथ भी कहाजाता है ॥ १३ ॥

४ अंगुल	=१ अनुर्ग्रह
८ अंगुल अथवा २ धनुर्ग्रह	=१धनुर्मुष्टि
१२ अंगुल, या ३ धनुर्ग्रह अथवा १½ धनुर्मुष्टि	=१ वितस्ति या छायापौरुष
१४ अंगुल	=१शम=शल=परिरय=पद(पद)
२ वितस्ति	=१अरत्नि=(प्राजापत्य) १ हाथ।

सधनुर्ग्रहः पौतवविवीतमानम् ॥ १४ ॥ सधनुर्मुष्टिः किष्कुः कंसो वा ॥ १५ ॥

एक हाथके साथ धनुर्ग्रहको मिलाकर (एक हाथ=२४ अंगुल+एक धनुर्ग्रह=४ अंगुल=) २८ अंगुलका बना हुआ एक हाथ, पौतव (लकड़ीकी तुला आदि) और विवीत (चरागाह) के मापनेके काममें आता है। अर्थात् पौतव और विवीतको २८ अंगुलके हाथसे नापना चाहिये ॥ १४ ॥ एक धनुर्मुष्टि अर्थात् आठ अंगुल सहित एक प्राजापत्य हस्त, किष्कु या कंस कहा जाता है ॥ १५ ॥

२८ अंगुल=१ हाथ (विवीत और पौतवके नापनेमें काम आने वाला)।
३२ अंगुल=१ किष्कु अथवा कंस।

द्विचत्वारिंशदङ्गुलस्तक्ष्णः क्राकचिककिष्कुः स्कन्धावारदुर्गराजपरिग्रहमानम् ॥१६॥ चतुःपञ्चाशदङ्गुलः कुप्यवनहस्तः ॥१७॥

बयालीस अंगुलके एक हाथका उपयोग, बढ़ईके कामोंमें होता है, आरेसे चीरनेके कार्योंमें इसके स्थानपर किष्कु परिमाणका प्रयोग किया जाता है। परन्तु ये

काय छावनी किले या राजमहलके होने चाहियें। अर्थात् छावनी आदिमें होने वाले बढ़ईके कार्योंमें बयालीस अंगुलका एक हाथ, और लकड़ी चीरने आदिमें बत्तीस अंगुलका एक किष्कु प्रयुक्त होता है ॥ १६ ॥ कुप्य और वन (जंगल या उसकी लकड़ी आदि) के नापनेके लिये चौअन अंगुलका एक हाथ मानना चाहिये ॥ १७ ॥

४२ अंगुल=१ हाथ (छावनी आदिमें बढ़ईके कामके लिये),
३२ ,, =१ किष्कु (छावनी आदिमें लकड़ी चीरनेके लिये)
५४ अंगुल=१ हाथ (कुप्य द्रव्य और जंगल सम्बन्धी कार्योंमें काम आनेके लिये)।

चतुरशीत्यङ्गुलो व्यामो रज्जुमानं खातपौरुषं च ॥ १८ ॥

चौरासी अंगुलका एक हाथ, 'व्याम' कहा जाता है। यह रस्सीके नापने और खोदे हुए कुए या खाई आदिके नापनेमें काम आता है ॥ १८ ॥

८४ अंगुलका एक हाथ=१ व्याम (रस्सी, तथा कुए खाई आदिके नापनेके लिये)।

चतुररत्निर्दण्डो धनुर्नालिकापौरुषं च ॥ १९ ॥ गार्हपत्यमष्टशताङ्गुलं धनुः पथिप्राकारमानं पौरुषं चाग्निचित्यानाम् ॥२०॥

चार अरत्निका एक 'दण्ड' होता है। इसीको धनु नालिका और पौरुष भी कहते हैं ॥ १९ ॥ एकसौ आठ अंगुलका एक गार्हपत्य (गृहपति अर्थात् विश्वकर्माका देखा हुआ, या निश्चय किया हुआ) धनु होता है; यह सड़क और किले या शहरके परकोटेके नापनेमें काम आता है। तथा अग्निचयन अर्थात् यज्ञसम्बन्धी विशेष कार्योंमें भी एकसौ आठ अंगुलका एक 'पौरुष' माना जाता है ॥ २० ॥

४ अरत्नि=१ दण्ड-धनु-नालिका-पौरुष ।
१०८ अंगुल=१ गार्हपत्यधनु (सड़क और परकोटा आदि नापनेके लिये)।
,, =१ पौरुष (यज्ञसम्बन्धी कार्योंके लिये)।

षट्कंसो दण्डो ब्रह्मदेयातिथ्यमानम् ॥ २१ ॥ दशदण्डो रज्जुः ॥ २२ ॥ द्विरज्जुकः परिदेशः ॥ २३ ॥ त्रिरज्जुकं निवर्तनम् ॥ २४ ॥

छः कंस अर्थात् आठ प्राजापत्य हाथका एक दण्ड होता है; यह ऋत्विक् आदि ब्राह्मणोंको दिये जाने वाले भूमि पदार्थों, तथा अतिथियोंके हितकर पदार्थोंके नापनेमें काम आता है ॥ २१ ॥ दस दण्डका एक रज्जु होता है (यहां

पर दण्ड साधारण चार हाथका ही लेना चाहिये) ॥ २२ ॥ दो रज्जुका एक 'परिदेश' होता है ॥ २३ ॥ और तीन रज्जुका अर्थात् डेढ़ परिदेशका एक 'निवर्त्तन' होता है ॥ २४ ॥

६ कंस या आठ हाथ=१ दण्ड (ब्राह्मण आदिको भूमि देनेके कार्यमें उपयुक्त होने वाला) ।

१० दण्ड=(यहां एक दण्ड साधारण ४ अरत्निका ही लेना चाहिये) । =१ रज्जु

२ रज्जु =१ परिदेश

३ रज्जु या $1\frac{1}{2}$ परिदेश=१ निवर्त्तन

एकतो द्विदण्डाधिको बाहुः ॥ २५ ॥ द्विधनुःसहस्रं गोरुतम् ॥ २६ ॥ चतुर्गोरुतं योजनम् ॥ २७ ॥ इति देशमानं व्याख्यातम् ॥ २८ ॥

तीस दण्डका एक निवर्त्तन होता है, उसके एक ओरको यदि दो दण्ड बढ़ा दिये जावें, अर्थात् जिस परिमाणमें लम्बाई चौड़ाई एकसी न होकर एक ओर तीस दण्ड और एक ओर बत्तीस दण्ड हो, उस परिमाणका नाम 'बाहु' होता है ॥ २५ ॥ दो हज़ार धनुका एक गोरुत होता है; इसको एक क्रोश या कोस भी कहते हैं ॥ २६ ॥ चार गोरुतका एक योजन होता है ॥ २७ ॥ यहां तक देश मानका निरूपण किया गया ॥ २८ ॥

इस सम्पूर्ण देश मानका, बीचकी अवान्तर नापों को छोड़कर, निम्न लिखित रीतिसे निर्देश किया जासकता है:—

८ परमाणु =१ धूलीकण
८ धूलीकण =१ लिक्षा
८ लिक्षा =१ यूकामध्य
८ यूकामध्य =१ यवमध्य
८ यवमध्य =१ अंगुल
४ अंगुल =१ धनुर्ग्रह
२ धनुर्ग्रह =१ धनुर्मुष्टि
$1\frac{1}{2}$ धनुर्मुष्टि =१ वितस्ति=(१ बिलांयद)
२ वितस्ति =१ अरत्नि=(१ हाथ)
४ अरत्नि =१ दण्ड

१० दण्ड	=१ रज्जु
२ रज्जु	=१ परिदेश
१½ परिदेश	=१ निवर्त्तन
६६⅔ निवर्त्तन, या २००० धनु (दण्ड)	=१ गोरुत (कोश=कोश)
४ गोरुत	=१ योजन

कालमानमत ऊर्ध्वम् ॥ २९ ॥ तुटो लवो निमेषः काष्ठा कला नालिका मुहूर्तः पूर्वापरभागौ दिवसो रात्रिः पक्षो मास ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति कालाः ॥ ३० ॥

अब इसके आगे काल मानका निरूपण किया जायगा ॥ २९ ॥ तुट (त्रुटि), लव, निमेष, काष्ठा, कला, नालिका, मुहूर्त, पूर्वभाग (पूर्वाह्ण), अपरभाग (अपराह्ण), दिवस (दिन), रात्रि, पक्ष (पखवाड़ा), मास, ऋतु, अयन (उत्तरायण, दक्षिणायन; छः महीनेका एक अयन होता है) संवत्सर और युग; ये कालके साधारणतया सत्रह विभाग किये जाते हैं ॥ ३० ॥

निमेषचतुर्भागस्तुटः, द्वौ तुटौ लवः ॥ ३१ ॥ द्वौ लवौ निमेषः ॥ ३२ ॥ पञ्च निमेषाः काष्ठा ॥ ३३ ॥ त्रिंशत्काष्ठाः कला ॥ ३४ ॥

निमेष (आंखका पलक मारनेमें जितना समय लगता है, उसे निमेष कहते हैं) का चौथा हिस्सा, अर्थात् कालका सबसे छोटा परिमाण तुट या त्रुटि होता है। दो तुटका एक लव होता है ॥ ३१ ॥ दो लवका एक निमेष होता है ॥ ३२ ॥ पांच निमेषकी एक काष्ठा होती है ॥ ३३ ॥ तीस काष्ठाकी एक कला होती है ॥ ३४ ॥

चत्वारिंशत्कलाः नालिका ॥ ३५ ॥ सुवर्णमाषकाश्चत्वारश्चतुरङ्गुलायामाः कुम्भच्छिद्रमाढकमम्भसो वा नालिका ॥ ३६ ॥

चालीस कलाकी एक नालिका होती है ॥ ३५ ॥ अथवा एक घड़ेमें चार सुवर्ण मापककी बराबर चौड़ा और चार अंगुल लम्बा एक छेद बनाया जावे; अर्थात् इतने परिमाणकी एक नलीसी घड़ेमें लगादी जावे; और उस घड़ेमें एक आढक जल भर दिया जावे, इतना जल उस नलीसे जितने समयमें निकले, उतने कालको भी नालिका कहते हैं। (किसी २ पुस्तकमें इस एक सूत्र

के स्थानपर दो सूत्र दिये गये हैं। जिसमें 'सुवर्णमाषकाश्चत्वारश्चतुरङ्गुलायामाः' यहां तक एक सूत्र माना है; इसमें कोई पाठ भेद नहीं; परन्तु सूत्रके अगले भागके स्थानपर सर्वथा पाठान्तररूप एक दूसराही सूत्र इस प्रकारका है—'तत्प्रमाणकुम्भच्छिद्रेण जलाढकस्य यावता कालेन स्रुतिः स कालो वा नालिका'। दोनों पाठोंमें अर्थ समान ही है ॥ ३६ ॥

द्विनालिको मुहूर्तः ॥ ३७ ॥ पञ्चदशमुहूर्तो दिवसो रात्रिश्च चैत्रे मासाश्वयुजे च मासि भवतः ॥ ३८ ॥ ततः परं त्रिभिर्मुहूर्तैरन्यतरः षण्मासं वर्धते ह्रसते चेति ॥ ३९ ॥

दो नालिकाका एक मुहूर्त होता है ॥ ३७ ॥ पन्द्रह मुहूर्त्तका एक दिन और एक रात होते हैं। परन्तु ये इस परिमाणके दिन रात चैतके महीनेमें और आश्विनके महीनेमें ही होते हैं। क्योंकि इन महीनोंमें दिन और रात बराबर २ होते हैं ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर छः महीनेतक दिन बढ़ता जाता है, और रात्रि घटती जाती है, फिर दूसरे छः महीने तक, रात्रि बढ़ती जाती है, और दिन घटता जाता है। यह घटना और बढ़ना तीन मुहूर्त तक होता है। अर्थात् दिन और रातमें अधिकसे अधिक तीन मुहूर्त्तकी न्यूनाधिकताका भेद पड़ जाता है ॥ ३९ ॥

छायायामष्टपौरुष्यामष्टादशभागश्छेदः ॥ ४० ॥ षट्पौरुष्यां चतुर्दशभागः ॥ ४१ ॥ चतुष्पौरुष्यामष्टभागः ॥ ४२ ॥ द्विपौरुष्यां षड्भागः ॥ ४३ ॥ पौरुष्यां चतुर्भागः ॥ ४४ ॥ अष्टाङ्गुलायां त्रयो दशभागाः ॥ ४५ ॥ चतुरङ्गुलायां त्रयोऽष्टभागाः ॥ ४६ ॥ अच्छायो मध्याह्न इति ॥ ४७ ॥

जब धूप घड़ीमें छाया आठ छायापौरुष लम्बी हो (बारह अंगुलका एक पौरुष होता है, आठ छायापौरुषमें छ्यानवें अंगुल हुए, इसलिये जब धूप घड़ीकी छाया ९६ अंगुल लम्बी हो), तो समझना चाहिये कि सम्पूर्ण दिनका अठारहवां हिस्सा समाप्त होचुका है (एक पूरा दिन तीस नाडिकाका होता है, उसका अठारहवां हिस्सा पौने दो नाडिका हुई, इतना समय बीत चुकता है, और सवा अट्ठाईस नाडिका उस समय तक दिनकी बाकी रहती हैं) ॥ ४० ॥ इसी तरह बहत्तर अंगुल छाया रहनेपर दिनका चौदहवां हिस्सा ॥ ४१ ॥ अड़तालीस अंगुल छाया रहनेपर दिनका आठवां हिस्सा ॥ ४२ ॥ चौबीस अंगुल छाया रहनेपर दिनका छटा हिस्सा ॥ ४३ ॥ एक छायापौरुष अर्थात् बारह अंगुल छाया रहनेपर दिनका चौथा हिस्सा ॥ ४४ ॥ आठ अंगुल छाया रहनेप

नके दस भागोंमेंसे तीन हिस्सा; (दिनके दस भाग कल्पना करके,फिर उन-
ा तीसरा हिस्सा) ॥ ४५ ॥ चार अंगुल छाया रहनेपर, दिनके आठ हिस्सों-
मेंसे तीन हिस्सा दिन समाप्त हुआ २ समझना चाहिये ॥ ४६ ॥ जब छाया
बेल्कुल न रहे, तो पूरा मध्यान्ह समझना चाहिये ॥ ४७ ॥

परावृत्ते दिवसे शेषमेवं विद्यात् ॥ ४८ ॥

मध्यान्ह अर्थात् बारह बजेके बाद, उपर्युक्त छायाके अनुसार दिनका
शेष समझना चाहिये । अर्थात् चार अंगुल छाया होनेपर, दिनके आठ हिस्सों-
मेंसे तीन हिस्सा दिन शेष समझना चाहिये । इसी प्रकार आठ अंगुल छाया
होनेपर, दिनके दस हिस्सोंमेंसे तीन हिस्सा दिन शेष समझना चाहिये । बारह
अंगुल रहनेपर दिनका चौथा हिस्सा, चौबीस अंगुल होनेपर छठा, अड़तालीस
अंगुल होनेपर आठवां, बहत्तर अंगुल होनेपर चौदहवां, छियानवें अंगुल होनेपर
अठारहवां हिस्सा दिनका शेष समझना चाहिये । तदनन्तर दिन समाप्त हो-
जाता है, और रात्रिका प्रारम्भ होता है ॥ ४८ ॥

आषाढे मासि नष्टच्छायो मध्याह्नो भवति ॥ ४९ ॥ अतः
परं श्रावणादीनां षण्मासानां द्व्यङ्गुलोत्तरा माघादीनां द्व्यङ्गुला-
वरा छाया इति ॥ ५० ॥

आषाढके महीनेमें मध्यान्ह छाया रहित होता है ॥ ४९ ॥ इसके
अनन्तर, श्रावणके महीनेसे लगाकर छः महीनेमें मध्यान्हके समय भी दो
अंगुल छाया अधिक होती है, और फिर माघ आदि छः महीनोंमें दो अंगुल
न्यून होजाती है ॥ ५० ॥

पञ्चदशाहोरात्राः पक्षः ॥५१॥ सोमाप्यायनः शुक्लः ॥५२॥
सोमावच्छेदनो बहुलः ॥ ५३ ॥

पन्द्रह दिन रातका एक पक्ष होता है ॥५१॥ चन्द्रमा जिस पक्षमें बढ़ता
चला जाय उसे शुक्लपक्ष कहते हैं ॥ ५२ ॥ और जिस पक्षमें चन्द्रमा घटता
जावे, उसे बहुल अर्थात् कृष्णपक्ष कहते हैं ॥ ५३ ॥

द्विपक्षो मासः ॥ ५४ ॥ त्रिंशदहोरात्रः प्रकर्ममासः ॥५५॥
सार्धः सौरः ॥ ५६ ॥ अर्धन्यूनश्चान्द्रमासः ॥ ५७ ॥ सप्तविंश-
तिर्नाक्षत्रमासः ॥ ५८ ॥ द्वात्रिंशत् मलमासः ॥ ५९ ॥ पञ्च
त्रिंशदश्ववाहायाः ॥ ६० ॥ चत्वारिंशद्धस्तिवाहायाः ॥ ६१ ॥

दो पक्षका एक महीना होता है ॥ ५४ ॥ तीस दिन रात का एक महीना, नौकरों को वेतन आदि देनेके लिये काममें लाया जाता है ॥ ५५ ॥ साढ़े तीस (३०½) दिनका, एक सौर (सूर्य की गतिके अनुसार की हुई गणनाके द्वारा बना हुआ) मास होता है । (इसलिये ५४ सूत्रमें जो दो पक्ष का महीना बताया है, वहां चान्द्रमास ही समझना चाहिये, दो पक्षकी कल्पना चन्द्रमाके अनुसार ही की जाती है । इसके अतिरिक्त ५७ सूत्रमें चान्द्रमास की ठीक २ गणना बताई गई है) ॥५६॥ साढ़े उन्तीस (२९½) दिन का एक चान्द्रमास होता है ॥ ५७ ॥ सत्ताईस (२७) दिनका नाक्षत्रमास होता है ॥ ५८ ॥ बत्तीस (३२) दिन रातका एक मलमास होता है ॥ ५९ ॥ पैंतीस दिन रातका एक महीना, घोड़ोंपर काम करनेवाले सईस आदि नौकरों को वेतन देनेके लिये काममें लाया जाता है । अर्थात् इन भृत्योंका महीना ३५ दिनका समझना चाहिये ॥ ६० ॥ इसी प्रकार जो सेवक हाथियों पर काम करने वाले हों, उनका महीना चालीस दिनका समझना चाहिये । अर्थात इतने दिनों का एक महीना मानकर उन्हें वेतन दिया जावे ॥ ६१ ॥

द्वौ मासावृतुः ॥ ६२ ॥ श्रावणः प्रोष्ठपदश्च वर्षाः ॥६३॥ आश्वयुजः कार्तिकश्च शरत् ॥ ६४ ॥ मार्गशीर्षः पौषश्च हेमन्तः ॥ ६५ ॥ माघः फाल्गुनश्च शिशिरः ॥ ६६ ॥ चैत्रो वैशाखश्च वसन्तः ॥ ६७ ॥ ज्येष्ठामूलीय आषाढश्च ग्रीष्मः ॥ ६८ ॥

दो महीनेका एक ऋतु होता है ॥ ६२ ॥ श्रावण और प्रोष्ठपद (अर्थात् भाद्रपद), इन दो महीनों की वर्षाऋतु होती है ॥ ६३ ॥ आश्विन और कार्त्तिक इन दो महीनों की शरद् ऋतु होती है ॥ ६४ ॥ मार्गशीर्ष (अगहन—मंगसिर) और पौष, इन दो महीनों की हेमन्त ऋतु होती है ॥ ६५ ॥ माघ और फाल्गुन इन दो महीनों की शिशिर ऋतु होती है ॥ ६७ ॥ चैत्र और वैशाख ये दो महीने बसन्त ऋतुके होते हैं ॥ ६७ ॥ ज्येष्ठामूलीय (ज्येष्ठ-जेठ) और आषाढ़ महीनेमें ग्रीष्म ऋतु होती है ॥ ६८ ॥

शिशिराद्युत्तरायणम् ॥ ६९ ॥ वर्षादि दक्षिणायनम् ॥७०॥ द्व्ययनः संवत्सरः ॥ ७१ ॥ पञ्चसंवत्सरो युगमिति ॥ ७२ ॥

शिशिर बसन्त और ग्रीष्म ऋतु उत्तरायण कहाती हैं ॥ ६९ ॥ और वर्षा शरद् तथा हेमन्त ये तीनों ऋतु दक्षिणायन कही जाती हैं ॥ ७० ॥ दो अयन (दक्षिणायन और उत्तरायण) का एक संवत्सर होता है ॥ ७१ ॥

पांच संवत्सर का एक युग होता है। यहां तक कालमानका निरूपण किया गया ॥ ७२ ॥

कालके अवान्तर विभागों को छोड़कर, शेष सम्पूर्ण कालमानका निम्न-लिखित रीतिसे निर्देश किया जासकता है:—

२ तुट	=	१ लव
२ लव	=	१ निमेष
५ निमेष	=	१ काष्ठा
३० काष्ठा	=	१ कला
४० कला	=	१ नाडिका
२ नाडिका	=	१ मुहूर्त
१५ मुहूर्त	=	१ दिन और रात
१५ दिन रात	=	१ पक्ष
२ पक्ष	=	१ महीना
२ महीना	=	१ ऋतु
३ ऋतु	=	१ अयन
२ अयन	=	१ संवत्सर
५ संवत्सर	=	१ युग

दिवसस्य हरत्येकं षष्टिभागमृतौ ततः ।
करोत्येकमहश्छेदं तथैवैकं च चन्द्रमाः ॥ ७३ ॥
एवमर्धतृतीयानामब्दानामधिमासकम् ।
ग्रीष्मे जनयतः पूर्वं पञ्चाब्दान्ते च पश्चिमम् ॥ ७४ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे देशकालमानं विंशो ऽध्यायः ॥ २० ॥
आदित एकचत्वारिंशः ॥ ४१ ॥

अब दो श्लोकोंसे मलमास या अधिमास का निरूपण करते हैं:—सूर्य प्रतिदिन, दिनके साठवें हिस्से अर्थात् एक घटिका का छेद कर लेता है, इस तरह एक ऋतु में साठ घटिका=एक दिन, अधिक बना देता है। (इस प्रकार एक सालमें छः दिन, दो सालमें १२ दिन, और ढाई सालमें पन्द्रह दिन अधिक बना देता है) । इसी तरह चन्द्रमा भी प्रत्येक ऋतुमें एक २ दिन कम करता चला जाता है, और ढाई सालके बाद पन्द्रह दिनकी कमी होजाती है। इस प्रकार ढाई सालमें, सौर और चान्द्र गणनाके अनुसार दोनोंमें एक महीने की न्यूनाधिकता का भेद पड़ जाता है। उस समय ढाई सालके तीस महीनेके बाद, ग्रीष्म ऋतुमें प्रथम मलमास या अधिक मासको; और पांच

सालके बाद हेमन्त ऋतुमें एक अधिमास को, सूर्य और चन्द्रमा उत्पन्न करते हैं। अर्थात् ढाई सालमें इनकी गणनामें जो एक महीनेका भेद पड़जाता है। उसे एक महीना और अधिक बढ़ाकर पूरा कर दिया जाता है ॥७३,७४॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें बीसवां अध्याय समाप्त।

इक्कीसवां अध्याय

३९. प्रकरण

शुल्काध्यक्ष

राजाको दिये जाने वाले अंश का नाम शुल्क (चुंगी टैक्स) है, इस कार्यपर नियुक्त हुए प्रधान राज्याधिकारी को शुल्काध्यक्ष कहा जाता है। उसके कार्यों का निरूपण इस प्रकरण में किया जायगा।

शुल्काध्यक्षः शुल्कशालां ध्वजं च प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा महाद्वाराभ्याशे निवेशयेत् ॥ १ ॥

शुल्काध्यक्ष को चाहिये कि वह शुल्कशालाकी स्थापना करावे, और उसके पूर्व तथा उत्तरकी ओर, प्रधान द्वारके समीप एक ध्वजा (पताका) लगवावे, जो कि शुल्कशालाकी चिन्हभूत हो ॥ १ ॥

शुल्कादायिनश्चत्वारः पञ्च वा सार्थोपयातान्वणिजो लिखेयुः ॥ २ ॥ के कुतस्त्याः कियत्पण्याः क्व चाभिज्ञानमुद्रा वा कृता इति ॥ ३ ॥

शुल्काध्यक्ष, शुल्कशालामें चार या पांच पुरुषों को नियुक्त करे, जोकि लोगोंसे शुल्क (चुंगी) ग्रहण करते रहें, और जो व्यपारी आदि अपने माल को लेकर उधरसे निकलें, उनके सम्बन्धमें निम्न लिखित बातोंको लिखें:— ॥ २ ॥ उनके नाम जाति आदि, उनका निवास स्थान (अर्थात् वे व्यापारी कहांके रहने वाले हैं); उनके पासकी विक्रेय वस्तुका परिमाण, और किस स्थानमें उन्होंने अपने मालपर वहांकी विशेष मुहर लगवाई है। (अर्थात् किस अन्तपाल आदिने उनके मालको देखकर उसपर अपनी मुहरकी है, अथवा की है या नहीं ?) ॥ ३ ॥

अमुद्राणामत्ययो देयद्विगुणः ॥ ४ ॥ कूटमुद्राणां शुल्काष्टगुणो दण्डः ॥ ५ ॥

जिन व्यापारियोंके मालपर वह मुहर न लगी हुई हो, उनको उस देय अंशसे दुगना दण्ड दिया जावे (जो अंश, उसे अन्तपालके पास देना चाहिये था, उसीका दुगना दण्ड देना चाहिये) ॥४॥ तथा जिन व्यापारियोंने अपने मालपर नकली मुहर लगाई हो, उनको उस शुल्कसे आठ गुणा दण्ड दिया जावे ॥ ५ ॥

भिन्नमुद्राणामत्ययो घटिकाः स्थाने स्थानम् ॥ ६ ॥ राजमुद्रापरिवर्तने नामकृते वा सपादपणिकं वहनं दापयेत् ॥ ७ ॥

जो व्यापारी मुद्रा लेकर उसे नष्ट करदें; उन्हें तीन घटिका तक शुल्कशालाके ऐसे हिस्सेमें बैठाया जावे, जहांपर आने जाने वाले अन्य सब व्यापारी उनको देखें, कि इन्होंने अमुक अपराध किया है। यही उनका दण्ड है ॥ ६ ॥ राजकीय मुद्राके बदल देनेपर, अथवा विक्रेय वस्तुका नाम बदलदेनेपर, पण्यको लेजाने वाले पुरुषको (अर्थात् जो पुरुष विक्रेय वस्तुको लेजावे, उसे) सवा (१¼) पण दण्ड दिया जावे ॥ ७ ॥

ध्वजमूलोपस्थितस्य प्रमाणमर्घं च वैदेहकाः पण्यस्य ब्रूयुः ॥ ८ ॥ एतत्प्रमाणेनार्घेण पण्यमिदं कः क्रेतेति ॥ ९ ॥

व्यापारी पुरुष शुल्कशालाके आंगनमें उपस्थित हुए पण्यके परिमाणको और मूल्यको इसप्रकार कहें अर्थात् आवाज़ लगावें ॥ ८ ॥ इस मालका इतना परिमाण और इतना मूल्य है, इसका कोई खरीदने वाला है ? (अर्थात् जो इसको खरीदने वाला हो, वह बोलदे) ॥ ९ ॥

त्रिरुद्घोषितमर्थिभ्यो दद्यात् ॥ १० ॥ क्रेतृसंघर्षे मूल्यवृद्धिः सशुल्का कोशं गच्छेत् ॥ ११ ॥

इसप्रकार तीनबार आवाज़ देनेपर जो ख़रीदना चाहे, उसे उतनेही मूल्यपर माल दिलवा दिया जावे ॥ १० ॥ यदि ख़रीदने वालोंमें आपसमें संघर्ष होजावे (अर्थात् ख़रीदने वाले, एक दूसरेसे बढ़कर उस मालका मूल्य लगाते जावें), तो उस मालके बोले हुए मूल्यसे जितनी अधिक आमदनी हो, वह शुल्क सहित (चुंगीके साथ २) राजकीय कोशमें भेजदी जावे ॥ ११ ॥

शुल्कभयात्पण्यप्रमाणं मूल्यं वा हीनं ब्रुवतस्तदतिरिक्तं राजा हरेत् ॥ १२ ॥ शुल्कमष्टगुणं वा दद्यात् ॥ १३ ॥

शुल्क अधिक देनेके डरसे जो व्यापारी, अपने मालके परिमाणको और मूल्यको कम करके बोले; तो उसके बोले हुए परिमाणसे अधिक मालको राजा लेलेवे ॥ १२ ॥ अथवा उस व्यापारीसे इस अपराधमें आठ गुना शुल्क वसूल किया जावे ॥ १३ ॥

तदेव निविष्टपण्यस्य भाण्डस्य हीनप्रतिवर्णकेनार्घापकर्षणे सारभाण्डस्य फल्गुभाण्डेन प्रतिच्छादने च कुर्यात् ॥ १४ ॥

यही दण्ड उस समय होना चाहिये, जब कि व्यापारी शुल्कसे बचने के लिये, पेटीमें बन्द हुए २ बढ़िया मालके स्थानपर उसी तरहकी पेटीमें बंद हुए घटिया मालको दिखाकर मूल्य कम करे, और नीचे बोरी आदिमें बढ़िया चीज भरकर ऊपरसे उसे घटिया चीजोंसे भरदे, तथा उसे ही दिखाकर थोड़े मूल्यके अनुसार थोड़ी चुंगी देवे ॥ १४ ॥

प्रतिक्रेतृभयाद्वा पण्यमूल्यादुपरि मूल्यं वर्धयतो मूल्यवृद्धिं राजा हरेत् ॥ १५ ॥ द्विगुणं वा शुल्कं कुर्यात् ॥ १६ ॥

दूसरे खरीदारके डरसे जो पुरुष (खरीदार), किसी वस्तुके उचित मूल्यसे अधिक मूल्य बढ़ाता जावे, उस बढ़े हुए मूल्यको राजा ले लेवे ॥ १५ ॥ अथवा उस पुरुषसे (मूल्य बढ़ाने वाले पुरुषसे) दुगनी चुंगी वसूल की जावे ॥ १६ ॥

तदेवाष्टगुणमध्यक्षस्य छादयतः ॥ १७ ॥ तस्माद्विक्रयः पण्यानां धृतो मितो गणितो वा कार्यः ॥ १८ ॥

यदि यही अपराध अध्यक्ष करे अर्थात् मित्रताके कारण या रिश्वत आदि लेकर यदि अध्यक्ष किसी व्यापारीके उपर्युक्त अपराध को छिपा लेवे तो उसे आठ गुणा दण्ड दिया जावे। अर्थात् जिस २ अपराधमें व्यापारी को जो २ दण्ड बताया गया है, उस अपराधके छिपानेपर अध्यक्ष को उससे आठ गुना दण्ड दिया जाय ॥ १७ ॥ इस लिये पण्य द्रव्यों का विक्रय, तराजू पर रखकर, बाटोंसे तोलकर, तथा गिनकर करना चाहिये, जिससे कि कोई झूठा व्यवहार न करसके ॥ १८ ॥

तर्कः फल्गुभाण्डानामानुग्राहिकाणां च ॥ १९ ॥ ध्वजमूलमतिक्रान्तानां चाकृतशुल्कानां शुल्कादष्टगुणो दण्डः ॥ २० ॥ पथिकोत्पथिकास्तद्विद्युः ॥ २१ ॥

कोयले आदि कम कीमत की चीजोंपर, तथा जिन वस्तुओंपर चुंगी आदि थोड़ी लीजाय, ऐसे नमक आदि पदार्थोंपर अन्दाज़ करके ही शुल्क ले लेना चाहिये, इनको तोलने आदिकी आवश्यकता नहीं ॥ १९ ॥ जो व्यापारी लुक छिपकर या और किसी ढंगसे, शुल्क दिये बिना ही शुल्कशालाको लांघ जावें, उन्हें नियत शुल्कसे आठ गुना दण्ड देना चाहिये ॥ २० ॥ जंगलोंसे लकड़ी आदि लाने वाले (जिनको असली रास्ता छोड़कर जानेकी आज्ञा होती

है, जैसे लकड़हारे आदि), तथा पशुओंका चरानेवाले ग्वाल, ऐसे व्यापारियों का (जो कि असली रास्ता छोड़कर चुंगीके डरसे इधर उधरसे निकल कर जाते हैं, उनका) ध्यान रक्खें; जिससे कि वह अभियोग आदि चलनेपर साक्षी देसकें ॥ २१ ॥

वैवाहिकमन्वायनमौपायनिकं यज्ञकृत्यप्रसवनैमित्तिकं देवेज्याचौलोपनयनगोदानव्रतदीक्षणादिषु क्रियाविशेषेषु भाण्डमुच्छुल्कं गच्छेत् ॥ २२ ॥ अन्यथावादिनः स्तेयदण्डः ॥ २३ ॥

निम्न लिखित मालपर चुंगी न लीजाय:—जो माल विवाह सम्बन्धी हो (अर्थात् विवाहके लिये लाया गया हो); विवाहके अनन्तर जो विवाहिता अपने पतिगृह को जावे उसके साथ जो माल लेजाया जावे; अन्नसत्र आदिके लिये जो भेंट किया हुआ हो, यज्ञकार्य तथा प्रसव (अर्थात् जातकर्म और सूतक) आदिके लिये हो, देवपूजा तथा चौल उपनयन गोदान और विशेष व्रत आदि धार्मिक कार्योंके निमित्त जो द्रव्य होवे, ऐसा माल बिना चुंगी लाया लेजाया जासकता है ॥ २२ ॥ उपर्युक्त कार्योंमें उपयोग न आने वाले द्रव्यको भी चुंगीसे बचनेके लिये जो झूठ बोलकर इसी सम्बन्धका बतादे, उसे चोरीका दण्ड दिया जावे ॥ २३ ॥

कृतशुल्केनाकृतशुल्कं निर्वाहयतो द्वितीयमेकमुद्रया भित्त्वा पण्यपुटमपहरतो वैदेहकस्य तच्च तावच्च दण्डः ॥ २४ ॥ शुल्कस्थानाद्गोमयपलालं प्रमाणं कृत्वापहरत उत्तमः साहसदण्डः॥२५॥

चुंगी दिये हुए मालके साथ २, बिना चुंगी दिये मालको भी धोखेसे साथ निकाल लेजाने वाले, तथा एक मालकी चुंगी की मुहरमें, ठीक उसी तरहके दूसरे मालको भी निकालकर लेजाने वाले, और चुंगी दियेहुए मालके भीतर बिना चुंगीके माल को भरकर लेजाने वाले, व्यापारी का वह द्रव्य (जिसपर चुंगी नहीं लीगई) छीन लिया जावे, और उसको उतना ही दण्ड दिया जावे ॥ २४ ॥ तथा जो व्यापारी शुल्कशालासे अपने बढ़िया कीमती मालको भी, विश्वास पूर्वक गोबर या भुस आदि अत्यन्त घटिया माल कहकर, धोखेसे निकाल लेजाने का यत्न करे, उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥२५॥

शस्त्रवर्मकवचलोहरथरत्नधान्यपशूनामन्यतममनिर्वाह्यं निर्वाहयतो यथावघुषितो दण्डः पण्यनाशश्च ॥ २६ ॥ तेषामन्यतमस्यानयने बहिरेवोच्छुल्को विक्रयः ॥ २७ ॥

शस्त्र (हथियार), वर्म (साधारण कवच आदि आवरण), कवच (बाहु सिर आदि सम्पूर्ण अवयवोंसे युक्त विशेष कवच), लोहा, रथ, रत्न, धान्य (अन्न आदि), तथा पशु इन आठ वस्तुओंमें से किसी एकको भी, जिसके सम्बन्धमें राजाने लाना लेजाना बन्द कर दिया हो, कोई लावे लेजावे, उसकी वही चीज़ ज़ब्त करली जावे, और पहिले की हुई घोषणाके अनुसार उसे दण्ड दिया जाय । अर्थात् राजासे प्रतिषिद्ध इन वस्तुओंको लाने लेजाने वाला पुरुष इस प्रकार दण्डित किया जावे ॥ २६ ॥ यदि उपर्युक्त शस्त्र आदि आठ वस्तुओंमें से कोई भी वस्तु बाहरसे लाई जावे, तो वह चुंगीके बिना ही बाहर (अर्थात् नगरकी अवधि के बाहर) ही बेची जा सकती है ॥ २७ ॥

अन्तपालः सपादपणिकां वर्तनीं गृह्णीयात्पण्यवहनस्य ॥२८॥ पणिकामेकखुरस्य पशूनामर्धपणिकां क्षुद्रपशूनां पादिकामंसभारस्य माषिकाम् ॥ २९ ॥ नष्टापहृतं च प्रतिविदध्यात् ॥ ३० ॥

अन्तपाल, बिक्रीका माल ढोने वाली गाड़ी आदिसे सवा पण (1¼पण) वर्त्तनी (मार्गमें रक्षा आदि करनेका टैक्स) लेवे ॥ २८ ॥ घोड़े खच्चर गधे आदि एक खुर वाले पशुओंकी एक पण वर्त्तनी लेवे । तथा इनसे अतिरिक्त बैल आदि पशुओंकी आधा पण, बकरी भेड़ आदि क्षुद्र पशुओंकी चौथाई पण, और कंधे-पर भार ढोने वालोंकी एक माष (तांबेका एक सिक्का) वर्त्तनी लेवे ॥ २९ ॥ यदि किसी व्यापारीकी कोई चीज़ नष्ट होजावे, या चोरोंके द्वारा चुराली जावे, तो अन्तपालही उसका प्रबन्ध करे । खोई हुई चीज़को ढूंढकर, तथा चुराई हुई चीज़को चोरोंको पकड़कर वापस लेकर देवे, अन्यथा अपने पाससे देवे ॥ ३० ॥

वैदेश्यं सार्थं कृतसारफल्गुभाण्डविचयनमभिज्ञानं मुद्रां च दत्त्वा प्रेषयेदध्यक्षस्य ॥ ३१ ॥ वैदेहकव्यञ्जनो वा सार्थप्रमाणं राज्ञः प्रेषयेत् ॥ ३२ ॥

विदेशसे आनेवाले व्यापारी समूहको, अन्तपाल, उनके सब तरहके बढ़िया और घटिया मालको जांचकर, उसपर मुहर लगाकर तथा उन्हें रमन्ना (पास) देकर, अध्यक्ष (शुल्काध्यक्ष) के पास भेज देवे ॥ ३१ ॥ व्यापारियोंके साथ, छिपे वेशमें रहने वाला, राजासे नियुक्त किया हुआ गूढ़पुरुष, राजाको उन सब व्यापारियोंके सम्बन्धमें पहिलेही गुप्तरूपसे सूचना देवे ॥ ३२ ॥

तेन प्रदेशेन राजा शुल्काध्यक्षस्य सार्थप्रमाणमुपदिशेत्सर्वज्ञख्यापनार्थम् । ३३ । ततः सार्थमध्यक्षो अभिगम्य ब्रूयात्

॥ ३४ ॥ इदममुष्यामुष्य च सारभाण्डं फल्गुभाण्डं च न निगूहितव्यम् ॥ ३५ ॥ एष राज्ञः प्रभाव इति ॥ ३६ ॥

इसी सूचनाके द्वारा, राजा शुल्काध्यक्षके पास, उन व्यापारियोंके सम्बन्धमें उपयोगी सब बात लिख भेजे, जिससे कि शुल्काध्यक्षको राजाकी सर्वज्ञतापर विश्वास होजावे, तथा वह राजाकी इस बातको विश्वास-पूर्वक कह सके ॥ ३३ ॥ तदनन्तर इसीके अनुसार, शुल्काध्यक्ष व्यापारियोंसे जाकर कहे ॥ ३४ ॥ आप लोगोंमेंसे अमुक २ व्यापारीका इतना २ बढ़िया माल तथा इतना घटिया माल है, इसमेंसे आपको कुछ भी छिपाना न चाहिये ॥ ३५ ॥ देखिये राजाका इतना प्रभाव है, कि वह इस प्रकार परोक्ष वस्तुओंके सम्बन्धमें भी अपना निश्चय देसकता है । (इसप्रकार राजाकी महिमाको उनपर प्रकट करे) ॥ ३६ ॥

निगूहतः फल्गुभाण्डं शुल्काष्टगुणो दण्डः ॥ ३७ ॥ सारभाण्डं सर्वापहारः ॥ ३८ ॥

जो व्यापारी घटिया मालको छिपावे, उसे शुल्कसे आठ गुना दण्ड दिया जावे ॥ ३७ ॥ तथा जो सारभाण्ड अर्थात् बढ़िया मालको छिपावे, उसके उस सम्पूर्ण मालका अपहरण कर लिया जावे; अर्थात् उसे ज़ब्त कर लिया जावे ॥ ३८ ॥

राष्ट्रपीडाकरं भाण्डमुच्छिन्द्यादफलं च यत् ।
महोपकारमुच्छुल्कं कुर्याद्बीजं तु दुर्लभम् ॥ ३९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे शुल्काध्यक्ष एकविंशो ऽध्यायः ॥ २१ ॥

आदितो द्विचत्वारिंशः ॥ ४२ ॥

राष्ट्रको पीड़ा पहुंचाने वाले (विष या मादक द्रव्य आदि), तथा कोई अन्य अच्छा फल न देने वाले मालको राजा नष्ट करवा देवे । और जो प्रजाको उपकार करने वाला, तथा अपने देशमें कठिनतासे मिलने वाला, धान्य आदि या अन्य प्रकारका माल हो, उसे शुल्क रहित कर दिया जावे; अर्थात् उसपर चुंगी न लीजावे, जिससे कि ऐसा माल अधिक मात्रामें अपने देशके अन्दर आसके ॥ ३९ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें इक्कीसवां अध्याय समाप्त ।

बाईसवां अध्याय ।

३९ प्रकरण ।

शुल्कव्यवहार ।

{ अमुक द्रव्यपर इतना शुल्क लेना चाहिये, इसप्रकारकी व्यवस्थाका करना ' शुल्कव्यवहार ' कहाता है । इस अध्यायमें इसीका निरूपण किया जायगा ।

शुल्कव्यवहारो बाह्यमाभ्यन्तरं चातिथ्यम् ॥१॥ निष्क्राम्यं प्रवेश्यं च शुल्कम् ॥ २ ॥

इस शुल्क व्यवहारमें, शुल्क तीन प्रकारका होता है,-बाह्य, आभ्यन्तर, और आतिथ्य ॥ १ ॥ यह तीनों प्रकारकाही शुल्क, निष्क्राम्य और प्रवेश्य इन दो भागोंमें विभक्त होता है । (अपने देशमें उत्पन्न हुई वस्तुओंपर जो चुंगी लीजाय, वह ' बाह्य ' कहाती है; दुर्ग तथा राजधानी आदिके भीतर उत्पन्न हुई वस्तुओंके शुल्कको ' आभ्यन्तर ' कहते हैं; तथा विदेशसे आने वाले माल-की चुंगीको ' आतिथ्य ' कहा जाता है । ये तीनोंही दो भागोंमें विभक्त होते हैं—निष्क्राम्य और प्रवेश्य । बाहर जाने वाले मालकी चुंगीको ' निष्क्राम्य ' और भीतर देशमें आने वाले मालकी चुंगीको ' प्रवेश्य ' कहा जाता है) ॥२॥

प्रवेश्यानां मूल्यपञ्चभागः ॥ ३ ॥ पुष्पफलशाकमूलकन्द-वाल्लिक्यबीजशुष्कमत्स्यमांसानां षड्भागं गृह्णीयात् ॥ ४ ॥

बाहरसे आने वाले पदार्थोंपर उनके मूल्यका पांचवां हिस्सा चुंगी लीजावे । यह चुंगी का साधारण नियम है ॥ ३ ॥ फूल, फल, शाक, (बथुआ मेथी आदि), मूल (जड़) कन्द (सूरण विदारी आदि), 'वाल्लिक्य' (बेलोंपर लगने वाले फल--कद्दू पेठा आदि । किसी २ पुस्तकमें 'वाल्लिक्य' के स्थानपर 'वाल्लिक्य' पाठ भी है), बीज (धान्य आदि), और सूखी मछली तथा मांस; इन वस्तुओंपर इनके मूल्यका छठा हिस्सा चुंगी लीजावे ॥ ४ ॥

शङ्खवज्रमणिमुक्ताप्रवालहाराणां तज्जातपुरुषैः कारयेत्कृत-कर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः ॥ ५ ॥

शंख, वज्र, (हीरा), मणि, मुक्ता, प्रवाल (मूंगा), हार; इन छः पदार्थोंपर चुंगी, इन वस्तुओंके लक्षणोंको जाननेवाले, तथा फलसिद्धिके अनुसार जिनके साथ, नियत कार्य, काल और वेतन आदिका निश्चय किया जा चुका है ऐसे पुरुषोंके द्वारा नियत कराई जावे । क्योंकि ऐसे पुरुष शंख,

रत्न आदिके ठीक मूल्यको जानकर उनपर चुंगीका उचित निर्णय कर सकते हैं ॥ ५ ॥

क्षौमदुकूलक्रिमितानकङ्कटहरितालमनःशिलाहिङ्गुलुकलोहवर्णधातूनां चन्दनागरुकटुककिण्वावराणां सुरादन्ताजिनक्षौमदुकूलनिकरास्तरणप्रावरणक्रिमिजातानामैलकस्य च दशभागः पञ्चदशभागो वा ॥ ६ ॥

क्षौम (मोटे रेशमका कपड़ा), दुकूल (पतले रेशमका कपड़ा), क्रिमितान (चीनपट्ट=चीनका बनाहुआ रेशमी कपड़ा), कङ्कट (सूतका कवच), हरताल, मनसिल, हिङ्गुल, लोह, वर्णधातु (गेरू आदि); चन्दन, अगर, कटुक, (पीपल, मिरच आदि), किण्वावट (मादक बीजोंमेंसे निकलनेवाला तेलके समान एक द्रव्य); सराब, दांत (हाथी दांत आदि), चमड़ा (हरिण आदिका), क्षौम और दुकूल बनानेके तन्तुसमूह, आस्तरण (बिछौना आदि), प्रावरण (ओढनेका कपड़ा), अन्य रेशमी वस्त्र; तथा बकरी और भेड़ की ऊनके कपड़ोंपर इनके मूल्यका दशवां हिस्सा, या पन्द्रहवां हिस्सा चुंगी होनी चाहिये ॥ ६ ॥

वस्त्रचतुष्पदद्विपदसूत्रकार्पासगन्धभैषज्यकाष्ठवेणुवल्कलचर्ममृद्भाण्डानां धान्यस्नेहक्षारलवणमद्यपक्वान्नादीनां च विंशतिभागः पञ्चविंशतिभागो वा ॥ ७ ॥

साधारण वस्त्र, चौपाये, दुपाये, सूत, कपास, गन्ध, औषधि, लकड़ी, बांस, छाल, चमड़ा (बैल आदिका), मट्टीके वर्त्तन; धान्य, घी तेल आदि, खार, नमक, मद्य, तथा पकेहुए अन्न आदि पदार्थोंकी चुंगी, इनके मूल्य का बीसवां या पच्चीसवां भाग होनी चाहिये ॥ ७ ॥

द्वारादेयं शुल्कपञ्चभागम्, आनुग्राहिकं वा यथादेशोपकारं स्थापयेत् ॥ ८ ॥ जातिभूमिषु च पण्यानामविक्रयः ॥ ९ ॥ खनिभ्यो धातुपण्यादानेषु षट्छतमत्ययः ॥ १० ॥

नगरके प्रधान द्वारके प्रवेशका टैक्स, उन २ पदार्थोंके नियत शुल्कका पांचवां हिस्सा होना चाहिये। इस टैक्सको द्वाराध्यक्ष वसूल करे। सब तरह की चुंगी, और द्वार आदिके टैक्सको इस प्रकार नियुक्त किया जावे, जिससे कि अपने देशका सदा उपकार होता रहे ॥८॥ जिन प्रदेशोंमें जो वस्तु उत्पन्न होती हो, उन्हीं प्रदेशोंमें उन वस्तुओंका विक्रय नहीं किया जासकता ॥ ९ ॥ खानों

से बिना तैयार कियाहुआ माल (अर्थात् कच्चा माल), खरीदनेपर खरीदने और बेचने वालेको ६०० पण दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥

पुष्पफलवाटेभ्यः पुष्पफलादाने चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ११ ॥ षण्डेभ्यः शाकमूलकन्दादाने पादोनं द्विपञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १२ ॥ क्षेत्रेभ्यः सर्वसस्यादाने त्रिपञ्चाशत्पणः ॥१३॥ पणो ऽध्यर्धपणश्च सीतात्ययः ॥ १४ ॥

फूल और फलके बगीचोंसेही फूल फल खरीदनेपर, खरीदने और बेचने वालेको ५४ पण दण्ड दियाजावे ॥ ११ ॥ तथा इसी प्रकार बारी ('बारी' उन खेतों को कहते हैं, जिनमें केवल शाक आदि बोये जाते हैं) मेंसेही शाक मूल और कन्द आदि खरीदनेपर ५१¾ पण दण्ड दिया जावे ॥ १२ ॥ और अन्नके खेतोंमेंसेही हर तरहका अन्न खरीदनेपर ५३ पण दण्ड होना चाहिये ॥ १३ ॥ इसके अतिरिक्त, अनाजको खेतसेही मोललेने और बेचनेवालेको यथासंख्य एक पण तथा डेढ़ पण दण्ड और होना चाहिये । (इस बातका तात्पर्य यही है, कि हर एक माल बाजारमेंही लाकर बेचना चाहिये, जहाँ पैदा हो, वहीं न बेचना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे राजाको शुल्क आदि न मिलनेके कारण हानि होती है) ॥ १४ ॥

अतो नवपुराणानां देशजातिचरित्रतः ।
पण्यानां स्थापयेच्छुल्कमत्ययं चापकारतः ॥ १५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे शुल्कव्यवहारो द्वाविंशो ऽध्यायः ॥ २२ ॥
आदितस्त्रिचत्वारिंशः ॥ ४३ ॥

इसलिये राजाको चाहिये, कि वह नये और पुराने हरतरहके विक्रेय पदार्थोंके शुल्ककी, भिन्न २ देश तथा जातिके आचारोंके अनुसार स्थापना करे । और इनमें जहांसे हानिकी संभावना हो, उसके अनुसार उचित दण्डकी स्थापना भी करे ॥ १५ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें बाईसवां अध्याय समाप्त ।

तेईसवां अध्याय

४० प्रकरण

सूत्राध्यक्ष

[ऊन और कपास आदिसे जो सूत तैयार किया जाता है, उसका नाम 'सूत्र' कहा जाता है। उसको कतवाने या बुनवाने वाला, जो प्रधान अधिकारी राजा की ओरसे नियुक्त किया जावे, उसे 'सूत्राध्यक्ष' कहते हैं। इस प्रकरणमें उसीके कार्योंका निरूपण किया जायगा।

सूत्राध्यक्षः सूत्रवर्मवस्त्ररज्जुव्यवहारं तज्जातपुरुषैः कारयेत् ।

सूत्राध्यक्षको चाहिये कि वह सूत, कवच, वस्त्र, और रज्जु (रस्सी) पदार्थोंके कातने बुनने और बटने आदि व्यवहारको, उन २ पदार्थोंके वाले होशियार कारीगरोंके द्वारा करवावे ॥ १ ॥

ऊर्णावल्ककार्पासतूलशणक्षौमाणि च विधवान्यङ्गाकन्याप्रव्रजितादण्डप्रतिकारिणीभी रूपाजीवामातृकाभिर्वृद्धराजदासीभिर्व्युपरतोपस्थानदेवदासीभिश्च कर्तयेत् ॥ २ ॥

तथा ऊन, वल्क (छालको कूटकर जो रेशे निकलते हैं, उनका नाम), कपास, सिंभल आदिकी रूई (तूल), सन, और जूट आदिको; विधवा, अंगविकल, कन्या, सन्यासिन, अपराधिन (किसी अपराध से प्राप्त दण्डको काम करके भुगताने वाली); वेश्याओंकी वृद्धा माता, बूढी दासी, और बूढी हुई २ (जिनकी कि उपस्थिति अब देवालयमें आवश्यक नहीं ऐसी) देवालयकी परिचारिकाओंसे कतवावे ॥ २ ॥

श्लक्ष्णस्थूलमध्यतां च सूत्रस्य विदित्वा वेतनं कल्पयेत् ॥ बह्वल्पतां च ॥ ४ ॥ सूत्रप्रमाणं ज्ञात्वा तैलामलकोद्वर्तनैरनुगृह्णीयात् ॥ ५ ॥

सूत की चिकनाई (समानता, सूतका एकसा होना), मोटाई और मध्यताको अच्छीतरह जाँचकर, फिर इसके वेतनका निर्णय करें ॥ ३ ॥ तथा नियत समयमें कातेहुए सूतकी अधिकता और न्यूनताको जानकर भी वेतनका निर्णय करना चाहिये ॥ ४ ॥ सूतके प्रमाण (लम्बाई अथवा बारीकाई) को

जानकर, उसीके अनुसार उन्हें (विधवा आदि सूत कातने वाली स्त्रियोंको) तैल, आंवला और उबटना पारितोषिक रूपमें देकर उन्हें अनुगृहीत करे। जिससे कि वे प्रसन्न होकर और अधिक कार्य करनेके लिये प्रोत्साहित होवें ॥ ५ ॥

तिथिषु प्रतिपादनमानैश्च कर्म कारयितव्याः ॥ ६ ॥ सूत्रह्रासे वेतनह्रासः द्रव्यसारात् ॥ ७ ॥

कार्य करनेके दिनोंमें, दिये जाने वाले वेतनका विभाग करके कार्य करवाया जावे। अर्थात् अमुक कार्य, इतना करनेपर इतना वेतन मिलेगा; और इतना कार्य करनेपर इतना। अथवा इस सूत्रका यह अर्थ करना चाहिये; तिथियों अर्थात् पर्वों या छुट्टियोंके दिनोंमेंभी भोजन दान या सत्कार आदिके द्वारा उनसे कार्य करवाया जावे ॥ ६ ॥ सूत यदि उचित प्रमाणसे कम होवे, तो उस द्रव्यके मूल्यके अनुसारही वेतन कम दिया जावे। (अर्थात् सूत यदि अधिक कीमती हो तो वेतन अधिक दिया जावे, और कम कीमत होनेपर कम ॥ ७ ॥

कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः कारुभिश्च कर्म कारयेत्प्रतिसंसर्गं च गच्छेत् ॥ ८ ॥

कार्य सिद्धिके अनुसार जिनके साथ, नियत कार्य, काल और वेतन आदिका निश्चय किया जाचुका है ऐसे पुरुषोंके द्वारा, तथा अन्य कारीगरोंके द्वारा, कार्य करवाया जावे। और उनसे मेल पैदा किया जावे, जिससे कि वे काम में कोई बेईमानी न करसकें, यदि करें भी, तो सरलतासे सबकुछ मालूम होजाय ॥ ८ ॥

क्षौमदुकूलक्रिमितानराङ्कवकार्पाससूत्रवानकर्मान्तांश्च प्रयुञ्जानो गन्धमाल्यदानैरन्यैश्चौपग्राहिकैराराधयेत् ॥ ९ ॥ वस्त्रास्तरणप्रावरणविकल्पानुत्थापयेत् ॥ १० ॥

क्षौम, दुकूल, क्रिमितान, राङ्कव (रंकु एक प्रकारका मृग होता है, उसके बाल बड़े २ होते हैं, जिनका कपड़ा आदि बनाया जाता है; उसीकी बस ऊनके लिये यहां 'राङ्कव' शब्दका प्रयोग किया गया है), और कपास इन पांचों चीजोंका सूत कतवाने और बुनवानेके कार्योंको कराता हुआ अध्यक्ष, कारीगरोंको गन्ध माल्य आदि देकर तथा अन्य प्रकारके पारितोषिक देकर सदा प्रसन्न करता रहे ॥ ९॥ और फिर उनसे भिन्न २ प्रकारके वस्त्र आस्तरण तथा प्रावरण आदि बनवावे ॥ १० ॥

कङ्कटकर्मान्तांश्च तज्जातकारुशिल्पिभिः कारयेत् ॥ ११॥

सूतके कवच आदिके कार्योंको; उन २ कार्योंमें निपुण कारीगरोंसे करवावे। (इस सूत्रमें कारु और शिल्पी दोनों पद हैं। मोटा काम करने वाले कारीगरोंको 'कारु' और बारीक काम करने वाले कारीगरोंको 'शिल्पी' कहते हैं ॥ ११ ॥

याश्चानिष्कासिन्यः प्रोषितविधवा न्यङ्गा कन्यका वात्मानं बिभृयुस्ताः स्वदासीभिरनुसार्य सोपग्रहं कर्म कारयितव्याः ॥१२॥

जो स्त्रियां परदेमें रहकरही काम करना चाहें, जिनके पति परदेश मे गये हुए हों, तथा अङ्गविकल और अविवाहिता स्त्रियें, जो कि स्वयं अपना पेट पालन करना चाहें; अध्यक्षको चाहिये कि वह दासियोंके द्वारा उनसे सूत कतवाने आदिका काम करवावे, और उनके साथ अच्छीतरह सत्कार पूर्वक व्यवहार करे ॥ १२ ॥

स्वयमागच्छन्तीनां वा सूत्रशालां प्रत्युषसि भाण्डवेतन-विनिमयं कारयेत् ॥ १३ ॥ सूत्रपरीक्षार्थमात्रः प्रदीपः ॥ १४ ॥

जो स्त्रियां प्रातःकालही स्वयं या दासियोंके साथ सूत्रशालामें पहुंचें; उनके घरपर कियेहुए कार्य (अर्थात् कातेहुए सूत्र आदि) को लेकर, उनका उचित वेतन देदिया जावे ॥ १३ ॥ और वहांपर (सूत्रशालामें, यदि अधिक सवेरा होनेके कारण कुछ अन्धेरासा हो, तो) प्रदीप आदिके द्वारा केवल इतना प्रकाश किया जावे, जिस से कि सूतकी अच्छी तरह परीक्षा कीजासके ॥ १४ ॥

स्त्रिया मुखसंदर्शने ऽन्यकार्यसंभाषायां वा पूर्वः साहस-दण्डः ॥ १५ ॥ वेतनकालातिपातने मध्यमः ॥ १६ ॥ अकृत-कर्मवेतनप्रदाने च ॥ १७ ॥

स्त्रीका मुख देखने, अथवा कार्यके अतिरिक्त और इधर उधरकी बातचीत करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥१५॥ वेतन देनेके समयका अतिक्रमण करनेपर मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥ तथा काम न करनेपरभी (रिश्वत आदि लेकर या अन्य किसी विशेष कारणसे) वेतन देदेनेपर मध्यम साहस दण्डही दिया जावे ॥ १७ ॥

गृहीत्वा वेतनं कर्माकुर्वन्त्याः अङ्गुष्ठसंदंशं दापयेत् ॥१८॥ भक्षितापहृतावस्कन्दितानां च ॥ १९ ॥ वेतनेषु च कर्मकराणा-मपराधतो दण्डः २०

जो स्त्री वेतन लेकरभी काम न करे, उसका अंगूठा कटवा दिया जाय; ॥ १८ ॥ और यही दण्ड उनकोभी दिया जाय, जो कि मालको खाजाये, चुरालें, अथवा छिपाकर भागजायं ॥ १९ ॥ अथवा स्वयही कार्य करने वाले कर्मचारियोंको अपराधके अनुसार वेतन सम्बन्धी दण्ड दियाजावे । तात्पर्य यह है, कि यह आवश्यक नहीं, कि कर्मचारियोंको देहदण्डही दिया जावे, किन्तु उसके स्थान पर अपराधानुसार केवल वेतन दण्डभी दिया जा सकता है ॥२०॥

रज्जुवर्तकैश्चर्मकारैश्च स्वयं संसृज्येत ॥ २१ ॥ भाण्डानि च वरत्रादीनि वर्तयेत् ॥ २२ ॥

रस्सी आदि बटकर जीविका करने वाले, तथा चमड़ेका काम करने वाले कारीगरोंके साथ, स्वयं सूत्राध्यक्ष मेल जोल रक्खे ॥ २१ ॥ और उनसे हर तरहके चमड़े आदिके सामान तथा गाय आदि बांधनेकी और अन्य प्रकारकी हरतरहकी रस्सियां आदि बनवावे ॥ २२ ॥

सूत्रवल्कमयी रज्जूः वरत्रा वैत्रवैणवीः ।
सांनाह्या बन्धनीयाश्च यानयुग्यस्य कारयेत् ॥ २३ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे सूत्राध्यक्षस्त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥
आदितश्चतुश्चत्वारिंशः ॥ ४४ ॥

सूत तथा सन आदिसे बनाई जानेवाली रस्सियां; और बेंत तथा बांसोंसे उन्हें कूटकर बनाई जानेवाली वरत्रा (वरत=मोटा रस्सा), जिस का कि उपयोग कवच आदिके बनानेमें तथा घोड़े और रथ आदिके बांधनेमें होता है, तैयार करवावे । अर्थात् सूत्राध्यक्ष, इन सब वस्तुओंको आवश्यकतानुसार बनवावे ॥ २३ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें तेईसवां अध्याय समाप्त ।

चौबीसवां अध्याय

४१ प्रकरण

सीताध्यक्ष

कृषिकर्म अर्थात् खेतोंके हर तरहके कामोंको ' सीता ' कहाजाता है । इसके निरीक्षणके लिये जो राजकीय अधिकारी नियुक्त किया जावे, उसका नाम ' सीताध्यक्ष ' है । उसीके कार्योंका निरूपण इस प्रकरणमें किया जायगा ।

सीताध्यक्षः कृषितन्त्रशुल्ववृक्षायुर्वेदज्ञस्तज्ज्ञसखो वा सर्वधान्यपुष्पफलशाककन्दमूलवाल्लिक्यक्षौमकार्पासबीजानि यथाकालं गृह्णीयात् ॥ १ ॥

सीताध्यक्ष (कृषि–विभागका प्रबन्धकर्त्ता=प्रधान अधिकारी) को यह आवश्यक है, कि वह कृषिशास्त्र, शुल्वशास्त्र (जिसमें भूमि आदिके पहिचानने और नापने आदिका निरूपण हो। किसी २ पुस्तकमें 'शुल्व' के स्थानपर 'गुल्म' भी पाठ है), तथा वृक्षायुर्वेद (वह शास्त्र, जिससे वृक्ष आदिके सम्बन्धमें हर तरहका ज्ञान प्राप्त किया जासके) को अच्छी तरह जाने; अथवा इन सब विद्याओंको जानने वाले पुरुषोंको अपना सहायक बनावे; और फिर ठीक समयपर सब तरहके अन्न, फूल, फल, शाक, कन्द, मूल, वाल्लिक्य (बेलपर लगने वाले कद्दू पेठा आदि); क्षौम (सन जूट आदि) और कपास आदिके बीजोंका संग्रह करें ॥ १ ॥

बहुहलपरिकृष्टायां स्वभूमौ दासकर्मकरदण्डप्रतिकर्तृभिर्वापयेत् ॥ २ ॥ कर्षणयन्त्रोपकरणबलीवर्दैश्चैषामसङ्गं कारयेत् ॥३॥ कारुभिश्च कर्मारकुट्टाकमेदकरज्जुवर्तकसर्पग्राहादिभिश्च ॥ ४ ॥ तेषां कर्मफलविनिपाते तत्फलहानं दण्डः ॥ ५ ॥

तदनन्तर उन बीजोंको अपने २ ठीक समयपर बहुतबार हलोंसे जोतीहुई अपनी भूमिमें; दास (उदरदास क्रीतदास आदि), कर्मकर (वेतन आदि लेकर काम करने वाले नौकर), और कार्य करके दण्डको भुगताने वाले अपराधी पुरुषोंके द्वारा बुवावे ॥ २ ॥ खेत जोतनेके हल, तथा अन्य साधन और बैल आदिके साथ, इन कर्मचारी पुरुषोंका संसर्ग न होने दिया जावे। तात्पर्य यह है, कि इन साधनोंको ये कर्मचारी पुरुष, कार्यके समयमें ही लेवें, और उनका उपयोग करें, अनन्तर इनका उनसे कोई सम्बन्ध न रहे, उनकी रक्षाका प्रबन्ध करनेवाले पुरुष दूसरे होने चाहियें ॥ ३ ॥ इसी प्रकार कारु, और लुहार, बढ़ई, खोदनेवाले (किसी २ पुस्तकमें 'मेदक' के स्थानपर 'भेदक' पाठ भी है), रस्सी आदि बनानेवाले तथा सपेरोंसेभी इन कर्मचारी पुरुषोंका सदा संसर्ग न होने देवें; उनके सम्बन्धका जब कोई काम पड़े, तबही उनसे मिलें मिलावें ॥ ४ ॥ कारु आदिके किसी कार्यको ठीक न करनेके कारण यदि खेतोंमें कुछ नुकसान होजावे, तो उतनाही दण्ड उसको दिया जावे; अर्थात् वह नुक्सानका माल उससे वसूल किया जावे ॥ ५ ॥

षोडशद्रोणं जाङ्गलानां वर्षप्रमाणमध्यर्धमानूपानाम् ॥ ६ ॥ देशवापानामर्धत्रयोदशाश्मकानां त्रयोविंशतिरवन्तीनाममितमपरान्तानां हैमन्यानां च कुल्यावापानां च कालतः ॥ ७ ॥

किन २ प्रदेशोंमें कितनी वर्षासे फ़सल ठीक होसकती है, इसका निरूपण करते हैं:—सोलह द्रोण (वृष्टिके जलको मापनेके लिये बनायेहुए एक हाथ मुंहवाले कुण्डमें; वर्षाका सोलह द्रोण) जल इकट्ठा होनेपर समझना चाहिये, कि इतनी वर्षा मरुप्राय प्रदेशोंमें अच्छी फ़सल होनेके लिये पर्याप्त है। इसीप्रकार जलप्राय प्रदेशोंमें चौबीस द्रोण (अध्यर्ध=सोलह द्रोणसे, उसका आधा और अधिक=२४ द्रोण), वर्षा पर्याप्त समझनी चाहिये ॥ ६ ॥ अब देश भेदसे इस बातका निरूपण किया जाता है, कि किन २ देशोंमें कितनी २ वर्षा अच्छी फ़सलके लिये पर्याप्त है:—अश्मक देशोंमें साढ़े तेरह (१३½) द्रोण, मालवा प्रान्तमें तेईस (२३) द्रोण, अपरान्त अर्थात् पश्चिमके राजपूताना प्रान्तमें अपरिमित; हिमालयके प्रदेशोंमें तथा उन प्रान्तोंमें जहांपर नहर आदि बनीहुई हैं, समय समयपर उचित वर्षा होने से फ़सल ठीक होजाती हैं ॥ ७ ॥

वर्षात्रिभागः पूर्वपश्चिममासयोर्द्वौ त्रिभागौ मध्यमयोः सुषमारूपम् ॥ ८ ॥

भिन्न २ देशोंमें होने वाली वर्षाके तीन भाग करने चाहियें, उनमें से पहिला एक हिस्सा श्रावण और कार्त्तिकके महीनेमें बरसना चाहिये, बाकी दोनों हिस्से भादों और क्वार (आश्विन) में बरसने चाहियें । तात्पर्य यह है, वर्षाके दिनोंमें जितनी बारिश पड़े, उसके तीन हिस्से करके, एक हिस्सा श्रावण और कार्त्तिकमें, और बाकी दो हिस्से भादों क्वार में बरसे, तो वह संवत्सर बहुत अच्छा होता है,और इस प्रकारकी वर्षा होना फसलके लिये बहुत लाभदायक है॥ ८ ॥

तस्योपलब्धिर्बृहस्पतेः स्थानगमनगर्भाधानेभ्यः शुक्रोदयास्तमयचारेभ्यः सूर्यस्य प्रकृतिवैकृताच्च ॥ ९ ॥

इस अच्छे सालका अनुमान निम्नलिखित रीतिसे होता है:—बृहस्पतिके स्थान, गमन और गर्भाधानसे, शुक्रके उदय, अस्त और चारसे, सूर्यके कुण्डल आदि विकारसे । तात्पर्य यह है—जब बृहस्पति मेष आदि राशियोंपर स्थित हो, और फिर मेष आदि राशियोंसे वृष आदि राशियोंपर संक्रमण करे (ऐसा होना वृष्टिका कारण होता है यह बात प्रसिद्ध है)

तथा गर्भाधान अर्थात् मंगासिर आदि छः महीनोंमें तुषार आदि देखा जावे* । इसी प्रकार शुक्रका उदय और अस्त, तथा आषाढ़ महीने की पंचमी आदि नौ तिथियोंमें उसका संचार होना । और सूर्य के चारों ओर मण्डल होना, ये सब अच्छी तरह वर्षा होनेके चिन्ह हैं ॥ ९ ॥

सूर्याद्बीजसिद्धिः ॥ १० ॥ बृहस्पतेः सस्यानां स्तम्बकारिता ॥ ११ ॥ शुक्राद्वृष्टिरिति ॥ १२ ॥

इनमें से सूर्यपर विकार होनेपर अर्थात् सूर्यके चारों ओर मण्डलाकार घेरा सा होनेपर बीजसिद्धि अर्थात् अनाज आदिका अच्छा दाना पड़नेका अनुमान करना चाहिये ॥१०॥ तथा बृहस्पतिसे अनाजके बढ़नेका अनुमान किया जाता है ॥ ११ ॥ और शुक्र के उदय आदिसे वृष्टिके होनेका अनुमान किया जाता है ॥ १२ ॥

त्रयः सप्ताहिका मेघा अशीतिः कणशीकराः ।
षष्टिरातपमेघानामेषा वृष्टिः समाहिता ॥ १३ ॥

अच्छी वर्षाका होना इस प्रकार समझना चाहियेः—तीन मेघ (बादल; यहांपर मेघ शब्दका अर्थ वर्षा मालूम होता है) लगातार सात सात दिन तक बरसते रहें, अर्थात् यदि लगातार सात २ दिन तक तीनवार बारिश पड़े; और अस्सीवार बूंद २ करके बारिश पड़े; तथा साठवार धूपसे युक्त वृष्टि पड़े, अर्थात् बीचमें धूप हो २ कर फिर वृष्टि पड़े; तो यह इस प्रकारकी वृष्टि उचित तथा अत्यन्त लाभदायक होती है ॥ १३ ॥

वातमातपयोगं च विभजन्यत्र वर्षति ।
त्रीन्करीषांश्च जनयंस्तत्र सस्यागमो ध्रुवः ॥ १४ ॥

---

* मार्गशिराः सतुषारः सहिमः पौषः समारुतो माघः ।
साभ्रः फाल्गुनमासः सपवनवृष्टिश्च यदि चैत्रः ॥
तडिदभ्रानिलविद्युज्जलत्रुषितो भवति यदि च वैशाखः ।
सम्यग् वर्षति मघवान् धारणदिवसेषु वर्षति चेत् ॥

मंगासिरमें तुषार अर्थात् कोहरेका होना, पौषमें बरफका पड़ना, माघमें हवा चलना, फाल्गुनमें बादलोंका आना, और चैत्रमें हवाके साथ २ वृष्टिका होना, तथा वैशाखमें बिजली चमकना बादल आना हवा चलना बिजलीका गिरना बादलोंका बरसना देखकर; तथा इसीप्रकार धारणके दिनोंमें (वैशाख कृष्णपक्षकी प्रतिपदा आदि चार तिथियोंका नाम धारण होता है) वर्षा होना देखकर यह समझना चाहिये कि इस फसलमें बारिस बहुत अच्छी होगी

वायु और धूपको अवसर देता हुआ, अर्थात् इनको पृथक् २ विभक्त करके अपना काम करता हुआ, और बीच २ में तीनवार खेत जोतने का अवसर देता हुआ, मेघ जिस देशमें बरसता है, वहांपर निश्चय ही फसल का अच्छा होना समझना चाहिये ॥ १४ ॥

ततः प्रभूतोदकमल्पोदकं वा सस्यं वापयेत् ॥१५॥ शालिव्रीहिकोद्रवतिलप्रियङ्गुदारकवराकाः पूर्ववापाः ॥ १६ ॥ मुद्गमाषशैम्ब्या मध्यवापाः ॥ १७ ॥

इस प्रकार वृष्टिके परिमाणको अच्छी तरह जाननेके बाद, फिर अधिक जलसे अथवा थोड़े जलसे उत्पन्न होने वाले अन्नोंको बोजा जाय । अर्थात् वृष्टि आदिके अनुसार ही खेतोंमें नाज बोया जाना चाहिये ॥ १५ ॥ शाली (साठी धान), व्रीहि (गेहूं जो आदि धान्य) कोदों, तिल, कंगनी, और लोभिया आदि, वर्षाके पहले दिनोंमें ही बोदेने चाहियें ॥ १६ ॥ मूंग, उड़द, और छीमी आदिको बीचमें बोना चाहिये ॥ १७ ॥

कुसुम्भमसूरकुलुत्थयवगोधूमकलायातसीसर्षपाः पश्चाद्वापाः ॥ १८ ॥ यथर्तुवशेन वा बीजवापाः ॥ १९ ॥

कुसुम्भ (कुसुंबी), मसूर, कुल्थी, जौ, गेहूं, मटर, अतसी तथा सरसों आदि अन्नों को वर्षाके अन्तमें बोया जावे ॥ १८ ॥ अथवा इन सबही अन्नोंको ऋतु अनुसार जैसा उचित समझें, बोना चाहिये ॥ १९ ॥

वापातिरिक्तमर्धसीतिकाः कुर्युः ॥ २० ॥ स्ववीर्योपजीविनो वा चतुर्थपञ्चभागिका यथेष्टमनवसितं भागं दद्युरन्यत्र कृच्छ्रेभ्यः ॥ २१ ॥

इस तरह जिन खेतोंमें बीज न बोया जासके, उनमें अधबटाईपर काम करनेवाले किसान बीज बोवें ॥ २० ॥ अथवा जो पुरुष केवल अपना शारीरिक श्रम करके जीविका करनेवाले हों, ऐसे पुरुष उन जमीनोंमें खेती करें, और फसलका चौथा या पांचवां हिस्सा उनको दियाजावे । तथा अधबटाईपर खेतोंको जोतनेवाले किसान, उन खेतोंमें उत्पन्न हुए २ अन्नमेंसे, स्वामीकी इच्छाके अनुसारही उसको देवें; परन्तु उनपर (किसानोंपर) कोई कष्ट हो, तो ऐसा न करें ॥ २१ ॥

स्वसेतुभ्यः हस्तप्रावर्तिममुदकभागं पञ्चमं दद्युः ॥ २२ ॥ स्कन्धप्रावर्तिमं चतुर्थम् ॥ २३ ॥ स्रोतोयन्त्रप्रावर्तिमं च तृतीयम् ॥ २४ ॥

अपनाही धनलगाकर स्वय परिश्रम करके बनाये हुए तालाब आदिसे, हाथसे जल ढाकर खेत सींचनेपर, किसानोंको अपनी उपजका पांचवां हिस्सा राजाके लिये देना चाहिये ॥ २२ ॥ इसी प्रकारके तालाबोंसे, यदि कन्धेसे पानी ढोकर खेतोंको सींचाजावे, तो किसान अपनी उपजका चौथा हिस्सा राजाको देवें ॥ २३ ॥ यदि छोटी २ नहर या नालियां बनाकर उनके द्वारा खेतोंको सींचाजावे, तो उपजका तीसरा हिस्सा राजाके लिये देना चाहिये। (भूमिके करके समानही यह जलकाभी कर समझना चाहिये; क्योंकि इन दोनोंपर राजाका समानही अधिकार शास्त्रकारोंने बताया है) ॥ २४ ॥

चतुर्थं नदीसरस्तटाककूपोद्घाटम् ॥२५॥ कर्मोदकप्रमाणेन केदारं हैमनं ग्रैष्मिकं वा सस्यं स्थापयेत् ॥ २६ ॥

अपना धन व्यय करके अपनेही परिश्रमसे बनाये हुए तालाबोंके अतिरिक्त दूसरे नदी, सर (झील), तालाब और कुओंसे हरट आदि लगाकर यदि खेत सींचेजावें, तो उन खेतोंका चौथा हिस्सा राजाकेलिये देना चाहिये ॥ २५ ॥ खेतोंके अनुसार जलकी न्यूनाधिकताको देखकरही, खेतोंमें बोये जाने वाले, हेमन्त ऋतुके (शीत ऋतुके गेहूं जौ आदि) और ग्रीष्म ऋतुके (गरमीके कपास तथा मक्का ज्वार आदि) अनाजोंको बुवावे। अर्थात् ऋतु के अनुसार तथा जल के सुभीतेके अनुसार ही खेतोंमें बीज डाला जावे ॥ २६ ॥

शाल्यादि ज्येष्ठम् ॥ २७ ॥ षण्डो मध्यमः ॥ २८ ॥ इक्षुः प्रत्यवरः ॥ २९ ॥ इक्षवो हि बह्वाबाधा व्ययग्राहिणश्च ॥ ३० ॥

धान गेंहू आदि, सब फ़सलोंमें उत्तम समझेजाते है, क्योंकि इनके बोने आदिमें परिश्रम थोड़ा, और फल अधिक मिलता है ॥ २७ ॥ इसीप्रकार कदली आदि, मध्यम होते हैं; क्योंकि इनके बोने आदिमें थोड़े परिश्रमके अनुसार फलभी थोड़ा ही मिलता है ॥ २८ ॥ ईख, सबसे ओछी फ़सल समझी जाती है ॥ २९ ॥ क्योंकि इसके बोने आदिमें बड़ा श्रम; उसके बाद मनुष्य, चूहे और अन्य कीड़े आदिका बड़ा उपद्रव; तथा काटना पीड़ना और पकाना; फिर कहीं फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥

फेनाघातो वल्लीफलानां परीवाहान्ताः मृद्वीकेक्षूणां कूपपर्यन्ताः शाकमूलानां हरिणपर्यन्ताः हरितकानां पाल्यो लवानां गन्धभैषज्योशीरह्रीबेरपिण्डालुकादीनाम् ॥ ३१ ॥

जलके किनारेका स्थान पेठा कद्दू ककड़ी तरबूज आदि बोनेके लिये उपयुक्त होता है। पीपल, अंगूर तथा ईख आदि बोनेके लिये वह प्रदेश अच्छा होता है, जहांपर नदीका जल एक बार घूम गया हो। शाक मूल आदि बोनेके लिये कूपके पासके स्थान, जई आदि हरे गौत बोनेके लिये झील तालाब आदिके किनारेके गीले प्रदेश, और काटे जाने वाले गन्ध, भैषज्य (औषधि धनिया सौंफ आदि), उशीर (खस), ह्रीबेर (नेत्रवाला) पिण्डालुक (कचालू या शकरकन्दी आदि) आदि चीजोंको बोनेके लिये वे खेत, जिनके बीचमें तालाब बने हों, उपयुक्त होते हैं ॥ ३१ ॥

यथास्वं भूमिषु च स्थल्याश्चानूप्याश्चौषधीः स्थापयेत् ॥३२॥

सूखी जमीनोंमें तथा जलमय प्रदेशोंमें होने वाले अनाज आदि पदार्थोंका उन २ के अपने योग्य प्रदेशोंमें ही बोया जावे। अर्थात् जो चीजें जैसी भूमिमें अच्छी पैदा हो सकती हों, उनको वैसे ही स्थानोंमें बोना चाहिये ॥ ३२ ॥

तुषारपायनमुष्णशोषणं चासप्तरात्रादिति धान्यबीजानां त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा कोशीधान्यानां मधुघृतसूकरवसाभिः शकृद्युक्ताभिः कांडबीजानां छेदलेपो मधुघृतेन कन्दानाम्, अस्थिबीजानां शकृदालेपः, शाखिनां गर्तदाहो गोस्थिशकृद्भिः काले दौहृदं च ॥ ३३ ॥

अब खेतमें बोयेजाने वाले बीजका संस्कार कैसे करना चाहिये, इसका निरूपण किया जाता है:—धानके बीजोंको रातके समय ओसमें, और दिनके समय धूपमें सात दिन तक रक्खा जावे। कोशीधान अर्थात् मूंग उड़द आदिके बीजको, इसीप्रकार तीन दिनरात या पांच दिनरात तक ओस और धूपमें रक्खा जावे। काण्डबीज अर्थात् ईख आदिके बीजको (काण्डबीज=जो टुकड़ेके रूपमें रखकर बोयाजावे ईख आदि) कटी हुई जगहोंमें शहद घी अथवा सूअरकी चरबीके साथ गोबर मिलाकर लगादेना चाहिये। तथा सूरण आदि कन्दोंके कटेहुए स्थानोंपर गोबर मिलेहुए शहद अथवा घी से ही लेप करना चाहिये। अस्थिबीजों (अर्थात् फलके भीतरसे निकलने वाले बीज= कपास आदिके बीजों) को गोबर आदिसे लपेटकर (अर्थात् गोबरके बीचमें उनको अच्छीतरह मलकर) रक्खा जावे, फिर उनको बोयाजावे। आम कटहल आदि वृक्षोंके बीजोंको एक गढ़ेमें डालकर कुछ गरमी दी जावे, फिर ठीक समयपर उनको गायकी हड्डी और गोबरके साथ मिलाकर रक्खा जावे।

इसप्रकारसे इन सब बीजोंका संस्कार करके फिर इनको खेतमें बोना चाहिये ॥ ३३ ॥

प्ररूढांश्चाशुष्ककटुमत्स्यांश्च स्नुहिक्षीरेण वापयेत् ॥ ३४ ॥

उपर्युक्त इन सब बीजोंके बोयेजानेके बाद, जब इनमें अङ्कुर निकल आवे, तब इनमें गीली छोटी मछलियोंका खात लगाकर, सेंढके दूधसे इन्हें सींचे। ऐसा करने से इन पौधों को कोई कीड़ा आदि नुक्सान नहीं पहुंचाता ॥ ३४ ॥

कार्पाससारं निर्मोकं सर्पस्य च समाहरेत् ।
न सर्पास्तत्र तिष्ठन्ति धूमो यत्रैष तिष्ठति ॥ ३५ ॥

कपासके बीज अर्थात् बिनौले और सांपकी कैंचुली (निर्मोक=सांपके ऊपरकी झिल्लीसी, जो उतरकर अलहदा होजाती है) को आपसमें मिलाकर जला दिया जावे, जहांतक इसका धुआं फैल जाता है, वहांतक कोईभी सांप ठहर नहीं सकता। यह सर्पके प्रतीकारका उपाय है ॥ ३५ ॥

सर्वबीजानां तु प्रथमवापे सुवर्णोदकसंप्लुतां पूर्वमुष्टिं वापयेदमुं च मन्त्रं ब्रूयात् ॥ ३६ ॥

हर एक बीजके पहिलेही बोनेके समयमें, सुवर्णके जलसे (जिस जलमें सुवर्णका संयोग करादिया गया हो) भीगीहुई पहिली बीजकी मुट्ठी को बोयाजावे। तात्पर्य यह है, कि बीजकी जो पहिली मुट्ठी भरकर बोई जावे, उसको सुवर्णके जलसे भिगोकरही बोयाजावे, और उसके साथ इस मन्त्रको पढ़ाजावेः— ॥ ३६ ॥

प्रजापतये काश्यपाय देवाय च नमः सदा ।
सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च ॥ ३७ ॥

प्रजापति (प्रजाओंके मालिक=प्रजाओंको जीवन देनेवाले), कश्यपके पुत्र (सूर्यके पुत्र), देव (पर्जन्य=मेघ) के लिये हमारा सदा नमस्कार हो। और 'सीता' देवी (सीता यह कृषिका ही नाम है, इस बातको पहिले लिखा जाचुका है, उसीको देवीका रूप देकर यह प्रार्थना की गई है) हमारे बीजों तथा धनोंमें सदा वृद्धिको करती रहे ॥ ३७ ॥

षण्डवाटगोपालकदासकर्मकरेभ्यो यथापुरुषपरिवापं भक्तं कुर्यात् ॥ ३८ ॥ सपादपणिकं मासं दद्यात् ॥ ३९ ॥ कर्मानुरूपं कारुभ्यो भक्तवेतनम् ॥ ४० ॥

खेतोंकी रखवाली करनेवाले, ग्वाले, दास, तथा अन्य काम करनेवाले नौकरों के लिये, प्रत्येक पुरुषके परिश्रमके अनुसार ही भोजन आदिका प्रबन्ध किया जावे ॥ ३८ ॥ इस के अतिरिक्त इनको प्रतिमास सवापण नियत वेतन दिया जावे ॥ ३९ ॥ इसीप्रकार अन्य कारीगर लोगोंके लियेभी उनके परिश्रम के अनुसार ही भोजन और वेतन दिया जावे ॥ ४० ॥

प्रशीर्णं च पुष्पफलं देवकार्यार्थं व्रीहियवमाग्रयणार्थं श्रोत्रियास्तपस्विनश्चाहरेयुः ॥ ४१ ॥ राशिमूलमुञ्छवृत्तयः ॥ ४२ ॥

वृक्ष आदिसे स्वयं ही गिरेहुए फूल और फलोंको देवकार्यके लिये तथा गेहूं जौ आदि अन्नोंको आग्रयण (यह एक इष्टिका नाम है, जिसको नई फसल आनेपर किया जाता है; इसको 'नवसस्येष्टि' भी कहते हैं) इष्टिके लिये, श्रोत्रिय तथा तपस्वी जन उठा लेवें ॥ ४१ ॥ खल्यानमें पड़ेहुए अन्नके ढेरको उठा लेनेके बाद, जो थोड़े बहुत दाने पीछे पड़े रह जायें, उनको वे लोग उठालेवें, जो सिला चुगकर अपना निर्वाह करनेवाले हों ॥ ४२ ॥

यथाकालं च सस्यादि जातं जातं प्रवेशयेत् ।
न क्षेत्रे स्थापयेत्किंचित्पलालमपि पण्डितः ॥ ४३ ॥

समयके अनुसार तैयार हुए २ अन्नोंको, चतुर पुरुष ठीक २ सुरक्षित स्थानोंमें रखवा देवे; खेतमें पुराल तथा भुस आदि असार वस्तुओंको भी न छोड़े ॥ ४३ ॥

प्रकराणां समुच्छ्रयान्वलभीर्वा तथाविधाः ।
न संहतानि कुर्वीत न तुच्छानि शिरांसि च ॥ ४४ ॥

धान्य आदिके रखनेके स्थानको 'प्रकर' कहते हैं (किसी २ पुस्तकमें 'प्रकराणां' के स्थानपर 'प्रकाराणां' भी पाठ है), ऐसे स्थानोंको कुछ ऊंची जगहमें बनवाना चाहिये । अथवा उसी तरहके मजबूत तथा चारों ओरसे घिरेहुए अन्नागारों को बनवावे । इनके ऊपरके हिस्सोंको आपसमें मिला हुआ न रक्खे, और खाली भी न रक्खे; तथा अच्छी तरह दृढ बनवावे जिस से कि वर्षा या आंधी आदिमें अन्नको किसी तरहकी हानि न पहुंचसके ॥ ४४ ॥

खलस्य प्रकरान्कुर्यान्मण्डलान्ते समाश्रितान् ।
अनग्निकाः सोदकाश्च खले स्युः परिकर्मिणः ॥ ४५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे सीताध्यक्षः चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥
आदितः पञ्चचत्वारिंशः ॥ ४५ ॥

मण्डल (अन्न और भुस आदिको अलहदा करनेके लिये जहांपर, कि उनके ऊपर गोलाकार घुमाई जावे, उसको यहां 'मण्डल' शब्दसे है। 'खल' शब्द केवल उस स्थानके लिये यहां प्रयुक्त हुआ है, टे हुए अनाजोंका ढेर लग रहा हो। तात्पर्य यही है, कि ये दोनों मीप ही होने चाहियें। हिन्दीमें दोनोंके ही लिये खल्यान शब्दका ता है) के समीप ही बहुतसे खल्यानोंको बनाया जावें। खल्यानमें मेवाले आदमी, अपने पास आग न रखसकें, फिर भी उनके पास बन्ध अवश्य होना चाहिये। जिससे कि समयपर अग्निको सरलतासे ाया जासके ॥ ४५ ॥

क्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें चौवीसवां अध्याय समाप्त।

पच्चीसवां अध्याय।

४२ प्रकरण।

सुराध्यक्ष।

गुड़, मधु, तथा पिष्टी; इन तीन पदार्थोंसे बननेके कारण 'सुरा' तीन प्रकारकी होती है। उनके बनवाने तथा व्यापार आदि करानेके लिये जो राजकीय पुरुष नियुक्त किया जाता है, उसे 'सुराध्यक्ष' कहते हैं। उसीके कार्योंका इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा।

राध्यक्षः सुराकिण्वव्यवहारान्दुर्गे जनपदे स्कन्धावारे वा सुराकिण्वव्यवहारिभिः कारयेत् एकमुखमनेकमुखं वा विक्रयवशेन वा ॥ १ ॥

सुराध्यक्षका कार्य है, कि वह शराबके बनवाने और उसके विक्रय व्यवहारको, दुर्ग, जनपद अथवा छावनी में, शराबके बनाने, तथा व्यापार आदिको अच्छी तरह जानने वाले पुरुषोंके द्वारा करवावे। सुभीतानुसार एकही बड़े ठेकेदारके द्वारा अथवा छोटे २ अनेक ठेकेदारोंके द्वारा; । विक्रयके भी सुभीतेको देखकर यह व्यापार करावे ॥ १ ॥

द्शतमत्ययमन्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतॄणां स्थापयेत् ॥ २ ॥
निर्णयनमसंपातं च सुरायाः, प्रमादभयात्कर्मसु निर्दि

थाना, मर्यादातिक्रमभयादार्याणामुत्साहभयाच्च तीक्ष्णानाम् ॥ ३ ॥

नियत स्थानोंसे अतिरिक्त स्थानोंमें शराब बनाने खरीदने और बेचने वालोंको ६०० पण दण्ड दिया जावे ॥ २ ॥ शराबको, तथा उसे पीकर मत्त हुए २ पुरुषोंको, गांवसे बाहर तथा एक घरसे दूसरे घरमें या भीड़में न जाने दिया जावे। क्योंकि जो अध्यक्ष आदि कर्मचारी पुरुष हैं, वे ऐसा करनेसे कामोंमें प्रमाद कर सकते हैं, आर्य-पुरुष अपनी मर्यादा भंग, और तीक्ष्ण अर्थात् कठोर प्रकृतिके, शूर, सैनिक आदि पुरुष, हथियारोंका अनुचित प्रयोग कर सकते हैं ॥ ३ ॥

लक्षितमल्पं वा चतुर्भागमर्धकुडुबं कुडुबमर्धप्रस्थं प्रस्थं वेति ज्ञातशौचा निर्हरेयुः ॥४॥ पानागारेषु वा पिबेयुरसंचारिणः ॥५॥

अथवा राजकीय मुहरसे युक्त थोड़ेही परिमाणमें—कुडुबका चौथा भाग, आधा कुडुब, एक कुडुब, आधा प्रस्थ, या एक प्रस्थ, शराब वे लोग लेजा सकते हैं जिनके आचार व्यवहारके सम्बन्धमें निश्चय रूपसे मालूम होचुका हो ॥ ४ ॥ जिन पुरुषोंको शराब लेकर बाहर जानेकी आज्ञा न हो, वे शराबखानोंमें जाकर ही पीवें ॥ ५ ॥

निक्षेपोपनिधिप्रयोगापहृतादीनामनिष्टोपगतानां च द्रव्याणां ज्ञानार्थमस्वामिकं कुप्यं हिरण्यं चोपलभ्य निक्षेप्तारमन्यत्र व्यपदेशेन ग्राहयेत् ॥ ६ ॥ अतिव्ययकर्तारमनायतिव्ययं च ॥ ७ ॥

निक्षेप, उपनिधि (पेटी आदिमें बन्द या खुला हुआ ही गिरवी रक्खा हुआ धन), प्रयोग (अमानत=आधि), चोरी किया हुआ धन तथा इसीप्रकार अन्य अनिष्ट (डाका आदि) उपायोंसे प्राप्त किये हुए द्रव्योंके जाननेके लिये स्वामी-रहित कुप्य (खड्ग आदि पदार्थ) और हिरण्य आदिको पाकर, निक्षेप्ता (जिसने कि निक्षेप आदिके द्वारा कुछ धन लेकर शराबखानेमें आकर खर्च किया है, ऐसे पुरुष) को, शराबखानेसे दूसरी जगहमें किसी बहानेसे नगराध्यक्षके द्वारा पकड़वा देवे। (दूसरी जगह और बहानेसे पकड़वाना, इसी लिये कहा गया है, कि यदि शराबखानेमें ही विना किसी बहानेके उन पुरुषोंको पकड़ लिया जावे, तो दूसरे चोर डाकू आदि अपहृत धनको वहां न लावेंगे) ॥ ६ ॥ इसीप्रकार जो पुरुष आयसे अधिक व्यय करने वाला, तथा विनाही आमदनी के फिजूल खर्च करने वाला हो, उसे भी उपर्युक्त रीतिसे पकड़वा देवे ॥ ७ ॥

न चानर्घेण कालिका वा सुरां दद्यादन्यत्र दुष्टसुरायाः .. ८ ॥ तामन्यत्र विक्रापयेत् ॥ ९ ॥ दासकर्मकरेभ्यो वा वेतनं दद्यात् ॥ १० ॥ वाहनप्रतिपानं सूकरपोषणं वा दद्यात् ॥ ११ ॥

थोड़े मूल्यसे, कालान्तरमें प्राप्त होने वाले मूल्यसे अथवा कुछ कालके बाद किसी नियत समयमें ब्याज सहित मिल जाने वाले मूल्यसे भी, बढ़िया शराबको न बेचे। किन्तु इन शर्तोंपर खरीदारोंको सदा घटिया शराबही देवे ॥ ८ ॥ तथा उस घटिया शराबको भी, बढ़िया शराबकी दूकानसे न बिकवावे, किन्तु किसी दूसरेही स्थानसे उसकी विक्रीका प्रबन्ध करे ॥ ९ ॥ अथवा दास या अन्य छोटे कर्मचारियोंको वेतन-रूपमें वह घटिया शराब देदी जावे ॥ १० ॥ परन्तु यह, ऊँट बैल आदि सवारियोंके पालन करने, या सूअर आदिके पालन पोषण करने आदि तुच्छ कार्योंके बदलेमें ही देनी चाहिये। (अर्थात् अन्य कार्योंका वेतन मुद्राके ही रूपमें अतिरिक्त दिया जावे) ॥ ११ ॥

पानागाराण्यनेककक्ष्याणि विभक्तशयनासनवन्ति पानोद्देशानि गन्धमाल्योदकवन्त्यृतुसुखानि कारयेत् ॥ १२ ॥ तत्रस्थाः प्रकृत्यौत्पत्तिकौ व्ययौ गूढा विद्युरागन्तूंश्च ॥ १३ ॥

शराबखानोंको निम्नलिखित रीतिसे बनवाया जावे:—उनमें अनेक कक्ष्या अर्थात् ड्योढ़ियां होनी चाहियें; सोने और बैठनेके लिये अलहदा २ कमरे बने हुए हों, तथा शराब पीनेके स्थान भी पृथक् २ हों, इनमें गन्ध माला तथा जल आदिका पूरा प्रबन्ध हो, और इस ढंगके बने हुए होने चाहियें, जिससे कि प्रत्येक ऋतुमें सुखकर होसकें ॥ १२ ॥ शराबखानेमें रहने वाले राजकीय गुप्तपुरुष; नित्य नियमसे होने वाले शराबके खर्चको, तथा किसी दिन बाहरके मनुष्य अधिक आजानेके कारण अधिक हुए २ शराबके खर्चको जानें; (तात्पर्य यह है कि स्थानीय पुरुषोंके लिये, तथा बाहरके पुरुषोंके लिये पृथक् २ शराबका कितना खर्च है, इस बातका ठीक २ पता रक्खा जावे)। और यह भी जानें कि बाहरसे आने वाले पुरुष कौन २ हैं ॥ १३ ॥

क्रेतॄणां मत्तसुप्तानामलंकाराच्छादनहिरण्यानि च विद्युः ॥ १४ ॥ तन्नाशे वणिजस्तच्च तावच्च दण्डं दद्युः ॥ १५ ॥

तथा गुप्तपुरुष ही, शराब खरीद पीकर उन्मत्त होकर सोजानेवाले शराबियोंके आभूषण वस्त्र और नकद मालका ध्यान रक्खें तथा यह भी मालूम

करें कि वह कितना है ॥ १४ ॥ यदि उनके आभूषण आदि नष्ट हो जांय, अर्थात् उसी अवस्थामें चोर आदि चुरा लेवें, तो शराबके व्यापारी उतना माल (जितना चोरी गया है) शराबियोंको दें, और उतना ही दण्ड राजाको देवें, अर्थात् राजाकी ओरसे उनपर उतना ही जुरमाना किया जाय ॥ १५ ॥

वणिजस्तु संवृतेषु कक्ष्याविभागेषु स्वदासीभिः पेशलरूपाभिरागन्तूनां वास्तव्यानां चार्यरूपाणां मत्तसुप्तानां भावं विद्युः ॥ १६ ॥

शराबके व्यापारी; पृथक् २ एकान्त कमरोंमें भेजी हुई सुन्दर सुचतुर दासियों के द्वारा उन्मत्त होकर सोये हुए बाहरसे आनेवाले तथा, नगर निवासी, ऊपरसे आर्योंके समान रहनेवाले पुरुषोंके आन्तरिक भावोंका पता लगावें ॥ १६ ॥

मेदकप्रसन्नासवारिष्टमैरेयमधूनामुदकद्रोणं तण्डुलानामर्धाढकं त्रयः प्रस्थाः किण्वस्येति मेदकयोगः ॥ १७ ॥

मेदक, प्रसन्ना, आसव, अरिष्ट, मैरेय और मधु ये छः शराबके भेद हैं, इनका क्रमशः निरूपण किया जाता है:—एक द्रोण जल आधे आढक चावल और तीन प्रस्थ किण्व अर्थात् सुराबीज, (देखो इसी अध्याय का २६ सूत्र) इनको मिलाकर जो शराब बनाई जाती है, उसका नाम मेदक है ॥ १७ ॥

द्वादशाढकं पिष्टस्य पञ्च प्रस्थाः किण्वस्य पुत्रकत्वक्फलयुक्तो वा जातिसंभारः प्रसन्नायोगः ॥ १८ ॥

बारह आढक चावलकी पिट्ठी और पांच प्रस्थ किण्व (सुराबीज; देखो—इसी अध्यायका २६ वां सूत्र), अथवा किण्वके स्थानपर इतना ही, पुत्रक (एक वृक्षका नाम है) की छाल और फलोंके सहित जाति-सम्भार (अच्छा सम्भार योग, यह कई चीजोंसे मिलाकर बनाया जाता है, देखो—इसी अध्यायका सत्ताईसवां सूत्र), मिलाकर प्रसन्ना योग तैयार किया जाता है; अर्थात् इन वस्तुओंसे प्रसन्ना नामक शराब तैयार होती है ॥ १८ ॥

कपित्थतुला फाणितं पञ्चतौलिकं प्रस्थो मधुन इत्यासवयोगः ॥ १९ ॥ पादाधिको ज्येष्ठः पादहीनः कनिष्ठः ॥ २० ॥ चिकित्सकप्रमाणाः प्रत्येकशो विकाराणामरिष्टाः ॥ २१ ॥

कैथके फलका सार सौ पल, और राब पांचसौ पल, मधु एक प्रस्थ इनको मिलाकर आसव योग तैयार किया जाता है ॥ १९ ॥ इसमें यदि कैथ आदिको सवाया कर दिया जाय, तो ज्येष्ठ अर्थात् बढ़िया आसव योग होता है,

और पानी करनेसे कनिष्ठ अर्थात् घटिया आसव समझा जाता है इसलिये जो परिमाण आसवका पहिले बताया गया है, वह मध्यम योग समझना चाहिये ॥ २० ॥ प्रत्येक वस्तुका अरिष्ट उसी प्रकारसे बनाना चाहिये, जो प्रकार चिकित्सकोंने उन २ रोगोंको नष्ट करनेके लिये बनाये जाने वाले अरिष्टोंका बताया हुआ है ॥ २१ ॥

मेषशृङ्गित्वक्काथाभिषुतो गुडप्रतीवापः पिप्पलीमरिचसंभारस्त्रिफलायुक्तो वा मैरेयः ॥ २२ ॥ गुडयुक्तानां वा सर्वेषां त्रिफलासंभारः ॥ २३ ॥

मेंढासींगीकी छालका क्वाथ बनाकर उसमें गुड़का योग देकर पीपल और मिर्चके चूर्णको मिलाया जावे, अथवा पीपल मिर्चकी जगहपर त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला) का चूर्ण मिलाया जावे, इससे जो शराब तैयार कीजाती है, उसका नाम मैरेय है ॥ २२ ॥ अथवा जिन शराबोंमें गुड़ मिलाया जावे, उन सबमें ही त्रिफलाका योग अवश्य होना चाहिये ॥ २३ ॥

मृद्वीकारसो मधु ॥ २४ ॥ तस्य स्वदेशो व्याख्यानं कापिशायनं हारहूरकमिति ॥ २५ ॥

मुनक्का दाख आदिके रससे जो शराब बनाई जाती है, उसका नाम मधु है, (अंगूरी शराब) ॥ २४ ॥ उसके अपने देशमें बनाये जानेके कारण दो नाम हैं—' कापिशायन ' और हारहूरक । (कपिशा नामक नदीके किनारेपर बसे हुए नगरमें बनाये जानेसे ' कापिशायन ' और हरहूर नामक नगरमें बनाये जानेसे ' हारहूरक ' नाम पड़ा है । किसी २ पुस्तकमें इस सूत्रके 'व्याख्यानं' पदके स्थानपर ' द्वयाख्यानं ' ऐसा स्पष्ट अर्थवाला पाठ है) ॥ २५ ॥

माषकलनीद्रोणमामं सिद्धं वा त्रिभागाधिकतण्डुलं मोरटादीनां कार्षिकभागयुक्तः किण्वबन्धः ॥ २६ ॥

उड़दका कल्क (जलमें अथवा सूखी ही पिसी हुई चीजोंका नाम कल्क है) एक द्रोण, कच्चे अथवा पके हुए, तीन भाग अधिक (अर्थात् 1⅓ द्रोण) चावल, और मोरटा आदि वस्तुओंका (देखो–इसी अध्यायका तेत्तीसवां सूत्र) एक एक कर्ष; इन सब वस्तुओंको मिलाकर किण्व नामक योग तैयार किया जाता है । इसीको मद्यबीज या सुराबीज कहते हैं ॥ २६ ॥

पाठालोध्रतेजोवत्येलावालुकमधुमधुरसाप्रियङ्गुदारुहरिद्रामरिचपिप्पलीनां च पञ्चकार्षिकः संभारयोगो मेदकस्य प्रसन्ना

याश्च ॥ २७ ॥ मधुकनिर्यूहयुक्ता कटशर्करा वर्णप्रसादिनी च ॥ २८ ॥

पाठा, लोध, गजपीपल, इलायची, वालुक (सुगन्धि=किसी तरहके इतर आदिकी सुगन्धि), मुलहटी, दूर्वा (दूब), केसर, दारु हल्दी, मिरच और पीपल; इन सब चीजोंका पांच २ कर्ष लेकर मिला लिया जावे; यह मेदक और प्रसन्ना नामक शराबमें डालनेके लिये मसाला होता है ॥ २७ ॥ मुलहटी-का काढ़ा करके उसमें रवादार शक्कर मिलाकर, यदि इसको मेदक और प्रसन्ना शराबमें डाल दिया जावे, तो इनका (मेदक और प्रसन्नाका) रंग बहुत अच्छा निखर जाता है ॥ २८ ॥

चोचचित्रकविलङ्गगजपिप्पलीनां च पञ्चकार्षिकः क्रमुकमधुकमुस्तालोध्राणां द्विकार्षिकश्चासवसंभारः ॥ २९ ॥ दशभागश्चैषां बीजबन्धः ॥ ३० ॥

दालचीनी, चीता, वायविडङ्ग, और गजपीपल इन सबका एक एक कर्ष लेकर; सुपारी, मुलहटी, मोथा और लोध, इन चीजोंका दो दो कर्ष लेकर, सबको आपसमें मिला लिया जावे; यह आसव नामक शराबका मसाला समझना चाहिये ॥ २९ ॥ दालचीनी आदि वस्तुओंका दसवां हिस्सा बीजबन्ध होता है । बीजबन्धका तात्पर्य यह है, कि जिस किसी द्रव्यका भी आसव बनाया जावे, उसमें इसको अवश्य मिलाना चाहिये ॥ ३० ॥

प्रसन्नायोगः श्वेतसुरायाः ॥ ३१ ॥ सहकारसुरा रसोत्तरा बीजोत्तरा वा महासुरा संभारिकी वा ॥ ३२ ॥

प्रसन्ना नामक शराबका जो योग बताया गया है, वही योग श्वेतसुरा-का भी समझना चाहिये । (किन्तु प्रसन्नाका जो पाठा लोध आदि मसाला बताया गया है, वह इसमें नहीं डाला जाता । किसी २ व्याख्याकारने यह भी लिखा है, कि मसालेकी तरह बीजबन्ध भी इसमें न डालना चाहिये ॥ ३१ ॥ सुराओंके निम्न लिखित भेद भी हैं:—सहकारसुरा (साधारण सुरामें आमका रस या तेल आदि मिलाकर जो तैयार की जाय), रसोत्तरा (गुड़का सांदा डालकर जो तैयार कीजाय), बीजोत्तरा (जिसमें बीजबन्ध द्रव्योंकी अधिक मात्रा हो; इसीका नाम महासुरा भी है), और सम्भारिकी (जिस सुरामें मसालेकी मात्रा अधिक पड़ी हुई हो) ॥ ३२ ॥

तासां मोरटापलाशपत्तूरमेषशृङ्गीकरञ्जक्षीरवृक्षकषायभावितं दग्धकटशर्कराचूर्णं लोध्रचित्रकविलङ्गपाठामुस्ताकलिंगयवदारुह-

शुष्टिः कुम्भीं राजपेयां प्रसादयति । ३३ । फाणितं पञ्चपालिकश्चात्र रसवृद्धिर्देय । ३४

इन सब प्रकारकी शराबोंको निम्न लिखित रीतिसे निखारा जासकता है:—मरोरफली, पलाश (ढाक), पत्तूर (लोहमारक, औषध विशेष), मेढासींगी, करंजवा, और क्षीरवृक्ष (=दूधिया पेड़, बड़ गूलर पिलखन आदि) इसके काढ़ेमें भावना दियाहुआ गरम रवादार शक्करका चूरा; तथा इससे आधा—लोध, चीता, वायविडङ्ग, पाठा, मोथा, कलिङ्गयव (कलिङ्ग देशमें उत्पन्न हुए २ जौ), दारुहल्दी, कमल, सौंफ, अपामार्ग (चिरचिड़ा), सप्तपर्ण (एक वृक्ष, जिसके पत्तोंमें प्रायः सात पंखड़ियांसी होती हैं, इसको हिन्दीमें सातविण या सतविन कहते हैं), नींब, और आस्फोत (आस्फोट आखेरा नाम है, सम्भव है इसी अर्थमें यह आस्फोत शब्द भी प्रयुक्त हुआ हो; 'आस्फोटा' विष्णुकान्ता और मोगरेको भी कहते हैं। साधारणतया शराबमें आखेके फूल डालनेका कहीं २ रिवाज भी है), आदि वस्तुओंका कल्क (पिसा हुआ चूरा) लेकर इन सबको मिला लिया जावे; और इस मसालेकी एक बन्द मुट्ठी भरकर एक खारी परिमाण शराबमें डालदी जावे; इसके डालनेसे उस शराबका रंग इतना निखरता है, कि वह राजाओंके पीने योग्य होजाती है ॥ ३३ ॥ यदि उसमें पांच पल राब और मिलादी जावे, तो उसका स्वाद भी खूब बढ़जाता है ॥ ३४ ॥

कुटुम्बिनः कृत्येषु श्वेतसुरामौषधार्थं वारिष्टमन्यद्वा कर्तुं लभेरन् ॥ ३५ ॥ उत्सवसमाजयात्रासु चतुरहःसौरिको देयः ॥ ३६ ॥ तेष्वननुज्ञातानां प्रहवणान्तं दैवसिकमत्ययं गृह्णीयात् ॥ ३७ ॥

नगर निवासी तथा जनपद निवासी पारिवारिक जन, विवाह आदि कार्योंमें श्वेतसुरा (सफेद रंगकी शराब) को, और औषधके लिये अरिष्टको अथवा अन्य मेदक आदि सुराको उपयोग करनेके लिये प्राप्त कर सकते हैं। (अथवा अपने घरमें भी इन सुराओंको बना सकते हैं, यह अर्थ करना चाहिये) ॥३५॥ वसन्त आदि उत्सवोंमें, अपने बन्धुजनोंके मिलनेपर, तथा देवयात्रा अर्थात् इष्टदेव आदिकी पूजाके समयमें, सुराध्यक्ष, चार दिनतक सुरा पीनेकी आज्ञा देदेवे ॥ ३६ ॥ उन उत्सव आदिके दिनोंमें जो पुरुष सुराध्यक्षकी अनुमति लिये विनाही सुरा पीवें, उनको उत्सवके अन्तमें प्रति दिनके हिसाबसे कुछ दण्ड दिया जावे। (किसी २ व्याख्याकारने इस सूत्रका यह भी अर्थ किया

हैं:—जो कर्मचारी उत्सव आदिके दिनोंमें विनाही अनुमतिके शराब पीकर उन्मत्त होजावें, और उससे राजकीय कार्यकी हानि होवे, तो उस दैनिक हानिके अनुसारही उनको दण्ड दिया जावे) ॥ ३७ ॥

सुराकिण्वविचयं स्त्रियो बालाश्च कुर्युः ॥ ३८ ॥ अराजपण्याः शतं शुल्कं दद्युः सुरकामेदकारिष्टमधुफलाम्लाम्लशीधूनां च ॥ ३९ ॥

सुराको पकाने तथा उसके मसाले आदिको तैयार करनेके कामपर सुरासे अनभिज्ञ स्त्रियां और बालकोंको नियुक्त किया जावे ॥ ३८ ॥ जो पुरुष स्वयं शराब बनाकर बेचें (अर्थात् उत्सव आदि विशेष अवसरोंपर जो स्वयं शराब बेचते हैं, जिनको सरकारकी ओरसे शराबका कोई ठेका नहीं मिला हुआ है; तात्पर्य यह है कि जो सरकारी शराब नहीं बेचते, अपनी ही बनाकर बेचते हैं। यह उत्सव आदिके समयमेंही होसकता है क्योंकि अन्य समयमें कोई भी पुरुष, ठेकेदारके सिवाय शराब नहीं बेच सकता) वे, सुरा (साधारण शराब, श्वेत सुरा आदि), मेदक, अरिष्ट, मधु, फलाम्ल (ताड़ी; या नारियलके रससे बनाई हुई शराब), और अम्लशीधु (रसोत्तरा, जो कि गुड़के सांवेसे तैयार कीजाती है, देखो इसी अध्यायका बत्तीसवां सूत्र) आदि शराबोंका, पांच प्रतिशतक शुल्क देवें ॥ ३९ ॥

अह्नश्च विक्रयं व्याजीं ज्ञात्वा मानहिरण्ययोः ।
तथा वैधरणं कुर्यादुचितं चानुवर्तयेत् ॥ ४० ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे सुराध्यक्षः पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥
आदितः षट्चत्वारिंशः ॥ ४६ ॥

इस शुल्कके अतिरिक्त, दैनिक विक्रय तथा वैधरण (तोल मापका आवश्यक टैक्स) को अच्छी तरह जानकर, सुराध्यक्ष तोल मापके ऊपर सोलहवां हिस्सा और नकद आमदनीपर बीसवां हिस्सा व्याजी लगावे। अर्थात् अपनी बनाई शराब बेचनेपर उनसे ये टैक्स और वसूल किये जावें; परन्तु सुराध्यक्षको चाहिये कि वह इनके साथ सदा उचित बर्त्ताव ही रक्खे ॥ ४० ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें पच्चीसवां अध्याय समाप्त ।

छब्बीसवां अध्याय ।

४२ प्रकरण

सूनाध्यक्ष ।

भक्ष्य प्राणियोंके वधस्थानको 'सूना' कहते हैं; उस पर नियुक्त किये गये राजकर्मचारीका नाम 'सूनाध्यक्ष' है । उत्तम मध्यम और अधम कार्योंके अनुसारही उसके अध्यक्षोंकी नियुक्तिके सम्बन्धमें पीछे कहा जा चुका है; समाहर्त्ता सन्निधाता आदि उत्तम अध्यक्ष, पौतवाध्यक्ष आदि मध्यम, तथा सुराध्यक्ष सूनाध्यक्ष आदि अधम हैं । इस अध्यायमें प्रकरणानुसार सूनाध्यक्षके कार्यों का निरूपण किया जायगा ।

नाध्यक्षः प्रदिष्टाभयानामभयवनवासिनां च मृगपशुपक्षि नां बन्धवधहिंसायामुत्तमं दण्डं कारयेत् ॥ १ ॥ कुटुम्बि- वनपरिग्रहेषु मध्यमम् ॥ २ ॥

सरकारकी ओरसे जिनके न मारे जानेकी घोषणा करदी गई है, और ारी बन्द जंगलोंमें अथवा ऋषियोंके निवास स्थानके जंगलोंमें रहते हैं, (हरिण आदि), पशु (गेंडा अरना भैंसा आदि) पक्षी (मोर आदि) लियोंको जो पुरुष पकड़े, या उन पर प्रहार करे, अथवा उन्हें मार नाध्यक्ष उसको उत्तम साहस दण्ड दिलवावे ॥१॥ यदि कुटुम्बी पुरुष, गलोंमें (जो सरकारकी ओरसे बन्द या सुरक्षित हैं, अथवा जिनमें आदिके आश्रम हैं, ऐसे जंगलोंमें) इस प्रकार मृग आदिको पकड़े उन पर रें या उन्हें मारें, तो उनको मध्यम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २ ॥

प्रवृत्तवधानां मत्स्यपक्षिणां बन्धवधहिंसायां पादोनसप्त- पणमत्ययं कुर्यात् ॥ ३ ॥ मृगपशूनां द्विगुणम् ॥ ४ ॥

जो कभी भी घातक आक्रमण न करें, अथवा जिनका चिरकालसे वध ो रहा हो, ऐसे मत्स्य तथा पक्षियोंको जो पुरुष पकड़े, प्रहार करे या मारे, सत्ताईस पण ($26\frac{3}{4}$ पण) दण्ड दिया जावे ॥ ३ ॥ तथा जो पुरुष, ारके मृग या पशुओंका वध आदि करे, उसे इससे दुगना अर्थात् साढे ५३$\frac{1}{2}$) पण दण्ड दिया जावे ॥ ४ ॥

प्रवृत्तहिंसानामपरिगृहीतानां षड्भागं गृह्णीयात् ॥ ५ ॥ मत्स्यपक्षिणां दशभागं वाधिकं मृगपशूनां शुल्कं वाधिकम् ॥ ६ ॥ पक्षिमृगाणां जीवत्षड्भागमभयवनेषु प्रमुञ्चेत् ॥ ७ ॥

जो पशु आदि घातक आक्रमण करने वाले हों, जिनका कोई मालिक न हो, अथवा जो सरकारी या अन्य सुरक्षित जंगलके भी न हों, उन्हें जो मारें, उनसे उसका (मारे हुए पशु आदिका) छठा हिस्सा राजकीय अंश सूनाध्यक्षको लेलेना चाहिये ॥ ५ ॥ मछली और पक्षियोंका दसवां हिस्सा, अथवा उससे कुछ अधिक लेना चाहिये। इसी प्रकार मृग तथा अन्य पशुओंका भी दसवां हिस्सा, अथवा उससे कुछ और अधिक राजकीय अंश शुल्क रूपमें, सूनाध्यक्ष को उन पुरुषोंसे लेना चाहिये, जो इन मृग आदिका वध करें ॥ ६ ॥ साधारण जंगलोंमेंसे पकड़े हुए पक्षी और मृगोंके जीवित छठे हिस्सेको अभय वनोंमें (सुरक्षित जंगलोंमें) छोड़ देवें ॥ ७ ॥

सामुद्रहस्त्यश्वपुरुषवृषगर्दभाकृतयो मत्स्याः सारसा नादेयास्तटाककुल्योद्भवा वा क्रौञ्चोत्क्रोशकदात्यूहहंसचक्रवाकजीवञ्जीवकभृङ्गराजचकोरमत्तकोकिलमयूरशुकमदनशारिका विहारपक्षिणो मङ्गल्याश्चान्ये ऽपि प्राणिनः पक्षिमृगा हिंसाबाधेभ्यो रक्ष्याः ॥ ८ ॥ रक्षातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ९ ॥

किन २ प्राणियोंकी रक्षा करनी चाहिये, अब यह निरूपण किया जाता है:—समुद्रमें उत्पन्न होनेवाले, तथा हाथी घोड़े पुरुष बैल गधा आदि की आकृतिवाले भिन्न२ प्रकारके मत्स्य (जलचर प्राणी) तथा सारस (सर अर्थात् झीलोंमें होनेवाले), नदियों, तालाबों और छोटी २ नहरोंमें होनेवाले मत्स्य; (यहां तक जलचर मत्स्य आदि प्राणियोंको बताया गया), और क्रौञ्च (कुंज, जो शरद् ऋतुमें पंक्ति बांध कर आकाशमें उड़ते हुए देखे जाते हैं), उत्क्रोशक (कुरर, लम्बी चोंचवाला कुछ २ काले रंगका बड़ा पक्षी), दात्यूह, (जल कौआ), हंस, चक्रवाक (चकवा), जीवंजीवक (मोरके पंखोंके समान पंखोंवाला एक पक्षी), भृङ्गराज (मुर्गेके समान एक पक्षी जिसके सिरपर कलगी सी होती है), चकोर, मत्तकोकिल, मोर, तोता, मदन (एक तरहका प[क्षी]), मैना; इनसे अतिरिक्त और क्रीडाके लिए कुक्कुट [मु]र्गा आदि प्र[ा]णि[यों]की रक्षा करनी चाहिए। अर्थात् इन उपर्युक्त प्राणियोंको न कोई मार सके, और न इनपर प्रहार आदि कर सके ॥ ८ ॥ यदि सूनाध्यक्ष इनकी रक्षा करनेमें कुछ असावधानता करे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ९ ॥

मृगपशूनामनस्थिमांसं सद्योहतं विक्रीणीरन् ॥ १० ॥ अस्थिमतः प्रतिपातं दद्युः ॥११॥ तुलाहीने हीनाष्टगुणम् ॥१२॥

मृग और पशुओंका हड्डी रहित ताज़ा मांस ही बाज़ारमें बेचा जावे ॥ १० ॥ हड्डी सहित मांस देनेमें, हड्डीके बदलेका मांस और दिया जाय। अर्थात् मांसके साथ जितनी हड्डी आ रही हो, उतने अंशको पूरा करनेके लिये, उतना ही मांस खरीदारको और दिया जावे ॥ ११ ॥ यदि तोलनेमें मांस कम दिया जावे, अर्थात् मांस बेचनेवाला धोखेसे थोड़ा मांस तोले, तो जितना थोड़ा तोले, उससे आठगुना मांस वह दण्डरूपमें और देवे। उसमेंसे आठवां हिस्सा खरीदारको दे दिया जावे, और बाकी सात हिस्से सूनाध्यक्ष ले लेवे ॥ १२ ॥

वत्सो वृषो धेनुश्चैषामवध्याः ॥ १३ ॥ घ्नतः पञ्चाशत्को दण्डः ॥ १४ ॥ क्लिष्टघातं घातयतश्च ॥ १५ ॥

मृग और पशुओंमेंसे बछड़ा, सांड (बिजार), और गाय, ये पशु कभी न मारने चाहियें ॥ १३ ॥ जो पुरुष इनमेंसे किसीको मारे, उसे पचास (५०) पण दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥ अन्य पशुओंको अत्यन्त कष्ट पहुंचा कर मारनेवाले पुरुषोंके लिये भी यही (५० पण) दण्ड दिया जावे ॥ १५ ॥

परिसूनमशिरः पादास्थि विगन्धं स्वयंमृतं च न विक्रीणीरन् ॥ १६ ॥ अन्यथा द्वादशपणो दण्डः ॥ १७ ॥

न बेचने योग्य मांसोंकी गणना इस प्रकार है:—सूनासे अतिरिक्त स्थानमें मारे हुए प्राणी का मांस, शिर, पैर तथा हड्डी रहित मांस (अर्थात् जंगल में स्वयं मर कर अन्य प्राणियों से खाये हुए जानवर का मांस), दुर्गन्धसे युक्त मांस, रोग आदिके कारण स्वयं मरे हुए जानवरका मांस, बाजारों में न बेचा जावे ॥ १६ ॥ जो इस नियमको न माने, उसे बारह (१२) पण दण्ड दिया जावे ॥ १७ ॥

दुष्टाः पशुमृगव्याला मत्स्याश्चाभयचारिणः ।
अन्यत्र गुप्तिस्थानेभ्यो वधबन्धमवाप्नुयुः ॥ १८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे सूनाध्यक्षः षड्विंशो अध्यायः ॥ २६ ॥

आदितः सप्तचत्वारिंशः ॥ ४७ ॥

अभय वनमें रक्षा किये जाते हुए हिंसक जानवर, नीलगाय आदि पशु, मृग और व्याघ्र तथा मत्स्य आदि प्राणी, यदि उन सुरक्षित जंगलोंसे बाहर चले जावें, तो उनको मारा या बांधा जासकता है; अर्थात् उनको फिर मारने या बांधने में कोई अपराध नहीं ॥ १८ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण में छब्बीसवां अध्याय समाप्त।

सत्ताईसवां अध्याय

४४ प्रकरण

गणिकाध्यक्ष।

अपने रूप सौन्दर्यसे जीविका करने वाली स्त्रियों को 'गणिका' कहते हैं। उनकी व्यवस्था करनेके लिये नियुक्त हुए राजकीय अधिकारी का नाम 'गणिकाध्यक्ष' है। इस प्रकरण में उसीके कार्योंका निरूपण किया जायगा।

गणिकाध्यक्षो गणिकान्वयामगणिकान्वयां वा रूपयौवनशिल्पसंपन्नां सहस्रेण गणिकां कारयेत् ॥ १ ॥ कुटुम्बार्धेन प्रतिगणिकाम् ॥ २ ॥

गणिकाध्यक्ष, रूप यौवन तथा गाने बजाने आदिकी कलाओंसे युक्त लड़कीको, चाहे वह गणिका (वेश्या) के वंश में उत्पन्न हुई हो, या न उत्पन्न हुई हो, एक हज़ार (१०००) पण देकर, गणिकाके कार्य पर नियुक्त करे। ॥ १ ॥ इसी प्रकार दूसरी गणिकाको भी आधा धन उसके कुटुम्बको और आधा उसको देकर उसके कार्य पर नियुक्त करे। (पहिले सहस्र में भी आधा २ बांट कर ही गणिका और उसके कुटुम्ब को दे दिया जावे) अथवा इस सूत्र का यह अर्थ करना चाहिये—राजाकी परिचर्या करना ही गणिका कुटुम्ब का कार्य है, वह कार्य आधा २ बांट कर प्रतिगणिकाकी नियुक्ति कीजावे। अर्थात् राजपरिचर्याका आधा कार्य पहिली गणिका करे और आधा दूसरी ॥२॥

निष्पतिताप्रेतयोर्दुहिता भगिनी वा कुटुम्बं भरेत ॥ ३ ॥ तन्माता वा प्रतिगणिकां स्थापयेत् ॥ ४ ॥ तासामभावे राजा हरेत् ॥ ५ ॥

यदि कोई गणिका अपने स्थानको छोड़कर दूसरी जगह चली जावे, अथवा मर जावे तो उसके स्थान पर उसकी लड़की या बहिन, उन २ कार्यों को करती हुई उसकी सम्पत्ति की मालिक बन जावे ॥ ३ ॥ अथवा बाहर गई हुई या मरी हुई गणिका की माता, उसके स्थान पर किसी दूसरी गणिका को नियुक्त करले; वही उन २ कार्योंको करती हुई, उसकी शेष सम्पत्तिकी मालिक बने ॥ ४ ॥ यदि इनमेंसे कोई भी न रहे, तो उस सम्पत्तिका मालिक राजा ही समझा जावे ॥ ५ ॥

सौभाग्यालंकारवृद्ध्या सहस्रेण वारं कनिष्ठं मध्यममुत्तमं वारोपयेत् ॥ ६ ॥ छत्रभृङ्गारव्यजनशिबिकापीठिकारथेषु च विशेषार्थम् ॥ ७ ॥

सौभाग्य और अलङ्कारकी अधिकताके अनुसार ही एक हज़ार पण देनेके क्रमसे वाराङ्गनाओंके तीन विभाग किये जावें,—कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। अर्थात् जो वाराङ्गना (वेश्या=गणिका) सौन्दर्य आदि सजावटमें सबसे कम हो वह कनिष्ठ समझी जावे, उसको एक हज़ार पण वेतन दिया जावे; इसी प्रकार जो सौन्दर्य आदिमें उससे अधिक हो वह मध्यम, उसको दो हज़ार पण वेतन दिया जावे; और जो सबसे अधिक हो, वह उत्तम, उसको तीन हज़ार पण वेतन दिया जावे। इस तरहसे कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम तीन भेद बनाये जावें ॥ ६ ॥ इन भेदोंका प्रयोजन यही है, कि वे गणिका अपने २ पदके अनुसार, राजाके छत्र, भृङ्गार (इतरदान या अन्य महर्घ वस्तुकी छोटीसी पेटी, जो राजाके साथ २ रहती है), व्यजन, (पंखा), पालकी, पीठिका, (राजाके बैठनेका विशेष स्थान), और रथ सम्बन्धी कार्योंमें नियमानुसार उपस्थित रहें, अर्थात् भिन्न २ अवसरोंपर भिन्न २ विधिसे राजाकी उपचर्या करें। इसका विवेक इस तरह करना चाहिए:— जो कनिष्ठ वारवनिता हो, वह छत्र और भृङ्गार लेकर राजाकी उपचर्या करे; मध्यम, व्यजन और पालकीके साथ रहकर राजाकी सेवा करे, तथा उत्तम राजाके विशेष सिंहासन और रथ आदिमें साथ २ रहकर उसकी परिचर्या करे ॥ ७ ॥

सौभाग्यभङ्गे मातृकां कुर्यात् ॥ ८ ॥ निष्क्रयश्चतुर्विंशतिसाहस्रो गणिकायाः ॥९॥ द्वादशसाहस्रो गणिकापुत्रस्य ॥१०॥ अष्टवर्षात्प्रभृति राज्ञः कुशीलवकर्म कुर्यात् । ११

जब इनका रूप और यौवन ढल जाय, तब इनको नई नियुक्त की हुई गणिकाओंके मातृस्थानमें समझा जावे। अर्थात् नई गणिकाओंकी माता बनकर ये उन्हें हर तरहकी शिक्षा देवें, और उनको सदा राजाके अनुकूल बनाये रक्खें ॥ ८ ॥ जो गणिका अपने आपको राजाकी सेवासे मुक्त करना चाहे, वह उसको चौबीस हजार पण (२४०००) निष्क्रय (सेवासे मुक्त होनेका मूल्य) देवे। अर्थात् वह राजाको २४००० पण देकर उसकी सेवासे मुक्त होसकती है ॥ १० ॥ यदि गणिकाका पुत्र अपने आपको राजाकी सेवासे मुक्त करना चाहे, तो उसका निष्क्रय बारह हजार (१२०००) पण है ॥१०॥ यदि वह निष्क्रय देनेमें समर्थ नहीं है, तो राजाके पास आठ वर्षतक कुशीलव (चारण) का काम करके, फिर अपने आप ही मुक्त कर सकता है ॥ ११ ॥

गणिकादासी भग्नभोगा कोष्ठागारे महानसे वा कर्म कुर्यात् ॥१२॥ अविशन्ती सपादपणमवरुद्धा मासवेतनं दद्यात् ॥ १३ ॥

गणिकाकी दासी जब भोग योग्य उमरको लांघ जावे, अर्थात् बूढ़ी होजावे, तब उसको कोष्ठागार या महानस (रसोई) में काम करनेके लिये नियुक्त कर दिया जावे ॥ १२ ॥ यदि वह काम न करे, और किसी एकही पुरुषकी भोग्य स्त्री बनकर उसके घरमें रहने लगे, तो वह प्रतिमास उस गणिकाको सवा (१¼) पण वेतन देवे ॥ १३ ॥

भोगं दायमायं व्ययमायतिं च गणिकायाः निबन्धयेत्॥१४॥ अतिव्ययकर्म च वारयेत् ॥ १५ ॥

गणिकाध्यक्षको चाहिये, कि वह गणिकाके भोगधन (गणिकाको भोग करने वाले पुरुषसे प्राप्त हुआ २ धन), दायभाग (मातृकुलक्रमसे प्राप्त हुआ २ धन), आय (भोगसे अतिरिक्त प्राप्त होने वाला धन), व्यय और आयति (प्रभाव=आगे होने वाले असर) को बराबर अपनी पुस्तकमें लिखता रहे ॥ १४ ॥ और गणिकाओंको अत्यधिक व्यय करनेसे सदा रोकता रहे ॥१५॥

मातृहस्तादन्यत्राभरणन्यासे सपादचतुष्पणो दण्डः ॥१६॥ स्वापतेयं विक्रयमाधानं वा नयन्त्याः सपादपञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १७ ॥

यदि गणिका, अपनी माताके सिवाय और किसीके हाथमें अपने आभरण आदि सौंपे, तो उसे सवा चार (४¼) पण दण्ड दिया जावे ॥१६॥ यदि वह (गणिका) अपने कपड़े बर्तन पारिवारिक परिच्छदको बेचे या गिरवी रक्खे तो उसे सवा पचास (५०¼) पण दण्ड दिया जावे ॥ १७ ॥

चतुर्विंशतिपणो वाक्पारुष्ये ॥ १८ ॥ द्विगुणो दण्डपारुष्ये ॥ १९ ॥ सपादपञ्चाशत्पणः पणोऽर्धपणश्च कर्णच्छेदने ॥२०॥

यदि वह किसीके साथ वाचिक कठोरताका वर्त्ताव करे, तो उसे चौबीस (२४) पण दण्ड दिया जावे ॥ १८ ॥ यदि हाथ पैर या लाठी आदिसे मार-कर किसीके साथ कठोरता करे, तो पहिलेसे दुगना अर्थात् अड़तालीस (४८) पण दण्ड दिया जावे ॥ १९ ॥ यदि वह किसीका कान आदि काटलेवे, तो पौने बावन (५१$\frac{3}{4}$) पण दण्ड दिया जावे ॥ २० ॥

अकामायाः कुमार्या वा साहसे उत्तमो दण्डः ॥ २१ ॥ सकामायाः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २२ ॥

यदि कोई पुरुष, कामनारहित कुमारीपर बलात्कार करे, तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २१ ॥ तथा जो कामना करने वालीही कुमारीके साथ ऐसा व्यवहार करे, उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २२ ॥

गणिकामकामां रुन्धतो निष्पातयतो वा व्रणविदारणेन वा रूपमुपघ्नतः सहस्रदण्डः ॥ २३ ॥

जो पुरुष, किसी कामनारहित गणिकाको बलपूर्वक रोककर अपने घर-में रक्खे, अथवा उसको मुक्त न करना चाहे, या कोई चोट अथवा घाव लगा-कर उसके रूपको नष्ट करना चाहे; उस पुरुषको एक हज़ार (१०००) पण दण्ड दिया जावे ॥ २३ ॥

स्थानविशेषेण वा दण्डवृद्धिरानिष्क्रयद्विगुणात्पणसहस्रं वा दण्डः ॥ २४ ॥

शरीरके भिन्न २ स्थानोंपर चोट पहुंचानेसे, उन २ स्थान विशेषोंके अनुसार ही इस दण्डमें (१००० पण दण्डमें) वृद्धि की जावे । यह वृद्धि निष्क्रयकी दुगनी रकम तक होजानी चाहिये । (वाराङ्गनाका निष्क्रय चौबीस हज़ार पण बताया गया है, उसका दुगना अड़तालीस हज़ार पण हुए; शरीर के किसी अवयवका उपघात करनेपर अधिकसे अधिक इतना दण्ड होसकता है । किसी व्याख्याकारने इसका यह भी अर्थ किया है, कि दण्डवृद्धि उत्तम आदि वाराङ्गनाओंके विचारसे करनी चाहिये । प्राचीन व्याख्याकारोंने इस सूत्र-के 'पणसहस्रं वा दण्डः' इस अंशका व्याख्यान नहीं किया, यह अंश मूल पुस्त-कोंमें बराबर देखा जाता है; परन्तु पूर्वापरके साथ इसकी संगति मालूम नहीं होती, इसलिये यह पाठ प्रक्षिप्त ही मालूम होता है) ॥ २४ ।

आज्ञाधिकारां गणिकां घातयतो निष्क्रयत्रिगुणो दण्डः ॥ २५ ॥ मातृकादुहितृकारूपदासीनां घात उत्तमः साहसदण्डः ॥ २६ ॥

जिन गणिकाओंको राजाके समीप छत्र भृङ्गार आदिका अधिकार प्राप्त हो, अर्थात् जो राजकीय वाराङ्गनायें होवें, उनको मारने धाड़ने वाले पुरुषको निष्क्रयसे तीन गुना अर्थात् बहत्तर हजार (७२०००) पण दण्ड दिया जावे ॥ २५ ॥ माता, लड़की, तथा रूपदासी (रूपसे आजीविका करनेके लिये दासी बनी हुई स्त्री) को मारने पीटनेपर उत्तम साहस दण्ड दियाजावे ॥२६॥

सर्वत्र प्रथमे ऽपराधे प्रथमः ॥ २७ ॥ द्वितीये द्विगुणः ॥२८॥ तृतीये त्रिगुणः ॥२९॥ चतुर्थे यथाकामी स्यात् ॥३०॥

सबही स्थलोंमें जो अपराध पहिलेही पहिले किया जाय, उसीके लिये निर्दिष्ट दण्डोंका विधान है । इसलिये दिखलाये हुए ये सब दण्ड, प्रथम दण्ड अर्थात् पहिले अपराधके लिये दण्ड समझने चाहियें ॥ २७ ॥ यदि कोई पुरुष उसी अपराधको फिर दुबारा करे, तो उसको निर्दिष्ट दण्डसे दुगना दण्ड दिया जाय ॥ २८ ॥ इसी प्रकार तीसरी बार वही अपराध करनेपर, तिगुना दण्ड ॥ २९ ॥ और चौथी बार उसी अपराधके करनेपर, चौगुना अथवा सर्वस्वका अपहरण, या देशसे ही प्रवासित करदेना, आदि दण्डोंमेंसे कोईसा दण्ड इच्छानुसार दिया जावे ॥ ३० ॥

राजाज्ञया पुरुषमनभिगच्छन्ती गणिका शिफासहस्रं लभेत ॥ ३१ ॥ पञ्चसहस्रं वा दण्डः ॥ ३२ ॥

जो गणिका, राजाकी आज्ञा होनेपर भी, किसी पुरुष विशेषके पास न जावे, उसको एक हजार कोड़े लगवाये जावें ॥ ३१ ॥ अथवा यह शारीरिक दण्ड न देकर, उसपर पांच हजार (५०००) पण जुरमाना किया जाय ॥३२॥

भोगं गृहीत्वा द्विषत्या भोगद्विगुणो दण्डः ॥ ३३ ॥ वसतिभोगापहारे भोगमष्टगुणं दद्यादन्यत्र व्याधिपुरुषदोषेभ्यः ॥ ३४ ॥

यदि कोई गणिका, किसी पुरुषसे अपने भोगका वेतन लेकर फिर उसके साथ द्वेष करे, अर्थात् उसके पास न जावे, तो उस लिये हुए भोगवेतनसे दुगना दण्ड उसको दिया जाय ॥ ३३ ॥ यदि रात्रिसम्भोगका वेतन लेकर, गणिका उस रातको कथा, तथा अन्य बातके बहानेसे ही बिता देवे, तो उसको उस वेतनका आठगुना दण्ड दिया जावे । परन्तु यदि उस पुरुषको कोई ऐसा

संक्रामक रोग हो या अन्य किसी प्रकारका उसमें दोष हो तो सम्भोग न करनेपर भी गणिका अपराधिनी न होगी ॥ ३४ ॥

पुरुषं घ्नत्याश्चिताप्रतापो ऽप्सु प्रवेशनं वा ॥ ३५ ॥ गणिकाभरणार्थं भोगं वापहरतो ऽष्टगुणो दण्डः ॥ ३६ ॥ गणिका भोगमायतिं पुरुषं च निवेदयेत् ॥ ३७ ॥

जो गणिका इसप्रकार वेतन लेकर पुरुषको मारडाले, उसको उस पुरुषके साथही चितामें रखकर जीतेजी जला दिया जावे, अथवा गलेमें शिला बांधकर जलमें डुबो दिया जावे ॥ ३५ ॥ गणिकाके आभरण, अन्य पदार्थ तथा सम्भोगके वेतनको जो पुरुष अपहरण करे, उसे अपहृत धनसे आठगुना दण्ड दिया जावे ॥ ३६ ॥ गणिका अपने भोग, आमदनी तथा अपने साथ सहवास करने वाले पुरुषकी सूचना गणिकाध्यक्षको बराबर देवे ॥ ३७ ॥

एतेन नटनर्तकगायकवादकवाग्जीवनकुशीलवप्लवकसौभिकचारणानां स्त्रीव्यवहारिणां स्त्रियो गूढाजीवाश्च व्याख्याताः ॥ ३८ ॥

नट (अभिनय करने वाले) नर्त्तक, गायक, वादक, वाग्जीवन (कथा करके जीविका करने वाले) कुशीलव (मुख्यतया नृत्य आदि दिखाकर गाने वाले), प्लवक (रस्सीपर चढ़कर खेल दिखाने वाले), सौभिक (ऐन्द्रजालिक=जादूगर), चारण (भांड़ मल्ल आदि) तथा और भी जो कोई स्त्रियोंके द्वारा अपनी जीविका कमाते हों, उनकी स्त्रियों; और छिपकर व्यभिचार आदिसे जीविका कमाने वाली स्त्रियोंके सम्बन्धमें भी गणिकाओंके समानही सब यथोचित नियम बर्त्ते जावें । अर्थात् नट आदिकी स्त्रियोंके विषयमें जो नियम जहां सम्भव हो, उसके अनुसार ही इनके साथ वर्त्ताव किया जावे ॥ ३८ ॥

तेषां तूर्यमागन्तुकं पञ्चपणं प्रेक्षावेतनं दद्यात् ॥ ३९ ॥ रूपाजीवा भोगद्वयगुणं मासं दद्युः ॥ ४० ॥

यदि नट आदिकी कोई कम्पनी किसी दूसरे देशसे तमाशा दिखानेके लिये आवे, तो प्रत्येक तमाशा दिखानेका पांच पण टैक्स राजाको देवे ॥ ३९ ॥ रूपसे आजीविका करने वाली गणिका, अपनी मासिक आमदनीकी औसतमेंसे दो दिनकी आमदनी, राजाको कर रूपमें देवें । तात्पर्य यह है, कि महीने भरमें जितनी भी आमदनी हो, उसको प्रत्येक दिनपर बराबर २ बांटकर, दो दिनका जो कुछ बने, उतनाही टैक्स राजाको दिया जावे ॥ ४० ॥

गीतवाद्यपाठ्यनृत्तनाट्याक्षरचित्रवीणावेणुमृदङ्गपरचित्तज्ञान-गन्धमाल्यसंयूहनसंपादनसंवाहनवैशिककलाज्ञानानि गणिका दासी रङ्गोपजीविनीश्च ग्राहयतो राजमण्डलादाजीवं कुर्यात् ॥४१॥

गाना, बजाना, नाचना, अभिनय करना, लिखना, चित्रकारी करना, वीणा वेणु तथा मृदङ्गको विशेष रीतिसे बजाना, दूसरेके चित्तको पहचानना, गन्धोंका बनाना, मालाओंका गूंथना, (गन्धसंयूहनं, माल्यसम्पादनं), पैर आदि अंगोंका दबाना (संवाहन) शरीरकी हर तरहसे वेशभूषा आदि करना, तथा चौंसठ कलाओंमेंसे अन्य आवश्यक कलाओंको; गणिका, दासी (गणिकाओंसे अतिरिक्त अन्य साधारण वेश्यायें), तथा रङ्गमञ्च (स्टेज) पर अभिनय करके जीविका करने वाली स्त्रियोंके लिये सिखाने वाले आचार्यकी वृत्ति (निर्वाह) का प्रबन्ध, राजा, राजमण्डल (नगर तथा ग्रामोंसे आने वाली आय) से करे ॥ ४१ ॥

गणिकापुत्रान्रङ्गोपजीविनश्च मुख्यान्निष्पादयेयुः सर्वतालावचाराणां च ॥ ४२ ॥

गणिकाओंके पुत्रों तथा मुख्य रङ्गोपजीवियों (रंग मंचपर अभिनय आदि करके जीविका करने वाले मुख्य नटों) को अन्य सब रंगोपजीवियोंका (सर्वतालावचाराणां) प्रधान बनाया जावे। अर्थात् ये, सबके आचार्यस्थानीय रहकर कार्योंको करें ॥ ४२ ॥

संज्ञाभाषान्तरज्ञाश्च स्त्रियस्तेषामनात्मसु ।
चारघातप्रमादार्थं प्रयोज्या बन्धुवाहनाः ॥ ४३ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे गणिकाध्यक्षः सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥
आदितोऽष्टचत्वारिंशः ॥ ४८ ॥

तरह २ के इशारे और भिन्न २ भाषाओंको जानने वाली, उन रंगोपजीवियोंकी स्त्रियां, राजाके द्वारा धन आदि देकर वशमें किये हुए, उनके (उन स्त्रियोंके) बन्धु बान्धवोंसे राजाकी आज्ञानुसार कार्योंमें प्रवृत्त कीहुई; अजितेन्द्रिय दुष्ट पुरुषोंमें शत्रुओंके द्वारा भेजे हुए गुप्तचरोंके मारनेके लिये अथवा उनको विषयोंमें आसक्तकर प्रमादी बनानेके लिये प्रयुक्त की जावें। तात्पर्य यह है कि राजा, रङ्गोपजीवियोंको यथेच्छ धन आदि देकर उनको वशमें करके, उनकी स्त्रियोंको, शत्रुके गुप्तचरोंके वध करने तथा उनको प्रमादी बनानेके कामपर नियुक्त करे, जिससे कि वे अपने कार्यको यथाविधि न कर सकें ॥४३॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें सत्ताईसवां अध्याय समाप्त ।

अट्ठाईसवां अध्याय।

४१ प्रकरण।

नावध्यक्ष।

नौकाओंके टैक्स आदिको वसूल करने वाला, राजकीय पुरुष 'नावध्यक्ष' कहाता है। उसके सब कार्योंका इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा।

नावध्यक्षः समुद्रसंयाननदीमुखतरप्रचारान्देवसरोविसरोनदीतरांश्च स्थानीयादिष्ववेक्षेत ॥ १ ॥ तद्वेलाकूलग्रामाः क्लृप्तं दद्युः ॥ २ ॥

नावध्यक्षको चाहिये, कि वह समुद्र तटके समीपके, नदी और समुद्रके संगमके नौमार्गोंको; तथा बड़ी २ झील, तालाब और नदियोंके नौमार्गोंको (नाव चलानेके मार्गोंको), स्थानीय, द्रोणमुख आदि स्थानोंमें अच्छीतरह देखता रहे, (स्थानीय तथा द्रोण-मुख आदिका विवरण, देखो तीसरे अधिकरणका पहिला सूत्र); अर्थात् इन मार्गोंका प्रबन्ध और निरीक्षण बराबर करता रहे ॥ १ ॥ समुद्र, झील या नदी आदिके किनारेपर बसे हुए गांव, राजाको कुछ नियत टैक्स देवें। (क्योंकि यहांके लोग नाव आदिसे निरन्तर व्यापार कर सकते हैं; यदि ये लोग कुछ न देंगे, तो जनपदके अन्य नाविक व्यापारी किस प्रकार देनेको तैयार होसकेंगे; इसलिये किनारेके गांव सदाही कुछ नियतकर देते रहें ॥ २ ॥

मत्स्यबन्धका नौकाभाटकं षड्भागं दद्युः ॥ ३ ॥ पत्तनानुवृत्तं शुल्कभागं वणिजो दद्युः ॥ ४ ॥ यात्रावेतनं राजनौभिः संपतन्तः ॥ ५ ॥ शङ्खमुक्ताग्राहिणो नौभाटकं दद्युः ॥ ६ ॥ स्वनौभिर्वा तरेयुः ॥ ७ ॥

मछियारे (मछली मारने वाले), अपनी आमदनी (मछली आदि जो कुछ पकड़ें, उस) का छठा हिस्सा, सरकारी नावपर आने जानेका भाड़ा देवें ॥ ३ ॥ समुद्र आदिके तटपर बसे हुए व्यापारी नगरोंके (अथवा बन्दरगाहोंके) नियमके अनुसार ही, बनिये अपने मालके मूल्यका पांचवां या छठा हिस्सा राजकीय शुल्क (सरकारी टैक्स) देवें ॥ ४ ॥ सरकारी नावोंसे अपना माल ले जाने लेजानेपर उसका भाड़ा भाड़ा नियम नुसार देवें ॥ ५ ॥ इसी प्रकार शङ्ख और मोती आदिके समुद्रसे

निकालने वाले व्यापारी, नावका भाड़ा देवें; (यहांपर कितना भाड़ा देवें, इसका कोई निर्देश नहीं है, इस लिये उनके मालके मूल्यका पांचवां या छठा हिस्साही भाड़ा समझना चाहिये) ॥ ६ ॥ अथवा अपनी नावोंसे ही तरें; अर्थात् सरकारी नावोंका उपयोग न कर अपनी नावोंसे ही सब काम लेवें॥७॥

अध्यक्षश्चैषां खन्यध्यक्षेण व्याख्यातः ॥ ८ ॥ पत्तनाध्यक्षनिबन्धं पण्यपत्तनचारित्रं नावध्यक्षः पालयेत् ॥ ९ ॥

शंख तथा मोती आदिके विषयमें, खन्यध्यक्षके समान ही नावध्यक्षका कार्य समझना चाहिये। अर्थात् जिस प्रकार खन्यध्यक्ष, खानमें उत्पन्न होने वाली वस्तुओंके व्यापार आदिका पूरा प्रबन्ध करता है, इसी प्रकार नावध्यक्ष भी मछली, शंख, मोती आदि सामुद्रिक वस्तुओंके व्यापार आदिका पूरा प्रबंध करे ॥ ८ ॥ पत्तनाध्यक्ष (नगराध्यक्ष) के नियत किये हुए, व्यापारी नगरके नियमोंको (अथवा बन्दरगाह सम्बन्धी नियमोंको) नावध्यक्ष पूरे तौरपर पालन करे। अर्थात् नगरमें आकर नागरिक नियमोंका उल्लंघन कदापि न करे ॥ ९ ॥

मूढवाताहतानां पितेवानुगृह्णीयात् ॥ १० ॥ उदकप्राप्तं पण्यमशुल्कमर्धशुल्कं वा कुर्यात् ॥ ११ ॥

दिग्भ्रम होजानेसे अथवा तूफ़ान आदिके कारण, नष्ट होती हुई नावको, पिताके समान अनुग्रह करके बचावे ॥ १० ॥ जलके कारण खराब हुए २ मालपर (अर्थात् जिस मालमें जलके कारण व्यापारीका नुकसान होगया हो, ऐसे मालप०) शुल्क (सरकारी टैक्स) न लेवे; अर्थात् उसका शुल्क माफ़ करदेवे। अथवा हानिके अनुसार, उस मालपर आधा ही शुल्क लेवे ॥ ११ ॥

यथानिर्दिष्टाश्चैताः पण्यपत्तनयात्राकालेषु प्रेषयेत् ॥ १२ ॥ संयान्तीर्नावः क्षेत्रानुगताः शुल्कं याचेत ॥ १३ ॥ हिंस्रिका निर्घातयेत् ॥ १४ ॥ अमित्रविषयातिगाः पण्यपत्तनचारित्रोपघातिकाश्च ॥ १५ ॥

सर्वथा शुल्क रहित तथा आधे शुल्क वाली इन नावोंको, व्यापारिक नगरोंकी ओर यात्रा करनेके समयोंमें भेज देवे या छोड़देवे ॥ १२ ॥ चलती हुई नावोंको, जब वे शुल्क स्थानमें पहुंचें, शुल्क मांगे। अर्थात् नावके चुंगीघरके पास पहुंचनेपर उनसे सरकारी चुंगी लेली जावे। तात्पर्य यह है, कि जो नाव बन्दरगाहसे गुज़र कर किसी अन्य स्थानपर जाने वाली है, उससे बन्दरगाहपर ठहरने या गुज़रनेकी चुंगी लेली जावे ॥ १३ ॥ जो नावें चोर और डाकुओंकी होवें, उन को नष्ट करदिया जावे ॥ १४ ॥ तथा जो नाव, शत्रुके देशको जाने वाली हों, और व्यापारी नगरों या बन्दरगाहोंके नियमोंको उल्लंघन करने वाली हों, उनको भी नष्ट करदिया जावे ॥ १५ ॥

शासकनियामकदात्ररश्मिग्राहकोत्सेचकाधिष्ठिताश्च महानावो हेमन्तग्रीष्मतार्यासु महानदीषु प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥ क्षुद्रकाः क्षुद्रिकासु वर्षास्राविणीषु ॥ १७ ॥

शासक (नाव चलाने वालों में सब से बड़ा अधिकारी, जिसकी आज्ञा के अनुसार नाव चलाई जावे), नियामक (नाव चलाने वाला), दात्रग्राहक (दाँती=रस्सी तथा लकड़ी आदि काटने के लिये आवश्यकतानुसार कोई साधन=हाथ में लेने वाला; नावों में इसकी भी काफी ज़रूरत पड़ती रहती है) रश्मिग्राहक (रस्सी या पतवार आदि पकड़ने वाला), और उत्सेचक (भीतर भरे पानी को बाहर उलीचने वाला), इन पांच कर्मचारियों से युक्त बड़ी २ नावों को ही, गरमी और सरदी में एकरूप से बहने वाली गहरी और बहुत बड़ी २ सिन्धु आदि नदियों में प्रयुक्त किया जावे। अर्थात् बड़ी नदियों में बड़ी नावों के चलने की ही आज्ञा दी जावे ॥ १६ ॥ केवल बरसात में बहने वाली (अर्थात् बरसाती) छोटी २ नदियों के लिये छोटी नावों का पृथक् प्रबन्ध किया जावे ॥ १७ ॥

बद्धतीर्थाश्चैताः कार्या राजद्विष्टकारिणां तरणभयात् ॥१८॥ अकाले ऽतीर्थे च तरतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १९ ॥ काले तीर्थे चानिसृष्टतारिणः पादोनसप्तविंशतिपणः तरात्ययः ॥ २० ॥

इन नावों के बन्दरगाहों की बहुत सावधानता से निगरानी रक्खी जावे। तात्पर्य यह है, कि प्रथम तो हर एक नावके ठहरने के स्थान (स्टेशन) नियत होवें, और दूसरे जब नाव वहां ठहरे तब उनपर पूरा ध्यान रक्खा जावे; जिससे कि कोई भी राजा के साथ द्वेष करने वाला, अथवा शत्रु के भेजे हुए तीक्ष्ण और रसद आदि पुरुष, नावों से इधर उधर पार न आ जा सकें ॥ १८ ॥ इसीलिये यदि कोई नाव वाला असमय (नाव के आने जानेके नियत समयके अतिरिक्त समयमें) या बिना ही घाट (बन्दरगाह) के नदी आदि को पार कर रहा हो, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १९ ॥ और ठीक समय में तथा घाट पर भी, बिना आज्ञा के नाव को पार लेजाने वाले व्यक्ति को पौने सत्ताईस २६¾ पण दण्ड दिया जावे ॥ २० ॥

कैवर्तकाष्ठतृणभारपुष्पफलवाटषण्डगोपालकानामनत्ययः सम्भाव्यदूतानुपातिनां च सेनाभाण्डप्रचारप्रयोगाणां च ॥ २१ ॥ स्वतरणैस्तरताम् ॥ २२ ॥ बीजभक्तद्रव्योपस्करांश्चानूपग्रामाणां तारयताम् ॥ २३ ॥

धीवर (मछली आदि मारने वाले), लकड़हारे, घसियारे, माली, कुंजड़े, खेतों की रखवाली करने वाले, ग्वाले; चोर आदिकी शंका में किसीके पीछे जाने वाले (सम्भाव्यानुपातिनां), राजदूत के पीछे शेष कार्य को पूरा करने के लिये जाने वाले (दूतानुपातिनां), सेना, सैनिकसामग्री, तथा गुप्तचर पुरुषोंको, असमय में या बिना घाट के ही नदी पार करनेपर भी कोई दण्ड न दिया जावे ॥ २१ ॥ इसीप्रकार जो अपनी ही नावों से नदी आदि पार करें, उनसे भी किसी तरहका दण्ड न लिया जाय ॥ २२ ॥ तथा जलमय प्रदेशों में बसे हुए गावों के; बीज (बोनेके लिये धान आदि के बीज), भक्त (कर्मचारी पुरुषोंके खाने के लिये भक्ष्य द्रव्य), अन्य द्रव्य (फूल, फल शाक आदि), और उपस्कर (मसाला आदि), इत्यादि पदार्थों को पार लेजाने वाले पुरुषोंको भी किसी प्रकारका दण्ड न दिया जाय । अर्थात् ऐसे गावों में इन उपर्युक्त पदार्थोंको असमय तथा बिना घाटके भी लेजाया जासकता है ॥ २३ ॥

ब्राह्मणप्रव्रजितबालवृद्धव्याधितशासनहरगर्भिण्यो नावध्यक्षमुद्राभिस्तरेयुः ॥ २४ ॥ कृतप्रवेशाः पारविषयिकाः सार्थप्रमाणाः प्रविशेयुः ॥ २५ ॥

ब्राह्मण, संन्यासी, बालक, वृद्ध, बीमार, शासनहर (राजाका एलची, राजाकी आज्ञाको दूसरी जगह लेजाने वाला), तथा गर्भवती स्त्री, इनको नावध्यक्षकी मुहर देखकर ही पार कर दिया जावे । अर्थात् नदी आदि पार करनेका भाड़ा इनसे न लिया जाय ॥ २४ ॥ परदेश से आनेवाले जिन लोगों ने, देशमें आनेकी अनुमति प्राप्त करली है, अथवा जो अनुमति प्राप्त कियेहुए व्यापारी पुरुषोंके साथ हैं, वे ही लोग देशमें प्रवेश कर सकते हैं ॥ २५ ॥

परस्य भार्यां कन्यां वित्तं वापहरन्तं शङ्कितमाविग्नमुद्भाण्डीकृतं महाभाण्डेन मूर्ध्नि भारेणावच्छादयन्तं सद्योगृहीतलिङ्गिनमलिङ्गिनं वा प्रव्रजितमलक्ष्यव्याधितं भयविकारिणं गूढसारभाण्डशासनशस्त्राग्नियोगं विषहस्तं दीर्घपथिकममुद्रं चोपग्राहयेत् ॥२६॥

किसीकी स्त्री, कन्या तथा धनका अपहरण करने वाले पुरुषको, आगे कहे हुए शङ्कित आदि चिन्होंसे पहिचानकर गिरफ्तार करलिया जावे; वे चिन्ह इस प्रकार हैं:—शङ्कित अर्थात् उस आदमीका चौकन्ना सा होना, घबराया हुआ होना, शक्तिसे बहुत अधिक बोझा उठायेहुए होना, सिरपर बहुत फैलेहुए पुराल या घास आदिके बोझसे मुंह आदिको ढकेहुए होना, जल्दी

सन्यासीका वश बनालेना, या तत्काल ही सन्यासी वशको छोडकर सादा वश करलेना, बीमारीके चिन्ह मालूम न होनेपर भी बीमार होनेका बहाना करना, भयके कारण मुख आदिका विकृत होना, बहुमूल्य रत्न आदि द्रव्योंका बहुत छिपाना, किसी गुप्त लेख आदिका रखना, छिपे तौरपर हथियार रखना, छिपे तौरपर ही अग्नियोग (औपनिषदिक प्रकरणमें बताया हुआ ऐसा प्रयोग, जिसका कि कोई प्रतीकार नहीं किया जासकता) आदिका रखना, हाथ में जहरका रखना, बहुत दूरका सफ़र करना तथा अन्तपाल से पास लिये बिना ही सफ़र करना, इत्यादि चिन्होंसे अनुमान करके, स्त्री आदिके अपहरण करने वाले पुरुषको गिरफ्तार करलिया जावे ॥ २६ ॥

क्षुद्रपशुर्मनुष्यश्च सभारो माषकं दद्यात् ॥ २७ ॥ शिरोभारः कायभारो गवाश्वं च द्वौ ॥ २८ ॥ उष्ट्रमहिषं चतुरः ॥ २९ ॥ पञ्च लघुयानम् ॥ ३० ॥ षड् गोलिङ्गम् ॥ ३१ ॥ सप्त शकटम् ॥ ३२ ॥ पण्यभारः पादम् ॥ ३३ ॥

अब नदी आदि पार करनेका कितना भाड़ा होना चाहिये, यह बताया जाता है:—भेड़ बकरी आदि छोटे जानवर और मनुष्यका जिसके पास केवल हाथमें उठाने योग्य बोझा हो, एक माषक भाड़ा दिया जावे ॥ २७ ॥ सिरसे तथा पीठ आदिसे उठाने योग्य बोझ से युक्त पुरुषका, और गाय घोड़ा आदि पशुओंका दो माषक भाड़ा दिया जावे ॥२८॥ ऊंट और भैंसका चार माषक ॥२९॥ छोटीसी गाड़ी आदिका पांच माषक ॥३०॥ मध्यम दरजेकी गाड़ीका छः माषक ॥ ३१ ॥ बड़ी बैलगाड़ीका सात माषक ॥ ३२ ॥ बीस तुला बोझका $\frac{1}{4}$ पण भाड़ा दिया जावे ॥ ३३ ॥

तेन भाण्डभारो व्याख्यातः ॥ ३४ ॥ द्विगुणो महानदीषु तरः ॥ ३५ ॥ क्लृप्तमानूपग्रामा भक्तवेतनं दद्युः ॥ ३६ ॥

इसीके अनुसार, भैंसे ऊंट आदिपर ढोये जाने वाले बोझका भी भाड़ा समझ लेना चाहिये; अर्थात् प्रत्येक भारका एक एक माषक भाड़ा दिया जावे ॥ ३४ ॥ बहुत बड़ी २ नदियों में, इससे दुगना भाड़ा होना चाहिये; अर्थात् जिसका जितना भाड़ा बताया गया है वह उससे दुगना भाड़ा देवे ॥ ३५ ॥ जलमय प्रदेशोंमें बसेहुए गावोंके लोग; सरकारी टैक्सके अलावा कुछ नियत भत्ता और वेतन नाविक पुरुषोंको भी देवें ॥ ३६ ॥

प्रत्यन्तेषु तराः शुल्कमातिवाहिकं वर्तनीं च गृह्णीयुः ॥ ३७ ॥ निर्गच्छतश्चामुद्रद्रव्यस्य भाण्डं हरेयुः ॥ ३८ ॥ अतिभारेणावेलायामतीर्थे तरतश्च ॥ ३९ ॥

पार कराने वाले राजकर्मचारी पुरुष, सीमा प्रदेशोंमें, व्यापारियोंसे, मार्ग आदिका शुल्क तथा अन्तपालको दिये जाने वाला शुल्क ग्रहण करें ॥ ३७ ॥ जो व्यापारी मालपर बिना ही मुहर लगवाये निकल जावें, उसका सम्पूर्ण माल ज़ब्त करलिया जावे ॥ ३८ ॥ तथा जो अत्यधिक बोझके साथ (एक आदमीको जितना बोझ लेजानेका नियम है, उससे बहुत अधिक बोझा लेकर) असमयमें और बिनाही घाटके नदीको पार करे, उसका भी सम्पूर्ण माल ज़ब्त करलिया जावे ॥ ३९ ॥

पुरुषोपकरणहीनायामसंस्कृतायां वा नावि विपन्नायां नावध्यक्षो नष्टं विनष्टं वाभ्यावहेत् ॥ ४० ॥

पुरुष (शासक, नियामक आदि), तथा अन्य आवश्यक साधनोंसे हीन, और असंस्कृत (मरम्मत आदि न कराई हुई) सरकारी नावके डूब जाने या नष्ट होजानेपर, नावध्यक्षको चाहिये, कि वह नष्ट हुए २ या जल आदिसे बिगड़े हुए मालको अपनी ओरसे देकर नुकसानको पूरा करे ॥ ४० ॥

सप्ताहवृत्तामाषाढीं कार्तिकीं चान्तरा तरः ।
कार्मिकः प्रत्ययं दद्यान्नित्यं चाह्निकमावहेत् ॥ ४१ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे नावध्यक्षः अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

आदितः एकोनपञ्चाशः ॥ ४९ ॥

आषाढ़ पूर्णमासीके एक सप्ताह बादसे लगाकर कार्तिक पूर्णमासीके एक सप्ताह बाद तक, अर्थात् इतने समयके बीचमें नावोंके तरनेका टैक्स लिया जाय, (यह समय वर्षा ऋतुका बताया गया है, इसलिये यह केवल बरसाती नदियोंके लिये ही समझना चाहिये। सदा बहने वाली नदियोंमें तो टैक्स हमेशा ही लेना चाहिये)। प्रत्येक नाविक (नौकाका प्रधान संचालक=शासक पुरुष) को चाहिये, कि वह प्रतिदिनके कार्यकी सूचना नावध्यक्षको देवे, और जो कुछ नावका दैनिक भाड़ा आवे, वह भी नावध्यक्षको देवे ॥ ४१ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त।

उन्तीसवां अध्याय ।

४६ प्रकरण ।

गोऽध्यक्ष ।

गो शब्दसे यहांपर भैंस आदिका भी ग्रहण करलेना चाहिये; इनका निरीक्षण तथा पालन आदिका प्रबन्ध करने वाले प्रधान राजकर्मचारीका नाम 'गोऽध्यक्ष' है। इस प्रकरणमें इसहीके कार्योंका निरूपण किया जायगा।

गोऽध्यक्षो वेतनोपग्राहिकं करप्रतिकरं भग्नोत्सृष्टकं भागानुप्रविष्टकं व्रजपर्यग्रं नष्टं विनष्टं क्षीरघृतसंजातं चोपलभेत ॥ १ ॥

गोध्यक्षको चाहिये कि वह वेतनोपग्राहिक, करप्रतिकर, भग्नोत्सृष्टक, भागानुप्रविष्टक, व्रजपर्यग्र, नष्ट, विनष्ट, और क्षीरघृतसञ्जात, इन आठोंको प्राप्त करे, अर्थात् इनको अपने अधीन करे। अगले सूत्रोंमें इन आठोंका क्रमपूर्वक विधान किया जाता है:—॥ १ ॥

गोपालकपिण्डारकदोहकमन्थकलुब्धकाः शतं शतं धेनूनां हिरण्यभृताः पालयेयुः ॥ २ ॥ क्षीरघृतभृता हि वत्सानुपहन्युरिति वेतनोपग्राहिकम् ॥ ३ ॥

गोपालक (गौओं को पालनेवाले), पिण्डारक (भैसोंको पालनेवाले), दोहक (गाय आदिको दुहनेवाले), मन्थक (दही आदि मथन करनेवाले), और लुब्धक (जंगलोंमें हिंसक प्राणियोंसे गाय आदिकी रक्षा करने वाले), ये पांच २ आदमी मिलकर सौ सौ गाय आदिको पालन करें। अर्थात् प्रत्येक सौ गाय या भैसोंकी रक्षा आदिके लिए ये उपर्युक्त पांच २ आदमी नियुक्त किये जावें। इनको वेतन नकद या अन्न वस्त्रादिके रूपमें दिया जावे, गायोंके घी, दूध दही आदिमें इनका कोई हिस्सा न रहे ॥ २ ॥ क्योंकि दूध घी आदिमें इनका हिस्सा होनेपर, ये लोग बछड़े आदिको मारडालें, (तात्पर्य यह है, कि ऐसी अवस्थामें ये लोग दूध और घीके लोभसे बछड़ोंको न देकर स्वयं सब दूध लेलें, और इसप्रकार बछड़ोंको कृश करके नष्ट करदें)। गाय आदिकी रक्षाके इस उपायका नाम 'वेतनोपग्राहिक' है। (क्योंकि इसमें कर्मचारियोंको केवल शुष्क वेतन देकर ही गाय आदिकी रक्षा कराई जाती है) ॥ ३ ॥

जरद्धुधेनुगर्भिणीप्रष्ठौहीवत्सतरीणां समविभागं रूपशतमेकः पालयेत् ॥ ४ ॥ घृतस्याष्टौ वारकान्पणिकं पुच्छमङ्कचर्म च वार्षिकं दद्यादिति करप्रतिकरः ॥ ५ ॥

बूढ़ी, दूध देने वाली, ग्याभन, पठोरी, वत्सतरी (जिसने अभी २ दूध खोलना छोड़ा है), इन पांच प्रकारकी गायोंको बराबर २ मिलाकर पूरा सौ करदिया जावे; अर्थात् हर तरहकी बीस २ गायोंको इकट्ठा करदिया जावे, और उनका पालन किसी एक व्यक्तिसे कराया जावे। तात्पर्य यह है, कि इसप्रकार सौ सौ गायोंका, एक २ आदमीको एक प्रकारसे ठेका देदिया जावे ॥ ४ ॥ और इसके बदलेमें वह आदमी, गौओंके मालिकको प्रतिवर्ष आठ वारक घी, (घी के तोलनेमें चौरासी कुडुबका एक वारक होता है; देखो अधि. २, अध्या. १९, सूत्र ५७); प्रत्येक पशुके लिये एक एक पण ('पणिकं पुच्छम्' इसका तात्पर्य यही है, कि एक पूंछके पीछे एक पण वार्षिक; अर्थात् एक पशुका एक पण वार्षिक; इसप्रकार सौ गायोंके सौ पण वार्षिक होगये); और राजकीय मुद्रासे मुद्रित मरे हुए पशुका एक अदद चमड़ा देवे। अर्थात् आठ वारक घी, सौ पण और एक चमड़ा मालिकको देवे। शेष सब आमदनी उसकी अपनी समझी जावे। गौओंकी रक्षाके इस उपायको 'करप्रतिकर' कहते हैं ॥ ५ ॥

व्याधितान्यङ्गानन्यदोहीदुर्दोहापुत्रघ्नीनां च समविभागं रूपशतं पालयन्तस्तज्जातिकं भागं दद्युरिति भग्नोत्सृष्टकम् ॥ ६ ॥

बीमार, अङ्गविकल (कानी, बूची, लंगड़ी आदि), अनन्यदोही (अन्य किसीसे न दुही जाने वाली, अर्थात् जिनको एकही आदमी दुह सके), दुर्दोहा (जो पैर आदि बांधकर मुश्किलसे दुही जावें), और पुत्रघ्नी (जिनका बछड़ा आदि मर जावे, या जो तूपड़े); इन पांच प्रकारकी गायोंको भी पहिलेकी तरह बराबर २ मिलाकर पूरा सौ करदिया जावे, और उनको भी उसी प्रकार किसी व्यक्तिको पालनेके लिये देदिया जावे, उनको पालने वाले पुरुष पहिलेकी तरह ही, उन गायोंकी हैसियतके अनुसार पूर्वोक्त घी आदिका आधा हिस्सा अथवा तिहाई हिस्सा जितना भी उचित हो, उतना ही राजकीय अंश अपने अध्यक्ष को देवें। गाय आदिकी रक्षाके इस उपायका नाम 'भग्नोत्सृष्टक' है ॥ ६ ॥

परचक्राटवीभयादनुप्रविष्टानां पशूनां पालनधर्मेण दशभागं दद्युरिति भागानुप्रविष्टकम् ॥ ७ ॥

शत्रुओंके छल करनेके तथा आटविकों (वनचरों=जङ्गली पुरुषों) के अपहरण करनेके भयसे, जो गोपालक अपनी गायोंको सरकारी बाड़ेमें प्रवि

करदें उन प्रविष्ट हुई २ गायोंके पालकके अनुसार ही वे गोपालक दसवाँ हिस्सा राजाको देवें। तात्पर्य यह है, कि जब किसी बाहरी डरसे गोपालक अपनी गायोंको सरकारी चरागाहमें ही रक्खें, तो वे उन गायोंकी आमदनीका दसवां हिस्सा राजाको अवश्य देवें। गाय आदिकी रक्षाके इस उपायको 'भागानुप्रविष्टक' कहते हैं ॥ ७ ॥

वत्सा वत्सतरा दम्या वहिनो वृषा उक्षाणश्च पुङ्गवाः, युगवाहनशकटवहा वृषभाः सूना महिषाः पृष्ठस्कन्धवाहिनश्च महिषाः वत्सिका वत्सतरी प्रष्ठौही गर्भिणी धेनुश्चाप्रजाता वन्ध्याश्च गावो महिष्यश्च, मासद्विमासजातास्तासामुपजा वत्सा वत्सिकाश्च, मासद्विमासजातानङ्कयेत् ॥ ८ ॥ मासद्विमासपर्युषितमङ्कयेत् ॥ ९ ॥ अङ्कं चिह्नं वर्णं शृङ्गान्तरं च लक्षणमेवमुपजा निबन्धयेदिति व्रजपर्यग्रम् ॥ १० ॥

बछड़ा (छोटा बछड़ा=दूध चूंखने वाला), वत्सतर (बड़ा बछड़ा=जिसने दूध चूखना छोड़ दिया हो), दम्य (खेलटा=जो कृषि आदिमें काम सीखने योग्य हो), बोझ ढोने वाले सांड (बिजार), और हल आदि चलानेके काममें पके हुए, ये छः प्रकारके पुङ्गव (अर्थात् पुरुष रूप गाय=बैल) होते हैं। जुआ, हल तथा गाड़ी आदिमें चलाने वाले, सांड (जो भैंसा दाग लगाकर अच्छी नसल बनानेके लिये छोड़ दिये जाते हैं, बैलोंकी तरह उन भैंसाओंको भी सांड या भैंसा सांड कहा जाता है), केवल मांसके लिये उपयोगमें आने वाले (सूना महिषाः), और अपनी पींठ तथा कन्धेपर बोझ ढोने वाले, ये चार प्रकारके भैंसे होते हैं। बछड़ी (छोटी बछड़ी=दूध चूंखने वाली), वत्सतरी (बड़ी बछड़ी=जिसने दूध चूंखना अभी छोड़ा हो), पठोरी (जो ग्याभन होनेकी अभिलाषा करती हो), ग्याभन, दूध देने वाली, अधेड़ उमरकी (अप्रजाता=अभी तक जिन गायोंकी प्रजनन शक्ति नष्ट न हुई हो, ऐसी), और बांझ, ये सात प्रकारकी गायें और भैंसें होती हैं। उनके दो महीने या एक महीनेके लगभग पैदा हुए २ वत्स और वत्सिकाओं (बछड़ा, बछड़ी या कटड़ा, कटियाओं) को 'उपजा' (अर्थात् लवारा) कहते हैं। महीने या दो महीनेके लवारोंको ही, तपे हुए लोहे आदिके छल्लेसे दाग दिया जावे ॥८॥ तथा जो गाय आदि सरकारी चरागाहमें महीना दो महीना तक रहें (जिनका कथन पिछले सातवें सूत्रमें किया गया है) चाहे उनके मालिकोंका पता लगे या न लगे, इनको भी गोध्यक्ष दगवा देवे ॥ ९ ॥ स्वाभाविक स्वस्तिक आदिका चिन्ह

स्वदेशीयानां चोरहृत प्रत्यानीय पणिक रूप हरेत् । १६ । परदेशीयाना मोक्षयितार्धं हरेत् ॥ १७ ॥ बालवृद्धव्याधितानां गोपालकाः प्रतिकुर्युः ॥ १८ ॥

चोरों से अपहरण किये हुए अपने ही देशके पशुओंको, जो पुरुष उनसे वापस लाकर मालिक को देवे, वह प्रति पशुके पीछे एक पण, मालिकसे ले लेवे ॥ १६ ॥ इसी प्रकार परदेशके पशुओंको चोरोंसे छुड़ाकर लानेपर, उनको छुड़वाने वाला मालिक पशुओंका आधा हिस्सा ही ले सकता है; और आधा हिस्सा वह ले लेवे जो पशुओंको चोरोंसे छुड़ाकर लाया है ॥ १७ ॥ गोपालोंको चाहिये, कि वे बालपशु (छोटे २ बछड़े आदि पशु), बीमार, और बूढ़े पशुओंको (जिनमें कि थोड़ी भी विपद् सहनेकी शक्ति नहीं रहती, ऐसे बाल आदि जानवरोंकी) विपत्तिका बराबर प्रतीकार करते रहें । अर्थात् उनको छोटेसे छोटे भी हर एक कष्टसे बचाते रहें ॥ १८ ॥

लुब्धकश्वगणिभिरपास्तस्तेनव्यालपरबाधभयमृतुविभक्तमरण्यं चारयेयुः ॥ १९ ॥ सर्पव्यालत्रासनार्थं गोचरानुपातज्ञानार्थं च त्रस्नूनां घण्टातूर्यं च बध्नीयुः ॥ २० ॥

शिकारियों, और कुत्तोंको रखने वाले बहेलियों के द्वारा, चोर, हिंसक प्राणी तथा शत्रुकी ओरसे होनेवाली बाधाओंके भयको सर्वथा दूर करके, ऋतु के अनुसार सुरक्षित जंगलोंमें ही, सब गोपाल अपनी २ गाओंको चरावें ॥ १९ ॥ सांप और हिंस्र प्राणियोंको डरानेके लिये, तथा गायोंके चरनेकी जगहको पहिचाननेके लिये, शब्द सुनकर ही घबड़ा जाने वाले पशुओंके गले में, एक लोहेका घण्टा या टल्ली सी बांध देवें । शब्दसे ही घबड़ाने वाले पशुओंके गले में यह इसीलिये बांधा जाता है, जिससे कि उनको शब्द सुननेकी आदत पड़जाय, और फिर वे घबड़ाकर इधर उधर न भागें) ॥२०॥

समव्यूढतीर्थमकर्दमग्राहमुदकमवतारयेयुः पालयेयुश्च ॥२१॥ स्तेनव्यालसर्पग्राहगृहीतं व्याधिजरावसन्नं चावेदयेयुरन्यथा रूपमूल्यं भजेरन् ॥ २२ ॥

जब पशुओंको कहीं पानी पीने और नहाने आदिके लियेपानीमें उतारना होवे, तो ऐसे ही स्थानोंपर उतारें, जहां बराबर तथा चौड़े घाट बने हों, दलदल न हो, तथा नाके आदि जलजन्तुओंका भय न हो । जब तक पशु पानी पीवें, या नहावें तब तक वहांपर गोपाल उन पशुओंकी रक्षा

सावधानतापूर्वक जलजन्तु आदिसे रक्षा करें ॥ २१ ॥ गोपालोंको चाहिये, कि वे चोर, व्याघ्र, सांप और नाकू आदिसे पकड़े हुए पशुको, तथा बीमारी और बुढ़ापेके कारण मरेहुए पशुकी तत्काल ही गोध्यक्षको सूचना दे देवें । अन्यथा नष्ट हुए २ प्रत्येक पशुकी पूरी कीमत देवें ॥ २२ ॥

कारणमृतस्याङ्कचर्म गोमहिषस्य कर्णलक्षणमजाविकानां पुच्छमङ्कचर्म चाश्वखरोष्ट्राणां बालचर्मबस्तिपित्तस्नायुदन्तखुरशृङ्गास्थीनि चाहरेयुः ॥ २३ ॥

वस्तुतः पशु मरगया है, इस बातका विश्वास दिलाने के लिये गोपाल, गोध्यक्षके पास लाकर गाय और भैंसका पहिले दागा हुआ चमड़ा दिखावें; इसी प्रकार बकरी और भेड़ों के चिन्हित कान लाकर दिखावें, घोड़ा गधा और ऊंटोंकी पूंछ तथा दागा हुआ चमड़ा दिखावें । मरेहुए पशुके बाल चमड़ा, वस्ति (मूत्राशय), पित्ता, स्नायु (आंत), दांत खुर, सींग और हड्डी, इन सब चीजोंका संग्रह करलें । (इनका संग्रह कुप्यागारके लिये होता है, वहांपर संगृहीत हुई २ ये चीजें यथावसर फिर काम आती रहती हैं ॥ २३ ॥

मांसमार्द्रं शुष्कं वा विक्रीणीयुः ॥ २४ ॥ उदश्विच्छ्वराहेभ्यो दद्युः ॥ २५ ॥ कूर्चिकां सेनाभक्तार्थमाहरेयुः ॥ २६ ॥ किलाटो घाणपिण्याकक्लेदार्थः ॥ २७ ॥ पशुविक्रेता पादिकं रूपं दद्यात् ॥ २८ ॥

गीले अथवा सूखे कच्चे मांसको बेचदेवें ॥ २४ ॥ मठे (छाछ) को कुत्ते और सूअरोंके लिये देदिया जावे ॥ २५ ॥ कांजी (दूध या दहीको विकृत करके बनाई हुई एक विशेष खाद्य वस्तु) को सेनामें खानेके लिये लेआवें ॥ २६ ॥ किलाट अर्थात् फटेहुए दूधको, गाय भैंसोंकी सानी (गुसावा) को गीला करनेके काममें लायाजावे ॥ २७ ॥ पशुओंको बेचने वाला व्यापारी प्रत्येक पशुके पीछे ¼ पण अध्यक्षको देवे ॥ २८ ॥

वर्षाशरद्धेमन्तानुभयतः कालं दुह्युः ॥२९॥ शिशिरवसन्तग्रीष्मानेककालम् ॥ ३० ॥ द्वितीयकालदोग्धुरङ्गुष्ठच्छेदो दण्डः ॥ ३१ ॥

वर्षा (सावन, भादों), शरत् (क्वार, कातिक), और हेमन्त (अगहन, पौष) ऋतुमें गाय और भैंसों को, सायं प्रातः दोनों समय दुहाजावे ॥ २९ ॥ तथा शिशिर (माघ, फाल्गुन), वसन्त (चैत, वैशाख),

प्रबन्धमें कहा गया है, वह इसीका निरूपण समझना चाहिये ; अर्थात् उपर्युक्त परिमाणोंके अनुसार दूध घीको उत्पन्न करके अपने अधीन करना ; इसीका नाम "क्षीरघृतसञ्जात" समझना चाहिये । सन्दर्भमें भी यही भाव प्रतीत होता है) ॥ ३८ ॥

यूथवृषं वृषेणावपातयतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३९ ॥ घातयत उत्तमः ॥ ४० ॥ वर्णावरोधेन दशतीरक्षा ॥ ४१ ॥

गाय आदि पशुओंके झुण्डमें रहनेवाले सांडको जो पुरुष किसी दूसरे सांडके साथ लड़ावे, तो उस पुरुषको प्रथमसाहस दण्ड दिया जावे ॥ ३९ ॥ जो उस सांडको मारे, उसे उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये ॥ ४० ॥ वर्णके अनुसार दस २ गाय आदिकी गणनासे भी सौ गायोंके झुण्डकी रक्षा की जावे । तात्पर्य यह है, कि एक २ वर्णकी दस २ गाय इकट्ठी कीजावें, इसी प्रकारके दस वर्गोंको मिलाकर सौ संख्या पूरी करके, उनको पहिलेकी तरह किन्हीं व्यक्तियोंको, रक्षाके लिये देदिया जावे ॥ ४१ ॥

उपनिवेशदिग्विभागं गोप्रचाराद्बलान्वयतो वा गवां रक्षासामर्थ्याच्च ॥४२॥ अजादीनां षाण्मासिकीमूर्णां ग्राहयेत् ॥४३॥ तेनाश्वखरोष्ट्रवराहव्रजा व्याख्याताः ॥ ४४ ॥

गाय आदिके जंगलोंमें रहने और चरनेके लिये नियमित स्थानोंकी व्यवस्था, उनके चरनेके सुभीते, उनके गोलकी तादाद और उनकी रक्षाके सौकर्यको देखकरही होनी चाहिये ॥ ४२ ॥ बकरी और भेड़ आदिकी ऊन छः महीनेके बाद उतारली जावे ॥ ४३ ॥ गाय भैंसोंके अनुसारही घोड़े, गधे, ऊँट और सूअरोंके लिये भी उचित स्थानोंकी व्यवस्था कीजावे । तथा इनकी रक्षाके लिये भी यथासम्भव उपर्युक्त उपायोंकाही अवलम्बन किया जावे ॥४४॥

बलीवर्दानां नस्याश्वभद्रगतिवाहिनां यवसस्यार्धभारस्तृणस्य द्विगुणं तुला घाणपिण्याकस्य दशाढकं कणकुण्डकस्य पञ्चपलिकं मुखलवणं तैलकुडुबो नस्यं प्रस्थः पानं मांसतुला दध्नश्चाढकं यवद्रोणं माषाणां वा पुलाकः क्षीरद्रोणमर्धाढकं वा सुरायाः स्नेहप्रस्थः क्षारदशफलं शृङ्गिबेरपलं च प्रतिपानम् ॥ ४५ ॥

अब इस बातको निरूपण किया जाता है, कि किस तरहके बैल आदिको कितना २ खाना देना चाहिये । बैलोंमें से जो नथे हुए हों (अर्थात जिनकी नाक बींधकर उसमें नाथ डालदी गई हो) और जो खूब घोड़ोंके

समान रथ आदिमें चलनेवाले हों, उनको आधा भार (दस तुला) हरेका अर्थात् हरीघास आदिका), साधारण घास या भुस आदि इससे दुगना अर्थात् (बीस तुला), सानी (दाना, चोकर या अन्नमें युक्त भुस आदिक दस आढक, पांच पल नमक, तेलका एक कुडुब नाकमें औषधिरूपसे, तथा पीनेके लिये तेलका एक प्रस्थ, इतना सामान आहारके लिये दिया जाना चाहिये। मांसकी एक तुला (अर्थात् १०० पल), एक आढक दहीका, एक द्रोण जौओंका अथवा इसकी जगह इतनेही उड़द, इन सब चीजोंको मिलाकर इसका सांदा (आधा पकाकर ही बीचमेंही छोड़ा हुआ) बनाकर दिया जावे। दूध एक द्रोण, अथवा दूधके अभावमें आधा आढक सुरा, तैल अथवा घीका एक प्रस्थ, गुड़ दश पल, और सौंठ एक पल, इन चारों चीजोंको मिलाकर अग्निदीपन करनेके लिये बैलोंको पिलाया जावे ॥ ४५ ॥

पादोनमश्वतरगोखराणां द्विगुणं महिषोष्ट्राणां कर्मकरबली-वर्दानां पायनार्थानां च ॥ ४६ ॥ धेनूनां कर्मकालतः फलतश्च विधादानम् ॥ ४७ ॥ सर्वेषां तृणोदकप्राकाम्यमिति गोमण्डलं व्याख्यातम् ॥ ४८ ॥

इन सब चीजों में से चौथाई हिस्सा कम करके जितनी खुराक बने, वह खच्चर तथा बड़े गधों की समझनी चाहिये। अर्थात् खच्चरों और बड़े गधों को उतनी खुराक दी जावे। और उनसे (४५ वें सूत्र में बताये बैलों से) दुगनी खुराक भैंसों की, ऊँटों की, और खेतों में काम करने वाले बैलों की समझनी चाहिये। तथा दूध देने वाली गायों को भी खाने तथा पीने की दोनों तरह की खुराक दुगनी ही देनी चाहिये ॥ ४६ ॥ इसके अतिरिक्त काम करने वाले बैलों तथा दूध देने वाली गायों की खुराक के सम्बन्ध में बैलों के कार्य करने के समय और गायों के दूध आदि की अवस्था को जानकर उसके अनु-सार ही इनकी खुराक दुगनी अथवा उससे भी अधिक समझनी चाहिये ॥४७॥ सब ही पशुओं को घास तथा जल आदि इच्छानुसार (जिसमें उनकी सर्वथा तृप्ति होसके इतना) देना चाहिये। यहां तक गाय आदि के सम्बन्ध में निरूपण कर दिया गया ॥ ४८ ॥

पञ्चर्षभं खराश्वानामजावीनां दशर्षभम् ।
शत्यं गोमहिषोष्ट्राणां यूथं कुर्याच्चतुर्वृषम् ॥ ४९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे गोध्यक्षः एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

आदितः पञ्चाशः ॥ ५० ॥

गधे और घोड़ों के सौके झुंड में पांच सांड छोड़ने चाहियें। भेड़ और बकरियों के सौके रेवड़ में दस सांड बकरे या मेंढे छोड़े जावें। गाय भैंस तथा ऊंटों के सौ के झुण्ड में चार २ सांड छोड़े जावें। अर्थात् गायों के सौके गोल में चार सांड बैल, इसी तरह भैंसों के सौ के झुण्ड में चार सांड भैंसा, और ऊंटों में भी चार ही सांड ऊंट छोड़ने चाहियें ॥ ४९ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें उन्नीसवां अध्याय समाप्त।

तीसवां अध्याय

४७ प्रकरण

अश्वाध्यक्ष

{ राजकीय अश्व घोड़ोंके निरीक्षण करनेवाले अधिकारीका नाम 'अश्वाध्यक्ष' है। इसहीके कार्योंका इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा।

अश्वाध्यक्षः पण्यागारिकं क्रयोपागतमाहवलब्धमाजातं साहाय्यकागतकं पणस्थितं यावत्कालिकं वाश्वपर्यग्रं कुलवयोवर्णचिह्नवर्गागमैर्लेखयेत् ॥ १ ॥

अश्वाध्यक्षको चाहिये, कि वह पण्यागारिक (भेंटमें आये हुए जो विक्रयार्थ पण्यागार में रक्खे जावें), खरीदे हुए, युद्धमें प्राप्त किये हुए, अपने यहांपरही पैदा हुए २, किसी दूसरेकी सहायता करनेपर उसके बदलेमें आये हुए, आधिरूपसे प्राप्त हुए २ (अर्थात् किसीने नकद रुपया लेकर गिरवी रूपमें रक्खे हुए=पणस्थितम्), और थोड़े समयके लिये किसीके द्वारा सहायता पहुंचानेके लिये, आये हुए, इन सात प्रकारके प्राप्त हुए घोड़ोंके समूहको, उनके कुल (अर्थात् वह घोड़ा फारस काबुल अरब आदिमेंसे किस वंशमें उत्पन्न हुआ २ है), उमर, वर्ण, चिन्ह, कर्म, वर्ग (गोल) और उनके प्राप्तिस्थान के साथ २ अपनी पुस्तकमें लिख लेवे ॥ १ ॥

अप्रशस्तन्यङ्गव्याधितांश्चावेदयेत् ॥ २ ॥ कोशकोष्ठागाराभ्यां च गृहीत्वा मासलाभमश्ववाहश्चिन्तयेत् ॥ ३ ॥

जो घोड़े अप्रशस्त (अच्छे वंशमें पैदा न होनेके कारण स्वभावसे ही जिनकी चाल आदि ठीक नहीं है), अङ्गविकल और व्याधियुक्त घोड़ों को यथासमय बदलने या चिकित्सा कराने के लिये कहदेवे। अर्थात् उनका उचित रीतिसे कोई प्रबन्ध करवावे ॥ २ ॥ कोश और कोष्ठागारसे एक महीने

का खर्च (एक महीने का जितना नकद रुपया खर्च होता हो वह कोशसे और जितना घोड़के खानेके लिये सामान पर्याप्त हो वह कोष्ठागारसे) लेकर, साईस सावधानतापूर्वक घोड़े की परिचर्या में लग जावे ॥ ३ ॥

अश्वविभवेनायतामश्वायामद्विगुणविस्तारां चतुर्द्वारोपावर्तनमध्यां सप्रग्रीवां प्रद्वारासनफलकयुक्तां वानरमयूरपृषतनकुलचकोरशुकशारिकाभिराकीर्णां शालां निवेशयेत् ॥ ४ ॥

घोड़ों की संख्या के अनुसार लम्बी (तात्पर्य यह है कि जितने भी घोड़े हों, वे जितने स्थानमें बंध सकें उतनी लम्बी), और घोड़ों की लम्बाई से दुगनी चौड़ी, और चार द्वारोंसे युक्त, घोड़ोंके लेटने या घूमनेके लिये भी पर्याप्त स्थान वाली, बरांडेसे युक्त, दरवाजोंके दोनों ओर बैठने के लिये बनाई हुई चौकियोंसे युक्त, बन्दर, मोर, हिरण, नेवला, चकोर, तोता और मैना इन सात जानवरोंसे घिरी हुई (इनका वहां विद्यमान होना इसी लिये आवश्यक है, कि इनसे विष प्रयोगोंका तत्क्षण पता लगजाता है, और फिर उसका प्रतीकार किया जासकता है) घुड़साल बनवाई जावे ॥ ४ ॥

अश्वायामचतुरश्रश्लक्ष्णफलकास्तारं सखादनकोष्ठकं समूत्रपुरीषोत्सर्गमेकैकशः प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा स्थानं निवेशयेत्॥५॥

घोड़े की लम्बाई चौड़ाईके अनुसार चौकोर चिकना फट्टा जिसमें नीचे बिछा हुआ हो, घास आदि खानेके लिये भी लकड़ी आदि की नांद बनी हुई हों, पेशाब और लीदके करनेके लिये भी जिसमें सुखकर प्रबन्ध हो, जिनके द्वार पूरब और उत्तर की ओर हों, ऐसे स्थानकी, प्रत्येक घोड़ेके लिये पृथक् २ व्यवस्था करे। अर्थात् एक २ घोड़े को बांधनेके लिये उसके हरएक सुभीते को देखकर इतना २ स्थान नियत किया जावे ॥ ५ ॥

शालावशेन वा दिग्विभागं कल्पयेत् ॥ ६ ॥ वडवावृषकिशोराणामेकान्तेषु ॥ ७ ॥

अथवा घुड़सालके अनुसार ही उत्तर पूरब आदि दिशाओंके विभागकी कल्पना की जावे। तात्पर्य यह है कि घुड़साल, राजमहलके उत्तर पूरबकी ओर होनी चाहियें, यह प्रथम बताया गया है, घोड़ों की अधिकता के कारण यदि उधर पर्याप्त स्थान न हो, तो जहां भी बड़ी घुड़साल बनाई जावे; उस ही के अनुसार, द्वार आदिके लिये उचित दिशाओं की कल्पना करली जावे ॥ ७ ॥ प्रसव करने वाली घोड़ियों सांड घोड़ों (वीर्य सेचन करने वाले घोड़ों) और

किशोर (छः महीनेकी आयुसे लगाकर तीन वर्ष तककी आयु वाले) बछेड़ोंको एक दूसरेसे पृथक् २ एकान्त स्थानोंमें रक्खा जावे ॥ ७ ॥

वडवायाः प्रजातायास्त्रिरात्रं घृतप्रस्थः पानम् ॥ ८ ॥ अत ऊर्ध्वं सक्तुप्रस्थः स्नेहभैषज्यप्रतिपानं दशरात्रम् ॥ ९ ॥ ततः पुलाको यवसमार्तवश्चाहारः ॥ १० ॥

जब कोई घोड़ी प्रसव करे, तब उसे तीन दिनतक एक प्रस्थ घी पीने को दिया जावे ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर दस दिनतक, प्रतिदिन एक प्रस्थ सत्तू और कुछ चिकनाई मिली हुई औषधि (काढ़ा आदि), पीनेके लिये दिये जावें ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर आध पकेहुए जौ आदिका मांड़, घास तथा ऋतुके अनुसार अन्य आवश्यक हरा आदि आहार खाने को दिया जावे ॥ १० ॥

दशरात्रादूर्ध्वं किशोरस्य घृतचतुर्भागः सक्तुकुडवः ॥ ११ ॥ क्षीरप्रस्थश्चाहार आषण्मासादिति ॥ १२ ॥ ततः परं मासोत्तरमर्धवृद्धिर्यवप्रस्थ आत्रिवर्षात् ॥ १३ ॥ द्रोण आचतुर्वर्षादिति ॥ १४ ॥ अत ऊर्ध्वं चतुर्वर्षः पञ्चवर्षो वा कर्मण्यः पूर्णप्रमाणः ॥ १५ ॥

दस दिनके बाद उस बच्चे को (बछेड़ी या बछेड़े को सत्तू) का एक कुडुब जिसमें चौथाई घी मिला हुआ हो दिया जावे ॥ ११ ॥ और फिर छः महीने तक एक प्रस्थ दूध, आहारके लिये दिया जावे ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर जौका एक प्रस्थ, आवश्यकतानुसार उसमें उत्तरोत्तर प्रतिमास आधा प्रस्थ बढ़ाकर तीन वर्षकी आयु तक दिया जावे ॥ १३ ॥ इसके बाद चार वर्षकी आयु तक प्रतिदिन एक द्रोण आहार दिया जावे ॥ १४ ॥ इसके बाद चार वर्ष या पांच वर्षका घोड़ा पूरे कदवाला, तथा हरतरहका कार्य करने के योग्य होजाता है ॥ १५ ॥

द्वात्रिंशदङ्गुलं मुखमुत्तमाश्वस्य पञ्चमुखान्यायामो विंशत्यङ्गुला जङ्घा चतुर्जङ्घ उत्सेधः ॥ १६ ॥ त्र्यङ्गुलावरं मध्यमावरयोः ॥ १७ ॥

उत्तम घोड़े का मुख बत्तीस अंगुलका होना चाहिये, और पांच मुख की बराबर अर्थात् एकसौ साठ (१६०) अंगुलकी उसकी लम्बाई होनी चाहिये बीस अंगुल की जांघ, और अस्सी अंगुल उनकी ऊंचाई होनी चाहिये ॥ १६

उत्तम घोड़े का जो परिमाण बताया गया है उस से तीन अंगुल कम परिमाण मध्यम घोड़े का और उस से भी तीन अंगुल कम अधम घोड़े का परिमाण समझना चाहिये ॥ १७ ॥

शताङ्गुलः परिणाहः ॥ १८ ॥ पञ्चभागावरं मध्यमावरयोः ॥ १९ ॥

उत्तम घोड़े की मोटाई सौ अंगुल होती है; ॥ १८ ॥ इसका पांचवां हिस्सा कम (अर्थात् सौ का पांचवा हिस्सा बीस अंगुल, सौ में से कम करके शेष अस्सी अंगुल) मोटाई का परिमाण मध्यम घोड़े का समझना चाहिये, और इसका पांचवां हिस्सा कम करके (अर्थात् अस्सी का पांचवां हिस्सा सोलह अंगुल, अस्सी में से सोलह कम करके शेष चौंसठ अंगुल) मोटाई अधम घोड़े की समझनी चाहिये ॥ १९ ॥

उत्तमाश्वस्य द्विद्रोणं शालिव्रीहियवप्रियङ्गूणामर्धशुष्कमर्धसिद्धं वा मुद्गमाषाणां वा पुलाकः ॥ २० ॥

उत्तम घोड़े को, शाली (साठी चावल), व्रीहि (अन्य साधारण चावल), प्रियंगू (कंगनी या कांगनी) इनमें से कोई सी एक चीज़ दो द्रोण परिमाण में, आधी सूखी या आधी पकी हुई भोजन के लिये दीजावे; अथवा इतना ही मूंग या उड़द का सांदा बनाकर दिया जावे ॥ २० ॥

स्नेहप्रस्थश्च, पञ्चपलं लवणस्य, मांसं पञ्चाशत्पलिकं, रसस्याढकं द्विगुणं वा दध्नः पिण्डक्लेदनार्थं; क्षारपञ्चपलिकः सुरायाः प्रस्थः पयसो वा द्विगुणः प्रतिपानम् ॥ २१ ॥

चिकनाई (तैल अथवा घी) का एक प्रस्थ देना चाहिये; नमक के पांच पल देने चाहियें; पचास पल मांस देना चाहिये; खाने की चीज़ (सांदा आदि) को गीला करने के लिये मांस आदिका रस (अर्थात् शोरवा आदि; मूल पुस्तक में केवल 'रसस्य' इतना ही पाठ है, परन्तु प्रकरण से यही अर्थ प्रतीत होता है) एक आढक, अथवा उससे दूना अर्थात् दो आढक दही देना चाहिये। पांच पल गुड़के साथ २ सुरा (शराब) का एक प्रस्थ, अथवा इस से दूना अर्थात् दो प्रस्थ दूध प्रतिदिन मध्यान्होत्तर पीने के लिये दिया जावे ॥ २१ ॥

दीर्घपथभारक्लान्तानां च खादनार्थं स्नेहप्रस्थोऽनुवासनं कुडुबो नस्यकर्मणः, यवसस्यार्धभारस्तृणस्य द्विगुणः षडरत्निः परिक्षेपः पुञ्जीलग्राहो वा ॥ २२ ॥

लम्बा सफ़र करने और अधिक भार उठाने के कारण थकेहुए घोड़ोंके खानेके लिये, एक प्रस्थ चिकनाई (घी अथवा तेल) के साथ २ उतना ही अनुवासन (थकावटको दूर करने के लिये अनेक औषधियोंका मिश्रण; इसके दो भेद हैं, १ अनुवासन, २ निरूहः; जो कसैले रस या क्षार आदिके साथ दिया जाय, वह निरूहः और जो किसी चिकनाईके साथ दिया जावे, वह अनुवासन कहाता है); दिया जावे। तथा चिकनाई का ही एक कुडुब (प्रस्थ का चौथाई हिस्सा), नासिका में डाला जावे : ढेरे का आधा भ र (अर्थात् दस तुला) तृण अर्थात् भुस आदि उस से दुगना (अर्थात् बीस तुला), अथवा एक जेट भर के (कौली भर फैलाकर दोनों बाहोंको फैलाकर जितना उसमें आजावे उतना) हरी घास या जई आदिका गट्ठा दिया जावे ॥ २२ ॥

पादावमेतन्मध्यमावरयोः ॥२३॥ उत्तमसमो रथ्यो वृषश्च मध्यमः ॥ २४ ॥ मध्यमसमश्चावरः ॥ २५ ॥

यह ऊपर बताया हुआ आहार उत्तम घोड़े का समझना चाहिये; इस आहार में से चौथाई हिस्सा कम करके मध्यम घोड़े को; और उसमेंसे भी चौथाई हिस्सा कम करके अधम घोड़े को आहार दिया जावे ॥ २३ ॥ जो मध्यम घोड़ा रथ में जोता जावे, और जो सांड छोड़ा हुआ होवे, उनको उत्तम घोड़े के समान ही आहार दिया जावे ॥ २४ ॥ तथा जो अधम घोड़े रथ में जोते जावें, या सांड छोड़े जावें, उन्हें मध्यम घोड़े के समान आहार देना चाहिये; (मध्यम घोड़े का वह आहार जो तेईसवें सूत्र में बताया गया है) ॥ २५ ॥

पादहीनं वडवानां पारशमानां च ॥ २६ ॥ अतो ऽर्धं किशोराणां च ॥ २७ ॥ इति विधायोगः ॥ २८ ॥

घोड़ी तथा खच्चर और खच्चरियोंकोभी उपर्युक्त आहारोंमें से चौथाई हिस्सा कम करके आहार दिया जावे। (तात्पर्य यह है, कि उत्तम मध्यम आदि क्रम से घोड़ों के जो आहार २४, २५ सूत्र में बताये गये हैं, उसी क्रम के अनुसार घोड़ी और खच्चरोंकोभी आहार दिये जावें) ॥ २६ ॥ इससे आधा (अर्थात् जो आहार घोड़ियोंको बताया गया है, उससे आधा) आहार बछेड़ोंको दिया जावे ॥ २७ ॥ इस प्रकार यहां तक घोड़ों के लिये भोजन आदिके प्रकारका निरूपण किया गया ॥ २८ ॥

विधापाचकसूत्रग्राहकचिकित्सकाः प्रतिस्वादभाजः ॥२९॥

घोड़ोंके आहारको पकाने वाले, घोड़ोंके परिचारक (साईस आदि), और घोड़ोंकी चिकित्सा करने वाले व्यक्तियोंको, घोड़ोंके आहारमेंसे कुछ हिस्सा

दिया जावे। (तात्पर्य यह है कि जो मासिक व्यय कामागारस्थ घोड़ोंके लिये लिया जाता है, उसमेंसे कुछ हिस्सा इन उपर्युक्त पुरुषोंको भी दिया जावे ॥२९॥

युद्धव्याधिजराकर्मक्षीणाः पिण्डगोचरिकाः स्युः ॥ ३० ॥ असमरप्रयोग्याः पौरजानपदानामर्थेन वृषा वडवास्वायोज्याः ॥ ३१ ॥

जो घोड़े युद्धके कारण क्षीणशक्ति होचुके हैं, तथा जो बीमारी और बुढ़ापेके कारण क्षीणसामर्थ्य होगये हैं, और भार आदि ढोनेका काम करनेमें भी असमर्थ हैं, उन घोड़ोंको केवल उदरपूर्तिके लिये ही आहार दिया जावे, अर्थात् उन्हें केवल इतना ही आहार दिया जावे, जिससे कि वे भूखे न मरसकें ॥३०॥ जो घोड़े शक्ति-शाली होते हुए भी युद्धमें प्रयोग करनेके योग्य न हों, उन घोड़ोंको नगर तथा जनपद निवासी पुरुषोंकी घोड़ियोंमें सन्ततिके लिये सांड बनाकर रक्खा जावे ॥ ३१ ॥

प्रयोग्यानामुत्तमाः काम्बोजसैन्धवारट्टजवनायुजाः॥३२॥ मध्यमा बाह्लीकपापेयकसौवीरकतैतलाः ॥ ३३ ॥ शेषाः प्रत्यवराः ॥ ३४ ॥

विशेष चाल आदिको सीखे हुए संग्रामयोग्य घोड़ोंमें काम्बोजक (काबुल देशमें उत्पन्न हुए २), सैन्धव (सिन्ध देशमें उत्पन्न हुए २), आरट्टज+ (आरट्ट देशमें उत्पन्न हुए २) तथा वनायुज * (अरब देशमें उत्पन्न हुए हुए) ये चार प्रकारके घोड़े सबसे उत्तम होते हैं ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार बाह्लीक×

+ 'आरट्ट' यह पञ्जाबके एक अवान्तर प्रदेशका नाम है, ऐसा टी० आर० कृष्णाचार्यने महाभारतमें आये हुए मुख्य नामोंकी सूचीमें लिखा है। हमारा विचार है, 'आरट्ट' देश वर्त्तमान काठियावाड़ होना चाहिये।

* 'वनायु' यह अरबका प्राचीन नाम है; महाभारतमें इसका कई स्थानोंपर उल्लेख है।

× बाह्लीक किस देशका नाम है ? इस सम्बन्धमें दो विचार हैं:—

(१) टी० आर० कृष्णाचार्यने महाभारतकी सूचीमें बाह्लीक शब्दपर निम्न निर्दिष्ट पंक्ति लिखी है:—'विपाशाशतद्र्वोर्नद्योर्मध्ये केकयदेशस्य पूर्वभागे विद्यमानो देशः, अर्थात् ब्यास और सतलज नदीके मध्यमें केकय देशसे पूर्वकी ओर जो देश है, उसीका नाम बाह्लीक है। (वर्त्तमान गुरदासपुर और होशियारपुरके उत्तरीय भाग तथा कांगड़ेके जिलेको केकय देस कहते हैं)।

वाल्हीक नामक देशमें उत्पन्न हुए २), पापेयक † (पापेयक नामक देशमें त्पन्न हुए २), सौवीरक (सुवीर अर्थात् राजपूतानामें उत्पन्न हुए २), और तल (तिलल देशमें उत्पन्न हुए २), ये चार प्रकारके घोड़े मध्यम समझे ते हैं ॥ ३३ ॥ इनसे अतिरिक्त सब जगहोंके घोड़े अधम समझे जाते ॥ ३४ ॥

तेषां तीक्ष्णभद्रमन्दवशेन सांनाह्यमौपवाह्यकं वा कर्म योजयेत् ॥ ३५ ॥ चतुरश्रं कर्माश्वस्य सांनाह्यम् ॥ ३६ ॥

अब घोड़ोंके कार्य और उनकी गति आदिका निरूपण किया जायगाः— न घोड़ोंकी तीक्ष्ण (तीव्र गति, थोड़ीसी चोटको भी न सहन करना), भद्र मध्यम गति, जितनी चोट लगे उसके ही अनुसार चलना) और मन्द निकृष्ट गति, बहुत पीटे जानेपर भी धीरे २ ही चलना), गतिके अनुसार ी; उनको सान्नाह्य (युद्ध सम्बन्धी कार्यों) और औपवाह्य (साधारण सवारी

---

(२) परन्तु महाभारतमें लिखा हैः—

पञ्चानां सिन्धुषष्ठानां नदीनां येऽन्तराश्रिताः ।
तान्धर्मबाह्यानशुचीन् बाल्हीकानपि वर्जयेत् ॥

क. प., अ. ३७, श्लो. १७ ॥

सतलज, व्यास, रावी, झेलम, चुनाव ये पांच और छठी सिन्धु; इन छः नदियोंके बीचमें जो देश हैं, उन्हींका नाम बाल्हीक है । ये देश धर्मबाह्य और अशुचि होनेके कारण वर्ज्य हैं ।

इसी श्लोकको कर्ण पर्वके ही नामसे, महाभाष्य कैय्यटके व्याख्याकर नागोजी भट्टने 'एङ् प्राचां देशे' पाणि., अ. १, पा. १, सू. ७४, की व्याख्या करते हुए इसप्रकार लिखा हैः—

पञ्चानां सिन्धुषष्ठानामन्तरं ये समाश्रिताः ।
वाहीका नाम ते देशा न तत्र दिवसं वसेत् ॥

नागोजी भट्टने इस श्लोककी व्याख्या भी वही की है, जो हम पहिले श्लोकके नीचे लिख चुके हैं । टी. आर. कृष्णाचार्यके लेखानुसार व वर्त्तमान जलन्धरका जिला ही बाल्हीक होसकता है; हमारे विचारमें महाभारतको ही अधिक प्रामाणिक समझना चाहिये ।

† 'पापेय' नामक देश कौनसा है, इसका ठीक २ पता नहीं लगता हमारे विचारमें यह देश वर्त्तमान पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त होना चाहिये, क्यों कि इधरके घोड़े कुछ अच्छे भी समझे जाते हैं

(खेल कूदके) कार्योंमें प्रयुक्त किया जावे ॥ ३५ ॥ विशेषज्ञ पुरुषोंके द्वारा सिखलाये जानेपर, युद्धसम्बन्धी प्रत्येक कार्यको अच्छी तरह करलेना घोड़ेका सान्नाह्य कर्म कहाता है। तात्पर्य यह है, कि जो घोड़े युद्धके लिये उपयोगमें लाये जाते हैं, उनको उन सब चालोंकी शिक्षा दीजावे, जिनकी कि युद्धमें आवश्यकता होती है। इन्हींका नाम सान्नाह्य कर्म है ॥ ३६ ॥

वल्गनो नीचैर्गतो लङ्घनो धोरणो नारोष्ट्रश्चौपवाह्याः ॥३७॥ तत्रोपवेणुको वर्धमानको यमक आलीढप्लुतः (वृथाद ? पृथ ? पूर्व) गस्त्रिकचाली च वल्गनः ॥ ३८ ॥

औपवाह्य अर्थात् सवारी या खेलमें काम आने वाले घोड़ोंकी चालके पांच भेद हैं:—वल्गन, नीचैर्गत, लङ्घन, धोरण और नारोष्ट्र ॥३७॥ इन सबका क्रमपूर्वक निरूपण किया जाता है: - गोलमण्डलाकार घूमनेको वल्गन कहते है, यह छः प्रकारका है:—औपवेणुक (एक ही हाथके गोल घेरेमें घूमना), वर्धमानक (उतने ही घेरेमें कई वार घूमजाना), यमक (बराबर २ के दो घेरोंमें एक साथ ही घूमजाना), आलीढप्लुत (एक पैरको सकोड़कर और दूसरेको फैलाकर छलांग मारनेके साथ ही साथ घूमजाना), पूर्वग (शरीरके अगले भागके आधारपर घूमजाना), और त्रिकचाली (त्रिक अर्थात् पृष्ठवंश और पिछली दो टांगें; इनके आधारपर घूमजाना); इस तरह यह छः प्रकार-का वल्गन होता है ॥ ३८ ॥

स एव शिरःकर्णविशुद्धो नीचैर्गतः षोडशमार्गो वा ॥२९॥ प्रकीर्णकः प्रकीर्णोत्तरो निषण्णः पार्श्वानुवृत्त ऊर्मिमार्गः शरभक्रीडितः शरभप्लुतः त्रितालो बाह्यानुवृत्तः पञ्चपाणिः सिंहायतः स्वाधूतः क्लिष्टः श्लिगितो बृंहितः पुष्पाभिकीर्णश्चेति नीचैर्गत-मार्गाः ॥ ४० ॥

जब कि सिर और कान में किसी प्रकारका कम्पन आदि का विकार न होने पावे तो उस वल्गन गति विशेषको ही 'नीचैर्गत' नाम से कहा जाता है। अथवा नीचैर्गत नामक गति को भी निम्नलिखित सोलह भागों में विभक्त समझना चाहिये ॥ ३९ ॥ वे सोलह प्रकार ये हैं:—प्रकीर्णक (सब चालों का एकमें ही संकर अर्थात् मिला हुआ होना), प्रकीर्णोत्तर (सब चालों के मिले हुए होनेपर भी एक चालका मुख्य होना), निषण्ण (पृष्ठ भाग को निश्चेष्ट करके किसी विशेष चाल का निकालना, अर्थात् उस चाल के होनेपर पीठपर किसी प्रकार का कम्पन आदि विकार न हो), पार्श्वानुवृत्त (एक ओर व

तिरछी चाल चलना), ऊर्मिमार्ग (लहरों की तरह ऊंचा नीचा होकर चलना), शरभक्रीडित (शरभ [एक जवान हाथी] की तरह क्रीडा करते हुए चलना), शरभप्लुत (शरभ की तरह कूदकर चलना), त्रिताल (तीन पैरोंसे चलना), बाह्यानुवृत्त (दायें बायें दोनों ओर को मण्डलाकार चलना), पञ्चपाणि (तीन पैरों को पहिले एक साथ रखकर फिर एक पैर को दो बार रखकर चलना), सिंहायत (सिंह के समान लम्बी डग भरके चलना), स्वाधूत (एक साथ बहुत लम्बे कूदकर चलना), क्लिष्ट (बिना सवारके ही विश्वास पूर्वक चलना) श्लिङ्गित (शरीरके अगले हिस्से को झुकाकर चलना), बृंहित (शरीरके अगले हिस्से को ऊंचा करके चलना), और पुष्पाभिकीर्ण (गोमूत्र के समान इधर उधर को होकर चलना) ये सब सोलह प्रकार के नीचैर्गत मार्ग अर्थात् घोड़ों की 'नीचैर्गत' नामक गति कही जाती हैं ॥ ४० ॥

कपिप्लुतो भेकप्लुत एणप्लुत एकपादप्लुतः कोकिलसंचार्युरस्यो बकचारी च लङ्घनः ॥ ४१ ॥

कूदनेका नाम लङ्घन है; यह भी सात प्रकारका होता है:—कपिप्लुत (बन्दर की तरह कूदना), भेकप्लुत (मेंडक की तरह कूदना) एणप्लुत (हरिण की तरह कूदना), एकपादप्लुत (तीन पैरों को सकोड़कर केवल एक ही पैरके सहारे कूदना), कोकिलसंचारी (कोयल की तरह फुदककर कूदना), उरस्य (सब पैरों को सकोड़कर केवल छातीके सहारे ही कूदना), और बकचारी (बगुले की तरह बीच में धीरे चलकर फिर एकसाथ अचानक कूदना), ये सात प्रकारके लंघन हैं ॥ ४१ ॥

काङ्को वारिकाङ्को मायूरोऽर्धमायूरो नाकुलोऽर्धनाकुलो वाराहोऽर्धवाराहश्चेति धोरणः ॥ ४२ ॥ संज्ञाप्रतिकारो नारोष्ट्र इति ॥ ४३ ॥

धीरे २ चली जाने वाली, दुलकी सरपट आदि चालों का नाम धोरण है। इसके निम्नलिखित आठ भेद हैं:—काङ्क (कङ्क अर्थात् बगुले की तरह चलना), वारिकाङ्क (बत्तख या हंस आदि की तरह चलना), मायूर (मयूरकी तरह चलना), अर्ध-मायूर (कुछ कुछ मोर की तरह चलना), नाकुल (नकुल अर्थात् नेवले की तरह चलना), अर्धनाकुल (कुछ कुछ नेवले की तरह चलना), वाराह (वराह अर्थात् सूअर की तरह चलना), और अर्धवाराह (कुछ कुछ सूअर की तरह चलना) इन आठ प्रकार की चालोंको

ओरण कहते हैं। ४२। सिखलाए हुए इशारोंके अनुसार घोड़े का चलना नारोष्ट कहाता है यहां तक आपवाह्य गतियों का निरूपण कर दिया गया ॥ ४३ ॥

षण्णव द्वादशेति योजनान्यध्वा रथ्यानां, पञ्चयोजनान्यर्धाष्टमानि दशेति पृष्ठवाह्यानामश्वानामध्वा ॥ ४४ ॥

रथ आदिमें जोते जाने वाले अधम मध्यम तथा उत्तम घोड़ों को यथासंख्य छः नौ तथा बारह योजन चलाया जावे; अर्थात् रथ आदि में एक बार जोतने के बाद अधिक से अधिक इतना चलाया जावे, और फिर उनको विश्राम करने का अवसर दिया जावे। (त० गणपति शास्त्री ने इस सूत्रमें छः योजन उत्तम और बारह योजन अधम घोड़े के चलने के लिये मार्ग बतलाया है; परन्तु यह संगत नहीं मालूम होता; क्योंकि उत्तम घोड़ा तीव्रगति होनेके कारण अधिक चल सकता है; इसलिये हमारा निर्देश किया हुआ क्रम ही युक्त प्रतीत होता है) । इसी प्रकार जो पीठपर भार ढोने वाले घोड़े हों; उनका भी इसी क्रमसे पांच साढे सात और दस योजन चलने का मार्ग होना चाहिये। अर्थात् अधम घोड़ा पांच, मध्यम साढ़े सात और उत्तम दस योजन चलकर पुनः विश्राम लेवे ॥ ४४ ॥

विक्रमो भद्राश्वासो भारवाह्य इति मार्गाः ॥४५॥ विक्रमो वल्गितमुपकण्ठमुपजवो जवश्च धाराः ॥ ४६ ॥

इन तीनों तरहके घोड़ों की गति भी तीन प्रकार की होती है,–विक्रम (मन्दगति), भद्राश्वास (मध्यम गति), और भारवाह्य (तीव्रगति; जिस प्रकार कोई पुरुष कन्धे पर भार रखकर तेज जाता है) ॥ ४५ ॥ भिन्न २ घोड़ों के चलने का क्रम भी भिन्न २ ही होता है;–कोई २ घोड़ा लगातार धीरे ही धीरे चलता है, कोई २ चौकन्ना सा होकर इधर उधर को फिरता हुआ सा चलता है, कोई २ कूद २ कर और कोई पहिले तेज़ तथा कोई पीछे तेज़ चलता है; इन सब तरह की चालों का नाम 'धारा' है। इनको धारा इसी लिये कहते हैं, कि ये घोड़ों के चलने के अपने २ ढंग (=क्रम=धारा=) हैं ॥ ४६ ॥

तेषां बन्धनोपकरणं योग्याचार्याः प्रतिदिशेयुः ॥ ४७ ॥ सांग्रामिकं रथाश्वालंकारं च सूताः ॥ ४८ ॥ अश्वानां चिकित्सकाः शरीरह्रासवृद्धिप्रतीकारमृतुविभक्तं चाहारम् ॥ ४९ ॥

रथ में जोते जाने वाले या भार आदि ढोने वाले सब तरह के घोड़ोंके हर तरह के साजों को पहनाये जाने के सम्बन्ध में, घोड़ों के योग्य शिक्षक ही सब कुछ बतलावें। तात्पर्य यह है, कि घोड़ोंके मुख आदि किन २ अवयवोंपर कौन २ सा साज रखना चाहिये, और किस ढंग से रखना चाहिये इत्यादि सब ही बातों का उपदेश, घोड़ोंपर काम करने वाले कर्मचारियोंको, अश्वशिक्षक ही देवें ॥ ४७ ॥ और संग्राम सम्बन्धी, घोड़ों तथा रथों की सजावटके सामान को, सूत अर्थात् रथ आदि को चलाने वाले सारथि ही बतलावें ॥ ४८ ॥ तथा घोड़ों की चिकित्सा करने वाले वैद्य, उनके शरीर की घटती बढ़ती के प्रतीकार और ऋतुओं के अनुसार उचित आहारके सम्बन्धमें सब कुछ बतावें ॥ ४९ ॥

सूत्रग्राहकाश्वबन्धकयावसिकविधापाचकस्थानपालकेशकार-जाङ्गलीविदश्च स्वकर्मभिरश्वानाराधयेयुः ॥ ५० ॥

सूत्रग्राहक (लगाम आदि पकड़कर घोड़ों को फिराने घुमाने वाला कर्मचारी), अश्वबन्धक (चलने के लिये तैयार होते समय लगाम जीन आदि साजों को पहिनाने वाला कर्मचारी), यावसिक (ऋतुओं के अनुसार उचित घास आदि आहार देने वाला), विधापाचक (घोड़ों के लिये चावल मूंग उड़द आदि पकाने वाला), स्थानपाल (घोड़े के रहने की जगह को साफ़ करने वाला कर्मचारी), केशकार (घोड़े के बालों को यथासमय काटकर अथवा खुरेरा आदि फेरकर ठीक करने वाला) और जाङ्गलीविद् (जंगली जड़ी बूटियों को जानकर घोड़ों की चिकित्सा करने वाले=विषवैद्य) ये सब ही कर्मचारी अपने २ नियत कार्योंको करते हुए घोड़ों की परिचर्या करें ॥ ५० ॥

कर्मातिक्रमे चैषां दिवसवेतनच्छेदनं कुर्यात् ॥ ५१ ॥ नीराजनोपरुद्धं वाहयतश्चिकित्सकोपरुद्धं वा द्वादशपणो दण्डः ॥५२॥

इनमें से जो कर्मचारी जिस दिन अपने काम को ठीक २ न करे, उसका उसी दिन का वेतन काट लिया जावे ॥ ५१ ॥ नीराजना (यह घोड़ों का एक संस्कार विशेष है, जो कि घोड़ों में उत्पन्न हुए २ उपद्रवों को शान्त करने के लिए और उनके बल की वृद्धि के लिये किया जाता है) के कारण रुके हुए अथवा चिकित्सा के लिये रुके हुए घोड़ों को जो पुरुष काम पर ले जावे, उसे बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ ५२ ॥

क्रियाभैषज्यसङ्गेन व्याधिवृद्धौ प्रतीकारद्विगुणो दण्डः ॥५३॥ तदपराधेन वैलोम्ये पत्रमूल्यं दण्डः ॥ ५४ ॥

यदि ठीक समयपर घोड़ों की चिकित्सा न करने, और उनको दवाई आदि न देने के कारण उनकी बीमारी बढ़ जावे, तो उस समय उसका इलाज कराने में जितना व्यय हो, उससे दुगना दण्ड अश्वाध्यक्ष को दिया जावे ॥ ५३ ॥ यदि चिकित्सा और दवाई के ही दोष से घोड़ा मर जावे (तात्पर्य यह है, कि चाहे चिकित्सा ठीक समयपर हुई या बीमारीके बढ़नेपर हुई, पर घोड़े की मौत चिकित्सा या दवा के विरुद्ध होने के कारण ही हुई हो, तो अश्वाध्यक्ष को निम्न लिखित दण्ड दिया जायगा। यदि चिकित्सा देर से हुई, पर ठीक हुई है; उस हालत में अगर घोड़ा मर जावे, तो चिकित्सा के खर्च से दुगना ही दण्ड होगा, जैसा कि ५३ वें सूत्र में कहा गया है। यदि ठीक समयपर ही चिकित्सा प्रारम्भ हो, और वह चिकित्सा रोग के अनुसार ही बिल्कुल ठीक की जा रही हो, फिर भी यदि घोड़ा मर जावे, तो अश्वाध्यक्ष को कोई दण्ड नहीं होगा), तो जितने मूल्यका वह घोड़ा हो, उतना ही दण्ड अश्वाध्यक्ष को दिया जावे ॥ ५४ ॥

तेन गोमण्डलं खरोष्ट्रमहिषमजाविकं च व्याख्यातम् ॥ ५५ ॥

घोड़ों की परिचर्या और चिकित्सा के लिये जो नियम बताये गए हैं वे ही नियम, गोमण्डल (गाय बैल आदि), गधा, ऊंट भैंसा, और भेड़ बकरियों की परिचर्या तथा चिकित्सा आदि के सम्बन्ध में समझने चाहियें। तात्पर्य यह है, कि गौ आदि की ठीक २ परिचर्या और चिकित्सा आदि न की जानेपर भी उन के परिचारकों तथा गवाध्यक्ष को उसी रीति से दण्ड आदि दिये जावें ॥ ५५ ॥

द्विरह्नः स्नानमश्वानां गन्धमाल्यं च दापयेत् ।
कृष्णसंधिषु भूतेज्याः शुक्लेषु स्वस्तिवाचनम् ॥ ५६ ॥
नीराजनामाश्वयुजे कारयेन्नवमे ऽहनि ।
यात्रादाववसाने वा व्याधौ वा शान्तिके रतः ॥ ५७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे अश्वाध्यक्षः त्रिंशो ऽध्यायः ॥ ३० ॥

आदित एकपञ्चाशः ॥ ५१ ॥

शरद् और ग्रीष्म ऋतु में घोड़ों को दोबार स्नान कराया जावे। गन्ध और माला नित्य दी जावे। अमावास्या पर्वों में घोड़ों के निमित्त से भूतों बलि दी जावें, और शुक्लपर्व अर्थात् पूर्णमासी में स्वस्तिवाचन पढ़ा ज ॥ ५६ ॥ आश्विन महीने की नवमी तिथि में, घोड़ों के नीराजना नाम संस्कार विशेष को करवाया जावे। इसी प्रकार यात्रा के प्रारम्भ में और यात्रा

प्राप्ति पर; तथा घोड़ों में कोई संक्रामक रोग फैलने पर अर्थात् मरी फैलने पर, उसको शान्त करनेमें तत्पर हुआ २ अश्वाध्यक्ष, नीराजना नामक कर्म को करवावे ॥ ५७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण में तीसवां अध्याय समाप्त।

इकत्तीसवां अध्याय

४८ प्रकरण

हस्त्यध्यक्ष

{ राजकीय हाथियोंका प्रबन्ध करने वाले प्रधान अधिकारी को 'हस्त्यध्यक्ष' कहते हैं। उस ही के कार्योंका इस प्रकरण में निरूपण किया जायगा।

हस्त्यध्यक्षो हस्तिवनरक्षां दम्यकर्मक्षान्तानां हस्तिहस्तिनीकलभानां शालास्थानशय्याकर्मविधायवसप्रमाणं कर्मस्वायोगं बन्धनोपकरणं सांग्रामिकमलंकारं चिकित्सकानीकस्थोपस्थयुक्तवर्गं चानुतिष्ठेत् ॥ १ ॥

हस्त्यध्यक्ष को चाहिये, कि वह हाथियों के जंगल की रक्षा करे; सिखाये जाने योग्य हाथी हथिनी और उनके बच्चों के लिये शाला (गजशाला, जिसमें हाथी आदि बांधे जाते हैं), स्थान (बाहर खुले हुए में हाथी के बांधने की जगह), शय्या (उनके बैठनेका स्थान), कर्म (युद्ध सम्बन्धी आदि कार्य), विधा (पकाकर दिये जाने वाले आहार), और यवस (हरे गन्ने टहनी घास फूस आदि; 'यवस' शब्द हरे के लिये आता है, इसलिये जो चीजें हरे के तौरपर हाथियोंको दी जावे, उन सब का ही यहां ग्रहण करलेना चाहिये), इन छः चीजों के प्रमाण (परिमाण) का निर्णय करे। उन हाथी आदि को हर तरह की चाल आदि (इनका निरूपण आगे किया जायगा) सिखलाने में लगावे। उनके अम्बारी अंकुश आदि प्रत्येक साजों और संग्राम सम्बन्धी अलङ्कारों का प्रबन्ध करे। तथा हाथियों की चिकित्सा करने वाले गजवैद्य, उनको हरतरह की शिक्षा देने वाले और अन्य टहल टकोरी करने वाले कर्मचारियोंका सदा निरीक्षण करता रहे ॥ १ ॥

हस्त्यायामद्विगुणोत्सेधविष्कम्भायामां हस्तिनीस्थानाधिकां सप्रग्रीवां कुमारीसंग्रहां प्राङ्मुखीमुदङ्मुखीं वा शालां निवेशयेत् ॥ २ ॥

हाथीकी लम्बाई से दुगनी ऊंची, चौड़ी तथा लम्बी (हाथीकी लम्बाई नौ हाथ मानी गई है, देखो इसी अध्याय का नौवां सूत्र; उसका दुगना अठारह हाथ की ऊंचाई आदि होनी चाहिये), और हथिनी के लिये उससे छः हाथ और अधिक लम्बी, अर्थात् चोबीस हाथ लम्बी (ऊंची और चौड़ी उतनी ही) आगे बरांडे से युक्त, (हाथियों के बांधने के लिये जो खूंटे गाड़े जावें, उनके ऊपर एक लकड़ी तराजू के समान रक्खी जावे, इससे हाथी सुख पूर्वक बांधे जा सकते हैं, इस का नाम 'कुमारी' होता है) इस तरह की कुमारियों का जिसमें पर्याप्त संग्रह हो, तथा पूरब या उत्तर की ओर दरवाजों वाली शाला (गजशाला) बनवाई जावे ॥ २ ॥

हस्त्यायामचतुरश्रश्लक्ष्णालानस्तम्भफलकान्तरकं मूत्रपुरीषोत्सर्गस्थानं निवेशयेत् ॥ ३ ॥

हाथीकी लम्बाई की बराबर लम्बा चौकोर (अर्थात् गोल नहीं होना चाहिये), तथा चिकना एक आलानस्तम्भ (हाथी के बांधने का खूंटा) वहांपर गाड़ा जावे, उसके, चारों ओर एक तख्ता सा ज़मीन को ढकने के लिये लगा रहना चाहिये, (तात्पर्य यह है, कि उस खूंटे को एक तख्ते के बीचमें लगाकर फिर गाड़ा जावे, जिससे वह तख्ता ज़मीनपर ऊपर रहे, और खूंटे को जड़ में से मट्टी आदि उखाड़कर कोई उसे ढीला न कर सके) । और पेशाब तथा पखाने के लिये आगे से कुछ उठा हुआ, स्थान बनाया जावे; जिस से कि वह स्वयं पीछे की ओर को बह जावे या सरक जावे ॥ ३ ॥

स्थानसमशय्यामर्धापाश्रयां दुर्गे सांनाह्योपवाह्यानां बहिर्दम्यव्यालानाम् ॥ ४ ॥

उपर्युक्त स्थान के समान ही शय्या अर्थात् बैठने सोने के लिये एक चबूतरा सा बनवाया जावे, जिसकी ऊंचाई साढ़े चार हाथ होनी चाहिये; जो हाथी युद्ध तथा सवारी आदि के काम में आने वाले हों उनकी शय्या दुर्ग के भीतर ही बनवाई जावे, और जो अभी चाल आदि सीख रहे हों अर्थात् जिनको कवायद आदि सिखाई जा रही हो, और जो हिंसक प्रवृत्ति हों, उनका निवास दुर्ग से बाहर ही कराया जावे ॥ ४ ॥

प्रथमसप्तमावष्टमभागावह्नः स्नानकालौ तदनन्तरं विधायाः पूर्वाह्णे व्यायामकालः पश्चाह्णः प्रतिपानकालः ॥ ५ ॥ रात्रिभागौ द्वौ स्वप्नकालौ त्रिभागः संवेशनोत्थानिकः ॥ ६ ॥

बराबर विभक्त किये हुए दिन के आठ भागों में से पहिला और सातवां भाग हाथी के स्नानका उचित समय समझना चाहिये। (इससे यह बात प्रकट है, कि हाथीको दिनमें दो बार स्नान कराया जावे) दोनों बार स्नान के अनन्तर पक्का आहार खाने का ऐसा चाहिये, अर्थात् दिनके दूसरे और आठवें भागमें खानेको दिया जावे। पूर्वाह्णमें अर्थात् दोपहरसे पहिले समयमें ही व्यायाम (कवायद) आदि का अभ्यास करावे; और मध्याह्नोत्तर प्रतिदिन कुछ पीनेके लिये दिया जावे ॥ ५ ॥ रात्रिके कल्पित तीन भागोंमें से दो भाग, हाथीके सोनेका समय समझना चाहिये, और शेष तीसरा भाग उठने बैठनेके लिये समझा जावे ॥ ६ ॥

ग्रीष्मे ग्रहणकालः, विंशतिवर्षो ग्राह्यः ॥ ७ ॥ विक्को मूढो मत्कुणो व्याधितो गर्भिणी धेनुका हस्तिनी चाग्राह्याः ॥ ८ ॥

गरमी की मौसम में ही हाथियोंको पकड़ना चाहिए। क्योंकि उस ऋतु में गरमी अधिक होने के कारण हाथी क्षीणबल हो जाते हैं, और वहां सुकरता से पकड़े जा सकते हैं। बीस वर्ष या उससे अधिक आयु का ही हाथी पकड़ने योग्य होता है ॥ ७ ॥ दूध पीनेवाला बच्चा (विक्क), मूढ (हथिनीके समान दांतोंवाला; अर्थात् जिसको दांत देखकर 'यह हाथी है' इस प्रकार न पहचाना जा सके, इसीलिए इसका नाम 'मूढ' है) मत्कुण (दांतोंसे रहित, अर्थात् जिसके दांत अभी तक न निकले हों), बीमार हाथी; और गर्भिणी, तथा दूध चुखानेवाली हथिनीको न पकड़ा जावे ॥ ८ ॥

सप्तारत्निरुत्सेधो नवायामो दश परिणाहः प्रमाणतश्चत्वारिंशद्वर्षो भवत्युत्तमः ॥ ९ ॥ त्रिंशद्वर्षो मध्यमः ॥ १० ॥ पञ्चविंशतिवर्षोऽवरः ॥ ११ ॥ तयोः पादावरो विधाविधिः ॥ १२ ॥

सात हाथ ऊंचा, नौ हाथ लम्बा और दस हाथ मोटा परिमाणवाला तथा चालीस वर्षकी उमरवाला हाथी सबसे उत्तम होता है ॥ ९ ॥ तीस वर्षकी उमरका हाथी मध्यम; (इसका लम्बाई चौड़ाई आदि परिमाण इसी अध्यायके १५वें सूत्रमें देखें); ॥ १० ॥ और पच्चीस वर्षकी उमरका अधम समझना चाहिये। (इसका परिमाण भी पन्द्रहवें सूत्रमें देखें) ॥ ११ ॥ मध्यम और अधमको उत्तमकी अपेक्षा यथा-क्रम चौथाई हिस्सा कम आहार

दिया जावे अर्थात् उत्तमका जितना आहार दिया जाव, उसमस चौथाई हिस्सा कम करक मध्यमको, और मध्यमके आहारमेंसे भी चौथाई हिस्सा कम करके अधम हाथीको आहार दिया जावे ॥ १२ ॥

अरत्नौ तण्डुलद्रोणोऽर्धाढकं तैलस्य सर्पिषस्त्रयः प्रस्थाः दशपलं लवणस्य मांसं पञ्चाशत्पलिकं रसस्याढकं द्विगुणं वा दध्नः पिण्डक्लेदनार्थं क्षारं दशपालिकं मद्यस्य आढकं द्विगुणं वा पयसः प्रतिपानं गात्रावसेकस्तैलप्रस्थः शिरसो ऽष्टभागः प्रादीपिकश्च यवसस्य द्वौ भारौ सपादौ शष्पस्य शुष्कस्यार्धतृतीयो भारः कडङ्करस्यानियमः ॥ १३ ॥

उत्तम हाथीका क्या आहार होना चाहिये, यह इस सूत्रमें बताया जाता है:—जो हाथी अन्य साधारण हाथियोंसे एक हाथही अधिक ऊँचा हो, अर्थात् पूरे सात हाथका ऊँचा हो (इससे अधिक नहीं) उसे एक द्रोण चावल, आधा आढक तेलका, तीन प्रस्थ घीके, दस पल नमकके, पचास पल मांस, सूखे दाने आदिको भिगोनेके लिये एक आढक शोरवा (मांसका पका हुआ रस), अथवा उसके न होनेपर उससे दुगना दही, दस पल क्षार अर्थात् गुड़ आदि, मध्याह्नोत्तर पीनेके लिये एक आढक मद्य अथवा मद्यके न होनेपर उससे दुगना दूध, शरीरपर लगानेके लिये तेलका एक प्रस्थ, शिरपर लगानेके लिये एक प्रस्थका आठवां हिस्सा अर्थात् आधा कुडुव, और इतना ही तेल रातको दिया जलानेके लिये, हरेके दो भार अर्थात् चालीस तुला, हरी घासके सवा दो भार अर्थात् पचास तुला; और सूखी घासके ढाई भार अर्थात् साठ तुला, भुस और पत्ते आदिका कोई नियम नहीं, वह जितने भी खाये जावें, उतने ही देने चाहियें। यह सब आहार उत्तम हाथीका है ॥ १३ ॥

सप्तारत्निना तुल्यभोजनो ऽष्टारत्निरत्यरालः ॥ १४ ॥ यथाहस्तमवशेषः षडरत्निः पञ्चारत्निश्च ॥ १५ ॥

आठ हाथ ऊँचे 'अत्यराल' नामक (सात हाथ ऊँचे उत्तम हाथीसे भी जो हाथी ऊँचा हो, उसको 'अत्यराल' कहा जाता है, उस) हाथीको भी सात हाथ ऊँचे उत्तम हाथीके बराबर ही आहार दिया जावे। अर्थात् इससे अधिक न दिया जावे ॥ १४ ॥ इसप्रकार ऊँचाईके हिसाबसे जो हाथी छः हाथ ही ऊँचे हों, वे मध्यम होते हैं, उनको उपर्युक्त उत्तम हाथीके आहारसे चौथाई हिस्सा कम करके दिया जावे। इसी प्रकार जो हाथी पांच ही हाथके ऊँचे होते

हैं वे अधम कहाते हैं उनको मध्यम हाथियोंके आहारसे भी चौथाई हिस्सा कम करके दिया जाय (म. म. गणपति शास्त्री, तेरहवें सूत्रमें बतलाये हुए आहारको, एक हाथकी ऊँचाईके हिसाबसे मानकर सात हाथ ऊँचे हाथीके लिये उस बताये हुए आहारसे सात गुना आहार कहा है; अर्थात् तेरहवें सूत्रमें जितनी तादाद आहारकी बतलाई गई है, उससे सात गुना आहार उत्तम हाथीको देना चाहिये। इसी प्रकार जो हाथी छः हाथ ऊँचा होनेके कारण मध्यम है, उसे तेरहवें सूत्रमें बताये आहारसे छः गुना आहार दिया जावे, और पांच हाथके ऊँचे अधम हाथीको पांच गुना, यह व्याख्या उक्त शास्त्रीजीने पन्द्रहवें सूत्रकी की है। परन्तु ऐसा अर्थ करनेपर बारहवें सूत्रके साथ इसका विरोध होता है। क्योंकि वहांपर उत्तम हाथीके आहारसे चतुर्थांश कम करके मध्यम हाथीका आहार बताया गया है, और उससे चतुर्थांश कम करके अधमका। इसलिये शास्त्रीजीका लेख विरुद्ध सा प्रतीत होता है) ॥ १५ ॥

क्षीरयावसिको विकः क्रीडार्थं ग्राह्यः ॥ १६ ॥ संजातलोहिता प्रतिच्छन्ना संलिप्तपक्षा समकक्ष्याव्यतिकीर्णमांसा समतल्पतला जातद्रोणिकेति शोभाः ॥ १७ ॥

दूध पीने वाले छोटे बच्चेको केवल क्रीडा अर्थात् कौतुकके लिये पकड़ना चाहिये, ऐसी अवस्थामें उसको दूध और हरी २ घास या जई आदिके छोटे २ कवल (गास) देकर उसका पालन पोषण किया जाय ॥ १६ ॥ हाथियोंकी सात अवस्थाओंके अनुसार उनकी सात प्रकारकी शोभा समझी जाती है। जब हाथीके शरीरमें हड्डी चमड़ा ही रहजावे, और फिर थोड़ा २ रुधिर उत्पन्न होने लगे, यह प्रथम अवस्था है इसके कारण जो शोभा हो उसको 'सञ्जातलोहिता' नामसे कहते हैं। जिस अवस्थामें कुछ २ मांस बढ़ने लगे, उसके कारण होनेवाली शोभाको 'प्रतिच्छन्ना' कहते हैं। जब मांस दोनों ओर चढ़ जाता है, तब उसे 'संलिप्तपक्षा' कहा जाता है। जब सब अवयवोंपर बराबर मांस चढ़ जाय, तो उस अवस्थाकी शोभाको 'समकक्ष्या' कहते हैं। जब शरीरपर कहीं नीचा और कहीं ऊंचा मांस होजावे, तो उस अवस्थाकी शोभाका नाम 'व्यतिकीर्णमांसा' है। जब पीठकी हड्डीके बराबर २ पीठपर मांस चढ़जाय, तो उस अवस्थाकी शोभाको 'समतल्पतला' कहा जाता है। तथा जब रीढ़की हड्डीसे इधर उधरका मांस ऊँचा होजावे, तो उस अवस्थाकी शोभाको 'जातद्रोणिका' कहते हैं। इस तरह ये हाथियोंकी सात प्रकारकी शोभा समझी जाती है ॥ १७ ॥

शोभावशेन व्यायामं भद्रं मन्दं च कारयेत् ।
मृगसंकीर्णलिङ्गं च कर्मस्वृतुवशेन वा ॥ १८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये अधिकरणे हस्त्यध्यक्ष एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

आदितो द्विपञ्चाशः ॥ ५२ ॥

इसीके अनुसार सब हाथियोंको व्यायाम कराना चाहिये, अर्थात् उत्तम, मध्यम और अधम हाथियोंको जब परिश्रम (कवायद) कराया जावे, तब उनकी इन उपर्युक्त अवस्थाओंपर अवश्य ध्यान रक्खा जावे । तथा इसी प्रकार जिन हाथियोंके अन्दर उत्तम मध्यम आदिके साङ्कर्यके चिन्ह विद्यमान हों, उनको भी सान्नाह्य और औपवाह्य आदि कार्योंमें, पूर्वोक्त अवस्थाओंके अनुसार ही परिश्रम कराया जावे । अथवा सबही हाथियोंको ऋतुओंके अनुसार सान्नाह्य आदि कार्योंमें लगाया जावे ॥ १८ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें इकत्तीसवां अध्याय समाप्त ।

बत्तीसवां अध्याय ।

४९ प्रकरण

हस्तिप्रचार ।

इस अधिकरणमें दो अध्याय हैं, पिछले इकत्तीसवें अध्यायमें हस्त्यध्यक्षके कार्योंका निरूपण किया गया । अब इस अध्यायमें हाथियोंके भेद और उनकी गतियोंके सम्बन्धमें विशेष निरूपण किया जायगा ।

कर्मस्कन्धाः चत्वारो दम्यः सांनाह्य औपवाह्यो व्यालश्च ॥ १ ॥ तत्र दम्यः पञ्चविधः ॥ २ ॥

कार्य भेदसे हाथी चार प्रकारका होता है, दम्य (दमन करने योग्य, अर्थात् शिक्षा देने योग्य), सान्नाह्य (युद्धके काममें आने वाला), औपवाह्य (सवारीका), और व्याल (अर्थात् घातक वृत्ति वाला) ॥ १ ॥ इनमेंसे दम्य हाथी पांच प्रकारका होता है । तात्पर्य यह है कि दम्य हाथीके पांच कार्य होते हैं, उन्हींके कारण उसके पांच भेद समझे जाते हैं ॥ २ ॥

स्कन्धगतः स्तम्भगतो वारिगतो ऽवपातगतो यूथगतश्चेति ॥ ३ ॥ तस्योपविचारो विक्कर्म ॥ ४ ॥

ये भेद इस प्रकार हैं स्कन्धगत (जो अपने कन्धेपर किसी मनुष्यको चढासके तात्पर्य यह है, कि जब कोई पुरुष उसके कन्धेपर चढे उस समय वह किसी तरहका उपद्रव न करे, यह उसका एक काम है, ऐसा करनेपर समझना चाहिये, कि यह हाथी दम्य अर्थात् कुछ सिखलाये जाने योग्य है, क्योंकि वह फिर सरलतासे ही वश में किया जा सकता है), स्तम्भगत (जो हाथी खूंटेपर बंधना सहन करले; यह दूसरा काम है, जब हाथी को यह सह्य होजाय, तब उसे दम्य समझकर आगे कवायद आदि सिखानी चाहिये), वारिगत (हाथियोंके पकडनेकी भूमि का नाम 'वारि' है, उसमें जो हाथी पहुंच जाय, वह भी सरलतासे वशमें होने योग्य हो जाता है इसलिये वह भी दम्य कहाता है), अवपातगत (हाथियोंके पकडनेके लिये जंगलों में जो घास फूस से ढकेहुए गढे बनाये जाते हैं, उनका नाम 'अवपात' है, जो हाथी उनमें पहुंच जाते है, वे भी दम्य कहाते हैं, क्योंकि उनको फिर पकड़कर इच्छानुसार वशमें किया जा सकता है), और यूथगत (जो हथिनियोंके साथ विहार करने के व्यसनी होते हैं, वे हथिनियों के झुंड में आये हुए पकड़े जाते हैं, इसलिये उनको भी दम्य कहा गया है। इसप्रकार पांच उपायोंसे दम्य होने के कारण, दम्य हाथियोंके ही पांच भेद कल्पित करलिये गये हैं) ॥ ३ ॥ दम्य हाथीकी परिचर्या हाथीके बच्चेके समान ही करनी चाहिये। अर्थात् जिसप्रकार हाथीके छोटे बच्चेको दूध, हरी २ घास और गन्ने आदि देकर पालन पोषण किया जाता है, उसीप्रकार दम्य हाथीका भी पालन पोषण करना चाहिये ॥ ४ ॥

सांनाह्यः सप्तक्रियापथः ॥ ५ ॥ उपस्थानं संवर्तनं संयानं वधावधो हस्तियुद्धं नागरायणं सांग्रामिकं च ॥ ६ ॥ तस्योपविचारः कक्ष्याकर्म ग्रैवेयकर्म यूथकर्म च ॥ ७ ॥

सान्नाह्य हाथी के कार्य करनेके सात मार्ग हैं, इसीलिये सान्नाह्य हाथी के सात भेद समझे जाते हैं ॥ ५ ॥ वे भेद इस प्रकार हैः—उपस्थान (आगे पीछे के अवयवोंको ऊंचा नीचा करना, तथा ध्वजा, उल्का, बांस और रस्सी आदिका लांघना), संवर्तन (सोजाना, बैठजाना, तथा भिन्न २ चीजोंका लांघना आदि भूमि सम्बन्धी कार्य), संयान (सीधा तिरछा, गोमूत्रिकाकार अथवा गोलाकार आदि चातुर्यपूर्ण गतिविशेष), वधावध (सूंड, दांत, तथा शरीरके अन्य किसी अवयवसे रथ घोड़ा या आदमी आदिका मारना या पकड़ना), हस्तियुद्ध (न्यून अधिक तथा समान शक्ति वाले हाथियोंके साथ युद्ध करना), नागरायण (नगरके दरवाजों, दीवारों या अटोंका आदि

का ताड़ना), और सांग्रामिक (प्रकट रूपमें युद्ध करना) । सान्नाह्य हाथियों के ये सात काम बताये गये हैं, इन्हींके कारण उन हाथियोंके भी सात भेद कल्पना कर लिये गये हैं ॥ ६ ॥ सान्नाह्य हाथीको शिक्षा देनेके समयमें यह ध्यान रखना चाहिये, कि रस्सी आदि बांधने, गलेमें बन्धन डालने, तथा इसके झुंडके अनुकूल कार्योंके करनेमें उसे अत्यन्त निपुण बनादिया जाय । (प्रत्येक हाथीके अपने झुंड अर्थात् यूथका पता उनके अंगोंकी बनावटसे मालूम होसकता है) ॥ ७ ॥

औपवाह्यो ऽष्टविधः ॥ ८ ॥ आचरणः कुञ्जरौपवाह्यः धोरण आधानगतिको यष्ट्युपवाह्यस्तोत्रोपवाह्यः शुद्धोपवाह्यो मार्गायुकश्चेति ॥ ९ ॥

औपवाह्य हाथी आठ प्रकारके होते हैं । (ये भेद भी उनके कार्योंके अनुसार ही कल्पना किये गये हैं) ॥८॥ वे भेद इस प्रकार हैं :—आचरण (अगले तथा पिछले हिस्सेको इच्छानुसार ऊंचा नीचा करना, इसप्रकार सब तरहके हाथियोंकी गतिके अनुसार कार्य करलेना; यह भी एक प्रकारकी विशेष कवायद है), कुञ्जरौपवाह्य (दूसरे हाथीके साथ २ गति करने वाला), धोरण (एक ही ओरसे सब तरहके कार्य करने वाला), आधानगतिक (दो तीन तरहकी चाल चलने वाला), यष्ट्युपवाह्य (ताड़ना करनेपर ही काम करने वाला), तोत्रोपवाह्य (कांटेदार लकड़ीसे ताड़ना किये जानेपर ही कार्य करने वाला), शुद्धोपवाह्य (लकड़ी आदिके आघातके विनाही केवल पैर आदिके इशारेसे सब कामों को करने वाला), और मार्गायुक (शिकारके सम्बन्धमें हरतरहका काम करने की शिक्षा पाया हुआ), ये आठ प्रकारके औपवाह्य हाथी कहाते हैं ॥ ९ ॥

तस्योपविचारः शारदकर्म हीनकर्म नारोष्ट्रकर्म च ॥१०॥

इनको शिक्षा देनेके समयमें यह ध्यान रखना चाहिये, कि जो हाथी मोटे (आवश्यकतासे अधिक मोटे) हों उनको कृश बनाया जाय; जो मन्दाग्नि हों उनके अग्निदीपनका उपाय किया जाय; तथा जो ठीक स्वास्थ्य की अवस्थामें हों उनके स्वास्थ्य की रक्षा कीजाय, (यह सब व्यवस्था 'शारदकर्म' शब्दकी है) । तथा जो हाथी परिश्रम न करता हो उससे परिश्रम कराया जाय, (हीनकर्म) । इसी प्रकार प्रत्येक हाथीकी हरतरहके इशारोंकी भी शिक्षा दीजाय, (नारोष्ट्रकर्म) ॥ १० ॥

व्याल एकक्रियापथः ॥ ११ ॥ तस्योपविचार आयम्यैकरक्षः कर्मशङ्कितो ऽवरुद्धो विषमः प्रभिन्नः प्रभिन्नविनिश्चयो मदहेतुविनिश्चयश्च ॥ १२ ॥

व्याल अर्थात् घातक हाथीके कार्य करनेका एक ही मार्ग है ॥ ११ ॥ उसको शिक्षा देनेके निम्नलिखित उपाय हैं:—उसको कोई एक ही व्यक्ति बांधकर नियममें रक्खे, अथवा झुण्डके और पर ही उसे रक्खा जावे। शिक्षाके समय भिन्न २ रीतिसे उपद्रव करनेके कारण इसके निम्नलिखित भेद समझने चाहियें:—कर्मशङ्कित (शिक्षाके समय प्रतिकूल हो जाना), अवरुद्ध (कार्यमें उपयोगी न होनेके कारण उपेक्षा किया हुआ), विषम (अपनी इच्छानुसार काम करनेवाला), प्रभिन्न (मदके दोष से दुष्ट अर्थात् विचलित हुआ २), प्रभिन्नविनिश्चय (मद तथा आहार आदिके दोषसे बेचैन हुआ २) और मदहेतुविनिश्चय (सदा ही मद रहनेके कारण जिसके बिगड़नेमें मदकी हेतुताका पता न लगे) ॥ १२ ॥

क्रियाविपन्नो व्यालः ॥ १३ ॥ शुद्धः सुव्रतो विषमः सर्वदोषप्रदुष्टश्च ॥ १४ ॥

साधारणतया कार्य बिगाड़नेवाले हाथीको ही व्याल कहते हैं ॥ १३ ॥ इनके निम्नलिखित विशेष भेद हैं:—शुद्ध (जो केवल मारनेवाला हो, यह अठारह दोषोंसे युक्त होता है), सुव्रत (केवल चलने में गड़बड़ करनेवाला, इसमें पन्द्रह दोष होते हैं), विषम (शुद्ध और सुव्रत दोनोंके दोषोंसे युक्त), सर्वदोषप्रदुष्ट (पूर्वोक्त तेतीस दोषों, और उनसे अतिरिक्त अपने उन्नीस दोषोंसे युक्त, अर्थात् जो सब तरहके दोषोंसे युक्त हो। इन सब दोषोंका परिज्ञान 'हस्तिशास्त्र' से ही हो सकता है) ॥ १४ ॥

तेषां बन्धनोपकरणमनीकस्थप्रमाणम् ॥ १५ ॥ आलानग्रैवेयकक्ष्यापारायणपरिक्षेपोत्तरादिकं बन्धनम् ॥ १६ ॥

हाथियोंको बांधने तथा अन्य आवश्यक सब (उपकरण), सामानका संग्रह, हाथियोंके चतुर शिक्षकोंके कथनानुसार ही करना चाहिए ॥ १५ ॥ आलान (स्तम्भ अर्थात् हाथीके बांधनेका खूंटा), ग्रैवेयक (गलेमें बांधनेकी जंजीर आदि), कक्ष्या (कांखके नीचेसे बांधनेकी रस्सी आदि), परायण (हाथी पर चढ़ते समय सहारा लेने की रस्सी), परिक्षेप (हाथीके पैरमें बांधनेकी जंजीर आदि), और उत्तर (गलेमें बांधनेकी दूसरी रस्सी), इत्यादि **वस्तुयें बन्धन कहाती हैं अर्थात् ये हाथियोंके बांधनेके काममें आती हैं ॥ १६ ॥**

अङ्कुशवेणुयन्त्रादिकमुपकरणम् ॥ १७ ॥ वैजयन्तीक्षुरप्रमालास्तरणकुथादिकं भूषणम् ॥ १८ ॥ वर्मतोमरशरावापयन्त्रादिकः सांग्रामिकालंकारः ॥ १९ ॥

अंकुश, वेणु (बांस या डंडा), और यन्त्र (अम्बारी आदि) आदि सब उपकरण कहाते हैं ॥ १७ ॥ वैजयन्ती (हाथीके ऊपर लगानेकी पताका) क्षुरप्रमाला (नक्षत्रमाला, एक प्रकारकी विशेष माला; देखो—अधि० २, अध्याय ११, सूत्र १३), आस्तरण (नमदा, जो अम्बारीके नीचे हाथीकी पीठपर रक्खा जाता है), और कुथ (झूल) आदि पदार्थ हाथियोंके सजानेके लिए होते हैं ॥ १८ ॥ वर्म (कवच) तोमर (चार हाथका एक हथियार विशेष), शरावाप (तूणीर, तरकश जिसमें बाण रक्खे जाते हैं), और यन्त्र (भिन्न २ प्रकारके हथियार आदि) आदि, हाथियोंके संग्राम सम्बन्धी अलङ्कार समझे जाते हैं ॥ १९ ॥

चिकित्सकानीकस्थारोहकाधोरणहस्तिपकौपचारिकविधापाचकयावसिकपादपाशिककुटीरक्षकौपशायिकादिरौपस्थायिकवर्गः ॥ २० ॥

चिकित्सक (हाथियोंकी चिकित्सा करनेवाला=गजवैद्य), अनीकस्थ (हाथियोंका शिक्षक), आरोहक (गज विषयक शास्त्रोंको जाननेवाला गजारोही), आधोरण (शास्त्र ज्ञानपूर्वक, गज विषयक कार्योंको करनेमें कुशल), हस्तिपक (हाथीकी रक्षा करनेवाला), औपचारिक (हाथीको न्हलाने धुलानेवाला), विधापाचक (हाथीके आहारको पकानेवाला), यावसिक (हाथीके लिए हरा आदि लानेवाला), पादपाशक (हाथीके पैरको बांधनेवाला अर्थात् हाथीको उसके थानपर बांधनेवाला), कुटीरक्षक गजशालाकी रक्षा करनेवाला), और औपशायिक (हाथीकी शयनशालाका निरीक्षण करनेवाला), आदि गज परिचारक होते हैं। अर्थात् ये ग्यारह, हाथीकी परिचर्या करनेवाले कर्मचारी होते हैं ॥ २० ॥

चिकित्सककुटीरक्षविधापाचकाः प्रस्थौदनं स्नेहप्रसृतिं क्षारलवणयोश्च द्विपलिकं हरेयुः ॥ २१ ॥ दशपलं मांसस्यान्यत्र चिकित्सकेभ्यः ॥ २२ ॥ पथि व्याधिकर्ममदजराभितप्तानां चिकित्सकाः प्रतिकुर्युः ॥ २३ ॥

चिकित्सक, कुटीरक्षक, और विधापाचक, इन तीनों में से प्रत्येक, हाथीके आहारमें से एक प्रस्थ अन्न, तैल या घृत आदिकी आधी अञ्जली, गुड़ और नमकके दो पल लेलेवें ॥ २१ ॥ तथा चिकित्सकोंको छोड़कर बाकी दोनों (कुटीरक्षक और विधापाचक), मांसके दस २ पल लेलेवें ॥ २२ ॥ मार्ग चलनेसे, व्याधिसे, कार्य करनेसे, मदके कारण, तथा बुढ़ापेके कारण जो कोई भी कष्ट हाथियोंको होजावे, चिकित्सक बड़ी सावधानतापूर्वक उसका प्रतीकार करें ॥ २३ ॥

स्थानस्याशुद्धिर्यवसस्याग्रहणं स्थले शायनमभागे घातः परारोहणमकाले यानमभूमावतीर्थे ऽवतारणं तरुषण्ड इत्यत्यय-स्थानानि ॥ २४ ॥ तमेषां भक्तवेतनादाददीत ॥ २५ ॥

हाथीके स्थानको साफ न करना, उसे खानेको न देना, खाली भूमि पर सुलाना, चोट न पहुंचाने योग्य मर्म स्थलों पर चोट पहुंचाना, दूसरे अनाधिकारी पुरुषको हाथी पर चढ़ाना, नियत समयसे अतिरिक्त समयमें हाथीको चलाना, दुर्गम स्थानोंमें चलाना, बिना घाटके ही जलाशयमें उतार देना, तथा पेड़ोंके झुण्डोंमें हाथीको लेजाना; ये सब, कर्मचारियोंके अत्यय-स्थान अर्थात् दण्डके स्थान होते हैं। तात्पर्य यह है, कि हाथीके साथ इस प्रकारका व्यवहार करनेमें जिन कर्मचारियों या अध्यक्षका दोष हो, उन्हें उचित दण्ड दिया जावे ॥ २४ ॥ यह दण्ड उनके भत्ते और वेतनसे काट लिया जावे ॥ २५ ॥

तिस्रो नीराजनाः कार्याश्चातुर्मास्यर्तुसंधिषु ।
भूतानां कृष्णसंधीज्याः सेनान्यः शुक्लसंधिषु ॥ २६ ॥

बलकी वृद्धि और विघ्नोंकी शान्तिके लिये, वर्षमें तीन बार नीराजना कर्म कराया जावे, यह चार महीनेके बाद ऋतु संधिकी तिथि में कराना चाहिये; (यह तिथि आषाढ़ कार्तिक तथा फाल्गुनकी पूर्णमासी होगी), और कृष्ण सन्धियों में अर्थात् अमावास्या तिथियों में भूतों का बलिकर्म कराया जावे । तथा स्कन्द की पूजा भी पूर्णमासी तिथियों में कराई जावे ॥ २६ ॥

दन्तमूलपरीणाहाद्द्विगुणं प्रोज्झ्य कल्पयेत् ।
अब्दे द्व्यर्धे नदीजानां पञ्चाब्दे पर्वतौकसाम् ॥ २७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे हस्तिप्रचारो द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥
आदितः त्रिपञ्चाशः ॥ ५३ ॥

हाथी दांतकी जड़में जितनी मोटाई हो, उससे दुगना दांतका हिस्सा बाकी अगले हिस्सेको काट लियाजावे। इसके काटनेका समय इस समझना चाहिये;—जो हाथी नदीचर हों, उनके दांत ढाई साल के बाद , और जो हाथी पर्वतोंमें रहने वाले हों, उनके दांत पांच सालके जावें ॥ २७ ॥

क्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें बत्तीसवां अध्याय समाप्त

तेतीसवां अध्याय

४९–५१ प्रकरण

थाध्यक्ष पत्त्यध्यक्ष, तथा सेनापतिप्रचार

सेनामें काम आने वाले रथोंका अध्यक्ष 'रथाध्यक्ष' और पैदल सेनाका प्रधान अधिकारी 'पत्त्यध्यक्ष' तथा सम्पूर्ण सेनाका प्रधान अधिकारी 'सेनापति' कहाता है; इनके कार्योंका इस अध्यायमें यथाक्रम निरूपण किया जायगा।

श्वाध्यक्षेण रथाध्यक्षो व्याख्यातः ॥ १ ॥ स रथकर्मा-रयेत् ॥ २ ॥

अश्वाध्यक्षके समान ही रथाध्यक्षके भी नियम समझने चाहियें; यह है, कि जिस प्रकार अश्वाध्यक्ष, शालानिर्माण आहार आदिका गेर उपकरणोंका संग्रह तथा कर्मचारियोंकी नियुक्ति कराता है, इसी थोंके सम्बन्धमें रथाध्यक्ष भी करे ॥ १ ॥ इसके अतिरिक्त रथाध्यक्ष, बनवाने और पुराने रथों को मरम्मत कराने के कार्यों को भी । २ ॥

शपुरुषो द्वादशान्तरो रथः ॥ ३ ॥ तस्मादेकान्तरावरा न्तरादिति सप्तरथाः ॥ ४ ॥

दश पुरुषकी बराबर (एक पुरुष परिमाण १२ अंगुलका होता है, धि २, अध्या, २०, सू, १०, ११), ऊंचाई और बारह पुरुषकी लम्बाई एकरथ की होनी चाहिये। इतने परिमाणका रथ उत्तम रथ ॥ ३ ॥ बारह पुरुष अर्थात् बारह बिलांयद लम्बाईमें से एक २ की लम्बाई कम करके कमसे कम छः बिलांयदकी लम्बाई तक के ारके रथ होते हैं। अर्थात् सबसे बड़ा रथ बारह बिलांयद लम्बा,

फिर एक २ कम करके, ग्यारह, दस, नौ, आठ, सात तथा छः बिलांयद् तक का लम्बा, ये सात प्रकारके रथ होते हैं, इनकी ऊंचाई भी लम्बाईके अनुसार ही कम करदेनी चाहिये ॥ ४ ॥

देवरथपुष्यरथसांग्रामिकपारियाणिकपरपुराभियानिकवैनयिकांश्च रथान्कारयेत् ॥ ५ ॥

भिन्न २ कार्योंमें उपयोग होनेके कारण, रथोंके निम्नलिखित नाम या भेद समझने चाहियें,:— देवरथ (यात्रा तथा उत्सव आदिमें देवप्रतिमाओं की सवारीके लिये काम में आने वाला रथ), पुष्यरथ (विवाह आदि माङ्गलिक कार्योंमें उपयुक्त होने वाला), सांग्रामिक (युद्धमें काम आने वाला), पारियाणिक (साधारण यात्रा करनेके काममें आने वाला) परपुराभियानिक (शत्रुके दुर्ग आदिको तोड़नेके समय उपयोगमें आने वाला), और वैनयिक (घोड़े आदिको चलाना सिखलानेके काममें आने वाला), आदि रथोंका भी रथाध्यक्ष निर्माण करावे ॥ ५ ॥

इष्वस्त्रप्रहरणावरणोपकरणकल्पनाः सारथिरथिकरथ्यानां च कर्मस्वायोगं विद्यात् ॥ ६ ॥ आकर्मभ्यश्च भक्तवेतनं भृतानामभृतानां च योग्यारक्षानुष्ठानमर्थमानकर्म च ॥ ७ ॥

रथाध्यक्षको चाहिये कि वह बाण, तूणीर, धनुष आदि अस्त्र, तोमर गदा आदि प्रहरण, रथ आदिके ऊपर डालनेके आवरण, और लगाम बागडोर आदि उपकरणोंके बनाये जानेके सम्बन्धमें, तथा सारथि (रथ आदिको चलाने वाला), रथिक (रथ आदिको जानने वाला), और रथ्य (रथमें जोते जाने वाले घोड़े) आदिके अपने २ कार्योंमें नियुक्तिके सम्बन्धमें पूरी २ जानकारी रक्खे ॥ ६ ॥ और कार्यके समाप्त होनेतक, नियमित रूपसे कार्य करने वाले शिल्पियोंके भत्त और वेतनका; अनियमित रूपसे कार्य करने वाले, अर्थात् थोड़े ही समयके लिये नियुक्त किये हुए शिल्पियोंके निर्वाह और कार्यके योग्य धन तथा सत्कार आदिका सुव्यवस्थित प्रबन्ध करे ॥ ७ ॥

एतेन पत्त्यध्यक्षो व्याख्यातः ॥ ८ ॥ स मौलभृतश्रेणिमित्रामित्राटवीबलानां सारफल्गुतां विद्यात् ॥ ९ ॥

रथाध्यक्षके व्यापारके समान ही पत्त्यध्यक्षका भी व्यापार समझलेना चाहिये ॥ ८ ॥ तथा इसके अतिरिक्त पत्त्यध्यक्षको चाहिये, कि वह मौल बल (मूलस्थान अर्थात् राजधानीमें होने वाली, या उसकी रक्षा करने वाली सेना) भृतबल (मौलसे अन्य वेतन भोगी सेना) श्रेणिबल (प्रथम

भिन्न २ स्थानोंपर रहने वाली सेना) मित्रबल (मित्र राजाकी सेना) अमित्रबल (अपने शत्रु राजकी सेना), और अटवीबल (जंगलमें रहने वाली सेना, अथवा जंगलकी रक्षा करने वाले अधिकारियोंके उपयोगमें आने वाली सेना), इन छः प्रकारकी सेनाओंकी सारता तथा फल्गुताको अच्छी तरह जाने। अर्थात् इनके सामर्थ्य या असामर्थ्य से अच्छी तरह परिचित रहे ॥ ९ ॥

निम्नस्थलप्रकाशकूटखनकाकाशदिवारात्रियुद्धव्यायामं च विद्यात् ॥ १० ॥ आयोगमयोगं च कर्मसु ॥ ११ ॥

और निम्नयुद्ध (जंगल तथा नीचे स्थानोंमें युद्ध करना), स्थलयुद्ध (मैदानमें होनेवाली लड़ाई), प्रकाशयुद्ध (आमने सामने भिड़कर होने वाली लड़ाई), कूटयुद्ध (कपट पूर्वक होने वाली लड़ाई), खनकयुद्ध (खाई खोदकर होनेवाली लड़ाई), आकाशयुद्ध (हवाई जहाजोंसे होने वाली लड़ाई), दिवायुद्ध (दिनमें होने वाली लड़ाई), और रात्रियुद्ध (रातमें होने वाली लड़ाई), इन आठ प्रकारके युद्धोंमें पत्त्यध्यक्षको अत्यन्त निपुण होना चाहिये ॥ १० ॥ देशकालके अनुसार सेनाओंके कार्योंमें उपयोग और अनुपयोग के सम्बन्ध में भी पत्त्यध्यक्ष को पूरी जानकारी रखनी चाहिये ॥ ११ ॥

तदेव सेनापतिः सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविनीतो हस्त्यश्वरथचर्यासंघुष्टश्चतुरङ्गस्य बलस्यानुष्ठानाधिष्ठानं विद्यात् ॥ १२ ॥

अश्वाध्यक्षसे लगाकर पत्त्यध्यक्ष पर्यन्त, सेनाके चार अङ्गोंका जो कुछ कार्य बताया गया है, उस सब कार्यको सेनापति जाने। सेनापतिको हर तरहके युद्ध और हथियार आदिके चलाने तथा आन्वीक्षिकी आदि शास्त्रोंमें पूर्ण शिक्षित होना चाहिये, हाथी घोड़े रथ आदिके चलानेमें भी अत्यन्त निपुण होना चाहिये। और अपनी चतुरंग सेनाके कार्य तथा स्थानके सम्बन्ध में पूरी जानकारी रखनी चाहिये ॥ १२ ॥

स्वभूमिं युद्धकालं प्रत्यनीकमभिन्नभेदनं भिन्नसंधानं संहतभेदनं भिन्नवधं दुर्गवधं यात्राकालं च पश्येत् ॥ १३ ॥

इसके अतिरिक्त सेनापतिके ये आवश्यक कार्य हैं, कि वह अपनी भूमि, युद्धका समय, शत्रुकी सेना, शत्रुके व्यूहका तोड़ना, बिखरी हुई अपनी सेनाका इकट्ठा करना, एक दूसरेकी रक्षाके लिये इकट्ठे हुए शत्रु बलको फोड़ना बिखरे हुए शत्रु बलका मारना, शत्रुके दुर्गोंका तोड़ना, और यात्रा

का समय; इन बातोंपर अच्छी तरह विचार करे; और उसके अनुसार कार्य करे ॥ १३ ॥

तूर्यध्वजपताकाभिर्व्यूहसंज्ञाः प्रकल्पयेत् ।
स्थाने याने प्रहरणे सैन्यानां विनये रतः ॥ १४ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे रथाध्यक्षः पत्त्यध्यक्षः सेनापतिप्रचारश्च त्रयस्त्रिंशो ऽध्यायः ॥३३॥ आदितः चतुष्पञ्चाशः ॥५४॥

सेनाओंकी शिक्षामें तत्पर हुआ २ सेनापति, स्थान, गमन और प्रहरण के सम्बन्धमें, बाजे, ध्वजा और झंडियोंके द्वारा अपनी सेनाके लिये इशारोंकी व्यवस्था करे। तात्पर्य यह है, कि युद्धके समयमें, सेनापति अपनी सेनाका संचालन करनेके लिये इस प्रकारके संकेतोंका प्रयोग करे, जिसेकि शत्रु, किसी तरहभी न समझ सके। ये संकेत बाजे या झंडियोंके द्वारा होने चाहियें॥१४॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें तेतीसवां अध्याय समाप्त।

चौंतीसवां अध्याय

५२-५३ प्रकरण

मुद्राध्यक्ष और विवीताध्यक्ष

व्यावहारिक लेख आदिमें जो राजकीय चिन्ह किया जाता है, उसीका नाम 'मुद्रा' है। उसका जो प्रधान राजकीय अधिकारी हो उसको 'मुद्राध्यक्ष' कहते हैं। चरागाहका नाम विवीत है, उसके प्रधान व्यवस्थापक राजकर्मचारीको 'विवीताध्यक्ष' कहते हैं। इन दो प्रकरणोंमें दोनों अध्यक्षोंके कार्योंका निरूपण किया जायगा।

मुद्राध्यक्षो मुद्रां माषकेण दद्यात् ॥ १ ॥ समुद्रो जनपदं प्रवेष्टुं निष्क्रमितुं वा लभेत ॥ २ ॥

मुद्राध्यक्ष, एक माषक लेकर आने जानेवाले व्यक्तिको मुद्रा देदेवे; तात्पर्य यह है, कि जो पुरुष नगरमें आवें, अथवा वहांसे बाहर जावें, उनको राजकीय मुहर लगा हुआ परवाना देनेके बदलेमें उनसे एक माषक लिया जावे। (यह इसीलिये होता है कि जिससे आने जानेवाले पुरुषोंपर चोर, या शत्रुके चर आदि होनेकी शङ्का न की जा सके। एक माषक टैक्स सरकारी खजानेके लिए लिया जाता है) ॥ १ ॥ जिस आदमीके पास राज-

कीय मुद्रा हो, वही जनपदमें प्रवेश कर सकता है, और वही वहांसे बाहर जा सकता है ॥ २ ॥

द्वादशपणममुद्रो जानपदो दद्यात् ॥ ३ ॥ कूटमुद्रायां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ४ ॥ तिरोजनपदस्योत्तमः ॥ ५ ॥

राजाके अपने ही जनपदमें रहनेवाला यदि कोई पुरुष राजकीय मुद्रा न लेवे तो उसे बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ ३ ॥ यदि कपटमुद्रा (टैक्स से बचनेके लिए बनावटी मुहर) लेकर आना जाना चाहे, तो उस पुरुषको (यदि वह अपनेही जनपदका हो, तो) प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥४॥ यदि वह अन्य किसी प्रदेशका हो, तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५ ॥

विवीताध्यक्षो मुद्रां पश्येत् ॥ ६ ॥ भयान्तरेषु च विवीतं स्थापयेत् ॥ ७ ॥

विवीताध्यक्षका कार्य है, कि जो पुरुष मुद्रा न लेकर या कपटमुद्रा लेकर, ठीक मार्गोंसे न जाकर छिप २ कर जंगलोंमें होकर सफर करते हैं, ऐसे पुरुषोंके समीप मुद्रा की जांच करे, अर्थात् यह देखे कि इन लोगोंके पास मुद्रा है या नहीं ? यदि है तो कैसी है ? ॥ ६ ॥ जिन स्थानोंमें चोर या शत्रु और उसके चर आदि पुरुषोंके आने जानेकी अधिक शंका या सम्भावना हो, ऐसे ही स्थानोंमें चरागाहकी स्थापना कीजावे ॥ ७ ॥

चोरव्यालभयान्निम्नारण्यानि शोधयेत् ॥ ८ ॥ अनुदके कूपसेतुबन्धोत्सान्स्थापयेत्पुष्पफलवाटांश्च ॥ ९ ॥ लुब्धकश्वगणिनः परिव्रजेयुररण्यानि ॥ १० ॥

चोर और हिंसक जानवरोंके डरसे, गहरी खाईयों और घने जंगलोंका परिशोध करावें, अर्थात् इन स्थानोंमें चोर या हिंसक जानवर तो नहीं रहते? इस बातकी बराबर परीक्षा करवाता रहे ॥ ९ ॥ जिन स्थानोंमें जलका अच्छा प्रबन्ध न हो, वहां पक्के कुए, पक्के तालाब तथा थोड़े समयके लिये कच्चे कुओंका भी प्रबन्ध करे । इसीप्रकार फूल तथा फलोंके बगीचे और प्याऊ आदिकी भी स्थापना कीजावे; अर्थात् स्थानोंकी आवश्यकताके अनुसार इनका भी प्रबन्ध किया जावे । शिकारी और बहेलिये जंगलोंमें बराबर घूमते रहें । (इनके घूमनेका मुख्य प्रयोजन, चोर तथा शत्रुओंके आने जानेका मालूम करना ही चाहिये ॥ १० ॥

चोर या शत्रुओंके आजानेपर, अन्तपालको उनकी सूचना देनेके लिये, पहाड़ अथवा वृक्ष आदिपर चढ़कर शङ्ख या दुन्दुभिको इसप्रकार बजावे, जिससे कि शत्रु या चोरोंको उस संकेतका कुछ पता न लगे, और अन्तपालको सब तरहकी सूचना मिलजाय। अथवा शीघ्रगामी घोड़ोंपर चढ़कर, अन्तपालके पास जाकर ही, उन सबकी उसे सूचना देवें ॥ ११ ॥

अमित्राटवीसंचारं च राज्ञो गृहकपोतैर्मुद्रायुक्तैर्हारयेयुः, धूमाग्निपरंपरया वा ॥ १२ ॥

अपने जंगलमें आये हुए शत्रुओंकी, राजाको सूचना देनेके लिये, राजाकी मुद्रा लगे हुए, घरके पालतू कबूतरोंके द्वारा समाचार भिजवावें। तात्पर्य यह है कि उन सब खबरोंको चिट्ठीपर लिखकर और उसपर राजाकी मुहर लगाकर उन्हें, पालतू कबूतरोंके द्वारा राजाके पास भिजवा देवें। अथवा धूम और अग्निकी परम्परासे उस समाचारको राजातक पहुंचावें। इसका तात्पर्य यह है, कि जहां जंगलमें शत्रु आदि आये हुए हों वहां पासमें ही जो विवीताध्यक्ष आदि राजकर्मचारी हों, वे यदि रातका समय हो तो आग जलादें, और दिनका समय हो तो धुआं करदें। तदनन्तर इस संकेतको देखकर वहांसे राजधानीकी ओरको कोसभरके फासलेपर जो कर्मचारी हो वह भी इसप्रकार अग्नि या धुएंका संकेत करे; और इसी संकेतके अनुसार परम्परासे, राजधानी तक वह समाचार पहुंचा दिया जावे ॥ १२ ॥

द्रव्यहस्तिवनाजीवं वर्तिनीं चोररक्षणम्।
सार्थातिवाह्यं गोरक्ष्यं व्यवहारं च कारयेत् ॥ १३ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे मुद्राध्यक्षो विवीताध्यक्षः चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥
आदितः पञ्चपञ्चाशः ॥ ५५ ॥

विवीताध्यक्षका यह भी कार्य है कि वह द्रव्यवन और हस्तिवनोंमें जो आजीव अर्थात् घास ईंधन और कोयले आदि हों, उनका प्रबन्ध करे। तथा वर्तनी (दुर्गके मार्गसे यात्रा करनेका टैक्स), चोरोंसे कीहुई रक्षाका टैक्स (अर्थात् चोरोंके उपद्रवसे, व्यापारियोंकी रक्षा करनेपर, उसके बदलेमें उनसे लिया हुआ टैक्स,) भयके स्थानमें होकर व्यापारियोंके सुखपूर्वक यात्रा करवा देनेका टैक्स, गोरक्षाका टैक्स, तथा इन पदार्थोंके क्रय विक्रयके व्यवहारका भी प्रबन्ध करवावे ॥ १३ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें चौंतीसवां अध्याय समाप्त।

पैंतीसवां अध्याय ।

५४-५५ प्रकरण ।

[illegible]र्त्ताका कार्य; गृह-पति वैदेहक तथा तापसके वेशमें गुप्तचर ।

दुर्ग, जनपद, खान, जंगल, व्रज, व्यापारी मार्ग आदि सम्पूर्ण आयस्थानोंसे सब तरहकी आयको इकट्ठा करने वाले प्रधान राज-कर्मचारीका नाम 'समाहर्त्ता' है । उसहीके कार्योंका पहले प्रक-रणमें निरूपण किया जायगा । दूसरे प्रकरणमें गृहपति आदिके वेशमें रहने वाले गुप्तचरोंके कार्योंका निरूपण होगा ।

[स]माहर्ता चतुर्धा जनपदं विभज्य ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठविभा-[ग]माग्रं परिहारकमायुधीयं धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टिकर-[प्र]मिदमेतावदिति निबन्धयेत् ॥ १ ॥ तत्प्रदिष्टः पञ्चग्रामीं [दशग्रा]मीं वा गोपश्चिन्तयेत् ॥ २ ॥

[स]माहर्त्ताको चाहिये, कि वह जनपदको चार भागोंमें विभक्त करके, [उन]में भी ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठकी कल्पना करके (ज्येष्ठ कनिष्ठ वि-[भाग]ोंकी मनुष्य-गणना और उपजके आधारपर होना चाहिये) ग्रामोंको [अल]ग पृथक् २ मनुष्य-गणना, और सामूहिक गणना; प्रत्येक गांवका रक़बा, और सम्पूर्ण एक वर्गका रक़बा [चित्र-सहित] तथा उनकी [प्रत्ये]क परिस्थितिको) 'यह इतना है' इसप्रकार अपनी पुस्तकमें लिख लेवे। [जो] दानमें देदिये हों, अर्थात् जिनसे किसी प्रकारकी आमदनी न हो, [उन]को अलहदा लिखलेवे । इसी प्रकार जो गांव, सैनिक पुरुषोंको देवें [अर्थात्] सेनामें भरती होनेके लिये प्रतिवर्ष नियत संख्यक पुरुष देवें), तथा [धान]्य (अन्न आदि), पशु (गाय घोड़ा आदि), हिरण्य (सोना चांदी [तथा] सिक्के आदि), कुप्य (सोने चांदीको छोड़कर अन्य वस्तु), और [विष्टि (]नौकर चाकर), आदिके रूपमें प्रतिवर्ष नियत कर देवें, उनको भी अपनी पुस्तकमें लिखलेवे ॥ १ ॥ समाहर्त्ताकी आज्ञानुसार, पांच २ [या] दस २ गांवोंका एक २ वर्ग बनाकर 'गोप' नामक अधिकारी उनका [प्रबन्ध क]रे । (जनपदके चार विभागोंमेंसे एक २ विभागका प्रबन्ध करने [वाला अ]धिकारी 'स्थानिक' कहाता है । यह 'गोप' नामक अधिकारी, उसके [अधीन] काम करने वाला होता है) ॥ २ ॥

सीमावरोधेन ग्रामाग्रं कृष्टाकृष्टस्थलकेदारारामषण्डवाटवन-वास्तुचैत्यदेवगृहसेतुबन्धश्मशानसत्रप्रपापुण्यस्थानाविवीतपथिसं-ख्यानेन क्षेत्राग्रं, तेन सीम्नां क्षेत्राणां च मर्यादारण्यपथिप्रमाण-संप्रदानविक्रयानुग्रहपरिहारनिबन्धान्कारयेत् ॥ ३ ॥ गृहाणाञ्च करदाकरदसंख्यानेन ॥ ४ ॥

ग्रामोंके परिमाणको नदी पहाड़ आदिकी सीमाका निर्देश करके लिखे, अर्थात् नदी पहाड़ आदिके द्वारा उनकी सीमाका निश्चय करके फिर उनके परि-माणको किताबमें लिखे। इसी प्रकार खेतोंके परिमाणको भी निम्नलिखित कृष्ट आदि अठारह वस्तुओंके साथ २ लिखे; अर्थात् खेत आदिके परिमाणका निश्चय करके, जब किताबमें उसे लिखे, तो साथ ही साथ उससे सम्बन्ध रखने वाली कृष्ट आदि वस्तुओंका भी निर्देश करे। वे इस प्रकार हैं:—कृष्ट (जो ज़मीन खेती करनेके काममें आती हो, अर्थात् जिन ज़मीनोंमें खेती होती हो, उनमें बने हुए खेतोंके साथ लिखदिया जाय कि इनमें खेती होती है), अकृष्ट (जहां खेती न होती हो। अथवा 'कृष्ट' का अर्थ कृष्टपच्य [कठिनतासे पकने वाले] गेहूं आदिके खेत, और 'अकृष्ट' का अर्थ अकृष्टपच्य [थोड़ी मिहनतसे ही पक जाने वाले] धान आदिके खेत, करना चाहिये), स्थल (इधर उधरकी भूमिसे कुछ ऊँची भूमि जो ज्वार बाजरा आदिके लिये उपयोगी हो), केदार (साठी आदि धानोंके खेत), आराम (बागीचोंके खेत), षण्ड (केले आदिके खेत), वाट (ईख आदिके खेत), वन (ग्रामवासी पुरुषोंके लिये लकड़ीके जंगल), वास्तु (आबादीकी ज़मीन), चैत्य (संकेतके वृक्ष), देवगृह (देवालय आदि की भूमि), सेतुबन्ध (जिसमें तालाब आदि हों), श्मशान, सत्र (अन्न देने-का स्थान), प्रपा (प्याऊ), पुण्यस्थान (तीर्थ आदि पवित्र स्थान), विवीत (चारागाह), और रथ गाड़ी तथा पैदल आने जानेके मार्ग। इसप्रकार पुस्त-कमें जिस खेतके परिमाणका उल्लेख किया जावे, उसके साथही इन चीज़ोंमेंसे जो वहां हो उसका भी निर्देश करदिया जावे। इसीके अनुसार नदी पहाड़ आदि सीमाओंकी और खेतोंकी मर्यादा (अवधि, अर्थात् इनके चारों ओर क्या क्या चिन्ह हैं, इसबात) का भी पुस्तकमें उल्लेख करदिया जावे, इसी प्रकार अरण्य (ऐसे जंगल जो ग्रामवासियोंके किसी काममें न आते हों), खेतोंमें आने जानेके मार्ग, उनका अपना २ पृथक् परिमाण, सम्प्रदान (किस पुरुषने किसको अपना खेत जोतने आदिके लिये दिया हुआ है), विक्रय, अनुग्रह (आवश्यकता होनेपर किसान आदिको ऋण देकर उसकी सहायता करना)

और परिहार (कर आदिका छोड़ना), आदिक सम्बन्धकी भी सब बातोंका उल्लेख करदिया जावे ॥ ३ ॥ और आवासोंके घरोंका भी, कर देने वाले तथा कर न देनेवालोंके विचारसे उल्लेख किया जावे। अर्थात् कितने घरोंमें कर देने-वाले ('कर' का अर्थ यहां, मकानका किराया, और भूमिका कर दोनों प्रकारसे करना चाहिये) पुरुष रहते हैं, और कितने घरोंमें कर न देनेवाले ॥ ४ ॥

तेषु चैतावच्चातुर्वर्ण्यमेतावन्तः कर्षकगोरक्षकवैदेहककारुकर्म-करदासाश्चैतावच्च द्विपदचतुष्पदमिदं च हिरण्यविष्टिशुल्कदण्डं समुत्तिष्ठतीति ॥ ५ ॥

पुस्तकमें इसबातका भी उल्लेख किया जावे, कि उन घरोंमें इतने ब्राह्मण, इतने क्षत्रिय, इतने वैश्य और इतने शूद्र रहते हैं; इसीतरह किसान, गोपालक (ग्वाले) व्यापारी, शिल्पी, कर्मकर (मज़दूर) और दासोंकी संख्याको भी पुस्तकमें लिखा जावे। फिर सम्पूर्ण मनुष्य, और पशुओंके जोड़को पृथक् २ लिखा जाय, अर्थात् सब मिलाकर इतने मनुष्य और इतने पशु हैं। और इनसे इतना हिरण्य, इतने नौकर चाकर, इतना टैक्स और इतना दण्ड प्राप्त हुआ है। अर्थात् इन चारों प्रकारोंसे इतनी आमदनी हुई है, यह भी पुस्तकमें लिख लिया जावे ॥ ५ ॥

कुलानां च स्त्रीपुरुषाणां बालवृद्धकर्मचरित्राजीवव्ययपरिमाणं विद्यात् ॥ ६ ॥

ग्रामके गोप नामक अधिकारीको चाहिये, कि वह परिवारके साथ सम्बन्ध रखने वाले स्त्री पुरुषोंके परिमाणको (अर्थात् एक परिवारमें कितने पुरुष और कितनी स्त्री हैं, उनकी तादादको), तथा बालक वृद्ध (अर्थात् उस परिवारमें कितने बालक और कितने बूढ़े हैं), उन सब पुरुषोंके वर्ण आदिके अनुसार कार्य, उनके चरित्र, उनकी आजीविका और व्ययके सम्बन्धमें पूरी २ जानकारी रक्खे। अर्थात् प्रत्येक परिवारकी उपर्युक्त परिस्थितियोंसे पूर्ण परिचित रहे ॥ ६ ॥

एवं च जनपदचतुर्भागं स्थानिकः चिन्तयेत् ॥ ७ ॥ गोपस्थानिकस्थानेषु प्रदेष्टारः कार्यकरणं बलिप्रग्रहं च कुर्युः ॥ ८ ॥

इसी प्रकार जनपदके चौथे हिस्सेका प्रबन्ध स्थानिक (इस नामका अधिकारी) करे ॥ ७ ॥ गोप और स्थानिकके कार्य्य करनेके स्थानोंमें, प्रदेष्टा (इस नामका कण्टक शोधनाधिकारी; देखो कण्टकशोधन, चतुर्थ अधिकरण) भी राज्य कण्टकोंके उखाड़नेका अपना कार्य करें; और गोप तथा

स्थानिकको स्वयम् ही टैक्स आदि न देनेवाले पुरुषोंसे, टैक्स आदि भी वसूल करें। अथवा राष्ट्रमें जो बलवान् होकर राज्य प्रबन्धमें विघ्न उपस्थित करते हैं उनका दमन करें, अर्थात् उनको इस प्रकार सीधा करें, जिससे कि वे गोप और स्थानिक अधिकारियोंके भी आज्ञाकारी होजावें ॥ ८ ॥

समाहर्तृप्रदिष्टाश्च गृहपतिकव्यञ्जना येषु ग्रामेषु प्रणिहिता-स्तेषां ग्रामाणां क्षेत्रगृहकुलाग्रं विद्युः ॥ ९ ॥ मानसंजाताभ्यां क्षेत्राणि भोगपरिहाराभ्यां गृहाणि वर्णकर्मभ्यां कुलानि च ॥ १० ॥

समाहर्त्ताकी आज्ञानुसार गृहपति (गृहस्थ) के वेशमें रहनेवाले गुप्तचर जिन ग्रामोंमें नियुक्त किये जावें, उन ग्रामोंके क्षेत्र (रकबा अथवा खेत आदि), घर और परिवारोंके परिमाणको अच्छी तरह जानें ॥ ९ ॥ वे गुप्तचर पुरुष, गांवके रकबे या खेत आदिकोंको उनके मान और उनकी उपजके साथ जानें; अर्थात् खेतोंके सम्बन्धमें जाननेकी यही बात है, कि उनका ठीक परिमाण कितना है और उनमें क्या २ उपज होती है। इसी प्रकार घरोंके सम्बन्धमें यह जानें, कि कौनसे घरोंसे कर वसूल किया जाता है, और कौनसे घरोंपर कर छोड़ा हुआ है। तथा कुलोंके (परिवारों के) सम्बन्धमें जानने की यह बात है, कि वे कौन वर्ण हैं (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिमें से), और क्या कार्य करते हैं ॥ १० ॥

तेषां जंघाग्रमायव्ययौ च विद्युः ॥ ११ ॥ प्रस्थितागतानां च प्रवासावासकारणमनर्थ्यानां च स्त्रीपुरुषाणां चारप्रचारं च विद्युः ॥ १२ ॥

उन परिवारोंके सब प्राणियों की संख्या (सूत्रमें 'जंघाग्रं' शब्द है, जंघा शब्द चलने फिरनेवालोंका उपलक्षण है, इसलिये यहां पर परिवारके मनुष्य और पशु आदि सबकी ही गणना अपेक्षित है) और उनके सम्बन्धसे होनेवाले आय-व्ययको भी जानें ॥ ११ ॥ अपने निवास स्थानको छोड़कर दूसरी जगह बसनेके लिए जानेवाले, दूसरे प्रदेश से उठकर यहां बसनेके लिये आनेवाले, पहिले यहांसे उठकर और कहीं जाकर फिर उसी स्थानपर लौटकर आनेवाले पुरुषोंके प्रवास (अपने निवास-स्थानको छोड़कर जाना) और आवास (दूसरी जगह जाकर बसना) के कारणको जानें। राजोपयोगी कुछ भी कार्य न करनेवाले स्त्री (नर्त्तकी, कुट्टनी आदि) पुरुषों (भांड, जुआरी आदि) के प्रवास और आवासको भी जानें। तथा यह भी जानें, कि शत्रुके द्वारा प्रयुक्त हुए २ गुप्तचर कहां २ पर अपना कार्य कररहे हैं ॥ १२ ॥

वनकर्मान्तक्षेत्रजानां परिमाणमर्घं च विद्युः ॥ १३ ॥ परभूमिजातानां वा ।सारफल्गुपण्यानां कर्मसु च शुल्कवर्तन्यातिवाहिकगुल्मतरदेयभागभक्तपण्यागारप्रमाणं विद्युः ॥ १४ ॥

इसी प्रकार व्यापारीके वेशमें रहने वाले गुप्तचर, अपने प्रान्तमें उत्पन्न हुई राजकीय विक्रेय खनिज (खानसे उत्पन्न होने वाली), सेतुज (तालाब आदिमें उत्पन्न होने वाली) वनज (जंगलोंमें उत्पन्न होने वाली), कर्मान्तज (कारखाने आदिसे उत्पन्न होने वाली), और क्षेत्रज (खेतोंसे उत्पन्न होने वाली) वस्तुओंके परिमाण और मूल्यको अच्छी तरह जानें ॥ १३ दूसरे प्रदेशोंमें उत्पन्न हुई २, जलमार्ग तथा स्थलमार्गसे अपने देशमें आई हुई, साररूप अथवा फल्गुरूप विक्रेय वस्तुके क्रय विक्रय व्यवहारमें होने वाले परिमाण और मूल्यको जानें। तथा यह भी जानें, कि इन विदेशी वस्तुके व्यापारियोंने शुल्क (शुल्काध्यक्षको दिया जानेवाला टैक्स=चुंगी), वर्त्तनी (अन्तपालको दिया जानेवाला टैक्स), गुल्मदेय (मार्ग रक्षक पुलिसका टैक्स), तरदेय (नाव आदिसे पार होनेका टैक्स), भाग (साझियोंको दिया जानेवाला हिस्सा), भक्त (व्यवहारी पुरुषके बैल आदिके भोजनका व्यय), और पण्यागार (बाज़ारका टैक्स) कितना २ दिया है ॥ १४ ॥

एवं समाहर्तृप्रदिष्टास्तापसव्यञ्जनाः कर्षकगोरक्षकवैदेहकानामध्यक्षाणां च शौचाशौचं विद्युः ॥ १५ ॥ पुराणचोरव्यञ्जनाश्चान्तेवासिनश्चैत्यचतुष्पथशून्यपदोदपाननदीनिपानतीर्थायतनाश्रमारण्यशैलवनगहनेषु स्तेनामित्रप्रवीरपुरुषाणां च प्रवेशनस्थानगमनप्रयोजनान्युपलभेरन् ॥ १६ ॥

इसी तरह समाहर्त्ताकी आज्ञानुसार, तपस्वीके वेशमें रहने वाले गुप्तचर, किसान ग्वाले व्यापारी और अध्यक्षोंकी ईमानदारी या बेईमानीकी जांच रक्खें ॥ १५ ॥ पुराने चोरोंके वेषमें रहने वाले, उन तापस वेषधारी गुप्तचरोंके शिष्य; देवालय, चौराहा, निर्जन स्थान (शून्य स्थान), तालाब, नदी, कुओंके समीपके जलाशय, तीर्थस्थान, मुनियोंके आश्रम, अरण्य पहाड़ तथा घने जंगलोंमें ठहरकर; चोर शत्रु तथा शत्रुसे प्रयुक्त किये हुए तीक्ष्ण और रसद आदि पुरुषोंके, वहां आने ठहरने और जानेके कारणोंका अच्छीतरह पता लगावें ॥ १६ ॥

समाहर्ता जनपदं चिन्तयेदेवमुत्थितः ।
चिन्तयेयुश्च संस्थास्ताः संस्थाश्चान्याः स्वयोनयः ॥ १७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे समाहर्तृप्रचारो गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनप्रणिधयश्च पञ्चत्रिंशो ऽध्यायः ॥ ३५ ॥

आदितः षट्पञ्चाशः ॥ ५६ ॥

इसप्रकार अपने कार्योंमें तत्पर हुआ २ समाहर्त्ता, जनपदका सुप्रबन्ध करे। और समाहर्त्ताकी आज्ञानुसार कार्य करते हुए, गृहपति आदिके वेषमें रहने वाले गुप्तचरोंके संघ, तथा राज्य रक्षाके निमित्त इसी प्रकारके बनाये हुए और भी संघ, सदा जनपदके सुप्रबन्धकी चिन्तामें रहें ॥ १७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें पैंतीसवां अध्याय समाप्त।

छत्तीसवां अध्याय ।

५६ प्रकरण ।

नागरिकका कार्य ।

नगरका प्रबन्ध करनेके लिये नियुक्त हुए अधिकारीका नाम 'नागरिक' है। इस प्रकरणमें उसहीके कार्योंका निरूपण किया जायगा।

समाहर्तृवन्नागरिको नगरं चिन्तयेत् ॥ १ ॥ दशकुलीं गोपो विंशतिकुलीं चत्वारिंशत्कुलीं वा ॥ २ ॥ स तस्यां स्त्रीपुरुषाणां जातिगोत्रनामकर्मभिः जंघाग्रमायव्ययौ च विद्यात् ॥ ३ ॥

जिस प्रकार समाहर्त्ता, जनपदके कार्यकी चिन्ता करता है, इसीप्रकार नागरिक नगरके प्रबन्धकी चिन्ता करे। अर्थात् समाहर्त्ता जिस प्रकार जनपदके चार विभाग करके गोप और स्थानिककी सहायतासे उसका प्रबन्ध करता है, इसी तरह नागरिक भी करे ॥ १ ॥ उत्तम हों तो दसकुल, मध्यम बीसकुल और अधम चालीस कुलोंका, गोप नामक अधिकारी प्रबन्ध करे ॥ २ ॥ वह उन कुलोंमें विद्यमान स्त्री पुरुषोंके वर्ण, गोत्र, नाम और कार्योंके साथ २, उनकी संख्या और उनके आय व्ययको भी जाने ॥ ३ ॥

एवं दुर्गचतुर्भागं स्थानिकश्चिन्तयेत् ॥ ४ ॥ धर्मावसथिनः पाषण्डिपथिकानावेद्य वासयेयुः ॥ ५ ॥ स्वप्रत्ययांश्च तपस्विनः श्रोत्रियांश्च ॥ ६ ॥

इसी प्रकार दुर्गके चौथे हिस्सेका प्रबन्ध स्थानिक करे। अर्थात् वहांपर रहने वाले स्त्री पुरुषोंके वर्ण आदिके साथ २, उनकी संख्या और आय व्ययको भी जाने ॥ ४ ॥ धर्मावसथ अर्थात् धर्मशालाओंके अधिकारी निरीक्षक पुरुष पाखण्डी पथिकोंको, गोपको, निवेदन करकेही (अर्थात् गोपकी अनुमति लेकरही) धर्मशालाओंमें ठहरने देवें ॥ ५ ॥ तथा जिन तपस्वी या श्रोत्रियोंको, धर्मशालाके अधिकारी स्वयं जानते हैं, उनके ठहरनेका प्रबन्ध धर्मशालाओंमें अपने जिम्मेवारीपर ही करें ॥ ६ ॥

कारुशिल्पिनः स्वकर्मस्थानेषु स्वजनं वासयेयुः ॥ ७ ॥ वैदेहकाश्चान्योन्यं स्वकर्मस्थानेषु पण्यानामदेशकालविक्रेतारमस्वकरणं च निवेदयेयुः ॥ ८ ॥

कारु अथवा शिल्पी अपने विश्वस्त यात्री पुरुषोंको, अपने कार्य करनेके स्थानोंमें ठहरालेवें ॥ ७ ॥ व्यापारी, अपने विश्वस्त यात्रियोंको, परस्पर एक दूसरेकी दुकानोंपर ठहरालेवें। परन्तु जो पुरुष देशकालके विपरीत विक्रय करने वाला हो, या पराई चीजका व्यवहार करता हो, उसकी सूचना नागरिकको देदेवें ॥ ८ ॥

शौण्डिकपाक्वमांसिकौदनिकरूपाजीवाः परिज्ञातमावासयेयुः ॥ ९ ॥ अतिव्ययकर्तारमत्याहितकर्माणं च निवेदयेयुः ॥१०॥

मद्य बेचने वाले, पका मांस बेचने वाले, पका हुआ अन्न बेचने वाले (अर्थात् होटल वाले), और वेश्यायें; ये सब अपने परिचित आदमीको (अर्थात् अपने कार्य या शील आदिकी समानतासे परिचित हुए २ पुरुषको) अपने यहां ठहरा सकते हैं ॥ ९ ॥ जो पुरुष अत्यधिक व्यय करने वाला हो, अथवा अत्यधिक मात्रामें मद्य आदि पीवे; उसकी सूचना गोप अथवा स्थानिकको देदीजावे ॥ १० ॥

चिकित्सकः प्रच्छन्नव्रणप्रतीकारकारयितारमपथ्यकारिणं च गृहस्वामी च निवेद्य गोपस्थानिकयोर्मुच्येतान्यथा तुल्यदोषः स्यात् ॥ ११ ॥

जो पुरुष हथियार आदिसे लगे हुए घावोंकी छिपे तौरपर चिकित्सा कराता है, और रोग या मरी आदिको फैलाने वाले द्रव्योंको छिपे तौरपर ही उपयोग करता है, उसकी चिकित्सा करने वाला चिकित्सक, यदि गोप या स्थानिकको उसके सम्बन्धमें सूचना देदेता है, तो वह अपराधी नहीं समझा जासकता। यदि चिकित्सक सूचना न देवे, तो अपराधीके समान ही उसको

भी दण्ड दिया जाय । इसी प्रकार जिस घरमें यह कार्य हो, उस घरका मालिक भी इस तरहके पुरुषोंको, गोप या स्थानिकको सूचना देकर अपराधसे मुक्त होसकता है; यदि वह सूचना न देवे, तो उसे भी अपराधीके समान ही दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥

अस्थितागतौ च निवेदयेत् ॥ १२ ॥ अन्यथा रात्रिदोषं भजेत ॥ १३ ॥ क्षेमरात्रिषु त्रिपणं दद्यात् ॥ १४ ॥

घरके मालिकको चाहिये, कि वह घरसे जानेवाले या घरमें आने वाले पुरुषकी सूचना गोप आदिको देवे ॥ १२ ॥ सूचना न देनेपर, यदि वे लोग रात्रिमें कोई चोरी आदिका अपराध करें, तो उसका भागी गृहस्वामीको होना पड़ेगा; अर्थात् गृहस्वामी उसका उत्तरदाता होगा ॥ १३ ॥ यदि वे लोग चोरी आदिका कोई अपराध न करें, तो भी जाने आनेकी सूचना न देनेके कारण गृहस्वामीको प्रतिरात्रि तीन पण दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥

पथिकोत्पथिकाश्च बहिरन्तश्च नगरस्य देवगृहपुण्यस्थानवनश्मशानेषु सव्रणमनिष्टोपकरणमुद्भाण्डीकृतमाविग्नमतिस्वप्नमध्वक्लान्तमपूर्वं वा गृह्णीयुः ॥ १५ ॥

व्यापारी आदिके वेषमें बड़े २ मार्गोंपर घूमने वाले चर, तथा ग्वाले लकड़हारे आदिके वेषमें रास्तोंको छोड़कर जंगलोंमें घूमने वाले चर; नगरके भीतर या बाहर बने हुए देवालयों, तीर्थस्थानों, जंगलों या श्मशानोंमें यदि किसी हथियार आदिके घाव लगे हुए, निषिद्ध (हथियार या विष आदि) वस्तुओंको पास रखने वाले, शक्तिसे अधिक भार उठाये हुए, डरे या घबड़ाये हुए, घोर निद्रामें सोये हुए, लम्बा सफ़र करनेके कारण थके हुए, या अन्य किसी अजनबी आदमीको देखें, तो उसे पकड़ लेवें; अर्थात् पकड़कर नागरिक आदि किसी अधिकारीके सुपुर्द करदेवें ॥ १५ ॥

एवमभ्यन्तरे शून्यनिवेशावेशनशौण्डिकौदनिकपाक्वमांसिकद्यूतपाषण्डावासेषु विचयं कुर्युः ॥ १६ ॥

इसी प्रकार नगरके अन्दर, शून्य स्थानमें (अर्थात् खाली पड़े हुए मकानोंमें), शिल्पशालामें (आवेशन), मद्यकी दूकानों, होटलों, पका मांस बेचने वालोंकी दूकानों, जुआरियोंके स्थानों तथा पाखण्डियोंके रहनेके स्थानोंमें भी, उपर्युक्त हथियारके घाव वाले पुरुषों आदि का अन्वेषण किया जावे। अर्थात् गुप्त पुरुष उन स्थानों में उनको ढूंढकर नागरिक आदि के सुपुर्द करदें ॥ १६ ॥

अग्निप्रतीकारं च ग्रीष्मे मध्यमयोरह्नश्चतुर्भागयोः ॥ १७ ॥ अष्टभागो ऽग्निदण्डः ॥ १८ ॥ बहिरधिश्रयणं वा कुर्युः ॥१९॥

गरमी की मौसम में, दिनके बीचके चार भागोंमें अग्निका प्रतीकार किया जावे, अर्थात् अग्नि जलानेका निषेध किया जावे। (यह निषेध फूंस आदिके बनेहुए मकानोंके लिये ही समझना चाहिये) ॥ १७ ॥ जो पुरुष इस आज्ञाका उल्लंघन करें; अर्थात् गरमीकी मौसममें दिनके दूसरे तीसरे पहर मध्यान्हके समयमें, फूंसके मकानोंके अन्दर आग जलावें, उन्हें एक पणका आठवां हिस्सा दण्ड दिया जावे ॥ १८ ॥ अथवा अग्नि सम्बन्धी कार्य को बाहर करें अर्थात् फूंस के मकानों से बाहर खुली जगह में करें ॥ १९ ॥

पादः पञ्चघटीनां, कुम्भद्रोणीनिश्रेणीपरशुशूर्पाङ्कुशकचग्रहणीदृतीनां चाकरणे ॥ २० ॥

यदि कोई पुरुष निषिद्ध समयमें पांच घटिका पर्यन्त अग्निका कार्य करे, तो उसे चौथाई पण दण्ड दिया जावे। और उस पुरुषको भी चौथाई पण दण्ड दिया जावे, जोकि गरमीकी मौसममें अपने घरके दरवाजेके सामने, पानी-से भरे हुए घड़े, पानीसे भरी हुई द्रोणी (लकड़ीकी बनी हुई बहुत बड़ी नांदसी), नसेनी (लकड़ी आदिकी सीढ़ी) कुल्हाड़ा (आग लगनेपर रस्सी आदि काटनेके लिये), सूप छाज, सामनेसे फैलते हुए धुएंको रोकनेके लिये), अंकुश (कौंचा, लम्बे बांस आदिमें आगे लगा हुआ लोहेका हुक; यह आग लगनेपर भीतरसे सामान निकालनेके काममें आता है), कचग्रहणी (छप्पर-के ऊपरके फूंसको उतारनेके लिये एक विशेष साधन), और चमड़ेकी मशकका इन्तजाम न रक्खें। क्योंकि गरमीमें आगसे बचनेके लिये इन चीजोंका संग्रह करना अत्यन्त आवश्यक है ॥ २० ॥

तृणकटच्छन्नान्यपनयेत् ॥ २१ ॥ अग्निजीविन एकस्थान् वासयेत् ॥ २२ ॥ स्वगृहप्रद्वारेषु गृहस्वामिनो वसेयुरसंपातिनो रात्रौ ॥ २३ ॥ रथ्यासु कटव्रजाः सहस्रं तिष्ठेयुः ॥ २४ ॥ चतुष्पथद्वारराजपरिग्रहेषु च ॥ २५ ॥

फूंस और चटाईके मकानोंको गरमीके मौसममें उठादिया जावे ॥ २१ ॥ अग्निके द्वारा जीविका करने वाले लुहार बढ़ई आदिको, नगरके एक ओर इक-ट्ठाही बसाया जावे ॥ २२ ॥ घरोंके मालिक लोग रात्रिमें इधर उधर न जाकर अपने घरके दरवाजोंपर ही निवास करें ॥ २३ ॥ गलियों या बाजारोंमें एक

हज़ार जलके भरे हुए घड़ोंका सदा प्रबन्ध रहे ॥ २४ ॥ और इसी प्रकार चौराहे, नगरके प्रधान द्वार, राजपरिग्रहों (खजाना, कुप्यागार, कोष्ठागार पण्यागार, गजशाला, अश्वशाला आदि) में भी जलके भरे हुए हज़ार २ घड़ोंका प्रबन्ध करना चाहिये ॥ २५ ॥

प्रदीप्तमनभिधावतो गृहस्वामिनो द्वादशपणो दण्डः ॥२६॥ षट्पणोऽवक्रयिणः ॥ २७ ॥ प्रमादाद्दीप्तेषु चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ २८ ॥ प्रादीपिकोऽग्निना वध्यः ॥ २९ ॥

यदि घरमें लगी हुई आगको देखकरभी कोई गृहस्वामी उसका प्रबन्ध न करे, तो उसे बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ २६ ॥ और ऐसा ही करनेपर छः पण दण्ड उसको दिया जावे, जो पुरुष भाड़ा देकर उस घरमें रहता हो ॥ २७ ॥ यदि असावधानीसे अपने ही घरमें आग लग जावे, तो घरके मालिकोंको चौवन (५४) पण दण्ड दिया जावे। (किसी २ व्याख्याकारने लिखा है कि यह दण्ड उन मकानोंके रक्षकोंको होना चाहिये) ॥ २८ ॥ मकान आदिमें आग लगाने वाले पुरुषको, यदि वह उसी समय पकड़ा जाय तो उसे प्राण दण्ड देना चाहिये। (कालान्तरमें पकड़े जानेपर भी उसे अग्निदाह द्वारा प्राण दण्ड देनेका विधान 'कण्टकशोधन' अधिकरणमें किया जायगा (देखोः— अधि. ४, अध्या ११. सू. २९) ॥ २९ ॥

पांसुन्यासे रथ्यायामष्टभागो दण्डः ॥ ३० ॥ पङ्कोदकसंनिरोधे पादः ॥ ३१ ॥ राजमार्गे द्विगुणः ॥ ३२ ॥

सड़कपर, मट्टी या कूड़ा करकट डालनेवाले पुरुषको $\frac{1}{8}$ (एक पणका आठवां हिस्सा) पण दण्ड दिया जावे ॥ ३० ॥ तथा जो पुरुष, गारा कीचड़ या पानीसे सड़कको रोके, उसे $\frac{1}{4}$ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३१ ॥ जो पुरुष राजमार्गको इसप्रकार रोके, उसे इससे दुगना अर्थात् पहिले अपराधमें $\frac{1}{4}$, और दूसरे अपराधमें $\frac{1}{2}$ पण दण्ड दियाजावे ॥ ३२ ॥

पुण्यस्थानोदकस्थानदेवगृहराजपरिग्रहेषु पणोत्तरा विष्ठादण्डाः ॥ ३३ ॥ मूत्रेष्वर्धदण्डाः ॥ ३४ ॥ भैषज्यव्याधिभयनिमित्तमदण्ड्याः ॥ ३५ ॥

पहिले सूत्रसे, इस सूत्रमें 'राजमार्ग' पदकी अनुवृत्ति करलेनी चाहिये; इसलिये राजमार्ग, पुण्यस्थान (पवित्र तीर्थस्थान) उदकस्थान (कुआं तालाब आदि), देवगृह (देवालय), और राजपरिग्रह (खजाना कोष्ठागार आदि), इन स्थानोंमें जो पुरुष विष्ठा डाले, अर्थात् मलका परित्याग करे, उसे क्रमशो-

पर एक पण अधिक दण्ड देना चाहिये, तात्पर्य यह है, कि राजमार्गपर मल त्याग करने वालेको एक पण, पुण्यस्थानमें त्यागने वालेको दो पण, उदकस्थानमें त्यागनेपर तीन पण, इत्यादि रूपसे दण्ड दिया जावे ॥ ३३ ॥ इन्हीं उपर्युक्त स्थानोंमें मूत्र-त्याग करनेपर, आधा दण्ड दिया जावे। अर्थात् राजमार्गपर मूत्र-त्यागनेपर ½ पण, पुण्यस्थानमें त्यागनेपर एक पण, उदकस्थानमें मूत्र त्यागनेपर डेढ़ (१½) पण, देवालयमें त्यागनेपर दो पण और राजपरिग्रहमें मूत्र-त्याग करनेपर ढाई (२½) पण दण्ड दिया जावे ॥ ३४ ॥ यदि विरेचनकी औषधका सेवन करनेके कारण, या अतीसार तथा प्रमेह आदि बीमारीके कारण, अथवा किसी विशेष भयसे, इसप्रकार उक्त स्थानोंमें मल-मूत्रका त्याग होजावे; तो उस पुरुषको दण्ड न दिया जावे ॥ ३५ ॥

मार्जारश्वनकुलसर्पप्रेतानां नगरस्यान्तरुत्सर्गे त्रिपणो दण्डः ॥ ३६ ॥ खरोष्ट्राश्वतराश्वपशुप्रेतानां षट्पणः ॥ ३७ ॥ मनुष्यप्रेतानां पञ्चाशत्पणः ॥ ३८ ॥

बिलाव, कुत्ता, नेवला, और सांप, इनके मरजानेपर, इनको यदि नगरके समीप या नगरके बीचमें ही छोड़ दिया जावे, तो छोड़ने वाले व्यक्तिको तीन पण दण्ड दिया जावे ॥ ३६ ॥ और यदि गधा, ऊँट, खच्चर तथा घोड़ा आदि पशुओंके मृत-शरीरोंको इस तरह छोड़ दिया जावे, तो छोड़ने वाले पुरुषको छः पण दण्ड दिया जाय ॥ ३७ ॥ इसी प्रकार यदि मनुष्यके मृत शरीरको छोड़ा जाय, तो छोड़ने वालेको पचास पण दण्ड दिया जावे ॥ ३८ ॥

मार्गविपर्यासे शवद्वारादन्यतः शवनिर्णयने पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३९ ॥ द्वाःस्थानां द्विशतम् ॥ ४० ॥ श्मशानादन्यत्र न्यासे दहने च द्वादशपणो दण्डः ॥ ४१ ॥

मुर्दोंके लेजानेके लिये जो मार्ग नियत हैं, उनसे भिन्न मार्गोंसे मुर्दोंको लेजानेपर, तथा नियत द्वारको छोड़कर, दूसरे द्वारसे नगरके बाहर मुर्देको निकालनेपर, प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ३९ ॥ और द्वारके रक्षक पुरुषको, जोकि इसप्रकार मुर्देको लेजानेपर न रोके, दोसौ पण दण्ड दिया जावे ॥ ४० ॥ श्मशानके लिये नियत भूमिको छोड़कर, जो पुरुष मुर्दोंको दूसरी जगह गाड़े या जलावे, उन्हें बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ ४१ ॥

विषण्णालिकमुभयतोरात्रं यामतूर्यम् ॥ ४२ ॥ तूर्यशब्दे राज्ञो गृहाभ्याशे सपादपणमक्षणताडनं प्रथमपश्चिमयामिकम् ॥ ४३ ॥ मध्यमयामिकं द्विगुणं, बहिश्चतुर्गुणम् ॥ ४४ ॥

रात्रिके प्रथम भाग और अन्तिम भागकी छः २ घड़ियोंको छोड़कर दोनों बार रात्रिमें बाजेका बहुत ऊंचा शब्द किया जावे। इसका तात्पर्य यह है, कि रात्रिको प्रथम छः घड़ी व्यतीत होजानेसे लगाकर अन्तिम रात्रि की जब छः घड़ी शेष रहजावें, तो इस बीच समयमें कोई भी आदमी सड़कोंपर न आवे जावे। इस बातकी सूचनाके लिये रातकी पहिली छः घड़ी बीतनेपर बाजेका ऊंचा शब्द किया जावे, इसी प्रकार जब छः घड़ी रात शेष रहजावे, तब भी उस बाजेके शब्दसे ही, उस समयके बीतनेकी सूचना देदी जावे ॥ ४२ ॥ उस रात्रिघोषणाके बाद जो आदमी, राजाके घरके पाससे गुजरता हुआ देखा जावे, उसे असमय चलनेके अपराधमें सवा (१¼) पण दण्ड दिया जावे, परन्तु यह इतना दण्ड निषिद्ध समयकी प्रथम और अन्तिम घड़ीके लिये ही समझना चाहिये ॥ ४३ ॥ जो पुरुष निषिद्ध समयके मध्य प्रहरोंमें ही आवे जावे, उसे इसका दुगना अर्थात् ढाई (२½) पण दण्ड दिया जावे। ये दण्ड नगरके भीतर ही निषिद्ध समयमें चलने फिरनेके हैं। जो पुरुष नगरके बाहर ऐसे समयमें आवे जावे; उसे उक्त दण्डका चौगुना अर्थात् पांच पण दण्ड दिया जावे ॥ ४४ ॥

शङ्कनीये देशे लिङ्गं पूर्वापदाने च गृहीतमनुयुञ्जीत ॥ ४५ ॥ राजपरिग्रहोपगमने नगररक्षारोहणे च मध्यमः साहसदण्डः ॥ ४६ ॥ सूतिकाचिकित्सकप्रेतप्रदीपयाननागरिकतूर्यप्रेक्षाग्निनिमित्तं मुद्राभिश्चाग्राह्याः ॥ ४७ ॥

उक्त निषिद्ध समयमें जो पुरुष शङ्कनीय स्थानों (जहांपर रहनेसे उनके ऊपर चोर आदिकी शङ्का कीजासके, घरके बागीचों आदिमें छिपे हुए, अथवा ऐसे ही अन्य स्थानों) में पाये जावें; या जिनके पास इसी तरहकी शङ्का होजानेके चिन्ह विद्यमान हों, तथा जिनकी चोरी आदिका वृत्तान्त पहिले मालूम होचुका हो, ऐसे पुरुषोंको पकड़कर उनसे पूछा जावे, कि तुम कौन हो ? कहांसे आये हो ? किसके हो ? और यहां तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है ? इत्यादि। इन बातोंका उत्तर मिलनेपर उसकी उचित व्यवस्था कीजावे ॥ ४५ ॥ यदि कोई इसप्रकारका मनुष्य सरकारी निवास आदिके स्थानोंमें प्रविष्ट होजावे, अथवा नगर रक्षाके लिये बनेहुए सफ़ील या बुर्ज आदिके ऊपर चढ़जावे, तो उसे मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ४६ ॥ यदि कोई पुरुष, निषिद्ध समयमें भी सूतिका (प्रसूता स्त्री), चिकित्सक, प्रेत (शव आदिके उठाने), प्रदीपयान (हाथमें प्रकाश लेकर जाने), नागरिकतूर्य (नागरिक पुरुषोंको सूचनाके लिये बाजा बजाने), प्रेक्षा (राजासे अनुमत

नाटक आदि देखने), तथा अग्नि (आग आदिके लग जाने) के कारण इधर उधर आवें जावें, तथा जिनके पास मन्त्री या 'नागरिक' आदिकी सरकारी मुहर हो, उनको न पकड़ा जावे ॥ ४७ ॥

चाररात्रिषु प्रच्छन्नविपरीतवेषाः प्रव्रजिता दण्डशस्त्रहस्ताश्च मनुष्या दोषतो दण्ड्याः ॥ ४८ ॥ रक्षिणामवार्यं वारयतां वार्यं चावारयतामक्षणद्विगुणो दण्डः ॥ ४९ ॥

जिन रात्रियोंमें प्रत्येक पुरुषको, हरजगह घूमने फिरनेकी आज्ञा हो, ऐसी महोत्सव आदि सम्बन्धी रात्रियोंमें, जो पुरुष प्रच्छन्नवेषमें (अर्थात् मुंह आदिको ढककर), अथवा विपरीत वेषमें (स्त्री पुरुषोंके वेषमें और पुरुष स्त्रियोंके वेषमें), घूमते हुए देखे जावें; तथा जो मनुष्य सन्यासीके वेषमें, अथवा हाथमें दण्ड या और कोई हथियार लियेहुए देखेजावें; उन्हें पकड़कर उनके अपराधके अनुसार उनको दण्ड दिया जावे ॥ ४८ ॥ जो नगररक्षक पुरुष, न रोकने योग्य आदमीको आने जानेसे रोकें, और रोकने योग्य आदमीको न रोकें, उनको असमय जाने वाले पुरुषोंके दण्डसे (देखो, इसी अध्यायका तेतालीसवां सूत्र) दुगना अर्थात् ढाई (२½) पण दण्ड दिया जावे ॥ ४९ ॥

स्त्रियं दासीमधिमेहयतां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५० ॥ अदासीं मध्यमः ॥ ५१ ॥ कृतावरोधामुत्तमः ॥ ५२ ॥ कुलस्त्रियं वधः ॥ ५३ ॥

जो पुरुष, दूसरेकी स्त्री दासीके साथ बलात्कार गमन करें, उनको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५० ॥ दासीसे भिन्न गणिका आदिके साथ जो बलात्कार गमन करें, उनको मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५१ ॥ जो किसीके द्वारा भार्या रूपसे स्वीकार कीहुई दासी या अदासी स्त्रीके साथ इस प्रकारका व्यवहार करें, उनको उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५२ ॥ तथा जो कुलीन स्त्रियोंके साथ इसप्रकारका वर्त्ताव करें, उनको प्राणदण्ड दिया जावे ॥ ५३ ॥

चेतनाचेतनिकं रात्रिदोषमशंसतो नागरिकस्य दोषानुरूपो दण्डः ॥ ५४ ॥ प्रमादस्थाने च ॥ ५५ ॥

चेतन सम्बन्धी तथा अचेतन सम्बन्धी, रात्रिमें किये अपराधकी सूचना, यदि कोई नगरनिवासी पुरुष, अध्यक्षको न देवे, तो उसे उसके अपराधके अनुसार दण्ड दिया जावे ॥ ५४ ॥ और उन रक्षक पुरुषोंको भी

उनके अपराधके अनुसार ही दण्ड दिया जावे, जो कि मद्यपान आदि करके नगरकी रक्षा करनेमें प्रमाद करते हों ॥ ५५ ॥

नित्यमुदकस्थानमार्गभूमिच्छन्नपथवप्रप्राकाररक्षावेक्षणं नष्टप्रस्मृतापसृतानां च रक्षणम् ॥ ५६ ॥

नागरिक अर्थात् नगरके प्रधान अधिकारीका यह कर्तव्य है, कि वह सदा उदकस्थान (नदी कूए तालाब आदि), मार्ग, भूमि (स्थल प्रदेश), छन्नपथ (सुरङ्ग आदिके मार्ग), वप्र (सफील), प्राकार (परकोटा), और रक्षा (बुर्ज खाई) आदि पदार्थोंकी अच्छी तरह देख भाल करता रहे। और खोए हुए भूलेहुए तथा कहींपर स्वयं छूटे हुए भूषण, अन्य सामान, या प्राणियोंको भी उस समय तक सुरक्षित रक्खे, जब तक कि उसके मालिक का ठीक २ पता न लगजाय ॥ ५६ ॥

बन्धनागारे च बालवृद्धव्याधितानाथानां च जातनक्षत्रपौर्णमासीषु विसर्गः ॥ ५७ ॥ पुण्यशीलाः समयानुबद्धा वा दोषनिष्क्रयं दद्युः ॥ ५८ ॥

तथा कारागृह (जेलखाने) में बन्द हुए २ बालक बूढे बीमार और अनाथोंको, राजाकी जन्मगांठ आदिके शुभ नक्षत्रों या पूर्णमासी पर्वों में कारागृहसे मुक्त करदिया जावे ॥ ५७ ॥ अथवा धर्मपूर्वक आचरण करनेवाले (अर्थात् अकस्मात् ही किसी अपराधके वश कारागारमें आएहुए) अपनी प्रतिज्ञाओंसे बंधेहुए (हम भविष्यमें फिर कभी ऐसा न करेंगे, इसप्रकारकी प्रतिज्ञा कियेहुए), लोग अपने अपराधका निष्क्रय (बदला; अर्थात् हिरण्यके रूपमें दण्ड आदि) देकर निर्दोष होसकते हैं। फिर उनको कारागृहमें लेजानेकी आवश्यकता नहीं ॥ ५८ ॥

दिवसे पञ्चरात्रे वा बन्धनस्थान् विशोधयेत् ।
कर्मणा कायदण्डेन हिरण्यानुग्रहेण वा ॥ ५९ ॥
अपूर्वदेशाधिगमे युवराजाभिषेचने ।
पुत्रजन्मनि वा मोक्षो बन्धनस्य विधीयते ॥ ६० ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे नागरिकप्रणिधिः षट्त्रिंशो ऽध्यायः ॥ ३६ ॥
आदितः सप्तपञ्चाशः ॥ ५७ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य अध्यक्षप्रचारो द्वितीयमधिकरणं समाप्तम् ॥ २ ॥

प्रतिदिन अथवा प्रति पांचवें दिन, कारागारमें आयेहुए पुरुषोंका, अपराधका निष्क्रय लेकर संशोधन कियाजावे। तात्पर्य यह है कि प्रतिदिन या पांचवें दिन ऐसा नियम रक्खाजावे, कि उस दिन निष्क्रय लेकर कुछ कैदी छोड़दिये जायाकरें। निष्क्रय तीन तरहसे होसकता है—कार्य कराकर शारीरिक दण्ड देकर और हिरण्य (सोने आदिका सिक्का) लेकर। इन तीनोंमेंसे जिस कैदीके लिये जो योग्य समझाजावे, या जिसको वह आसानीसे भुगता सके उसी निष्क्रयके द्वारा उसका छुटकारा होसकता है ॥ ५९ ॥ किसी नए देशके जीत लेनेपर, युवराजका अभिषेक होनेपर, अथवा पुत्रका जन्म होनेपर कैदियोंको छोड़ा जाता है ॥ ६० ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें छत्तीसवां अध्याय समाप्त।

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण समाप्त।

तृतीय-अधिकरण।

धर्मस्थीय।

प्रथम अध्याय।

५७—५८ प्रकरण।

व्यवहार की स्थापना और विवाद का लेखन।

धर्मस्थास्त्रयस्त्रयोऽमात्या जनपदसंधिसंग्रहद्रोणमुखस्थानीयेषु व्यावहारिकानर्थान्कुर्युः ॥ १ ॥ तिरोहितान्तरगारनक्तारण्योपध्युपह्वरकृतांश्च व्यवहारान्प्रतिषेधयेयुः ॥ २ ॥

जनपद सन्धि=सीमाप्रान्त, (जहां पर दो राज्यों का अथवा गांवों का सीमा मिलती हो), संग्रहण (दस गांवों का प्रधानभूत केन्द्रस्थान), द्रोण मुख (चार सौ गांवों का प्रधानभूत स्थान), और स्थानीय (आठ सौ गांवों का प्रधानभूत), में तीन तीन धर्मस्थ (न्यायाधीश=जज) साथ २ रहते हुए, व्यवहार (इकरारनामा, शर्त्त आदि) सम्बन्धी कार्यों का प्रबन्ध करें ॥ १ ॥ छिपा कर, घर के अन्दर, रात्रि में, जङ्गल में, छल कपट पूर्वक तथा एकान्त में किये गये व्यवहारों को राजकीय नियम के विरुद्ध समझा जावे ॥ २ ॥

कर्तुः कारयितुश्च पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३ ॥ श्रोतॄणामेकैकं प्रत्यर्धदण्डाः ॥ ४ ॥ श्रद्धेयानां तु द्रव्यव्यपनयः ॥ ५ ॥

इस प्रकार के व्यवहार करने कराने वालों को प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ३ ॥ सुनने वालों (सुन कर साक्षी देने वालों) में से प्रत्येक को आधा दण्ड ॥ ४ ॥ और श्रद्धेयों (श्रद्धा करने वालों) को द्रव्य दण्ड (जुर्माना आदि) दिया जावे ॥ ५)

परोक्षेणाधिकर्णग्रहणमवक्तव्यकरा वा तिरोहिताः सिद्ध्येयुः ॥ ६ ॥ दायनिक्षेपोपनिधिविवाहयुक्ताः स्त्रीणामनिष्कासिनीनां

व्याधितानां चामूढसंज्ञानामन्तरगारकृताः सिद्धयेयुः ॥ ७ ॥

जिस व्यवहार को खुफिया तौर पर दूसरों ने सुन लिया हो, तथा जिस पर कोई आक्षेप भी न किया जा सके, ऐसा व्यवहार छिपा कर किया हुआ भी नियम के विरुद्ध न समझा जावे ॥ ६ ॥ पर्देनशीन स्त्रियों तथा संज्ञाहीन (बेहोश) न हुए २ रोगी पुरुषों के द्वारा दायभाग, अमानत, धरोहर (गिरवी आदि रखना) तथा विवाह सम्बन्धी व्यवहार घर के अन्दर किए हुए भी नियम विरुद्ध न समझे जावें ॥ ७ ॥

साहसानुप्रवेशकलहविवाहराजनियोगयुक्ताः पूर्वरात्रव्यवहारिणां च रात्रिकृताः सिद्धयेयुः ॥ ८ ॥ सार्थव्रजाश्रमव्याधचाराणां मध्येष्वरण्यचराणामरण्यकृताः सिद्धयेयुः ॥ ९ ॥

साहस (डाका आदि), घर में दूसरे की वस्तु लाना, झगड़ा, विवाह, तथा राजाज्ञा आदि कार्य और रात्रि के प्रथम भाग में व्यवहार करने वाले वेश्या आदि के कार्य, रात्रि में किये गये भी उचित समझे जावें ॥ ८ ॥ व्यापारी, गोपाल, आश्रमवासी वानप्रस्थी आदि, शिकारी और गुप्तचर जबकि ये जङ्गलों में ही घूमते फिरते या प्रायः निवास करते हों, इनके द्वारा अरण्य में किए गए कार्य भी राजकीय नियम के अनुकूल समझे जावें ॥ ९ ॥

गूढाजीविषु चोपधिकृताः सिद्धयेयुः ॥ १० ॥ मिथः समवाये चोपह्वरकृताः सिद्धयेयुः ॥ ११ ॥ अतोऽन्यथा न सिद्धयेयुः ॥ १२ ॥

गुप्तरूप से आजीविका करने वालों में छल कपट पूर्वक भी व्यवहार हो सकते हैं ॥ १० ॥ आपस में समझौता होने पर एकान्त में किये गये व्यवहार भी उचित हैं ॥ ११ ॥ इनसे अतिरिक्त अवसरों पर किये व्यवहार राजनियम के अनुकूल न समझे जावें ॥ १२ ॥

अपाश्रयवद्भिश्च कृताः पितृमता पुत्रेण पित्रा पुत्रवता निष्कुलेन भ्रात्रा कनिष्ठेनाविभक्तांशेन पतिमत्या पुत्रवत्या च स्त्रिया दासाहितकाभ्यामप्राप्तातीतव्यवहाराभ्यामभिशस्तप्रव्रजितव्यङ्गव्यसनिभिश्चान्यत्र निसृष्टव्यवहारेभ्यः ॥ १३ ॥

निराश्रय पुरुष, पुत्र—जिसका पिता जीता हो, पिता—जिसका पुत्र मौजूद हो, कुलहीन (बिरादरी से अलहदा किया हुआ) भाई, सब से छोटा भाई जिसकी सम्पत्ति का विभाग न हुआ हो पति अथवा पुत्र वाली

स्त्री पास रक्खा हुआ आदमी, नाबालिग, अतिवृद्ध, लोक में निन्दित, संन्यासी, लंगडे, लूले आदि तथा बीमार इनके द्वारा किये गये व्यवहार भी जायज न समझे जावें, उन व्यवहारों के अतिरिक्त कि जो राजा की ओर से इनकी इच्छा पर छोड़ दिये गये हैं ॥ १३ ॥

तत्रापि क्रुद्धेनार्तेन मत्तेनोन्मत्तेनापगृहीतेन वा कृता व्यवहारा न सिद्धयेयुः ॥ १४ ॥ कर्तृकारयितृश्रोतॄणां पृथग्यथोक्ता दण्डाः ॥ १५ ॥

क्रोधी, दुःखी, मत्त, उन्मत्त (उन्माद रोग से रोगी) अपगृहीत (पागल, जनूनी अथवा अपराधी) इनके द्वारा किये गये वे व्यवहार भी जिनको राजा ने जनता की इच्छा पर छोड़ दिया है, जायज नहीं समझे जा सकते ॥ १४ ॥ करने, कराने तथा सुनने वालों के लिए पृथक् २ पूर्वोक्त दण्ड समझने चाहियें॥ १५ ॥

स्वे स्वे तु वर्गे देशे काले च स्वकरणकृताः संपूर्णचाराः शुद्धदेशा दृष्टरूपलक्षणप्रमाणगुणाः सर्वव्यवहाराः सिद्धयेयुः॥१६॥ पश्चिमं त्वेषां करणमादेशाधिवर्जं श्रद्धेयम् ॥ १७ ॥ इति व्यवहारस्थापना ॥ १८ ॥

अपनी २ जात में उचित देश वा काल में अपनी प्रकृति के अनुसार किये गये, दोष रहित सम्पूर्ण व्यवहार नियमानुकूल समझे जावें। बशर्ते कि उनकी सब को सूचना दे दी गई हो, और उनके रूप, लक्षण, प्रमाण तथा गुण सब अच्छी तरह देख लिये गये हों ॥ १६ ॥ अन्ततः बलात्कार किये गये व्यवहारों को छोड़ कर इनके सब ही व्यवहारों को ठीक माना जाय ॥ १७ ॥ व्यवहार की स्थापना यहां तक समाप्त हुई ॥ १८ ॥

संवत्सरमृतुं मासं पक्षं दिवसं करणमधिकरणमृणं वेदकावेदकयोः कृतसमर्थावस्थयोर्देशग्रामजातिगोत्रनामकर्माणि चाभिलिख्य वादिप्रतिवादिप्रश्नानर्थानुपूर्व्यान्निवेशयेत् ॥ १९ ॥ निविष्टांश्चावेक्षेत ॥ २० ॥

अपने २ पक्ष को समर्थन करने के लिए उपस्थित हुए २ अभियोक्ता और अभियुक्त के देश, ग्राम, जाति, गोत्र, नाम और काम को लिख कर, ऋण के देने लेने या चुकाने का साल, ऋतु, महीना, पक्ष, दिन, स्थान और साक्षी आदि को लिखे, तदनन्तर वादी और प्रतिवादी के प्रश्नों को अर्थात्

नुसार क्रम से लिखा जाय ॥ १९ ॥ फिर उनको अच्छी तरह विचार-पूर्वक देखे ॥ २० ॥

निबद्धं पादमुत्सृज्यान्यं पादं संक्रामति ॥ २१ ॥ पूर्वोक्तं पश्चिमेनार्थेन नाभिसंधत्ते ॥ २२ ॥ परवाक्यमनभिग्राह्यमभिग्राह्यावतिष्ठते ॥ २३ ॥ प्रतिज्ञाय देशं निर्दिशेत्युक्ते न निर्दिशति ॥ २४ ॥ हीनदेशमदेशं वा निर्दिशति॥ २५ ॥ निर्दिष्टोद्देशादन्यं देशमुपस्थापयति ॥ २६ ॥ उपस्थिते देशे ऽर्थवचनं नैवमित्यपव्ययते ॥ २७ ॥ साक्षिभिरवधृतं नेच्छति ॥ २८ ॥ असंभाष्ये देशे साक्षिभिर्मिथः संभाषते ॥ २९ ॥ इति परोक्तहेतवः ॥३०॥

जो व्यक्ति प्रकरण में आये हुए बात चीत के सिलसिले को छोड़ कर दूसरी ओर जाने लगता है ॥ २१ ॥ जिसकी बातों में पूर्वापर सम्बन्ध कुछ नहीं रहता ॥ २२ ॥ दूसरे के अनभिमत कथन को मानकर उस पर डट जाता है ॥ २३ ॥ ऋण लेने आदि के स्थान को बतलाने की प्रतिज्ञा करके, पूछने पर फिर नहीं बतलाता ॥ २४ ॥ किसी मामूली स्थान का नाम ले देता है, या नहीं लेता ॥ २५ ॥ अथवा उसके बजाय किसी अन्य देश का नाम ले देता है ॥ २६ ॥ स्थान ठीक बतलाने पर ऋण लेने की बात से मुकर जाता है ॥ २७ ॥ साक्षियों से कही गई बात को नहीं चाहता ॥ २८ ॥ और अनुचित स्थान में साक्षियों के साथ मिल कर बात चीत करता है ॥ २९ ॥ वह पराजय को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् अपने पक्ष का समर्थन न कर सकने के कारण, ये सब पराजय के हेतु हैं ॥ ३० ॥

परोक्तदण्डः पञ्चबन्धः ॥ ३१ ॥ स्वयंवादिदण्डो दशबन्धः ॥ ३२ ॥ पुरुषभृतिरष्टाङ्गः ॥ ३३ ॥ पथि भक्तमर्घविशेषतः ॥ ३४ ॥ तदुभयं नियम्यो दद्यात् ॥ ३५ ॥

परोक्त (पराजित) अपराधी को पञ्चबन्ध (देय धन का पाँचवां हिस्सा) दण्ड दिया जावे ॥ ३१ ॥ तथा स्वयंवादि (जो अपने आप ही अपनी बात को बिना साक्षी के बार २ ठीक कहता चला जाय) अपराधी को दशबन्ध (देय धन का दसवां हिस्सा) दण्ड दिया जाय ॥ ३२ ॥ कर्मचारियों का वेतन आठवां हिस्सा ॥ ३३ ॥ और रास्ते में रोजाना खर्च से ज्यादह पैसे देकर किये गए भोजन का खर्च ॥ ३४ ॥ इन दोनों तरह के खर्चों को अपराधी अदा करे ॥ ३५ ॥

अभियुक्तो न प्रत्यभियुञ्जीत ॥ ३६ ॥ अन्यत्र कलहसाहससार्थसमवायेभ्यः ॥३७॥ न चाभियुक्ते ऽभियोगो ऽस्ति ॥३८॥

कलह–फौजदारी, डाका, व्यापारियों तथा कम्पनियों के झगड़ों को छोड़ कर अभियुक्त अन्य किसी बात को लेकर अभियोक्ता पर उलटा मुकदमा नहीं चला सकता ॥ ३६—३७ ॥ अभियुक्त पर भी उस ही बात को लेकर दूसरी बार मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता ॥ ३८ ॥

अभियोक्ता चेत्प्रत्युक्तस्तदहरेव न प्रतिब्रूयात्परोक्तः स्यात् ॥ ३९ ॥ कृतकार्यविनिश्चयो ह्यभियोक्ता नाभियुक्तः ॥ ४० ॥ तस्याप्रतिब्रुवतस्त्रिरात्रं सप्तरात्रमिति ॥ ४१ ॥

अभियोक्ता, यदि किसी बात का जवाब तलब किये जाने पर, उस ही दिन उत्तर न दे देवे तो वह पराजित समझा जाय ॥ ३९ ॥ क्योंकि अभियोक्ता अपने प्रत्येक कार्य का पहिले ही निश्चय कर के दावा दायर करता है, परन्तु अभियुक्त ऐसा नहीं कर सकता ॥ ४० ॥ इसलिए यदि वह (अभियुक्त) फ़ौरन जवाब न दे सके तो उसको तीन रात से लगा कर सात रात तक की मोहलत दी जावे ॥ ४१ ॥

अत ऊर्ध्वं त्रिपणावरार्ध्यं द्वादशपणपरं दण्डं कुर्यात् ॥४२॥ त्रिपक्षादूर्ध्वमप्रतिब्रुवतः परोक्तदण्डं कृत्वा यान्यस्य द्रव्याणि स्युस्ततोऽभियोक्तारं प्रतिपादयेदन्यत्र प्रत्युपकरणेभ्यः ॥ ४३ ॥

इसके बाद भी उत्तर न मिलने पर, तीन पण से लगा कर बारह पण तक दण्ड दिया जावे ॥ ४२ ॥ डेढ़ महीने तक भी उत्तर न देने पर, अभियुक्त को पराजित दण्ड (पराजय रूप दण्ड) दिया जाय, और जितनी इसकी सम्पत्ति हो उसमें से न्यायानुसार भाग अभियोक्ता को दे दिया जावे, यदि ऋण चुकता होने में कुछ कमी रह जाय तो भी अभियुक्त के जीवन निर्वाह के लिए अत्यावश्यक उपकरण (अन्न, वस्त्र, पात्र आदि सामान) अभियोक्ता को नहीं दिये जा सकते ॥ ४३ ॥

तदेव निष्पततो ऽभियुक्तस्य कुर्यात् ॥ ४४ ॥ अभियोक्तुर्निष्पातसमकालः परोक्तभावः ॥ ४५ ॥

अभियोक्ता के अपराधी सिद्ध होने पर ये ही अधिकार अभियुक्त को दिये जायें ॥ ४४ ॥ परन्तु अभियुक्त के समान, अभियोक्ता को मोहलत नहीं मिल सकती । उसको फ़ौरन ही परोक्त दण्ड दिया जाय ॥ ४५ ॥

प्रेतस्य व्यसनिनो वा साक्षिवचनमसारमभियोक्तारं दण्डयित्वा कर्म कारयेत् ॥ ४६ ॥ अधिवासकामं प्रवेशयेत् ॥ ४७ ॥ रक्षोघ्नरक्षितं वा कर्मणा प्रतिपादयेत् ॥ ४८ ॥ अन्यत्र ब्राह्मणादिति ॥ ४९ ॥

अभियुक्त के मर जाने या आपद्ग्रस्त हो जाने पर, अपने पक्ष को समर्थन न करने वाले अभियोक्ता को, (अभियुक्त के) साक्षियों के कहने के अनुसार दण्ड देकर अदालत उससे उचित कार्य करावे ॥ ४६ ॥ और नियमित समय तक अपने अधिकार में रक्खे ॥ ४७ ॥ अथवा उससे राक्षसों के विघ्नों को शान्त करने वाले यज्ञादिकों को करवाये ॥ ४८ ॥ यदि अभियोक्ता ब्राह्मण हो तो उससे यह कार्य न करवाये ॥ ४९ ॥

चतुर्वर्णाश्रमस्यायं लोकस्याचाररक्षणात् ।
नश्यतां सर्वधर्माणां राजा धर्मप्रवर्तकः ॥ ५० ॥

चारों वर्ण, चारों आश्रम, लोकाचार, तथा नष्ट होते हुए सब धर्मों का रक्षक होने से राजा धर्म का प्रवर्त्तक समझा जाता है ॥ ५० ॥

धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम् ।
विवादार्थश्चतुष्पादः पश्चिमः पूर्वबाधकः ॥ ५१ ॥

धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजाज्ञा ये विवाद के निर्णायक होने से राष्ट्र के चार पैर समझे जाते हैं, इन्हीं पर राष्ट्र का निर्भर है । इनमें से सबसे अगला पिछलों का बाधक है ॥ ५१ ॥

तत्र सत्ये स्थितो धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिषु ।
चरित्रं संग्रहे पुंसां राज्ञामाज्ञा तु शासनम् ॥ ५२ ॥

उनमें से धर्म सत्य में, व्यवहार साक्षियों में, चरित्र पुरुषों (दशग्रामी आदि में रहने वाले) की जीवन घटनाओं में, और राजाज्ञा राजकीय शासन में स्थित रहते हैं ॥ ५२ ॥

राज्ञः स्वधर्मः स्वर्गाय प्रजा धर्मेण रक्षितुः ।
अरक्षितुर्वा क्षेप्तुर्वा मिथ्यादण्डमतोऽन्यथा ॥ ५३ ॥

धर्म पूर्वक प्रजा की रक्षा करने वाले राजा का अपना धर्म स्वर्ग प्राप्ति का साधन होता है । इसके विपरीत प्रजा की रक्षा न करने वाले तथा अनुचित पीड़ा पहुंचाने वाले राजा को कभी सुख नहीं होता ॥ ५३ ॥

दण्डो हि केवलो लोकं परं चेमं च रक्षति ।
राज्ञा पुत्रे च शत्रौ च यथादोषं समं धृतः ॥ ५४ ॥

पुत्र और शत्रु को उनके अपराध के अनुसार, राजा के द्वारा बराबर दिया हुआ, केवल दण्ड ही इस लोक और परलोक की रक्षा करता है ॥ ५४ ॥

अनुशासद्धि धर्मेण व्यवहारेण संस्थया ।
न्यायेन च चतुर्थेन चतुरन्तां महीं जयेत् ॥ ५५ ॥

धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा न्यायपूर्वक शासन करता हुआ राजा सम्पूर्ण पृथ्वी को जीते ॥ ५५ ॥

संस्थया धर्मशास्त्रेण शास्त्रं वा व्यावहारिकम् ।
यस्मिन्नर्थे विरुध्येत धर्मेणार्थं विनिर्णयेत् ॥ ५६ ॥

चरित्र तथा लोकाचार का धर्मशास्त्र के साथ जिस विषय में विरोध हो, वहां धर्मशास्त्र को ही प्रमाण मानना चाहिए। अर्थात् ऐसे अवसर पर उस ही के द्वारा अर्थ का निश्चय करे ॥ ५६ ॥

शास्त्रं विप्रतिपद्येत धर्मन्यायेन केनचित् ।
न्यायस्तत्र प्रमाणं स्यात्तत्र पाठो हि नश्यति ॥ ५७ ॥

परन्तु यदि कहीं धर्मशास्त्र का धर्मानुकूल राजकीय शासन के साथ विरोध हो, तो वहां राजकीय शासन को ही प्रमाण मानना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने में (धर्मशास्त्र का) पाठ ही नष्ट होता है ॥ ५७ ॥

दृष्टदोषः स्वयंवादः स्वपक्षपरपक्षयोः ।
अनुयोगार्जवं हेतुः शपथश्चार्थसाधकः ॥ ५८ ॥

मुकद्दमे में प्रायः वादी प्रतिवादी दोनों ही अपने २ पक्ष को सच्चा कहते हैं, परन्तु उनमें से सच्चा एक ही होता है। ऐसी अवस्था में दोनों पक्षों को ठीक २ निर्णय करने वाले निम्न-लिखित हेतु हो सकते हैं—सब से प्रथम दृष्ट दोष, अर्थात् जिसके अपराध को देख लिया गया हो, (२) जो स्वयं अपने अपराध को स्वीकार कर ले, (३) सरलता पूर्वक जिरह, (४) हेतु (कारणों का उपस्थित कर देना), (५) शपथ-कसम दिलाना, ये पांचों अर्थ को सिद्ध करने वाले होते हैं ॥ ५८ ॥

पूर्वोत्तरार्थव्याघाते साक्षिवक्तव्यकारणं ।
चारहस्ताच्च निष्पाते प्रदेष्टव्यः पराजयः ॥ ५९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे विवादपदनिबन्धः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥
आदितो ऽष्टपञ्चाशः ॥ ५८ ॥

वादी प्रतिवादियों के परस्पर विरुद्ध कथन का यदि उपर्युक्त हेतुओं से निर्णय न हो सके तो साक्षियों के और खुफिया पुलिस के द्वारा इसका अनुसंधान कर अपराधी का निर्णय करे ॥ ५९ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरण में पहिला अध्याय समाप्त ।

द्वितीय अध्याय।

विवाह धर्म, स्त्रीधन और आधिवेदनिक ।

५९ प्रकरण ।

विवाह ।

विवाहपूर्वो व्यवहारः ॥ १ ॥ कन्यादानं कन्यामलंकृत्य ब्राह्मो विवाहः ॥ २ ॥ सहधर्मचर्या प्राजापत्यः ॥ ३ ॥ गोमिथुनादानादार्षः ॥ ४ ॥

सांसारिक व्यवहार विवाह होने पर ही प्रारम्भ होते हैं ॥ १ ॥ कन्या को अच्छी तरह सजा कर उसे दे देना (विवाह कर देना) ब्राह्म विवाह कहाता है ॥ २ ॥ कन्या और वर का परस्पर यह नियम कराकर, कि हम दोनों मिल कर धर्म का आचरण करेंगे, विवाह कर देना प्राजापत्य विवाह कहाता है ॥ ३ ॥ वर से धर्म-पूर्वक (अथवा कन्या के लिए) गऊ का जोड़ा लेकर कन्या देदेना आर्ष विवाह होता है ॥ ४ ॥

अन्तर्वेद्यामृत्विजे दानाद्दैवः ॥ ५ ॥ मिथःसमवायाद्गान्धर्वः ॥ ६ ॥ शुल्कादानादासुरः ॥ ७ ॥ प्रसह्यादानाद्राक्षसः ॥ ८ ॥ सुप्तमत्तादानात्पैशाचः ॥ ९ ॥

वेदि के समीप बैठ कर ऋत्विज को कन्या देदेने से दैव विवाह होता है ॥ ५ ॥ गान्धर्व विवाह वह है जिसमें कन्या और वर आपस में ही (माता पिता आदि की सलाह के बिना ही) मिल कर विवाह कर लें ॥ ६ ॥

धन देकर (कन्या के पिता आदि को) किया हुआ विवाह **आसुर** कहाता है ॥ ७ ॥ बलात्कार कन्याको लेलेना **राक्षस** विवाह होता है ॥ ८ ॥ सोती हुई कन्या को उठा लेजाने से **पैशाच** विवाह होता है ॥ ९ ॥

पितृप्रमाणाश्चत्वारः पूर्वे धर्म्याः ॥ १० ॥ मातापितृप्रमाणाः शेषाः ॥ ११ ॥ तौ हि शुल्कहरौ दुहितुः ॥ १२ ॥

पहिले चार विवाह धर्मानुकूल हैं, ये पिता की सलाह से किये जाते हैं ॥ १० ॥ बाकी चार विवाह माता और पिता दोनों की सलाह से होते हैं ॥ ११ ॥ क्योंकि ये दोनों ही लड़की को देकर बदले में धन (शुल्क) लेते हैं ॥ १२ ॥

अन्यतराभावे ऽन्यतरो वा ॥ १३ ॥ द्वितीयं शुल्कं स्त्री हरेत ॥ १४ ॥ सर्वेषां प्रीत्यारोपणमप्रतिषिद्धम् ॥ १५ ॥

यदि उन दोनों (माता पिता) में से कोई एक न हो, तो दूसरा (माता या पिता) उस धन को ले सकता है ॥ १३ ॥ यदि दूसरा भी न हो, तो उस धन की अधिकारिणी वह स्त्री (जिसके साथ विवाह किया गया है) ही होवे ॥ १४ ॥ सब विवाहों में स्त्री पुरुष की परस्पर प्रीति का होना अत्यन्त आवश्यक है ॥ १५ ॥

स्त्री धन ।

वृत्तिराबध्यं वा स्त्रीधनम् ॥ १६ ॥ परद्विसाहस्रा स्थाप्या वृत्तिः ॥ १७ ॥ आबध्यानियमः ॥ १८ ॥

स्त्री धन दो प्रकार का होता है—एक वृत्ति, दूसरा आबध्य (गहना आभूषण आदि) ॥ १६ ॥ वृत्ति वह स्त्रीधन कहाता है जो स्त्री के नाम से कहीं (बैंक आदि में) जमा किया हुआ हो, उसकी तादाद कम से कम दो हजार होनी आवश्यक है ॥ १७ ॥ आबध्य स्त्रीधन के लिए तादाद का कोई नियम नहीं है ॥ १८ ॥

तदात्मपुत्रस्नुषाभर्मणि प्रवासाप्रतिविधाने च भार्यया भोक्तुमदोषः ॥ १९ ॥ प्रतिरोधकव्याधिदुर्भिक्षभयप्रतीकारे धर्मकार्ये च पत्युः ॥ २० ॥

पति के विदेश चले जाने पर, पीछे कोई प्रबन्ध न होने पर, स्त्री अपने, अपने पुत्र, और पुत्रवधू के जीवन निर्वाह के लिए उस धन (स्त्रीधन) में से खर्च कर सकती है ॥ १९ ॥ परिवार में आई हुई किसी विपत्ति को

बीमारी के प्रतीकार में, दुर्भिक्ष तथा अन्य किसी प्रकार के उपस्थित हुए भय के प्रतीकार करने में, और धर्म कार्य में, पति भी उस धन (स्त्रीधन) को खर्च कर सकता है, इसमें कोई दोष नहीं ॥ २० ॥

संभूय वा दंपत्योर्मिथुनं प्रजातयोस्त्रिवर्षोपभुक्तं च धर्मिष्ठेषु विवाहेषु नानुयुञ्जीत ॥ २१ ॥

दो बच्चे पैदा होने पर, स्त्री पुरुष दोनों मिल कर (अर्थात् एक दूसरे की सलाह से) यदि उस धन में से खर्च करें तो कोई दोष नहीं। और बच्चा न पैदा होने पर भी वे स्त्री पुरुष तीन वर्ष तक उसमें से खर्च कर सकते हैं, जिनका विवाह धर्मानुकूल पहिले चार विवाहों में से कोई हुआ हो ॥ २१ ॥

गान्धर्वासुरोपभुक्तं सवृद्धिकमुभयं दाप्येत ॥ २२ ॥ राक्षस-पैशाचोपभुक्तं स्तेयं दद्यात् ॥ २३ ॥ इति विवाहधर्मः ॥ २४ ॥

जिन्होंने गान्धर्व या आसुर विवाह किया है, वे यदि स्त्रीधन को खर्च कर डालें, तो उनसे ब्याज सहित मूलधन जमा कराया जावे ॥ २२ ॥ और जिन्होंने राक्षस तथा पैशाच विवाह किया हो, वे यदि उस धन का उपभोग कर डालें, तो उनको (जमा के अतिरिक्त) चोरी का दण्ड दिया जावे ॥ २३ ॥ यहां तक विवाह धर्म का निरूपण किया गया ॥ २५ ॥

मृते भर्त्तरि धर्मकामा तदानीमेवास्थाप्याभरणं शुल्कशेषं च लभेत ॥ २५ ॥

पति के मर जाने पर धर्म-पूर्वक रहने की इच्छा रखने वाली स्त्री उसी समय अपने स्त्रीधन (बैङ्क आदि में नियत संख्यक जमा किया हुआ धन तथा आभूषण आदि) और अवशिष्ट शुल्क (विवाह के समय प्राप्त हुआ धन) को ले लेवे ॥ २५ ॥

लब्ध्वा वाविन्दमाना सवृद्धिकमुभयं दाप्येत ॥ २६ ॥ कुटुम्बकामा तु श्वशुरपतिदत्तं निवेशकाले लभेत ॥ २७ ॥ निवेशकालं हि दीर्घप्रवासे व्याख्यास्यामः ॥ २८ ॥

इस धन को प्राप्त कर यदि वह दूसरा विवाह करे, तो उसे ब्याज सहित सम्पूर्ण मूलधन वापस देना पड़े ॥ २६ ॥ और यदि वह कुटुम्ब की कामना रखती है, अर्थात् दूसरा विवाह करना चाहती है, तो अपने श्वसुर और मृत पति के दिये हुये धन को उस विवाह के समय में ही पा सकती

है पहिले नहीं । २७ ॥ दूसरे विवाह का समय दीर्घ-प्रवास प्रकरण में खोल कर लिखा जायगा ॥ २८ ॥

श्वशुरप्रातिलोम्येन वा निविष्टा श्वशुरपतिदत्तं जीयेत ॥ २९ ॥ ज्ञातिहस्तादभिमृष्टाया ज्ञातयो यथागृहीतं दद्युः ॥ ३० ॥ न्यायोपगतायाः प्रतिपत्ता स्त्रीधनं गोपायेत् ॥ ३१ ॥

यदि वह स्त्री अपने श्वसुर की इच्छा के प्रतिकूल दूसरा विवाह करना चाहती है, तो श्वसुर और मृत पति का दिया हुआ धन वह नहीं पा सकती ॥ २९ ॥ यदि बन्धु बान्धवों के हाथ से उसके विवाह का प्रबन्ध किया जावे, तो वे (बन्धु बान्धव) उसके लिए हुए धन को उसी तरह वापस कर दें ॥ ३० ॥ क्योंकि न्याय पूर्वक रक्षार्थ प्राप्त हुई स्त्री की रक्षा करने वाला पुरुष उसके धन की भी रक्षा करे ॥ ३१ ॥

पतिदायं विन्दमाना जीयेत ॥ ३२ ॥ धर्मकामा भुञ्जीत ॥ ३३ ॥

दूसरे पति की कामना करने वाली स्त्री अपने पूर्व पति के दाय भाग को नहीं पा सकती ॥ ३२ ॥ यदि वह धर्म-पूर्वक जीवन निर्वाह करने की इच्छा रखती है, तो उस पति के दाय भाग को भोग सकती है ॥ ३३ ॥

पुत्रवती विन्दमाना स्त्रीधनं जीयेत ॥ ३४ ॥ तत्तु स्त्रीधनं पुत्रा हरेयुः ॥ ३५ ॥ पुत्रभरणार्थं वा विन्दमाना पुत्रार्थं स्फातीकुर्यात् ॥ ३६ ॥

जिस स्त्री के पुत्र हैं, वह यदि दूसरा पति करना चाहती है, तो स्त्रीधन को नहीं पा सकती ॥ ३४ ॥ उस स्त्रीधन के अधिकारी उसके पुत्र ही होवें ॥ ३५ ॥ यदि कोई स्त्री दूसरा विवाह इसलिए करना चाहती है, कि वह इससे अपने पुत्रों का भरण पोषण कर सकेगी, तो उसको यह आवश्यक है कि अपनी सम्पत्ति उन लड़कों के लिये नामज़द करा दे ॥ ३६ ॥

बहुपुरुषप्रजानां पुत्राणां यथापितृदत्तं स्त्रीधनमवस्थापयेत् ॥ ३७ ॥ कामकारणीयमपि स्त्रीधनं विन्दमाना पुत्रसंस्थं कुर्यात् ॥ ३८ ॥

यदि किसी स्त्री के लड़के बहुत से आदमियों से उत्पन्न हुए २ हों, तो उसको उचित है कि वह अपनी सम्पत्ति की व्यवस्था, जैसे २ उन लड़कों के पिताओं ने दिया है, उस ही के अनुसार कर देवे ॥ ३७ ॥ अपनी इच्छानुसार खर्च करने के लिए प्राप्त हुए धन को भी, दूसरा विवाह करने वाली स्त्री, अपने पुत्रों के अधीन कर देवे ॥ ३८ ॥

अपुत्रा पतिशयनं पालयन्ती गुरुसमीपे स्त्रीधनमायुःक्षयाद्भुञ्जीत ॥ ३९ ॥ आपदर्थं हि स्त्रीधनम् ॥ ४० ॥ ऊर्ध्वं दायादं गच्छेत् ॥ ४१ ॥

जिस स्त्री के पुत्र नहीं है, वह अपने पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई, गुरु (धर्म शिक्षक पुरोहित आदि) के समीप रह कर जीवन पर्यन्त स्त्रीधन का उपभोग कर सकती है ॥ ३९ ॥ क्योंकि स्त्रीधन आपत्ति में उपयोग करने के लिए ही होता है ॥ ४० ॥ उसके मरने के बाद बचा हुआ धन दायभाग के अधिकारियों को मिल जावे ॥ ४१ ॥

जीवति भर्तरि मृतायाः पुत्रा दुहितरश्च स्त्रीधनं विभजेरन् ॥ ४२ ॥ अपुत्राया दुहितरः ॥ ४३ ॥

पति के जीवित रहते हुए यदि कोई स्त्री मर जाय, तो उसके धन को लड़के और लड़कियां आपस में बांट लेवें ॥ ४२ ॥ यदि उसके कोई लड़का न हो तो लड़कियां ही उस धन को ले सकती हैं ॥ ४३ ॥

तदभावे भर्ता ॥ ४४ ॥ शुल्कमन्वाधेयमन्यद्वा बन्धुभिर्दत्तं बान्धवा हरेयुः ॥ ४५ ॥ इति स्त्रीधनकल्पः ॥ ४६ ॥

लड़कियों के भी न होने पर पति उस धन का अधिकारी होवे ॥४४॥ और उस स्त्री के बन्धु बान्धवों ने जो धन उसको विवाह में शुल्क रूप में या इससे अतिरिक्त दिया हो, वे उसे वापस लौटा सकते हैं ॥ ४५ ॥ यहां तक स्त्रीधन विषयक विचार समाप्त हुआ ॥ ४६ ॥

वर्षाण्यष्टावप्रजायमानामपुत्रां वन्ध्यां चाकांक्षेत ॥ ४७ ॥ दश निन्दुं द्वादश कन्याप्रसविनीम् ॥ ४८ ॥ ततः पुत्रार्थी द्वितीयां विन्देत ॥ ४९ ॥

यदि किसी स्त्री के बच्चा पैदा न हो या उसके अन्दर बच्चा पैदा करने की शक्ति ही न हो, तो उसका पति आठ वर्ष तक प्रतीक्षा करे ॥ ४७ ॥ यदि कोई मरा हुआ बच्चा पैदा हो तो दश वर्ष, और यदि कन्या ही उत्पन्न हो तो बारह वर्ष तक इन्तज़ार करे ॥ ४८ ॥ इसके बाद पुत्र की कामना करने वाला पुरुष दूसरा विवाह कर लेवे ॥ ४९ ॥

तस्यातिक्रमे शुल्कं स्त्रीधनमर्धं चाधिवेदनिकं दद्यात् ॥५०॥ चतुर्विंशतिपणपरं च दण्डम् ॥ ५१ ॥

जो पुरुष इस उपर्युक्त नियम का उल्लङ्घन करे (अर्थात् निर्दिष्ट अवधि से पहिले ही विवाह करना चाहे) तो उसको आवश्यक है कि वह शुल्क, (विवाह में प्राप्त हुआ धन दहेज आदि) स्त्रीधन तथा इसके अतिरिक्त और धन अपनी पहिली स्त्री को देवे ॥ ५० ॥ तथा २४ पण तक जुर्माना सरकार को देवे ॥ ५१ ॥

शुल्कस्त्रीधनमशुल्कस्त्रीधनायांतत्प्रमाणमाधिवेदनिकमनुरूपां च वृत्तिं दत्त्वा बह्वीरपि विन्देत ॥५२॥ पुत्रार्था हि स्त्रियः ॥५३॥

इस प्रकार शुल्क और स्त्रीधन देकर, तथा जिस स्त्री को शुल्क नहीं मिला, और उसके पास स्त्रीधन भी नहीं है, उसको उसके (शुल्क और स्त्रीधन के) बराबर ही और धन देकर, तथा उसके जीवन निर्वाह के लिये पर्याप्त सम्पत्ति देकर कोई भी पुरुष अनेक स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता है ॥ ५२ ॥ क्योंकि स्त्रियों की सृष्टि पुत्रोत्पत्ति के लिए ही है ॥ ५३ ॥

तीर्थसमवाये चासां यथाविवाहं पूर्वोढां जीवत्पुत्रां वा पूर्वं गच्छेत् ॥ ५४ ॥ तीर्थगूहनागमने षण्णवतिर्दण्डः ॥ ५५ ॥

यदि इन स्त्रियों का ऋतुकाल एक ही साथ आ जावे, तो पुरुष सबसे पहिले प्रथम विवाहित स्त्री के पास जावे, अथवा उसके पास जावे जिसका कोई पहिला पुत्र जीता हो ॥ ५४ ॥ यदि कोई पुरुष ऋतुकाल को छिपाता है, या जाने में आना कानी करता है (स्त्री संसर्ग की इच्छा न होने के कारण) तो उसको राज्य की ओर से ९६ पण जुर्माने का दण्ड दिया जावे ॥ ५५ ॥

पुत्रवतीं धर्मकामां वन्ध्यां निन्दुं नीरजस्कां वा नाकामामुपेयात् ॥ ५६ ॥ न चाकामः पुरुषः कुष्ठिनीमुन्मत्तां वा गच्छेत् ॥ ५७ ॥ स्त्री तु पुत्रार्थमेवंभूतं वोपगच्छेत् ॥ ५८ ॥

पुत्र वाली, पवित्र जीवन वाली, वन्ध्या, जिसके मरा हुआ बच्चा पैदा हुआ हो, और जिसको मासिक धर्म होना बन्द हो गया हो, ऐसी स्त्री के साथ पुरुष तब तक संसर्ग न करे, जब तक वह स्त्री स्वयं पुरुष संसर्ग की कामना न करे ॥ ५६ ॥ पुरुष भी कामना न होते हुए, कोढी अथवा उन्मत्त स्त्री से संसर्ग न करे ॥ ५७ ॥ परन्तु स्त्री पुत्र की इच्छा रखती हुई इस प्रकार के कोढी अथवा उन्मत्त पुरुष के साथ संसर्ग कर सकती है ५८॥

नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितो राजकिल्बिषी ।
प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीबो ऽपि वा पतिः ॥५९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे विवाहसंयुक्ते विवाहधर्मः
स्त्रीधनकल्प आधिवेदनिकं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥
आदितः एकोनषष्टितमो ऽध्यायः ॥ ५९ ॥

नीच, प्रवासी (परदेश में गए हुए), राजद्रोही, घातक, जाति तथा धर्म से पतित, और नपुंसक पति को स्त्री छोड़ सकती है ॥ ५९ ॥

धर्मस्थीय तीसरे अधिकरण में दूसरा अध्याय समाप्त।

तृतीय अध्याय।

५९ प्रकरण।

विवाहित के विषय में—शुश्रूषा, भर्म, पारुष्य, द्वेष, अतिचार और उपकार व्यवहार प्रतिषेध।

द्वादशवर्षा स्त्री प्राप्तव्यवहारा भवति ॥ १ ॥ षोडशवर्षः पुमान् ॥ २ ॥ अत ऊर्ध्वमशुश्रूषायां द्वादशपणः स्त्रिया दण्डः पुंसो द्विगुणः ॥ ३ ॥

बारह वर्ष की लड़की कानून के अन्दर आ जाती है ॥ १ ॥ और १६ वर्ष का लड़का ॥ २ ॥ इससे ऊपर होने पर, यदि वे किसी राजकीय नियम का उल्लङ्घन (अशुश्रूषा) करते हैं, तो स्त्री को बारह पण, और पुरुष को उससे द्विगुण दण्ड दिया जावे ॥ ३ ॥

भर्मण्यायामनिर्दिष्टकालायां ग्रासाच्छादनं वाधिकं यथापुरुषपरिवापं सविशेषं दद्यात् ॥ ४ ॥ निर्दिष्टकालायां तदेव संख्याय बन्धं च दद्यात् ॥ ५ ॥ शुल्कस्त्रीधनाधिवेदनिकानामनादाने च ॥ ६ ॥

यदि किसी स्त्री के भरण पोषण का सीमाकाल नियत नहीं है, तो पति को आवश्यक है कि वह आवश्यकतानुसार उसके भोजन वस्त्र का उचित प्रबन्ध करे अथवा अपनी आमदनी या सम्पत्ति के अनुसार और

कुछ अधिक भी देवें ॥ ४ ॥ परन्तु जिस स्त्री के भरण पोषण का समय नियत है उसको, और जिसने शुल्क, स्त्रीधन, तथा आधिवेदनिक (अतिरिक्त) धन लेना स्वीकार नहीं किया, उसको बन्धी हुई रकम अपनी 'आमदनी के अनुसार पति दे देवे ॥ ५-६ ॥

श्वशुरकुलप्रविष्टायां विभक्तायां वा नाभियोज्यः पतिः ॥ ७ ॥ इति भर्म ॥ ८ ॥

यदि स्त्री अपने पति की सुसराल (अर्थात् अपने पितृ-गृह=पीहर=मायके) में रहती है, अथवा बिल्कुल अलहदा स्वतन्त्र होकर रहती है, तो उसके भरण पोषण के लिए पति को बाधित नहीं किया जा सकता ॥ ७ ॥ यहाँ तक स्त्री के भरण पोषण (भर्म) का विचार समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

नष्टे विनष्टे न्यङ्गे ऽपितृके ऽमातृक इत्यनिर्देशेन विनयग्राहणम् ॥ ९ ॥ वेणुदलरज्जुहस्तानामन्यतमेन वा पृष्ठे त्रिराघातः ॥ १० ॥ तस्यातिक्रमे वाग्दण्डपारुष्यदण्डाभ्यामर्धदण्डाः ॥ ११ ॥

पहिले नंगी, अधनंगी, लूली, लंगड़ी, बापमरी, मांमरी, इत्यादि, गालियाँ देने के बिना ही विनय अर्थात् अच्छे रहन सहन का ढंग सिखाया जाय ॥ ९ ॥ यदि ऐसे काम न चले तो बांस की खपच, रस्सी या थप्पड़ से तीन बार पीठ पर आघात (चोट) करे ॥ १० ॥ फिर भी नियम का उल्लङ्घन करने पर वाक्पारुष्य (७२ प्रकरण) और दण्डपारुष्य (७३ प्रकरण) में कहे गये दण्डों में से यथोचित आधा दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥

तदेव स्त्रिया भर्तरि प्रसिद्धायामदोषायामीर्ष्यया बाह्यविहारेषु द्वारेष्वत्ययो यथानिर्दिष्टः ॥१२॥ इति पारुष्यम् ॥१३॥

यही दण्ड उस स्त्री को भी दिया जावे, जो और कोई दोष न होने पर भी ईर्ष्या से पति के साथ दुर्व्यवहार करती हो। पति के घर के दरवाजे पर या घर से बाहर किये हुए विहारों (अन्य पुरुष के साथ इशारेबाजी आदि करना, तथा अन्य प्रकार की क्रीड़ा करना) में होनेवाले व्यतिक्रम (अत्यय-नियम विरुद्धता) का दण्ड इसी प्रकरण में आगे निर्देश कर दिया गया है ॥ १२ ॥ यहां तक पारुष्य (कठोरता) सम्बन्धी विचार समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

भर्तारं द्विषती स्त्री सप्तार्तवान्यमण्डयमाना तदानीमेव स्थाप्याभरणं निधाय भर्तारमन्यया सह शयानमनुशयीत ॥ १४ ॥

भिक्षुक्यन्वाधिज्ञातिकुलानामन्यतमे वा भर्ता द्विषन्स्त्रियमेकामनुशयीत ॥ १५ ॥

अपने पति के साथ द्वेष रखती हुई जो स्त्री सात ऋतु (मासिक धर्म) पर्यन्त दूसरे पुरुष की कामना करती रहे, उसको चाहिए कि वह फौरन सम्पूर्ण स्त्रीधन, (उसके नाम से जमा हुई २ पूंजी और आभूषण) पति को देकर उसको दूसरी स्त्री के साथ सोने की अनुमति दे देवे ॥ १४ ॥ यदि पति स्त्री के साथ द्वेष रखता हो तो पति को उचित है कि वह भिक्षुकी (संन्यासिनी) और स्त्रीधन के निरीक्षक उसके (स्त्री के) भाई बन्धुओं के समीप अकेली रहने से न रोके। अर्थात् इस प्रकार उपर्युक्त अवसरों पर उसे वहां रहने के लिए अनुमति दे देवे ॥ १५ ॥

दुष्टलिङ्गे मैथुनापहारे सवर्णापसर्पोपगमे वा मिथ्यावादी द्वादशपणं दद्यात् ॥ १६ ॥ अमोक्ष्या भर्तुरकामस्य द्विषती भार्या ॥ १७ ॥ भार्यायाश्च भर्ता ॥ १८ ॥

अन्य स्त्री के साथ मैथुन करने के चिन्ह देख जाने पर, मैथुन करके 'मैंने नहीं किया' इस प्रकार झूठ बोलने पर, अथवा अपनी किसी सखी के साथ संगम करके उसका अपलाप करने पर (मुकर जाने पर) मिथ्यावादी को १२ पण दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥ पति की इच्छा न होने पर, उसके साथ द्वेष रखती हुई भी स्त्री उसका परित्याग नहीं कर सकती ॥ १७ ॥ इसी प्रकार ऐसी अवस्था में पति भी अपनी स्त्री का परित्याग नहीं कर सकता ॥ १८ ॥

परस्परं द्वेषान्मोक्षः ॥ १९ ॥ स्त्रीविप्रकाराद्वा पुरुषश्चेन्मोक्षमिच्छेद्यथागृहीतमस्यै दद्यात् ॥ २० ॥ पुरुषविप्रकाराद्वा स्त्री चेन्मोक्षमिच्छेन्नास्यै यथा गृहीतं दद्यात् ॥ २१ ॥

क्योंकि दोनों का एक दूसरे के साथ द्वेष होने से ही परित्याग सम्भव है ॥ १९ ॥ स्त्री के किसी अपकार (बुराई) के कारण यदि पुरुष उसको छोड़ना चाहे, तो जो सम्पत्ति उसको स्त्री की ओर से प्राप्त हुई है, उसे वह स्त्री को लौटा देवे ॥ २० ॥ यदि पुरुष के किसी अपकार के कारण स्त्री उसको छोड़ना चाहती है, तो स्त्री से लिया हुआ धन उसको न दिया जावे ॥२१॥

अमोक्षो धर्मविवाहानामिति ॥ २२ ॥ प्रतिषिद्धा स्त्री दर्पमद्यक्रीडायां त्रिपणं दण्डं दद्यात् ॥ २३ ॥ दिवा स्त्रीप्रेक्षाविहारगमने षट्पणो दण्डः ॥ २४ ॥

धर्म विवाहोंमें (धर्मविवाह-पहिले चार विवाह) परित्याग नहीं हो सकता ॥ २२ ॥ यदि कोई स्त्री निषेध कियेजानेपर भी गर्वके साथ मद्य आदि पीवे और काम क्रीडा करे, तो वह जुरमानेके तौरपर ३ पण दण्ड देवे ॥ २३ ॥ दिनमें किसी स्त्रीके साथ थियेटर आदिमें जानेपर (स्त्रीप्रेक्षाविहारगमने, प्रेक्षाविहार=नाट्यगृह=थियेटर हाल) ६ पण दण्ड देवे ॥ २४ ॥

पुरुषप्रेक्षाविहारगमने द्वादशपणः ॥२५॥ रात्रौ द्विगुणः॥२६॥

यदि किसी पुरुष के साथ थियेटर आदि में जावे, तो १२ पण दण्ड देवे ॥ २५ ॥ यदि यही अपराध (२४ और २५ सूत्र में कहा हुआ) रात्रि में किया जावे, तो स्त्री को दुगना दण्ड दिया जाय। (२३ वें सूत्र से 'प्रतिषिद्धा' पद की यहां तक अनुवृत्ति समझनी चाहिए। अतएव जो स्त्री अपने पति तथा अन्य अभिभावक की आज्ञा के बिना इन उपर्युक्त कार्य्यों को करती है, वह अपराधिनी समझी जाती है। आज्ञा लेकर करने पर कोई दोष नहीं। तथा कामोत्पादक तमाशे आदि के अलावा, अपने पड़ौस में केवल मिलने मिलाने के लिए पति आदि की आज्ञा बिना भी जा सकती है ॥२६॥

सुप्तमत्तप्रव्रजने भर्तुरदाने च द्वारस्य द्वादशपणः ॥ २७ ॥ रात्रौ निष्कासने द्विगुणः ॥ २८ ॥

यदि कोई स्त्री सोते हुए या उन्मत्त हुए २ (शराब आदि पीने के कारण या अन्य किसी कारण से), अपने पति को छोड़ कर घर से बाहर चली जावे, अथवा पति की इच्छा के विरुद्ध घर का दरवाजा बन्द कर लेवे, तो उसको १२ पण दण्ड होना चाहिए ॥ २७ ॥ यदि कोई स्त्री अपने पति को रात्रि में घर नहीं आने देती, अर्थात् उसको घर से बाहर निकाले रखती है तो उस स्त्री को २४ पण दण्ड दिया जावे ॥ २८ ॥

स्त्रीपुंसयोर्मैथुनार्थेनाङ्गविचेष्टायां रहोऽश्लीलसंभाषायां वा चतुर्विंशतिपणः स्त्रिया दण्डः ॥ २९ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ ३० ॥ केशनीविदन्तनखावलम्बनेषु पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३१ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ ३२ ॥

दूसरे स्त्री पुरुषों के परस्पर मैथुन के लिए इशारेबाजी करने पर, अथवा एकान्त में इसी विषय की बात चीत करने पर, स्त्री को २४ पण दण्ड ॥ २९ ॥ और पुरुष को इससे दुगुना अर्थात् ४८ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३० ॥ बाल और कमरबन्द के पकड़ने पर तथा दांत और नख के

चिन्ह करने पर स्त्री को पूर्वसाहसदण्ड ॥ ३१ ॥ और पुरुष को उससे द्विगुण दण्ड देना चाहिए ॥ ३२ ॥

शङ्कितस्थाने संभाषायां च पणस्थाने शिफादण्डः ॥ ३३ ॥ स्त्रीणां ग्राममध्ये चण्डालः पक्षान्तरं पञ्चशिफा दद्यात् ॥ ३४ ॥ पणिकं वा प्रहारं मोक्षयेत् ॥ ३५ ॥ इत्यतिचाराः ॥ ३६ ॥

शङ्कित स्थान में बातचीत करने पर पण के बजाय कोड़े आदि मार कर दण्ड दिया जावे ॥ ३३ ॥ गांव में कोई चण्डाल, अपराधी औरत को उसके एक बाजू की ओर पांच कोड़े लगावे (तात्पर्य यह है कि एक ही ओर या एक ही स्थान पर पांच कोड़े से अधिक नहीं लगाये जा सकते) ॥ ३४ ॥ पण देने पर (उसकी संख्या के अनुसार) प्रहार कम कर दिए जायं । अर्थात् एक पण देने पर एक प्रहार कम कर देवे । दो देने पर दो, इत्यादि ॥ ३५ ॥ यहां तक अतिचार के विषय में कहा गया ॥ ३६ ॥

प्रतिषिद्धयोः स्त्रीपुंसयोरन्योन्योपकारे क्षुद्रकद्रव्याणां द्वादशपणो दण्डः ॥ ३७ ॥ स्थूलकद्रव्याणां चतुर्विंशतिपणः ॥ ३८ ॥ हिरण्यसुवर्णयोश्चतुष्पञ्चाशत्पणः स्त्रिया दण्डः ॥ ३९ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ ४० ॥

यदि कोई स्त्री तथा पुरुष, रोके जाने पर भी, छोटी मोटी चीजें देकर परस्पर एक दूसरे का उपकार करें, तो उनमें स्त्री को, १२ पण, ॥ ३७ ॥ बड़ी २ चीजों के लेने देने पर २४ पण, ॥ ३८ ॥ और सोना अथवा सोने का सिक्का (या सोने से बनी हुई कोई चीज़ आभूषण आदि) लेने देने पर ५४ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३९ ॥ और (इन्हीं सब उपर्युक्त अपराधों में) पुरुष को स्त्री से दुगना दण्ड दिया जावे ॥ ४० ॥

त एवागम्ययोरर्धदण्डाः ॥ ४१ ॥ तथा प्रतिषिद्धपुरुषव्यवहारेषु च ॥ ४२ ॥ इति प्रतिषेधः ॥ ४३ ॥

यदि वे स्त्री पुरुष आपस में न मिलते हुए ही इन चीज़ों को लेते देते हैं, तो पूर्वोक्त दण्ड से आधा दण्ड उनको दिया जाय ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार प्रतिषिद्ध पुरुषों के व्यवहार में भी, दण्ड आदि का यही नियम समझना चाहिए ॥ ४२ ॥ यहां तक उपकार और व्यवहार प्रतिषेध के विषय में कहा गया ॥ ४३ ॥

राजद्विष्टातिचाराभ्यामात्मापक्रमणेन च ।
स्त्रीधनानीतशुल्कानामस्वाम्यं जायते स्त्रियाः ॥ ४४ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे विवाहसंयुक्ते शुश्रूषाभर्मपारुष्यद्वेषातिचारा उपकारव्यवहारप्रतिषेधाश्च तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥
आदितः षष्ठितमः ॥ ६० ॥

राजा के साथ द्वेष करने पर (बागी हो जाने पर), आचार का उल्लङ्घन करने पर, आवारागर्द होने पर, कोई भी स्त्री अपने स्त्रीधन, (२०००) रु० जमा किया हुआ तथा आभूषण आदि) आनीत, (पति के दूसरी शादी करने पर, उससे निर्वाहार्थ प्राप्त हुआ धन) और शुल्क (अपने विवाह के समय पति से अथवा बन्धु बान्धवों से प्राप्त हुआ धन) की अधिकारिणी नहीं हो सकती ॥ ४४ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरण में तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय

५९ प्रकरण

विवाह संयुक्त में निष्पतन, पथ्यनुसरण ह्रस्व प्रवास और दीर्घ प्रवास

पतिकुलान्निष्पतितायाः स्त्रियाः षट्पणो दण्डोऽन्यत्र विप्रकारात् ॥ १ ॥ प्रतिषिद्धायां द्वादशपणः ॥ २ ॥ प्रतिवेशगृहातिगतायाः षट्पणः ॥ ३ ॥ प्रातिवेशिकभिक्षुकवैदेहकानामवकाशभिक्षापण्यादाने द्वादशपणो दण्डः ॥ ४ ॥

पति कुल से भागी हुई स्त्री को ६ पण दण्ड दिया जावे । यदि वह किसी भय के कारण भागी हो तो कोई दोष नहीं ॥ १ ॥ रोकने पर भी यदि कोई स्त्री (पति की आज्ञा के विरुद्ध) घर से चली जावे तो उसे १२ पण दण्ड देना चाहिए ॥ २ ॥ यदि पड़ौसी के ही घर में जाय, तो ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥ विना आज्ञा अपने पड़ोसी को अपने घर में स्थान देने पर, भिखारी को भीख देने पर, व्यापारी को किसी तरह का माल देने पर, स्त्री को १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥

प्रतिषिद्धानां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५ ॥ परगृहातिगतायां

चतुर्विंशतिपणः ॥ ६ ॥ परभार्यावकाशदाने शत्यो दण्डो ऽन्यत्रापद्भ्यः ॥ ७ ॥

यदि कोई स्त्री प्रतिषिद्ध व्यक्तियों के साथ येही व्यवहार करे तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ५ ॥ यदि वह बतलाये हुए परिमित अपने समीप के घरों से बाहर अतिरिक्त स्थानों में जाती है, तो उसे २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥ किसी दूसरे पुरुष की स्त्री को, यदि उस पर कोई आपत्ति नहीं है, अपने घर में ठहरा लेने पर १०० पण दण्ड दिया जावे ॥ ७ ॥

वारणाज्ञानयोर्निर्दोषः ॥ ८ ॥ पतिविप्रकारात् पतिज्ञातिसुखावस्थग्रामिकान्वाधिभिक्षुकीज्ञातिकुलानामन्यतममपुरुषं गन्तुमदोष इत्याचार्याः ॥ ९ ॥

परन्तु उस हालत में यह अपराध न होगा, जबकि आने वाली स्त्री, उसके (गृह स्वामी के) रोकने पर भी उसकी आज्ञा के विरुद्ध, अथवा उसको न मालूम होने पर ही, घर में चली आती है ॥ ८ ॥ आचार्यों का मत है कि पति के द्वारा धिक्कारे जाने पर कोई भी स्त्री, अपने पति के सम्बन्धी, सुखी, गांव के मुखिया, अपने धन आदि के निरीक्षक, भिक्षुकी, तथा अपने सम्बन्धियों में से किसी के, पुरुष रहित घर में जाने पर दोषी नहीं होती ॥ ९ ॥

सपुरुषं वा ज्ञातिकुलं कुतो हि साध्वीजनस्य छलं सुखमेतदवबोद्धुमिति कौटल्यः ॥ १० ॥ प्रेतव्याधिव्यसनगर्भनिमित्तमप्रतिषिद्धमेव ज्ञातिकुलगमनम् ॥ ११ ॥

कौटल्य का मत है कि कोई भी साध्वी स्त्री, उपर्युक्त अवस्था होने पर अपने सम्बन्धियों या पारिवारिक जनों के पुरुष युक्त (जहां पुरुष विद्यमान हों) घरों में भी जा सकती है, क्योंकि वह अपने छलपूर्ण व्यवहार को छिपा नहीं सकती, अर्थात् उसके इस प्रकार आने के सब कारण उसके पति या सम्बन्धियों को बड़ी सरलता से मालूम हो सकते हैं ॥ १० ॥ मृत्यु, बीमारी, आपत्ति, और गर्भ (प्रसव-बच्चा होना) आदि अवसरोंपर, सम्बन्धियोंके यहां जानेमें कोई रोक टोक नहीं ॥ ११ ॥

तन्निमित्तं वारयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ तत्रापि गूहमाना स्त्रीधनं जीयेत ॥ १३ ॥ ज्ञातयो वा छादयन्तः शुल्कशेषम् ॥ १४ ॥ इति निष्पतनम् १५

यदि कोई पुरुष, उपर्युक्त अवसरोंपर स्त्री को सम्बन्धियों के यहां जाने से रोके, तो उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १२ ॥ यदि स्त्री स्वयं कोई बहाना बनाकर, वहां जाने से अपने आपको छिपाले, तो उसका स्त्रीधन ज़ब्त कर लिया जाय ॥ १३ ॥ यदि सम्बन्धी जन ऐसे अवसर की सूचना न देवें, अर्थात् लेन देन के भयसे ऐसे अवसर को छिपा लेवें, तो उनको शुल्क शेष (विवाह के समय प्रतिज्ञात, वरकी ओरसे कन्या के सम्बन्धियों को अवशिष्ट देय धन) न दिया जावे ॥ १४ ॥ यहां तक स्त्रियों के निष्पतन (घर से बाहर जाने) का विचार हुआ ॥ १५ ॥

पतिकुलान्निष्पत्य ग्रामान्तरगमने द्वादशपणो दण्डः स्थाप्याभरणलोपश्च ॥ १६ ॥ गम्येन वा पुंसा सहप्रस्थाने चतुर्विंशतिपणः सर्वधर्मलोपश्चान्यत्र भर्मदानतीर्थगमनाभ्याम् ॥ १७ ॥

पति के घरसे भागकर दूसरे गांवमें जानेपर स्त्रीको १२ पण दण्ड दिया जावे, और उसके नामसे जमा की हुई पूंजी, तथा आभूषण भी ज़ब्त कर लिये जांय ॥ १६ ॥ गमन योग्य पुरुषके साथ जानेपर २४ पण दण्ड दिया जाय, और पतिके साथ होने वाले यज्ञ आदि सब धर्मोंसे उसे बहिष्कृत कर दिया जाय। परन्तु यदि वह अपने घरके भरण पोषण, या अन्यत्र विद्यमान पतिके ही समीप ऋतुगमन के लिये जावे, तो उसे अपराधी न समझा जाय ॥ १७ ॥

पुंसः पूर्वः साहसदण्डस्तुल्यश्रेयसः ॥ १८ ॥ पापीयसो मध्यमः ॥१९॥ बन्धुरदण्ड्यः ॥२०॥ प्रतिषेधे ऽर्धदण्डः ॥२१॥

तथा इस उपर्युक्त अपराध में स्त्री के समान श्रेष्ठ जाति वाले पुरुषको प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १८ ॥ और नीच जाति वाले पुरुष को मध्यम साहस दण्ड ॥ १९ ॥ उपर्युक्त अवस्था में बन्धु दण्डनीय नहीं होता ॥ २० ॥ निषेध किये जानेपर यदि वह इस व्यवहार को करे, तो उसे आधा दण्ड दिया जावे ॥ २१ ॥

पथि व्यन्तरे गूढदेशाभिगमने मैथुनार्थेन शङ्कितप्रतिषिद्धाभ्यां वा पथ्यनुसारेण संग्रहणं विद्यात् ॥ २२ ॥ तालापचारचारणमत्स्यबन्धकलुब्धकगोपालकशौण्डिकानामन्येषां च प्रसृष्टस्त्रीकाणां पथ्यनुसरणमदोषः ॥ २३ ॥

मार्ग, जंगल अथवा गुप्तस्थान में मैथुन के लिये जाती हुई, अथवा किसी सन्देह युक्त (जिसपर कुछ सन्देह हो) या प्रतिषिद्ध (जिसके साथ जाने

को मना किया गया हो) व्यक्ति के साथ जाती हुई स्त्री को भागने के अपराध में गिरफ्तार किया जावे, और उसी के अनुसार दण्ड की व्यवस्था की जावे ॥ २२ ॥ गाने बजाने वाले कत्थक, भाट, मछियारे, व्याध (शिकारी छोटे २ पक्षी या पशु मारकर या पकड़कर उनसे जीविका करनेवाले), ग्वाले और कलवार तथा इसी प्रकार के अन्य पुरुष जोकि अपने साथ ही साथ अपनी स्त्रियों को रखते हैं, इनके साथ जाने में स्त्री को कोई दोष नहीं ॥ २३ ॥

प्रतिषिद्धे वा नयतः पुंसः स्त्रियो वा गच्छन्त्यास्त एवार्ध-दण्डाः ॥ २४ ॥ इति पथ्यनुसरणम् ॥ २५ ॥

निषेध किये जानेपर यदि कोई पुरुष स्त्रीको ले जावे, या स्त्री स्वयं किसी पुरुषके साथ जावे, तो उनको नियमानुसार आधा दण्ड दिया जावे ॥२४॥ यहां तक पथ्यनुसरण (रास्ते में स्त्री का किसीके साथ जाना) के सम्बन्धमें विचार किया गया ॥ २५ ॥

ह्रस्वप्रवासिनां शूद्रवैश्यक्षत्रियब्राह्मणानां भार्याः संवत्सरो-त्तरं कालमाकांक्षेरन्नप्रजाताः संवत्सराधिकं प्रजाताः ॥ २६ ॥ प्रतिविहिता द्विगुणं कालम् ॥ २७ ॥

थोड़े समयके लिये बाहर जाने वाले शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मणों की पुत्रहीन स्त्रियां एक वर्ष, तथा पुत्रवती इससे अधिक समय तक उनके आने की प्रतीक्षा करें ॥ २६ ॥ यदि पति उनकी आजीविका का प्रबन्ध कर गये हों तो वे दुगने समय तक उनकी प्रतीक्षा करें ॥ २७ ॥

अप्रतिविहिताः सुखावस्था बिभृयुः परं चत्वारि वर्षाण्यष्टौ वा ज्ञातयः ॥ २८ ॥ ततो यथादत्तमादाय प्रमुञ्चेयुः ॥ २९ ॥

और जिनके भोजनाच्छादन का प्रबन्ध न हो, उनका, उनके समृद्ध बन्धु-बान्धव चार वर्ष, या अधिक से अधिक आठ वर्ष तक पालन पोषण करें ॥ २८ ॥ इसके बाद, प्रथम विवाह में दिये धनको वापस लेकर दूसरी शादीके लिये आज्ञा दे देवें ॥ २९ ॥

ब्राह्मणमधीयानं दशवर्षाण्यप्रजाता द्वादश प्रजाता राज-पुरुषमायुः क्षयादाकाङ्क्षेत ॥ ३० ॥ सवर्णतश्च प्रजाता नाप-वादं लभेत ॥ ३१ ॥

पढ़ने के लिये बाहर गये हुए ब्राह्मणों की पुत्ररहित स्त्रियां दस वर्ष और पुत्रवती बारह वर्ष तक उनकी प्रतीक्षा करें ३० यदि कोई व्यक्ति राजसे

किसी कार्य से बाहर गये हों, तो उनकी स्त्रियां आयु पर्यन्त उनकी प्रतीक्षा करें ॥ २० ॥ यदि किसी समानवर्ण (ब्राह्मणादि) पुरुषसे किसी स्त्री के बच्चा पैदा हो जाय तो वह निन्दनीय नहीं ॥ २१ ॥

कुटुम्बर्द्धिलोपे वा सुखावस्थैर्विमुक्ता यथेष्टं विन्देत जीवितार्थम् ॥२२॥ आपद्गता वा धर्मविवाहात्कुमारी परिगृहीतारमनाख्याय प्रोषितं श्रूयमाणं सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ २३ ॥

कुटुम्बकी सम्पत्ति का नाश होनेपर (या कुटुम्ब की बढ़ती नष्ट हो जानेपर अर्थात् कोई बच्चा आदि न रहनेपर) अथवा समृद्ध बन्धु बान्धवों से छोड़े जानेपर कोई स्त्री जीवन निर्वाह के लिए अपनी इच्छा के अनुसार अन्य विवाह कर सकती है ॥ २२ ॥ तथा धनादि न रहने के कारण आपद्ग्रस्त वह युवती स्त्री (अक्षतयोनि) जिसका विवाह पहिले चार प्रकार के धर्म विवाहों के अनुसार हुआ हो, और उसका पति बिना कहे विदेश को चला गया हो, सात मासिकधर्म पर्यन्त अपने पतिकी प्रतीक्षा करे ॥ २३ ॥

संवत्सरं श्रूयमाणमाख्याय ॥ २४ ॥ प्रोषितमश्रूयमाणं पञ्चतीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ २५ ॥ दश श्रूयमाणम् ॥ २६ ॥

यदि वह पुरुष कहकर गया हो, तो उसकी एक वर्ष तक प्रतीक्षा करे ॥ २४ ॥ पतिके विदेश चले जानेपर यदि उसकी कुछ खबर न मिले, तो पांच, ॥२५॥ और खबर मिलने पर दस मासिक धर्म पर्यन्त प्रतीक्षा करे ॥२६॥

एकदेशदत्तशुल्कं त्रीणि तीर्थान्यश्रूयमाणम् ॥ २७ ॥ श्रूयमाणं सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ २८ ॥

विवाह के समय प्रतिज्ञात धनमें से कुछ थोड़ा ही भाग जिसने स्त्री को दिया हो, और विदेश चले जानेपर उसकी (पति की) खबर भी कुछ न मिली हो, तो तीन मासिक धर्म पर्यन्त ॥ २७ ॥ तथा खबर मिलनेपर सात मासिक धर्म पर्यन्त, उसकी प्रतीक्षा करे ॥ २८ ॥

दत्तशुल्कं पञ्चतीर्थान्यश्रूयमाणम् ॥ २९ ॥ दश श्रूयमाणम् ॥ ४० ॥ ततः परं धर्मस्थैर्विसृष्टा यथेष्टं विन्देत ॥ ४१ ॥

जिसने विवाह के समय प्रतिज्ञात सम्पूर्ण धन दे दिया हो, और विदेश चले जाने पर उसकी कुछ खबर न मिले तो पांच ॥ ३९ ॥ तथा खबर मिलने पर दस मासिक धर्म पर्यन्त उस की प्रतीक्षा करे ॥ ४० ॥ इसके (उपर्युक्त नियत समय के) बाद प्रत्येक स्त्री धर्माधिकारी से आज्ञा पाकर अपनी इच्छानुसार दूसरा विवाह कर सकती है ॥ ४१ ॥

तीर्थोपरोधो हि धर्मवध इति कौटल्यः ॥ ४२ ॥ दीर्घप्रवासिनः प्रव्रजितस्य प्रेतस्य वा भार्या सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ४३ ॥

क्योंकि ऋतुकाल का उपरोध होना (ऋतुकालमें पुरुष संगम न होना) धर्म के नाश हो जाने के बराबर है, यह कौटल्य आचार्य का मत है ॥४२॥ जो पुरुष सदा के लिये स्त्री से वियुक्त हो गया हो, अर्थात् संन्यासी होगया हो, या मर गया हो, तो उसकी भार्या सात मासिक धर्म पर्यन्त उसकी आकाङ्क्षा रक्खे (अर्थात् इतने समय तक दूसरा विवाह न करे)॥ ४३ ॥

संवत्सरं प्रजाता ॥ ४४ ॥ ततः पतिसोदर्यं गच्छेत् ॥४५॥ बहुषु प्रत्यासन्नं धार्मिकं भर्मसमर्थं कनिष्ठमभार्यं वा ॥ ४६ ॥

यदि उसके कोई बच्चा हो, तो एक वर्ष तक प्रतीक्षा कर लेवे ॥ ४४ ॥ उसके बाद अपने पतिके सगे भाई के साथ विवाह कर लेवे ॥ ४५ ॥ यदि पति के सगे भाई बहुतसे हों, तो उनमें जो नजदीकी छोटा भाई हो, (अर्थात् पतिके और उसके बीचमें और कोई भाई न हो) तथा वह धार्मिक और भरण-पोषण करने में समर्थ हो, उसके साथ विवाह कर लेवे । अथवा जिस भाई के स्त्री न हो उसके साथ विवाह कर लेवे ॥ ४६ ॥

तदभावेऽप्यसोदर्यं सपिण्डं कुल्यं वासन्नम् ॥ ४७ ॥ एतेषां एष एव क्रमः ॥ ४८ ॥

यदि पति का सगाभाई कोई न हो, तो समान गोत्रवाले उसही के किसी पारिवारिक भाई के साथ विवाह कर लेवे ॥ ४७ ॥ तात्पर्य यह है कि पतिका जो समीप से समीप सम्बन्धी भाई हो उसके साथ विवाह कर लेवे, इनका ऐसा ही क्रम है ॥ ४८ ॥

एतानुत्क्रम्य दायादान्वेदने जातकर्मणि ।
जारस्त्रीदातृवेत्तारः संप्राप्ताः संग्रहात्ययम् ॥ ४९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे विवाहसंयुक्ते निष्पतनं पथ्यनुसरणं ह्रस्वप्रवासः दीर्घप्रवासश्च चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ विवाहसंयुक्तं समाप्तम् ॥
आदितः एकषष्टितमः ॥ ६१ ॥

इन दायभागी (अपने पति की संपत्ति के हकदार) पुरुषों को छोड़कर यदि और किसी पुरुष के साथ स्त्री विवाह करे, तो वह विवाह करने वाला पुरुष, वह स्त्री, और उस स्त्री को देने वाला तथा उस विवाह में सम्मिलित होनेवाले, ये सब ही पुरुष, स्त्री को बहकाने या अनुचित उपायसे अपने काबू करे

लन क अपराधमें अपराधी समझे जावें । और उनको यथोचित दण्ड दिया जावे ॥ ४९ ॥

॥ धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें चतुर्थाध्याय समाप्त ॥

पांचवां अध्याय

६० प्रकरण

दाय विभाग ।

अनीश्वराः पितृमन्तः स्थितपितृमातृकाः पुत्राः ॥ १ ॥ तेषामूर्ध्वं पितृतो दायविभागः पितृद्रव्याणां स्वयमार्जितमविभज्यमन्यत्र पितृद्रव्यादुत्थितेभ्यः ॥ २ ॥

माता पिता दोनों या केवल पिताके रहते हुए, पुत्र सम्पत्तिके अधिकारी नहीं होते ॥१॥ उनके बाद पिताकी सम्पत्तिका वे आपसमें बंटवारा कर सकते हैं । परन्तु जो सम्पत्ति किसीने स्वयं कमाई हो, उसका विभाग नहीं होसकता। यदि वह पिताका धन खर्च करके ही कमाई गई हो, तो उसका भी बांट होसकता है ॥२॥

पितृद्रव्यादविभक्तोपगतानां पुत्राः पौत्रा वा चतुर्थादित्यंशभाजः ॥ ३ तावदविच्छिन्नः पिण्डो भवति ॥ ४ ॥

पिताकी सम्पत्तिको न बांटकर, इकट्ठे रहने वालोंके पुत्र पौत्र आदि चौथी पीढ़ीतक उस सम्पत्तिके बराबरके अधिकारी होते हैं। (इसका तात्पर्य यह है कि जिन दो भाइयोंने अपनी जायदाद न बांटी हो, उनकी चौथी पीढ़ीतक यदि एककी सन्तान पांच, और एक की दो हों, तो वे उस सम्पत्तिको दो भागोंमें विभक्त करा सकते हैं, अर्थात् आधी सम्पत्ति दोके पास और आधी पांचके पास जावेगी । परन्तु चौथी पीढ़ीके आगे फिर इस तरह विभाग नहीं होसकता। वह उस समय विद्यमान व्यक्तियोंकी संख्याके अनुसार ही होगा।) परन्तु यह आवश्यक है कि उनके वंशमें किसी तरहका विच्छेद न हुआ हो । (विच्छेद न होनेका तात्पर्य यह है कि कोई भी व्यक्ति चौथी पीढ़ीतक उनमें से अलहदा न हुआ हो) ॥३॥ ॥४॥

विच्छिन्नपिण्डाः सर्वे समं विभजेरन् ॥ ५ ॥ अपितृद्रव्या विभक्तपितृद्रव्या वा सहजीवन्तः पुनर्विभजेरन् ॥ ६ ॥ यतश्चोत्तिष्ठेत स द्व्यंशं लभेत ॥ ७ ॥

विच्छेद होनेपर सो विद्यमान सब भाई संख्याके अनुसार बराबर २ सम्पत्ति को बांट लेवें ॥५॥ पितासे सम्पत्ति प्राप्त न होनेपर, अथवा पिताकी सम्पत्तिको बांटकर भी जो भाई इकट्ठे रहते और कमाते हैं, वे फिर भी संपत्तिका विभाग कर सकते हैं ॥६॥ जिसके कारण सम्पत्तिकी अधिक वृद्धि हो, वह सम्पत्तिका उचित अधिक भाग बांटके समय ले लेवे ॥७॥

द्रव्यमपुत्रस्य सोदर्या भ्रातरः सहजीविनो वा हरेयुः कन्याश्च रिक्थम् ॥ ८ ॥ पुत्रवतः पुत्राः दुहितरो वा धर्मिष्ठेषु विवाहेषु जाताः ॥ ९ ॥ तदभावे पिता धरमाणः ॥ १० ॥

जिसके कोई पुत्र न हो, उसकी सम्पत्तिको उसके सगे भाई तथा अन्य साथी ले लेवें । और सुवर्ण आदिके आभूषण तथा नकदी कन्या ले लेवें ॥८॥ जिसके पुत्र हों, उसकी सम्पत्तिके अधिकारी उसके पुत्र होवें, अथवा वे लड़कियां जो धार्मिक विवाहों (पहिले चार विवाहों) से उत्पन्न हुई हों ॥९॥ इनके (उक्त पुत्र पुत्रियोंके) न होनेपर उस मृतपुरुषका जीवित पिता ही सम्पत्तिका अधिकारी रहे ॥१०॥

पित्रभावे भ्रातरो भ्रातृपुत्राश्च ॥ ११ ॥ अपितृका बहवोऽपि च भ्रातरो भ्रातृपुत्राश्च पितुरेकमंशं हरेयुः ॥ १२ ॥

पिताके न रहनेपर, पिताके भाई तथा उनके पुत्र सम्पत्तिके अधिकारी समझे जावें ॥११॥ यदि पिताके न होनेपर, उसके बहुतसे भाई और भाईयोंके पुत्र हों, तो वे पिताकी सम्पत्तिको बराबर बांट लेवें ॥१२॥

सोदर्याणामनेकपितृकाणां पितृतो दायविभागः पितृभ्रातृपुत्राणां पूर्वे विद्यमाने नापरमवलम्बन्ते ॥ १३ ॥ ज्येष्ठे च कनिष्ठमर्धग्राहिणम् ॥ १४ ॥

एकही मातासे अनेक पिताओंके द्वारा उत्पन्न हुए लड़कोंका दायविभाग पिताकी ओरसे होजाना चाहिये । क्योंकि फिर पिताके भाईयों (उपपिताओं) के बड़े लड़के, पिताकी अनुपस्थितिमें छोटोंको दायभाग देनेमें गड़बड़ करते हैं ॥१३॥ इसलिये बड़ेके रहनेपर छोटेको आधा हिस्सा मिल जाना चाहिये ॥१४॥

जीवद्विभागे पिता नैकं विशेषयेत् ॥ १५ ॥ न चैकमकारणान्निर्विभजेत ॥ १६ ॥ पितुरसत्यर्थे ज्येष्ठाः कनिष्ठाननुगृह्णीयुरन्यत्र मिथ्यावृत्तेभ्यः ॥ १७ ॥

यदि पिता जीवित रहता हुआ ही अपनी सम्पत्तिका विभाग करना

चाहे, तो किसीको अधिक न देवे; अर्थात् सबको बराबर बांट देवे ॥१५॥ और बिनाही किसी कारणके अपने अनेक लड़कोंमेंसे किसी एक कोही अलहदा न करे ॥१६॥ पिताकी सम्पत्ति न होनेपर, बड़े भाई छोटोंकी रक्षा करें। यदि वे आचार सद्व्यवहार से भ्रष्ट हो जांय तो उनकी रक्षा न करें ॥१७॥

प्राप्तव्यवहाराणां विभागः ॥ १८ ॥ अप्राप्तव्यवहाराणां देयविशुद्धं मातृबन्धुषु ग्रामवृद्धेषु वा स्थापयेयुर्व्यवहारप्रापणात्प्रोषितस्य वा ॥१९॥ संनिविष्टसममसंनिविष्टेभ्यो नैवेशनिकं दद्युः॥२०॥

पुत्रोंके प्राप्तव्यवहार (बालिग) होजाने परही सम्पत्तिका विभाग किया जाता है ॥१८॥ नाबालिगोंकी सम्पत्ति, ठीक २ हिसाबके साथ उनके मामा अथवा गांवके वृद्ध विश्वासी पुरुषोंके पास रखदी जावे, जबतक कि वे बालिग होजावें। विदेशमें गये हुए पुरुषकी सम्पत्तिका भी इसी तरह प्रबन्ध होना चाहिये ॥१९॥ विवाहित बड़े भाई, अपने छोटे अविवाहित भाईयोंको विवाहके लिये खर्च देवें ॥२०॥

कन्याभ्यश्च प्रादानिकम् ॥ २१ ॥ ऋणरिक्थयोः समो विभागः ॥ २२ ॥ उदपात्राण्यपि निष्किंचना विभजेरन्नित्याचार्याः ॥ २३ ॥

और कन्याओंके लिये उनके विवाह कालमें देनेको दहेज आदिका धन देवें ॥२१॥ ऋण और आभूषण तथा नकद धनको बराबर २ बांट लेवें ॥२२॥ प्राचीन आचार्योंका मत है कि दरिद्र जन अपने पानी आदिके बर्तनोंको भी आपसमें बांट लेवें ॥ २३ ॥

छलमेतदिति कौटल्यः ॥ २४ ॥ सतोऽर्थस्य विभागो नासत एतावानर्थः सामान्यस्तस्यैतावान्प्रत्यंश इत्यनुभाष्य ब्रुवन्साक्षिषु विभागं कारयेत् ॥ २५ ॥

परन्तु कौटल्यका मत है कि ऐसा करना छल है ॥ २४ ॥ क्योंकि विद्यमान सबही सम्पत्तिका विभाग किया जाता है, अविद्यमानका नहीं। 'इतनी सम्पूर्ण सम्पत्ति है, इसमें इतना २ हिस्सा प्रत्येक व्यक्तिका है' यह बात साक्षियोंके सामने कहकर बंटवारा करवाया जावे ॥ २५ ॥

दुर्विभक्तमन्योन्यापहृतमन्तर्हितमविज्ञातोत्पन्नं वा पुनर्विभजेरन् ॥ २६ ॥ अदायादकं राजा हरेत्स्त्रीवृत्तिप्रेतकार्यवर्जमन्यत्र श्रोत्रियद्रव्यात् ॥ २७ ॥ तत्त्रैविद्येभ्यः प्रयच्छेत् ॥ २८ ॥

यदि विभाग ठीक न हुआ हो, या उस सम्पत्तिमें से किसी हिस्सेदारने कुछ अपहरण करलिया हो, या कोई चीज छिपी रह गई हो, अथवा बंटवारेके बाद कोई चीज अकस्मात् और मिलजाय, तो उस सम्पत्तिका फिर बांट कर लिया जाय ॥ २६ ॥ जिस सम्पत्तिका कोई अधिकारी न हो उसे राजा ले लेवे। परन्तु स्त्रीके जीवन निर्वाह और और्ध्वदेहिक (श्राद्ध आदि) आदि कार्योंके लिये जितना धन आवश्यक होवे, वह छोड़ देवे। तथा श्रोत्रियके धनको कदापि न लेवे ॥ २७ ॥ प्रत्युत उस धनको वेदोंके जानने वाले विद्वानों को दे देवे ॥२८॥

पतितः पतिताज्जातः क्लीबश्चानंशाः ॥ २९ ॥ जडोन्मत्तान्धकुष्ठिनश्च ॥ ३० ॥ सति भार्यार्थे तेषामपत्यमतद्विधं भागं हरेत् ॥ ३१ ॥ ग्रासाच्छादनमितरे पतितवर्जाः ॥ ३२ ॥

पतित, तथा पतितसे पैदा हुए २, और नपुंसकोंको दाय भाग नहीं मिलता ॥ २९ ॥ सर्वथामूर्ख, उन्मत्त, अन्धे और कोढ़ी भी सम्पत्तिके अधिकारी नहीं होते ॥ ३० ॥ भार्या की समाप्ति होने पर, यदि उनके (मूर्ख आदि जनोंके) लड़के उनके समान (मूर्ख आदि) नहीं होते, तो वे (लड़के) सम्पत्तिमें दायभागी हो सकते हैं ॥ ३१ ॥ पतितोंको छोड़कर अन्य सभी (मूर्ख आदि) उस सम्पत्तिमें से केवल, अपने लिये भोजन वस्त्र पासकते हैं ॥ ३२ ॥

तेषां च कृतदाराणां लुप्ते प्रजनने सति ।
सृजेयुः बान्धवाः पुत्रांस्तेषामंशान् प्रकल्पयेत् ॥३३॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे दायविभागे दायक्रमः पञ्चमो ऽध्यायः ॥५॥
आदितो द्विषष्टितमः ॥६२॥

यदि इन उपर्युक्त पुरुषोंकी स्त्रियां हों, परन्तु अपनी अशक्तिसे वे उनमें बच्चे पैदा न करसकें, तो इन पुरुषोंके बन्धु बान्धव उनमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न करें, वे अपनी पुरानी सम्पत्तिके दायभागी हो सकते हैं ॥ ३३ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरण में पांचवां अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय ।

६० प्रकरण ।

अंश विभाग ।

एकस्त्रीपुत्राणां ज्येष्ठांशः ॥ १ ॥ ब्राह्मणानामजाः क्षत्रियाणामश्वा वैश्यानां गावः शूद्राणामवयः ॥ २ ॥ काणलिङ्गास्तेषां मध्यमांशः ॥ ३ भिन्नवर्णाः कनिष्ठांशः ४

एक स्त्रीके जब बहुतसे लड़के हों, तो उनमें से सबसे बड़े लड़केका हिस्सा निम्न-प्रकार होना चाहिये ॥ १ ॥ ब्राह्मणोंकी बकरी, क्षत्रियोंके घोड़े, वैश्योंकी गाय, और शूद्रोंकी भेड़। (अर्थात् वर्णोंके अनुसार बड़े लड़केको सम्पत्तिका यह प्रधान भाग मिलना चाहिये) ॥ २ ॥ उन पशुओंमें जो काणे हों, वे मध्यम अर्थात् मंझले लड़केका (वर्णोंके अनुसार) हिस्सा समझा जावे ॥ ३ ॥ और वेही रंगाविरंगे पशु, सबसे छोटे भाईका हिस्सा ॥ ४ ॥

चतुष्पदाभावे रत्नवर्जानां दशानां भागं द्रव्याणामेकं ज्येष्ठो हरेत् ॥ ५ ॥ प्रतिमुक्तस्वधापाशो हि भवति ॥ ६ ॥ इत्यौशनसो विभागः ॥ ७ ॥

पशुओंके न होनेपर, हीरे जवाहरातको छोड़कर बाकी सब सम्पत्तिका दसवाँ हिस्सा बड़े लड़केको अधिक मिले ॥ ५ ॥ क्योंकि इससे वह पितृदेय अन्नादिके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। (इसका तात्पर्य यह है कि बड़े लड़केको अपने पूर्वज पितरोंके लिये स्वधा=पिण्डदान आदि देना पड़ता है, अतः उसपर अधिक भार न पड़े, इसलिये सम्पत्तिका दसवां हिस्सा उसे अधिक मिल जाना चाहिये) ॥ ६ ॥ दायक अंश-विभागके सम्बन्धमें यह उशना (शुक्र) आचार्य का मत है ॥ ७ ॥

पितुः परिवापाद्यानमाभरणं च ज्येष्ठांशः ॥ ८ ॥ शयनासनं भुक्तकांस्यं च मध्यमांशः ॥ ९ ॥ कृष्णं धान्यायसं गृहपरिवापो गोशकटं च कनिष्ठांशः ॥ १० ॥ शेषाणां द्रव्याणामेकद्रव्यस्य वा समो विभागः ॥ ११ ॥

पिताकी सम्पत्तिसे सवारी और आभूषण बड़े लड़केका हिस्सा ॥ ८ ॥ सोने बिछानेका सामान तथा पुराने बर्त्तन मंझले लड़केका ॥ ९ ॥ और काला अन्न, लोहा, अन्य घरेलू सामान तथा बैलगाड़ी छोटे लड़केका हिस्सा समझना चाहिये ॥ १० ॥ बाकी बचे हुए, सब द्रव्योंका, या एक द्रव्यका बराबर २ बांट हो जाना चाहिये ॥ ११ ॥

अदायादा भगिन्यः मातुः परिवापाद्भुक्तकांस्याभरण-भागिन्यः ॥ १२ ॥ मानुषहीनो ज्येष्ठस्तृतीयमंशं ज्येष्ठांशाल्लभेत ॥ १३ ॥ चतुर्थमन्यायवृत्तिः ॥ १४ ॥ निवृत्तधर्मकार्यो वा कामाचारः सर्वं जीयेत ॥ १५ ॥

दायभाग न लेनेवाली बहिनें माताकी सम्पत्तिसे पुराने बर्त्तन तथा आभू

पत्र ले लेवें ॥ १२ ॥ बड़ा लड़का यदि नपुंसक हो, तो उसको उसके निश्चित हिस्सेमेंसे तीसरा हिस्सा मिले ॥ १३ ॥ यदि वह कुछ अन्याय आचरण करता हो तो चौथा मिले ॥ १४ ॥ और यदि धर्म-कार्योंसे सदा पृथक् रहता हो तथा सब कुछ अपनी इच्छाके ही अनुसार करता हो तो उसे सम्पत्तिका कुछ भी हिस्सा न दिया जाय ॥ १५ ॥

तेन मध्यमकनिष्ठौ व्याख्यातौ ॥ १६ ॥ तयोर्मानुषोपेतो ज्येष्ठांशादर्धं लभेत ॥ १७ ॥ नानास्त्रीपुत्राणां तु संस्कृतासंस्कृतयोः कन्याकृतक्रियाभावे चैकस्याः पुत्रयोर्यमयोर्वा पूर्वजन्मना ज्येष्ठभावः ॥ १८ ॥

मध्यम और छोटे लड़केके सम्बन्धमें भी ऐसे अवसरोंपर यही नियम समझना चाहिये ॥ १६ ॥ यदि इन दोनोंमेंसे कोई एक पुंस्त्वधर्मसे युक्त (मानुषोपेतः) हो (अर्थात् नपुंसक न हो) तो वह बड़े भाईके हिस्सेमेंसे आधा ले लेवे ॥ १७ ॥ अनेक स्त्रियोंके पुत्रोंमें उसहीको बड़ा समझना चाहिये, जो अविवाहित स्त्रीके मुकाबलेमें विधि पूर्वक विवाहित स्त्रीसे उत्पन्न हुआ हो, चाहे वह पीछे ही उत्पन्न हो। अथवा एक स्त्री कन्या अवस्थामें भार्या बनी है, और दूसरी अन्यभुक्ता, उनमेंसे पहिलीका लड़का ज्येष्ठ समझा जावे। यदि किसीके दो जुड़ले पैदा हो जांय, तो उनमेंसे वही ज्येष्ठ होगा जो पहिले पैदा हुआ है ॥१८॥

सूतमागधव्रात्यरथकाराणामैश्वर्यतो विभागः शेषास्तमुपजीवेयुः ॥ १९ ॥ अनीश्वराः समविभागा इति ॥ २० ॥

सूत, मागध, व्रात्य और रथकारोंकी सम्पत्तिका, उनके ऐश्वर्यके अनुसार विभाग करना चाहिये। अर्थात् जो लड़का उनमें प्रभावशाली हो वह सम्पत्ति ले लेवे, और बाकी लड़के उसीके भरोसेपर जीवन निर्वाहका प्रबन्ध रक्खें ॥ १९ ॥ यदि उनमें कोई विशेष प्रभावशाली न हो तो वे अपनी सम्पत्तिको बराबर २ बांट लेवें ॥ २० ॥

चातुर्वर्ण्यपुत्राणां ब्राह्मणीपुत्रश्चतुरोऽशान्हरेत् ॥ २१ ॥ क्षत्रियापुत्रस्त्रीनंशान् ॥ २२ ॥ वैश्यापुत्रो द्वावंशौ ॥ २३ ॥ एकं शूद्रापुत्रः ॥ २४ ॥ तेन त्रिवर्णाद्विवर्णपुत्रविभागः क्षत्रियवैश्ययोर्व्याख्यातः ॥ २५ ॥

यदि किसी ब्राह्मणके चारों वर्णोंकी स्त्रियां हों तो उनमेंसे ब्राह्मणीके लड़केको सम्पत्तिके चार भाग मिलें ॥२१॥ क्षत्रियाके लड़केको तीन भाग ॥२२॥

वैश्याके लड़केको दो ॥ २३ ॥ और शूद्राके लड़केको एक हिस्सा मिले ॥ २४ ॥ इसी प्रकार जहांपर क्षत्रियके घरमें तीन वर्णोंकी (क्षत्रिय, वैश्य शूद्र), और वैश्यके घरमें दो वर्णोंकी (वैश्य शूद्र) स्त्रियां हों, उनके पुत्रोंके लिये भी सम्पत्ति विभागका यही उपर्युक्त नियम समझना चाहिये ॥ २५ ॥

ब्राह्मणस्यानन्तरापुत्रस्तुल्यांशः क्षत्रियवैश्ययोरर्धांशः ॥२६॥ तुल्यांशो वा मानुषोपेतः ॥ २७ ॥

यदि ब्राह्मणके घरमें ब्राह्मणी और क्षत्रिया दोहीके पुत्र हों तो वे सम्पत्तिका बराबर २ हिस्सा बांट लेवें। अर्थात् ब्राह्मणके घरमें उससे अव्यवहित नीच-जातिकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ लड़का सम्पूर्ण सम्पत्तिके आधेका हिस्सेदार होगा। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्यके घरमें उनसे अव्यवहित नीची-जातिकी स्त्रीसे उत्पन्न हुए लड़के (समान वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न हुए लड़केके हिस्सेसे) आधा हिस्सा पावें ॥ २६ ॥ जो पुंस्त्वसे युक्त (मानुषोपेत) हो, वह बराबरका ही हिस्सा लेवे ॥ २७ ॥

तुल्यातुल्ययोरेकपुत्रः सर्वं हरेत् ॥ २८ ॥ बन्धूंश्च बिभृयात् ॥ २९ ॥ ब्राह्मणानां तु पारशवस्तृतीयमंशं लभेत ॥ ३० ॥

समान या असमान वर्णकी स्त्रियोंमेंसे किसी एकके, एकही लड़का उत्पन्न हुआ हो, तो वह पिताकी सम्पूर्ण सम्पत्तिका मालिक होवे ॥ २८ ॥ और अपने बन्धु-बान्धवोंका भरण पोषण करे ॥ २९ ॥ पारशव (ब्राह्मणसे शूद्रा में उत्पन्न हुआ) ब्राह्मणोंकी सम्पत्तिके तीसरे हिस्सेका मालिक होवे ॥ ३० ॥

द्व्यंशी सपिण्डः कुल्यो वासन्नः स्वधादानहेतोः ॥ ३१ ॥ तदभावे पितुराचार्योऽन्तेवासी वा ॥ ३२ ॥

सपिण्ड (मातृकुलकी किसी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ २) अथवा नजदीकी खानदानकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ लड़का सम्पत्तिके दो भाग ले सकता है। जिससे कि वह अपने पिता आदिका पिण्डदान कर सके ॥ ३१ ॥ इन सबके न होनेपर पिताका आचार्य अथवा अन्तेवासी (शिष्य) उसकी सम्पत्तिका अधिकारी होवे ॥ ३२ ॥

क्षेत्रे वा जनयेदस्य नियुक्तः क्षेत्रजं सुतम् ।
मातृबन्धुः सगोत्रो वा तस्मै तत्प्रदिशेद्धनम् ॥ ३३ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये अधिकरणे दायविभागेंऽशविभागः

षष्ठो अध्याय ॥ ६ ॥ ॥ ६२ ॥

अथवा उसकी स्त्रीसे नियोगके द्वारा उत्पन्न हुआ लड़का, या उसकी माताके बन्धु-बान्धव या कोई सगोत्र (अत्यधिक समीपका रिश्तेदार) उसकी सम्पत्तिका अधिकारी समझा जावे ॥ ३३ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरण में छठा अध्याय समाप्त ।

सातवां अध्याय ।

६० प्रकरण ।

पुत्र विभाग ।

परपरिग्रहे बीजमुत्सृष्टं क्षेत्रिण इत्याचार्याः ॥ १ ॥ माता भस्त्रा यस्य रेतस्तस्यापत्यमित्यपरे ॥ २ ॥ विद्यमानमुभयमिति कौटल्यः ॥ ३ ॥

आचार्यका मत है कि दूसरेके क्षेत्रमें डालेहुए बीजका मालिक क्षेत्रपति ही होता है । अर्थात् किसी पुरुषसे अन्यकी स्त्रीमें उत्पन्न किया हुआ बच्चा, उस स्त्रीके पतिकी ही सम्पत्ति होती है ॥ १ ॥ परन्तु दूसरे विद्वानोंका मत है कि जो बच्चा जिसके वीर्यसे पैदा हो, वह उसीका समझा जावे ॥ २ ॥ कौटल्य कहता है कि वे दोनोंही उस बालकके पिता समझे जाने चाहियें ॥ ३ ॥

स्वयंजातः कृतक्रियायामौरसः ॥ ४ ॥ तेन तुल्यः पुत्रिकापुत्रः ॥ ५ ॥ सगोत्रेणान्यगोत्रेण वा नियुक्तेन क्षेत्रजातः क्षेत्रजः पुत्रः ॥ ६ ॥

विधिपूर्वक विवाहित स्त्रीमें, स्वयं उत्पन्न किया हुआ पुत्र औरस कहाता है ॥ ४ ॥ लड़कीका लड़का भी इसीके समान समझा जाता है ॥ ५ ॥ समान गोत्रवाले, अथवा भिन्न गोत्रवाले किसी पुरुषसे अपनी स्त्रीके साथ नियोग कराकर जो बच्चा पैदा किया जाता है, वह क्षेत्रज कहलाता है ॥ ६ ॥

जनयितुरसत्यन्यस्मिन्पुत्रे स एव द्विपितृको द्विगोत्रो वा द्वयोरपि स्वधारिक्थभाग्भवति ॥ ७ ॥ तत्सधर्मा बन्धूनां गृहे गूढजातस्तु गूढजः ॥ ८ ॥ बन्धुनोत्सृष्टोऽपविद्धः संस्कर्तुः पुत्रः ॥ ९ ॥

यदि उत्पन्न करनेवाले पुरुषके और कोई लड़का नहीं है, तो वही दो पिता (द्वि पितृक) अथवा दो गोत्रवाला (द्विगोत्र) लड़का उन दोनोंके पिण्ड दान और सम्पत्तिका अधिकारी होता है, ॥ ७ ॥ इसीके समान जो बच्चा स्त्रीके

बन्धु बान्धवोंके घर रहते हुए छिपे तौरपर पैदा होता है वह गूढज कहाता है ॥ ८ ॥ यदि बन्धु-बान्धव उसको अपने यहां न रक्खें, और कहीं बाहर उस को डालदें, या फेंकदें, तो जो कोई उस बच्चेका पालन पोषण करले, उसहीका (संस्कर्तुः) वह लड़का समझा जाता है ॥ ९ ॥

कन्यागर्भः कानीनः ॥ १० ॥ सगर्भोढायाः सहोढः ॥११॥ पुनर्भूतायाः पौनर्भवः ॥ १२ ॥ स्वयंजातः पितृबन्धूनां च दायादः ॥ १३ ॥

कन्याके गर्भसे जो बच्चा पैदा हो उसे कानीन कहते हैं ॥ १० ॥ गर्भवती स्त्रीका विवाह होनेपर जो बच्चा पैदा हो उसे सहोढ कहते हैं ॥ ११ ॥ दूसरीबार विवाहित हुई २ स्त्रीसे जो बच्चा पैदा होता है, उसे पौनर्भव कहा जाता है ॥ १२ ॥ पिता या बन्धुओंसे स्वयं उत्पन्न किया हुआ बालक उनकी सम्पत्तिका दायभागी होता है ॥ १३ ॥

परजातः संस्कर्तुरेव न बन्धूनाम् ॥ १४ ॥ तत्सधर्मा मातापितृभ्यामद्भिर्मुक्तो दत्तः ॥ १५ ॥

जो दूसरेके द्वारा उत्पन्न हुआ हो (इसका तात्पर्य 'गूढज' पुत्रसे मालूम होता है) वह संस्कर्ता (पालन पोषण करनेवाले) कीही सम्पत्तिका अधिकारी होता है, बन्धु-बान्धवोंका नहीं ॥ १४ ॥ उसहीके समान जो, माता पिताओं के द्वारा, हाथमें जल लेकर किसी दूसरेको देदिया गया हो, वह दत्त, जिसको दिया गया हो, उसीकी सम्पत्तिका अधिकारी होता है ॥ १५ ॥

स्वयं बन्धुभिर्वा पुत्रभावोपगत उपगतः ॥ १६ ॥ पुत्रत्वेनाङ्गीकृतः कृतकः ॥ १७ ॥ परिक्रीतः क्रीत इति ॥ १८ ॥

जो स्वयं या बन्धुओंके द्वारा पुत्रभावसे प्राप्त हुआ है, वह उपगत ॥१६॥ जिसको पुत्रभावसे स्वीकारकर लिया गया हो वह कृतक ॥ १७ ॥ और जो खरीदकर पुत्र बनाया गया हो, वह क्रीत कहाता है ॥ १८ ॥

औरसे तूत्पन्ने सवर्णास्तृतीयांशहराः ॥ १९ ॥ असवर्णा ग्रासाच्छादनभागिनः ॥ २० ॥ ब्राह्मणक्षत्रिययोरनन्तरापुत्राः सवर्णा एकान्तरा असवर्णाः ॥ २१ ॥

औरस पुत्रके उत्पन्न होनेपर, अन्य सवर्ण स्त्रियोंसे उत्पन्न हुए लड़के, पिताकी जायदादके तीसरे हिस्सेके मालिक होते हैं ॥ १९ ॥ और जो असवर्ण स्त्रियोंसे उत्पन्न हों, वे केवल भोजन-वस्त्र पासकते हैं ॥ २० ॥ ब्राह्मण और

क्षत्रियके अनन्तर (ब्राह्मणके लिये क्षत्रिया और क्षत्रियके लिये वैश्या) जातिकी स्त्रीसे उत्पन्न हुए पुत्र सवर्ण ही समझे जाते हैं। जो एक जातिके व्यवधानसे उत्पन्न हों, अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्यामें क्षत्रियसे शूद्रामें, वे असवर्ण समझे जावें ॥ २१ ॥

ब्राह्मणस्य वैश्यायामम्बष्ठः ॥ २२ ॥ शूद्रायां निषादः पारशवो वा ॥ २३ ॥ क्षत्रियस्य शूद्रायामुग्रः ॥ २४ ॥ शूद्र एव वैश्यस्य ॥ २५ ॥

ब्राह्मणका वैश्यामें उत्पन्न हुआ पुत्र अम्बष्ठ कहाता है ॥ २२ ॥ ब्राह्मणसे जो शूद्रामें उत्पन्न होता है, उसे निषाद या पारशव कहते हैं ॥ २३ ॥ क्षत्रियसे शूद्रामें उत्पन्न हुआ २ उग्र कहाता है ॥ २४ ॥ वैश्यका जो शूद्रामें उत्पन्न हो वह शूद्रही रहेगा ॥ २५ ॥

सवर्णासु चैषामचरितव्रतेभ्यो जाता व्रात्याः ॥ २६ ॥ इत्यनुलोमः ॥ २७ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकेही सवर्णा स्त्रियोंमें उत्पन्न हुए २ लड़के समयपर विधिपूर्वक उपनयन और ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंका अनुष्ठान न करनेके कारण व्रात्य हो जाते हैं ॥ २६ ॥ ये सब अनुलोम (उच्चवर्ण पुरुषसे नीचवर्ण स्त्रीमें) विवाहोंसे उत्पन्न होते हैं ॥ २७ ॥

शूद्रादायोगवक्षत्तचण्डालाः ॥ २८ ॥ वैश्यान्मागधवैदेहकौ ॥ २९ ॥ क्षत्रियात्सूतः ॥ ३० ॥

शूद्रसे, वैश्या क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुए पुत्र यथा संख्य आयोगव, क्षत्ता और चण्डाल कहाते हैं ॥ २८ ॥ इसी प्रकार वैश्यसे, क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुए मागध और वैदेहक ॥ २९ ॥ तथा क्षत्रियसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुआ सूत कहाता है ॥ ३० ॥

पौराणिकस्त्वन्यः सूतो मागधश्च ब्रह्मक्षत्राद्विशेषः ॥ ३१ ॥ त एते प्रतिलोमाः स्वधर्मातिक्रमाद्राज्ञः संभवन्ति ॥ ३२ ॥

परन्तु जो सूत और मागध नामके पुरुष पुराणोंमें वर्णित किये गये हैं वे इनसे विल्कुल भिन्न हैं, तथा ब्राह्मण और क्षत्रियोंसे भी श्रेष्ठ हैं ॥३१॥ राजा जब अपने धर्मका पालन नहीं करता तभी ये प्रतिलोम (नीचवर्ण पुरुषसे उच्चवर्ण स्त्रीमें उत्पन्न हुए) वर्णसंकर पैदा होते हैं ॥ ३२ ॥

उग्रान्नषाद्यां कुक्कुटः ॥ ३३ ॥ विपर्यये पुल्कसः ॥ ३४ ॥ वैदेहिकायामम्बष्ठाद्वैणः ॥ ३५ ॥ विपर्यये कुशीलवः ॥ ३६ ॥ क्षत्तायामुग्राच्छ्वपाक इत्येते चान्तरालाः ॥ ३७ ॥

जो उग्र (नामक संकर जातिके) पुरुषसे निषाद स्त्रीमें उत्पन्न होता है, उसे कुक्कुट या कुटक कहते हैं ॥ ३३ ॥ जो निषाद पुरुषसे उग्रा स्त्रीमें हो उसे पुल्कस कहते हैं ॥ ३४ ॥ अम्बष्ठसे वैदेहिकामें वेण उत्पन्न होता है ॥३५॥ और विदेहकसे अम्बष्ठामें कुशीलव ॥ ३६ ॥ उग्रसे क्षत्तामें श्वपाक, इसी प्रकार और भी अवान्तर संकर जातियां समझनी चाहियें ॥ ३७ ॥

कर्मणा वैण्यो रथकारः ॥ ३८ ॥ तेषां स्वयोनौ विवाहः ॥ ३९ ॥ पूर्वापरगामित्वं वृत्तानुवृत्तं च स्वधर्मं स्थापयेत् ॥४०॥ शूद्रसधर्माणो वा ॥ ४१ ॥ अन्यत्र चण्डालेभ्यः ॥ ४२ ॥

वैण्य कर्म करनेसे रथकार होजाता है ॥ ३८ ॥ उनका अपनीही जातिमें विवाह होता है ॥ ३९ ॥ ऊपर नीचे जावें, और धर्मका निर्णय करनेमें वे अपने पूर्वजोंका ही अनुगमन करें ॥ ४० ॥ अथवा चण्डालोंको छोड़कर सभी संकर जातियोंके धर्म शूद्रोंके समान ही समझने चाहियें ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥

केवलमेवं वर्तमानः स्वर्गमाप्नोति राजा नरकमन्यथा ॥४३॥ सर्वेषामन्तरालानां समोविभागः ॥ ४४ ॥

केवल इस प्रकारसे अपनी प्रजाकी व्यवस्था करता हुआ राजा स्वर्गको प्राप्त होता है, अन्यथा नरक पाता है ॥ ४३ ॥ सब संकर जातियोंमें, जायदाद का बराबर १ हिस्सा ही होना चाहिये ॥ ४४ ॥

देशस्य जात्या संघस्य धर्मो ग्रामस्य वापि यः ।
उचितस्तस्य तेनैव दायधर्मं प्रकल्पयेत् ॥ ४५ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे दायविभागे पुत्रविभागः सप्तमोऽध्यायः ॥७॥
दायविभागः समाप्तः । आदितश्चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

देशका जातिका सङ्घका तथा गांवका जो उचित धर्म हो, उसीके अनुसार वहांके दायभागका नियम होना चाहिये ॥ ४५ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरण में सातवां अध्याय समाप्त ।

आठवां अध्याय

६१ प्रकरण

गृह वास्तुक ।

सामन्तप्रत्यया वास्तुविवादाः ॥ १ ॥ गृहं क्षेत्रमारामः सेतुबन्धस्तटाकमाधारो वा वास्तुः ॥ २ ॥ कर्णकीलायससंबन्धोऽनुगृहं सेतुः ॥ ३ ॥

वास्तु विषयक झगड़ोंका निर्णय सामन्त (गांवके मुखिया) करें ॥ १ ॥ घर, खेत, बाग, सीमाबन्ध तालाब और बन्द (जल रोकनेके लिये बनाये हुए बांध) आदि सब वास्तु कहाते हैं ॥ २ ॥ प्रत्येक घरके चारों ओर कोनोंपर लोहे के छोटे खम्भे गाड़कर उनमें लोहेका तार खींच देना चाहिये, यह सीमाका द्योतक है, यही सेतु कहाता है ॥ ३ ॥

यथासेतुभोगं वेश्म कारयेत् ॥ ४ ॥ अभूतं वा परकुड्याद्-विक्रम्य ॥ ५ ॥ द्वावरत्नी त्रिपदीं वा देशबन्धं कारयेत् ॥ ६ ॥

सीमाके अनुसार ही मकान बनवावे। अर्थात् जितनी लम्बी चौड़ी जमीन हो, उसहीके अनुसार मकान होना चाहिये ॥ ४ ॥ दूसरेकी दीवारके सहारे कोई मकान खड़ा न करे ॥ ५ ॥ दो अरत्नी (२ अरत्नी=१$\frac{१}{२}$ फुट) या तीन पद, मकानकी नींवमें कंकरीट कुटवाना चाहिये ॥ ६ ॥

अवस्करभ्रमसुदपानं पानगृहोचितमन्यत्र सूतिकाकूपादानि-र्देशाहादिति ॥ ७ ॥ तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ८ ॥

दस दिनके लिये बनाए हुए सूतिका गृहको छोड़कर बाकी सब मकानोंमें पाखाना, जलनिकलनेकी नालियां, कुआ, तथा पाकशालाके साथ खाने पीनेका मकान (भोजन शाला) भी अवश्य बनाने चाहियें ॥ ७ ॥ इस नियमका उल्लंघन करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ८ ॥

तेनेन्धनावघातनकृतं कल्याणकृत्येष्वाचामोदकमार्गाश्च व्याख्याताः ॥ ९ ॥ त्रिपदीप्रतिक्रान्तमध्यर्धमरत्निं वा प्रवेश्य गाढ-प्रसृतमुदकमार्गं प्रस्रवणं प्रपातं वा कारयेत् ॥ १० ॥ तस्याति-क्रमे चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ११ ॥

इसी प्रकार विवाह आदि उत्सवोंमें कुल्लेका पानी बाहर निकलनेके लिये नालियों, तथा भट्टी आदिके लिये स्थानका प्रबन्ध भी मकानोंमें रखना चाहिये ॥ ९ ॥

तीन पद या १½ अरत्नी गहरा, खूब चिकना या साफ दीवारके साथ २ पानी बहनेके लिये पतनाला बनवावे। अथवा दीवारसे अलग गिरने वालाही पतनाला लगवा दें ॥ १० ॥ इस नियमका उल्लंघन करने पर ५४ पण दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥

एकपदीं प्रतिक्रान्तमरत्निं वा चक्रिचतुष्पदस्थानमग्निष्ठमुदञ्जरस्थानं रोचनीं कुट्टनीं वा कारयेत् ॥ १२ ॥ तस्यातिक्रमे चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ १३ ॥

घरके बाहरकी ओर एक चार खम्भोंका अग्निस्थान (बड़ाघाला) बनवावे, जिसमें एक पद या एक अरत्नी गहरा पानी निकलने का स्थान अवश्य हो। उसहीके साथ एक ओरमें आटा आदि पीसनेके लिये चक्कीका स्थान, तथा अन्न आदि कूटनेके लिये ओखलीका स्थान बनवावे ॥ १२ ॥ ऐसा न करनेपर २४ पण दण्ड दिया जावे ॥ १३ ॥

सर्ववास्तुकयोः प्राक्षिप्तकयोर्वा शालयोः किष्कुरन्तरिका त्रिपदी वा ॥ १४ ॥ तयोश्चतुरंगुलं नीत्रान्तरं समारूढकं वा ॥ १५ ॥

प्रत्येक साधारण दो मकानोंके बीचमें, या छज्जे या उसारे वाले मकानों के छज्जों या उसारोंके बीचमें एक किष्कु (१ किष्कु=१½ फुट या एक हाथ) या तीन पदका फासला अवश्य होना चाहिये ॥ १४ ॥ किन्हीं दो मकानोंकी छतोंमें या तो चार अंगुलका फरक होना चाहिये, या वे आपसमें मिली हों ॥१५॥

किष्कुमात्रमाणिद्वारमन्तरिकायां खण्डफुल्लार्थमसंपातं कारयेत् ॥ १६ ॥ प्रकाशार्थमल्पमूर्ध्वं वातायनं कारयेत् ॥ १७ ॥ तदवसिते वेश्मनि च्छादयेत् ॥ १८ ॥

गलीकी ओर एक किष्कु मात्र परिमाण वाला छोटासा दरवाजा बनवावे, जो यथावसर खोला जासके और खूब मजबूत हो ॥ १६ ॥ प्रकाश आनेके लिये उससे कुछ ऊपर एक रोशनदान लगवावे ॥१७॥ अन्तिम मकान के रोशनदानपर कुछ टीन आदि अवश्य लगवाना चाहिये। क्योंकि भीतरके बीचके मकानोंमें रोशनदान पर साया की आवश्यकता नहीं होती ॥ १८ ॥

संभूय वा गृहस्वामिनो यथेष्टं कारयेयुरनिष्टं वारयेयुः ॥ १९ ॥ वानलट्याश्चोर्ध्वमाहार्यभोगकटप्रच्छन्नमवमर्शभित्तिं वा कारयेद्वर्षाबाधभयात् ॥ २० ॥

अथवा पास २ के मकानोंके मालिक आपसमें मिलकर इच्छानुसार मकान बनवालें, और एक दूसरेको कष्ट न होने दें ॥ १९ ॥ छतके ऊपर अस्थायी तौरपर दीवारोंके सहारे एक फूंसका छप्पर डलवा लेवे, जिससे कि छतपर सोते समय वर्षा ऋतुमें वृष्टिके द्वारा कोई कष्ट न हो ॥ २० ॥

तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ २१ ॥ प्रतिलोमद्वारवातायनबाधायां च ॥ २२ ॥ अन्यत्र राजमार्गरथ्याभ्यः ॥ २३ ॥

ऐसा न करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २१ ॥ जो पुरुष बाहर की ओर दरवाजा या खिड़की बनाकर पड़ोसियोंको कष्ट पहुंचावे उसे भी प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २२ ॥ यदि वे दरवाजे या खिड़कियां शाही सड़क या बाजारकी ओरको हों तो कोई हानि नहीं ॥ २३ ॥

खातसोपानप्रणालीनिश्रेण्यवस्करभागैर्बहिर्बाधायां भोगनिग्रहे च परकुड्यमुदकेनोपघ्नतो द्वादशपणो दण्डः ॥ २४ ॥ मूत्रपुरीषोपघाते द्विगुणः ॥ २५ ॥

गड्ढा, सोढ़ी (जीना) नाली, लकड़ीकी सीढ़ी (नसेनी) और पाखाना आदिसे जो बाहरके पड़ौसियों को कष्ट पहुंचावे, सहन को रोके, तथा पानी निकलनेका ठीक प्रबन्ध न करनेके कारण दूसरेकी दीवारको हानि पहुंचावे, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥ मूत्र और पाखानेकी रुकावट करनेपर २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ २५ ॥

प्रणालीमोक्षो वर्षति ॥ २६ ॥ अन्यथा द्वादशपणो दण्डः ॥ २७ ॥ प्रतिषिद्धस्य च वसतो निरस्यतश्चावक्रयिणम् ॥ २८ ॥ अन्यत्र पारुष्यस्तेयसाहससंग्रहणमिथ्याभोगेभ्यः ॥ २९ ॥

वर्षा ऋतुमें हर एक नाली खुली रहनी चाहिये। (ताकि कूड़ा करकट इकट्ठा होजाने से नाली बन्द न हो जाय) ॥ २६ ॥ ऐसा न करनेपर १२ पण दण्ड दिया जावे ॥ २७ ॥ मालिकके द्वारा मना किये जानेपर भी जो किरायेदार मकान न छोड़े; तथा किराया दे देने परभी जो मालिक, किरायेदारको मकानसे निकाले, उन्हें १२ पण दण्ड होना चाहिये ॥ २८ ॥ परन्तु उनमेंसे किसीका भी कठोर भाषण, चोरी, डाका, व्यभिचार तथा मिथ्याव्यवहारका कोई मामला न हो ॥ २९ ॥

स्वयमभिप्रस्थितो वर्षावक्रयशेषं दद्यात् ॥ ३० ॥ सामान्ये वेश्मनि साधारणमददतः सामान्यमुपरुन्धतो भोगनिग्रहे द्वादशपणो दण्डः ॥ ३१ ॥ विनाशयतस्तद्द्विगुणः ॥ ३२ ॥

यदि किरायेदार अपने आप मकान को छोड़े, तो सालभर का बाकी किराया मालिक को अदा करे ॥ ३० ॥ पञ्चायती मकानोंमें (धर्मशाला आदिमें) सहायता न देने वालेको, तथा उसे कार्यमें लानेके लिये रुकावट करने वालेको १२ पण जुरमाना किया जाय ॥ ३१ ॥ ऐसे मकानोंको जो खराब करे उसे २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३२ ॥

कोष्ठकाङ्गणवर्जानामग्निकुट्टनशालयोः ।
विवृतानां च सर्वेषां सामान्ये भोग इष्यते ॥ ३३ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे वास्तुके गृहवास्तुकमष्टमो अध्यायः ॥८॥
आदितः पञ्चषष्टिरध्यायः ॥६५॥

कोठे और आंगन को छोड़कर अग्निशाला तथा कुट्टनशाला, और अन्य सब ही खुले स्थानोंका उपयोग सब लोग कर सकते हैं ॥ ३३ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें आठवां अध्याय समाप्त ।

नौवां अध्याय ।

६१ प्रकरण ।

वास्तु-विक्रय ।

ज्ञातिसामन्तधनिकाः क्रमेण भूमिपरिग्रहान्क्रेतुमभ्याभवेयुः ॥ १ ॥ ततो ऽन्ये बाह्याः सामन्तचत्वारिंशत्कुल्या गृहप्रतिमुखे वेश्म श्रावयेयुः ॥ २ ॥

अपने कुटुम्बी, गांवका मुखिया तथा धनीलोग ही क्रमशः मकान या जमीन आदि खरीद सकते हैं ॥ १ ॥ यदि ये खरीदना न चाहें तो दूसरे, गांवसे बाहरके सामन्त तथा उनके चालीस कुलोंतकके पुरुषोंको, मकानके सामनेही मकानका दाम सुनाया जाय ॥ २ ॥

सामन्तग्रामवृद्धेषु क्षेत्रमारामं सेतुबन्धं तटाकमाधारं वा मर्यादासु यथासेतुभोगमनेनार्घेण कः क्रेता इति त्रिराघुषितमव्याहतं क्रेता क्रेतुं लभेत ॥ ३ ॥

गांवके मुखिया तथा अन्य वृद्ध पुरुषोंके सामनेही खेत, बाग, सीमाबन्ध, तालाब, और हौज़ आदिके, उनकी हैसियतके मुताबिक नियम-पूर्वक मूल्यकी. 'इतने दामपर कौन खरीदेगा' इस प्रकार तीनवार आवाज़

लगाई जावे, जो खरीदनेवाला बोलीबोले, वह बिना किसी रोकटोकके मकान आदिको खरीद लेवे । ॥ ३ ॥

स्पर्धितयोर्वा मूल्यवर्धने मूल्यवृद्धिः सशुल्का कोशं गच्छेत् ॥ ४ ॥ विक्रयप्रतिक्रोष्टा शुल्कं दद्यात् ॥ ५ ॥ अस्वामिप्रतिक्रोशे चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ६ ॥

बोलीमें स्पर्धापूर्वक मूल्य बढ़ानेपर, शुल्क सहित बढ़ाया हुआ मूल्य सरकारी कोषमें जमा किया जावे ॥ ४ ॥ बेचनेकी बोली बोलनेवाला शुल्क देवे ॥ ५ ॥ मकान मालिककी अनुपस्थितिमें नीलामीके लिये उसके मकानकी बोली बोलदेनेपर २४ पण दण्ड दिया जावे ॥ ६ ॥

सप्तरात्रादूर्ध्वमनभिसरतः प्रतिक्रुष्टो विक्रीणीत ॥ ७ ॥ प्रतिक्रुष्टातिक्रमे वास्तुनि द्विशतो दण्डः ॥ ८ ॥ अन्यत्र चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ९ ॥ इति वास्तुविक्रयः ॥ १० ॥

सूचना देनेपर सात दिनतक यदि मालिक न आवे तो बोली बोलनेवाला पुरुष उसकी अनुपस्थितिमें ही मकान बेच देवे ॥ ७ ॥ कोई पुरुष बोली देनेपर यदि मकान आदि लेनेसे इन्कार करे, तो उसपर २०० पण दण्ड किया जाय ॥ ८ ॥ मकान आदिसे अतिरिक्त अन्य वस्तुओंके मामलेमें २४ पण दण्ड देना चाहिये ॥ ९ ॥ यहांतक मकान आदिके बेचनेका विषय कहा गया है ॥ १० ॥

सीमविवादं ग्रामयोरुभयोः सामन्ताः पञ्चग्रामी दशग्रामी वा सेतुभिः स्थावरैः कृत्रिमैर्वा कुर्यात् ॥ ११ ॥

दो गांवोंकी सीमाके झगड़ोंका, उन दोनों गांवोंके मुखिया, या आसपासके पांच गांव अथवा दस गांवके मुखिया, आपसमें मिलकर, स्थायी या बनावटी हदबन्दियोंके द्वारा, निर्णय करें ॥ ११ ॥

कर्षकगोपालवृद्धकाः पूर्वभुक्तिका वा बाह्याः सेतूनामनभिज्ञा बहव एको वा निर्दिश्य सीमसेतून्विपरीतवेषाः सीमानं नयेयुः ॥ १२ ॥

गांवके किसान, ग्वाले, वृद्ध, तथा अन्य बाहरके अनुभवी पुरुष बहुत या एक, जोकि हदकी हदबन्दीसे परिचित नहों, अपने वेषमें परिवर्तन करके (देखो मनु. ८, २५६; याज्ञ० २,१५२) सीमाके चिन्होंको लक्ष्यकर, गांवोंकी सीमाका निर्णय करें अथवा उसको बनावें ॥ १२ ॥